



**PURCHASED**

**Gaekwad's Oriental Series**

Published under the authority  
of the Maharaja Sayajirao  
University of Baroda, Baroda.

General Editor :

**R. T. Vyas**

M.A., Ph.D., Vyākaraṇācārya.

Director, Oriental Institute,  
Baroda.

**No. 31**



श्रीशान्तरक्षितविरचितः

**तत्त्वसङ्ग्रहः ।**

श्रीकमलशीलविरचितपञ्चिकोपेतः ।

द्वितीयो भागः ।



PURCHASED

# TATTVAŚĀNGRAHA

## OF ŚĀNTARAKṢITA

With the Commentary of  
KAMALAŚĪLA

Vol. II

Edited with Appendices etc.

by

**EMBAR KRISHNAMACHARYA**

Śaṅkṛit Pāṭhaśāṅgā, Vadtal



**Oriental Institute,  
Baroda  
1988**



First edition : 1926  
Reprint : 1988  
Copies : 500

8

(C) All Rights reserved by the Publishers

Price Rs. : 142/-

**THE ASIATIC SOCIETY**  
CALCUTTA-700016

Acc. No. S 3951  
Date 29.3.96

*Copies can be had from*—

*The Manager,*

**UNIVERSITY PUBLICATIONS SALES UNIT,  
M. S. University of Baroda Press (Sadhana Press),  
Near Palace Gate, Palace Road, Baroda-390 001.**

Printed by Shri P. N. Srivastava, Manager, Maharaja Sayajirao University of Baroda Press (Sadhana Press), near Palace Gate, Palace Road, Baroda and published on behalf of the Maharaja Sayajirao University of Baroda by Dr. R. T. Vyas, Director, Oriental Institute, Maharaja Sayajirao University of Baroda, Baroda-2, March, 1988.

SC NO - 71706  
ENTERISE

## FOREWORD

The *Tattvasaṅgraha* of Śāntarakṣita with the commentary *Pañjikā* of Kama-laśīla in two volumes, edited by Pt. Ember Krishnamacharya of Vadtal, Gujarat State, was first published in 1926 A.D. as Gaekwad's Oriental Series Nos. 30 and 31. In the first Volume a Foreword giving details of the work by the late Dr. B. Bhattacharya, the then Director of the Oriental Institute; *prastāvanā* (in Sanskrit) by the editor and the text with commentary upto chapter 22 i.e. *Bahirarthaparīkṣā* were included. The Second Volume consists of the remaining chapters of the above-mentioned work along with the commentary and the Appendices, which make the work more valuable and useful.

Since long the work has been out of print and its early reprinting was demanded by the scholars, especially those who conduct research in the field of Buddhist logic. Its first Volume was, therefore, reprinted in 1984. This second Volume is now reprinted in which the errors mentioned in the Errata of the earlier edition are corrected. The text, therefore, we hope, would be free from most of the typographical errors. It will certainly facilitate the work of the research scholars. I hope this Volume also will be warmly received by the scholars like the earlier one.

The work deals with the Buddhist philosophy. Its main objective is to establish the Mahāyāna doctrine and to refute the tenets of other systems of philosophy from its standpoint.

I take this opportunity to express my thanks to the university authorities for giving financial assistance towards the reprinting of this volume. I am thankful to Shri P. H. Joshi, Research Officer, Oriental Institute for carrying out the work of proof correction and to Shri P. N. Srivastava, Manager, M. S. University of Baroda Press and his staff for their cooperation in printing this work expeditiously and neatly.

ORIENTAL INSTITUTE,  
M. S. University of Baroda,  
Vadodara.

R. T. Vyas  
Director

Vasantapañcamī  
V. S. 2044

---



## तत्त्वसंग्रहे द्वितीयभागान्तर्गतविषयानुक्रमणिका ।



| श्रुतिपरीक्षा   | श्लो०     | प०      |
|---|-----------|---------|
| श्रुतेरपौरुषेयत्वसमर्थनमुक्तेन प्रामाण्यसमर्थनस्य जैमिनीया-<br>भिमतस्यानुवादः   | २०८५-२८१० | ५६३-७४४ |
| वेदाप्रामाण्यसाधननिरसनम्  | २०८५-२१०५ | ५८३-५८८ |
| तत्र शब्दनित्यत्वसमर्थनम्   | २१०६-२११६ | ५८९-५९० |
| व्यञ्जकनाश्रयतानामेव द्रुतस्वखिलम्बितत्वमहत्त्वाल्पत्वादिभेदानां<br>व्यङ्ग्ये शब्दे समारोपणनिरूपणम्   | २११७-२१४६ | ५९०-५९६ |
| शब्दानां नादाभिव्यङ्ग्यत्वानुपपत्तिशङ्का<br>तन्निरसनम्  | २१४८-२१५५ | ५९७-५९८ |
| शब्दानां नादाभिव्यङ्ग्यत्वानुपपत्तिशङ्का<br>तन्निरसनम्  | २१५६-२१६८ | ५९८-६०२ |
| शब्दनादयोर्व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावस्य विशेषत उपपादनम्  | २१६९-२१७३ | ६०२-६०३ |
| सर्वदेशगतानामपि शब्दानां देशविच्छेदेन दूरासन्नताग्रहणै<br>निदर्शनतया निदर्शितस्यैकस्य सतोऽप्यादित्यस्य जलादि-<br>पात्रभेदेन पृथक्पृथक्विच्छेदेन ग्रहणस्य समर्थनम् | २१७६-२२१४ | ६०३-६१२ |
| शब्दभेदकतया पराभिमतानां देशभेदापीनामसाधकतोपपादनम्   | २२१६-२२२५ | ६१३-६१५ |
| शब्दस्य वानकसामर्थ्यान्यथाऽनुपपत्त्या नित्यतासमर्थनम्   | २२२६-२२३३ | ६१५-६१७ |
| सम्बन्धकरणाग्यथाऽनुपपत्त्या शब्दनित्यत्वसमर्थनम्  | २२३४-२२४३ | ६१७-६२० |
| वर्णक्रमानित्यतामूलकपदानित्यताशङ्कातत्परिहारौ   | २२४४-२२७८ | ६२०-६२७ |
| शब्दानित्यत्वे बौद्धेः कृतस्य प्रयोगस्य दूषणम्  | २२७९-२३०२ | ६२८-६३४ |
| वेदाप्रामाण्यशङ्कातन्निरासौ   | २३०४-२३३५ | ६३५-६४१ |
| मीमांसकाभिमतस्य वेदाप्रामाण्यस्य निरसनम्  | २३३६-२३५१ | ६४१-६४५ |
| मीमांसकाभिमतस्य वेदापौरुषेयत्वस्य निरसनम्   | २३५२-२४१० | ६४५-६५८ |
| मीमांसकेन वेदे कृतस्य कृतकत्वविनाशित्वप्रतिषेधस्य खण्डनम्   | २४१२-२४३० | ६५८-६६२ |
| मीमांसकाभिमतस्य वेदमिथ्यात्वप्रतिक्रोपस्य खण्डनम्   | २४३१-२४३५ | ६६२     |
| मीमांसकाभिमतस्य वेदमिथ्यात्वप्रतिक्रोपस्य खण्डनम्   | २४३६-२४४७ | ६६२-६६६ |
| मीमांसकाभिमतस्य शब्दनित्यत्वस्य निरसनम्   | २४४८-२४८५ | ६६६-६७३ |
| मीमांसकाभिमतस्य शब्दानां नादाभिव्यङ्ग्यत्वपक्षस्य निरसनम्   | २४८६-२५७६ | ६७३-६९४ |
| प्रतिबिम्बाधियां निरालम्बनत्वोपपादनपूर्वकं पराभिमतस्य<br>जलादिपात्रभेदेनैकस्य सतोऽप्यादित्यस्य नानात्मना<br>ग्रहणस्य निरसनम्                                      | २५७७-२५९४ | ६९४-६९७ |
| देशभेदप्रयोक्तृभेदादिभिर्बर्णानामन्यान्यत्वसमर्थनमुक्तेना-<br>नित्यत्वसमर्थनम्  | २५९५-२६०० | ६९८     |
| देशभेदेऽपि शब्दैकत्वे परोक्षस्य निदर्शनस्य प्रतिक्षेपः  | २६०१-२६०७ | ७००     |

|   |           |         |
|---|-----------|---------|
| वीर्यत्वह्रस्वन्वादेर्व्यञ्जनादगतत्वपक्षस्य मीमांसकाभिमतस्य तदुपद-    | श्लो०     | ५०      |
| शितनिदर्शननिरसनपूर्वकं निरासः   | २६०८-२६११ | ७००-७०१ |
| शब्दानां नित्यत्वसाधकतया मीमांसकैः समर्थितस्य वाचकत्वा-               |           |         |
| न्यथानुपपत्त्यादेः प्रतिक्षेपः  | २६१२-२६७५ | ७०१-७१५ |
| आनुपूर्व्यनित्यतामूलकपदानित्यतासमर्थनम्                               | २६७६-२७०४ | ७१५-७१९ |
| शाब्दिकाभिमतस्फोटवादनिरासः  | २७०५-२७३३ | ७२०-७२८ |
| शब्दानित्यत्वसाधके प्रयोगे परोद्भावितानां दोषाणां परिहरण-             |           |         |
| मुखेन शब्दानित्यत्वसमर्थनम्   | २७३५-२७५९ | ७२८-७३२ |
| शब्दार्थयोः पराभिमतसम्बन्धनित्यतानिरसनमुखेन वाक्यनि-                  |           |         |
| त्यतानिरसनपूर्वकं वेदप्रामाण्यप्रतिक्षेपः                             | २७६०-२८१० | ७३३-७४४ |
| स्वतः प्रामाण्यपरीक्षा  | २८११-३१२३ | ७४४-८१५ |
| वेदानां स्वतः प्रामाण्यं संरक्षतो मीमांसकस्य प्रमाणमात्रस्य           |           |         |
| स्वतः प्रामाण्यसमर्थनप्रकारः  | २८१३-२८१६ | ७४६     |
| मीमांसकेन प्रतिज्ञातस्य स्वतः प्रामाण्यस्य निरसनम्                    | २८१७-२८४२ | ७४७-७५१ |
| अप्रामाण्यस्यापि स्वतस्त्वापादनम्                                     | २८४३-२८४६ | ७५२     |
| प्रामाण्ये स्वतस्त्वस्य अप्रामाण्ये परतस्त्वस्य च समर्थनमुखेन         |           |         |
| वेदप्रामाण्यं समर्थयतो मीमांसकस्य प्रत्यवस्थानम्                      | २८४७-२९१९ | ७५६-७६९ |
| निरासः  | २९२०-३१२३ | ७७०-८१५ |
| अतीन्द्रियदर्शिपुरुषपरीक्षा   | ३१२४-३६४६ | ८१५-९३५ |
| अतीन्द्रियार्थदर्शिनः पुरुषस्यानायासेन सिद्धयुपपादनम्                 | ३११४-३१२७ | ८१६     |
| मीमांसकैः क्रियमाणस्य धर्माधर्माद्यतीन्द्रियार्थदर्शिपुरुषप्रतिषेधस्य |           |         |
| सर्वज्ञप्रतिषेधस्य सुगतसार्वज्ञप्रतिषेधस्य चानुवादः                   | ३१२८-३२६१ | ८१७-८४५ |
| तत्र-धर्माधर्मदर्शित्वलक्षणसार्वश्यव्यतिरेकेण लौकिकाशेषार्थपरि-       |           |         |
| ज्ञातृत्वलक्षणसार्वश्यसाधनस्याकिञ्चित्करत्वकथनमुखेन                   |           |         |
| सर्वज्ञनिरसनम्  | ३१२८-३१३१ | ८१७     |
| संक्षेपेण सर्वार्थपरिज्ञातृत्वलक्षणसार्वश्याभ्युपगमपक्षदूषणम्         | ३१३२-३१३५ | ८१८     |
| प्रत्येकं (विविचय) विस्तरेण सकल्पदार्थपरिज्ञानलक्षणसार्वश्या-         |           |         |
| भ्युपगमपक्षस्य दूषणम्   | ३१३६-३१३९ | ८१९-८२० |
| धर्माधर्मदर्शित्वलक्षणसार्वश्यपक्षस्य निरसनम्                         | ३१४०-३१४४ | ८२०-८२१ |
| सर्वार्थसाक्षात्कारक्षमत्वलक्षणसार्वश्याभ्युपगमे अनिष्टापादनम्        | ३१४५      | ८२१     |
| सर्वार्थसाक्षात्कारक्षमत्वासम्भवनिरूपणम्                              | ३१४६-३१४७ | ८२१-८२२ |
| अशेषातीन्द्रियार्थपरिज्ञानलक्षणसार्वश्यपक्षस्य निरसनम्                | ३१४८-३१५० | ८२२     |
| प्रमाणाप्रतिहतवचनकृत्वेन किंणेन बुद्धे सार्वश्यसमर्थनस्य निरसनम्      | ३१५१-३१५४ | ८२३     |
| इन्द्रियाणां स्वार्थानतिलक्षणनियमनिरूपणमुखेन अतीन्द्रियार्थ-          |           |         |
| दर्शित्वासम्भवोपपादनम्  | ३१५९-३१६८ | ८२५-८२६ |

| बुद्धस्य सर्वज्ञतायां पीरुषेयागमप्रमाणकत्वस्य परैराश्रीयमाणस्य        | खो०       | प०      |
|---|-----------|---------|
| निरसनम्   | ३१७६-३१८४ | ८२८-८३० |
| सर्वज्ञे प्रत्यक्षानुमानयोरसत्त्वोपपादनम्                             | ३१८६      | ८३०     |
| सर्वज्ञे आगमप्रमाणासम्भवोपपादनम्                                      | ३१८७-३२१४ | ८३१-८३७ |
| सर्वज्ञे उपमानप्रमाणासम्भवोपपादनम्                                    | ३२१५-३२१६ | ८३८     |
| बुद्धे सर्वज्ञतासाधकतया पराभिमतया अर्थापत्तेरनुमाया वा निरासः         | ३२१७-३२२९ | ८३८-८४० |
| पराभिमतस्य सामान्यतः सर्वज्ञसम्भवसाधनस्य निरासः                       | ३२३०-३२३७ | ८४१-८४२ |
| सर्वज्ञतया पराभिमतस्य बुद्धस्योपदेशकर्तृत्वानुपपत्त्यापादनम्          | ३२३८-३२४६ | ८४३-८४४ |
| प्रकारान्तरेण ( सामटयज्ञटाभ्यां दृष्टेन पथा ) सर्वज्ञदूषणम्           | ३२४७-३२६१ | ८४४-८४५ |
| मीमांसकोक्तयुक्तिजालनिरसनमुखेन धर्माधर्माद्यतीन्द्रियदर्शि-           |           |         |
| पुरुषसमर्थनपूर्वकं सुगतसार्वश्यसमर्थनम्                               | ३२६३-३६४३ | ८४६-९३५ |
| तत्र पराभ्युपगतवेदप्रामाण्यान्यथानुपपत्तिमुखेनातीन्द्रियार्थदर्शनः    |           |         |
| सर्वज्ञस्य समर्थनम्   | ३२६३-३२६७ | ८४६-८४७ |
| सर्वज्ञाभावसाधकतया पराभिमतस्यानुपलम्भस्य अर्थासद्भावसाध-              |           |         |
| कत्वासम्भवनिरूपणमुखेन धर्मादिसकलज्ञेयावभासकत्वलक्षणस्य                |           |         |
| स्वाभिमतस्य सार्वश्यस्य बाधकप्रमाणाभावनिरूपणम्                        | ३२६८-३३०७ | ८४७-८६२ |
| स्वर्गापवर्गसाधनभूतधर्मादिसाक्षात्कारवत्वलक्षणसर्वज्ञत्वस्य अशेषार्थ- |           |         |
| परिज्ञानलक्षणसर्वज्ञत्वस्य च बुद्धे सम्भवोपपादनम्                     | ३३०८-३३११ | ८६२-८६३ |
| पराभिमतस्य धर्माधर्मयोरगमैकगम्यत्वस्य निरसनम्                         | ३३१२-३३१५ | ८६३-८६४ |
| बुद्धस्य सर्वार्थसाक्षात्कारयोगे परैरापादितस्यानिष्टस्य परिहरणम्      | ३३१८-३३१९ | ८६४     |
| वेदार्थापरिज्ञानतः परैर्बुद्धे आरोपितस्य सर्वज्ञत्वासम्भवस्य परि-     |           |         |
| हरणमुखेन तस्मिन् सर्वज्ञताया असाधारण्येन समर्थनम्                     | ३३२०-३३४२ | ८६५-८७७ |
| बुद्धोपदेशस्येतरोपदेशत उत्कर्षकथनम्                                   | ३३४३-३३४७ | ८७७-८७८ |
| बुद्धस्येतरेभ्यो वर्धमानादिभ्यो विशेषकथनम्                            | ३३४८-३३५३ | ८७९-८८० |
| बुद्धस्यासर्वज्ञतासाधकतया परोक्तज्ञेयत्वादिलिङ्गस्य निरसनम्           | ३३५४-३३५८ | ८८०-८८१ |
| उपप्रेष्टृत्वलक्षणवृत्त्वस्यासर्वज्ञतासाधकत्वाशङ्कानिरसनम्            | ३३५९-३३७३ | ८८१-८८४ |
| बुद्धसार्वश्यसमर्थनोपसंहारपूर्वकं परमतेऽर्थविपर्ययनिरूपणम्            | ३३७४-३३८० | ८८५-८८६ |
| तत्तदिन्द्रियाणां तत्तदर्थानतिलङ्घनस्वभावाविरोधेनैव सर्वज्ञतायाः      |           |         |
| समर्थनम्  | ३३८१-३३८९ | ८८६-८८७ |
| इन्द्रियाणामर्थनैयत्यस्वभावाभावनिरूपणेन सार्वश्यसमर्थनम्              | ३३९०-३३९२ | ८८७     |
| इन्द्रियाणामर्थनैयत्यस्वभावे पराभिमतानुमाननिरासः                      | ३३९३-३३९६ | ८८८     |
| अतीन्द्रियार्थप्रकाशनलक्षणज्ञानातिशयासम्भवस्य पराभिमतस्य              |           |         |
| निरसनम्   | ३३९७-३४०१ | ८८८     |
| उभयविशेषयोगेन मनसो व्यवहितविप्रकृष्टार्थप्रकाशनाभावकश-                |           |         |
| क्तिप्रकर्षोद्भवोपपादनम्  | ३४०३-३४०९ | ८८९-८९० |

|   | श्लो०     | प०      |
|---|-----------|---------|
| मनोगुणानां प्रज्ञाकृपादीनामशेषतएवभावनाभ्वासप्रकर्षापादित-<br>स्त्रोपचक्रवतिरोध्यपचवानां प्रकषीपर्वन्तगत्या व्यपगतकेशावरण-<br>केशावरणतया नेरात्म्यादिना तास्त्रिकेन रूपेण सर्वाथंसाक्षात्कार-<br>लक्षणसर्वशयस्य बुद्धे सम्भवोपपादनम् | ३४१०-३४४९ | ८९०-८९७ |
| अश्रुतानुमिनापूर्वमुद्रामण्डलाद्यभ्युदयच्छाषनानामवितथानामुपदेष्टु-<br>बुद्धस्य तद्रतातीन्द्रियसामर्थ्यविशेषसाक्षात्कारित्वावश्यम्भा-<br>वेनातीन्द्रियार्थंशित्वलक्षणसर्वशयस्य तस्मिन् समर्थनम्                                      | ३४५०-३४६२ | ८९७-८९९ |
| परिमितार्थप्राप्तिना स्वानुभवमात्रेण व्यबहितविप्रकृष्टग्रहणासामर्थ्यस्य<br>पुरुषमात्रेऽवधारणासम्भवोपपादनम्  | ३४६३-३४६८ | ९००     |
| सर्वज्ञसम्भवोपसंहरणपूर्वकं श्रुतेर्धर्मबोधकत्वे स्वातन्त्र्यस्य पराभि-<br>मतस्य प्रतिक्षेपः   | ३४६९-३४७२ | ९०१     |
| बोगबलेन प्रत्यक्षस्य अतीतानागतार्थप्रकाशनसामर्थ्यसम्भवो-<br>पपादनमुखेनातीन्द्रियार्थंशेषपुरुषसद्भावसमर्थनम्   | ३४७३-३४७६ | ९०१-९०२ |
| वेदस्य स्वातन्त्र्येण प्रामाण्यसाधकतया पराभिमतस्यानादित्वस्य<br>व्यभिचरितत्वज्ञापनपूर्वकं बौद्धवाक्याद्देववाक्ये पराभितस्य<br>प्रामाण्योपयिकविशेषस्य निरसनम्  | ३४७८-३४८४ | ९०२-९०३ |
| बौद्धवाक्ये वेदवाक्यात्प्रामाण्योपयिकविशेषसद्भावनिरूपणम्  | ३४८५-३५०० | ९०३-९०७ |
| सर्वज्ञे प्रत्यक्षादिप्रमाणासम्भवस्य परेणोक्तस्य प्रतिक्षेपः  | ३५०३-३५२७ | ९०७-९१२ |
| सर्वज्ञबोधकवचसामर्थवादत्वाश्रयणस्य पराभिमतस्य प्रतिक्षेपः   | ३५३०-३५३१ | ९१२     |
| परैर्ज्ञादावभ्युपगतस्य अभ्युदयनिःश्रेयसीकास्तधर्मज्ञानलक्षण-<br>सार्थस्यस्य बुद्ध एव सम्भवोपपादनम्  | ३५३२-३५४६ | ९१३-९१४ |
| जज्ञादिषु परैरभिमतस्य विशेषस्य बुद्धेऽभिमतस्य मर्त्यत्वलक्षण-<br>स्यापकषस्य च प्रतिक्षेपः   | ३५४७-३५५७ | ९१५-९१७ |
| परैः कृतस्य सर्वज्ञे उपमानप्रमाणप्रतिषेधश्च तथा परैरापादिताया<br>उपमानस्यासर्वज्ञसाधकतायाश्च निरासः   | ३५५८-३५६४ | ९१७-९१८ |
| बुद्धस्य सर्वज्ञतायां तदुपदेशाम्यवानुपपत्तिलक्षणाधीपतः परोद्गा-<br>विताप्रामाण्यनिरसनपूर्वकं प्रामाण्यसमर्थनम्  | ३५६५-३५९० | ९१८-९२३ |
| परहितैकप्रवृत्तस्य बुद्धस्योपदिशतो वचनप्रवृत्तौ विकल्पान्वयेऽपी-<br>तरपुरुषवदसर्वज्ञत्वस्य भ्रान्तत्वस्य चासम्भवसमर्थनम्  | ३५९३-३६०० | ९२३-९२५ |
| सततसमाहितचेतसोऽपि बुद्धस्य ब्रह्मत्वनिरपेक्षमाणमप्रणेतृत्वो-<br>पपादनमुखेन परापादितप्रसङ्गपरिहरणम्  | ३६०१-३६१० | ९२५-९२६ |
| बुद्धस्याधिपत्यभावेन कुट्यादिभ्यो निःसृतानामप्युपदेशानां पिशाचादि-<br>प्रोक्तत्वात्सम्भावनापादनस्य परैर्विरचितस्य परिहरणम्  | ३६११-३६२१ | ९२६-९२७ |
| सामदयकृदाभ्यां निरूपितस्य सार्थस्यनिरसनप्रकारस्य निरसनम्  | ३६२२-३६४६ | ९२८-९३५ |

# तत्त्वसङ्ग्रहस्य द्वितीयो भागः ।

## श्रुतिपरीक्षा ।

स्वतन्त्रश्रुतिनिःसङ्ग इत्येतत्समर्थनार्थमाह—अन्य इत्यादि ।

अन्ये पुनरिहाज्ञानमलीमसधियो जगुः ।

चित्तमात्रतया नायं युज्यते श्रुतिषाधनात् ॥ ०८५ ॥

अन्य इति । जैमिनीयाः । त एवमाहुः—चोदनैव धर्माधर्मादिव्यवस्थानिवन्ध-  
नमालोकभूता सर्वप्राणभृतां साधारणं चक्षुरिव व्यवस्थिता । अवश्यं सैव धर्मा-  
र्थिभिः पुरुषैः प्रेक्षावद्भिः प्रमाणत्वेनाश्रयणीया नान्यत्पुरुषप्रणीतवचनादिकम् ।  
तथाहि—पुरुषस्य रागादिभिरविद्यया च परीतचेतसो वचनं नालमतीन्द्रियमर्थमवि-  
परितमवगमयितुम् । अतस्तद्वचनसमधिगम्यो न धर्मादिः । नाप्यर्वाग्दर्शनः प्रत्यक्ष-  
समधिगम्यः, तस्यातीन्द्रियत्वेनात्यन्तपरोक्षत्वात् । तथाहि—इष्टानिष्टार्थसाधनयो-  
ग्यतालक्षणौ धर्माधर्मौ । यथोक्तं शाबरे भाष्ये—“य एव श्रेयस्करः स एव धर्मश-  
ब्देनोच्यते । कथमवगम्यते ? । यो यागमनुतिष्ठति तं जना धार्मिक इति समाच-  
क्षते । यश्च यस्य कर्त्ता स तेनाख्यायते, तथा पाचको लावक इति । तेन यः  
पुरुषं निःश्रेयसेन संयुनक्ति स एव धर्मशब्देनोच्यते” इति । तदनेन द्रव्यादीना-  
मिष्टार्थसाधनयोग्यता धर्म इति प्रतिपादितं भवति । तथाहि—यागशब्देन द्रव्यगु-  
णकर्माणि श्रेयसः साधनानि विशिष्टान्युच्यन्ते । तत्र च धर्मशब्दप्रवृत्तिर्दिशिता ।  
यद्यपि तानि द्रव्यादीनि प्रत्यक्षाणि स्वरूपतो, न च श्रेयःसाधनत्वेन, ताद्रूप्येण च  
तेषां धर्मत्वमिष्यते न स्वरूपमात्रेण । यथोक्तम्—“श्रेयो हि पुरुषप्रीतिः सा द्रव्य-  
गुणकर्मभिः । चोदनालक्षणैः साध्या तस्मादेष्वेव धर्मता ॥ एषामैन्द्रियकत्वेऽपि न  
ताद्रूप्येण धर्मता । श्रेयःसाधनता ह्येषां नित्यं वेदात्प्रतीयते ॥ ताद्रूप्येण च धर्मत्वं  
तस्मान्नेन्द्रियगोचरः ॥” इति । ताद्रूप्येण चेति । श्रेयःसाधनरूपेण । तस्माद्योग्यता  
धर्म इति स्थितम् । धर्मवैपरीत्येनाधर्मोऽपि सामर्थ्यादिनिष्टार्थसाधनयोग्यतेति स्पष्ट-  
मवसीयते । न च योग्यतामर्वाग्दर्शनः प्रत्यक्षीकर्तुमीशः । तस्याः सदैव कार्यानुमेय-  
त्वात् । यदाह—“शक्तयः सर्वभावानां कार्यार्थापत्तिसाधना” इति । अन्यथा अर्वा-  
ग्दर्शनत्वमेव हीयते । नापि योगिप्रत्यक्षमतीन्द्रियविषयं प्रत्यक्षत्वादितरप्रत्यक्षवत् ।  
नाप्यनुमानं धर्माधर्माधिगमाय युक्तम्, प्रतीतसम्बन्धस्यैव वस्तुनस्तेन परिच्छेदात् ।  
धर्मस्य चातथाभूतत्वात् । नाप्युपमानं समर्थं धर्मप्रत्यायने, तथा बुपमानं सादृश्य-



मसन्निकृष्टे बुद्धिमुत्पादयति । यथा गणयदर्शनं गोसरमस्य, न च धर्मेण सदृशः कश्चित्प्रतीतः सम्भवति । यत्सादृश्यात्तस्यावकल्पना भवेत् । नाप्यर्थापत्तिः क्षमा धर्माधर्मावबोधने । तथाहि—कृष्टः श्रुतौ षष्ठीऽर्थोऽन्यथा नोपपद्यते इत्यदृष्टार्थकल्पनाऽर्थापत्तिः । न च धर्मेण विना कश्चिदर्थो नोपपद्यते, यतोऽस्य कल्पना भविष्यति । अभावोऽपि प्रमाणाभावो नास्तीत्यस्यार्थस्य प्रसिद्धये प्रभवति, न विधौ । तस्मादभाववक्रस्थौ धर्माधर्मौ यदि चोदना न शक्नुयादुद्धर्तुं तेनैव प्रप्तौ स्यातामिति चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मादिर्नेन्द्रियादिलक्षणः । चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थं शक्तोऽभ्यवगमयितुं नान्यत्किञ्चनेन्द्रियम् । अतोऽवश्यं चोदना प्रमाणयितव्या । चोदनेति च क्रियायाः प्रवर्त्तकं निवर्त्तकं च वाक्यमाहुः । तथा—स्वर्गकामोऽग्निष्टोमेन यजेतेति प्रवर्त्तकम्, न हिंस्याद्भूतानीति निवर्त्तकम् । तस्याश्च प्रामाण्योपायं भवतां विज्ञप्तिमात्रं त्रैधातुकमिति प्रतज्ञार्थः । स न युज्यते । कुतः ? । श्रुतिबाधनात् । श्रुत्या वेदेन बाधनात् । चित्तव्यतिरिक्ताग्निहोत्रादिप्रकाशनात् । स्वयं च चित्तव्यतिरेकेणावस्थानात् । चित्तमात्रतयेत्युपलक्षणम् । तथा क्षणिकत्वनैरात्म्यसर्वज्ञवैराग्यादिप्रतिज्ञाऽपि बाध्यत एव । तद्विरुद्धार्थपरिदीर्घनेनावस्थानात् ॥ २०८५ ॥

स्याद्वैतत्—बाध्येत सर्वमेतत्, यदि तस्यां प्रमाण्यं सिद्धं भवतीत्याह—सा हि प्रमाणाभिन्ति ।

सा हि प्रमाणं सर्वेषां नराकृततया स्थिता ।

वैतथ्यं प्रतिपद्यन्ते पौरुषेय्यो गिरो यतः ॥ २०८६ ॥

अवितथं ज्ञानं प्रमाणं तद्वेतुत्वात्सापि प्रमाणमुच्यते । कथमित्याह—नराकृततयेति । अपौरुषेयत्वात् । अनेनावितथज्ञानहेतुत्वं वैतथ्यकारणरागादिदोषगणनाभावेन प्रतिपादयति । प्रयोगः—यन्मिथ्यात्वहेतुदोषसंसर्गरहितं तदवितथज्ञानकारणं, यथा तिमिसादिदोषानुपप्लुतं चक्षुः, मिथ्यात्वहेतुरागादिदोषसंसर्गरहितश्चापौरुषेयव्याद्वेद इति स्वभावहेतुः । वैषम्यदृष्टान्तेनानैकान्तिकतां परिहरन्नाह—वैतथ्यमिति । अनेन हि साधनाभावेन साधनभावस्य व्याप्तिमादर्शयति । तथाहि—दोषा मिथ्यात्वहेतवः यत्रैव सन्निरुद्धति तत्रैव स्वकार्यमिथ्यात्वमुपस्थापयन्ति, नान्यत्र । कारणमन्तरेण कार्यस्यासम्भवात् । सम्भवे वाऽहेतुकत्वप्रसङ्गात् । नापि तन्मन्तरेण भवत्स्वकार्यत्वं युक्तमिति प्रसङ्गादित्यन्तो मिथ्यात्वदोषयोः कार्यकारणभावानुपपत्तिहेतुक-

स्वप्रसङ्गश्च मिथ्यात्वस्येति विपर्यये बाधकं प्रमाणमिति नानैकान्तिकता । प्रयोगः  
— यत्र हि यत्कारणं नास्ति तत्तत्र न भवति, यथा (प)यस्यविद्यमानकारणो घूमः ।  
नास्ति च वैतथ्यहेतुमोहादिदोषगणः श्रुतायिति कारणानुपलब्धिः ॥ २०८६ ॥

नाप्यसिद्धतेति प्रतिपादयन्नाह दोषाः सन्तीत्यादि ।

दोषाः सन्ति न सन्तीति पुंवाच्येषु हि शङ्कयते ।

श्रुतौ कर्तुरभावाद्दोषाशङ्कैव नास्ति नः ॥ २०८७ ॥

दोषा हि पुरुषाश्रितास्तद्धर्मत्वात्, तत्कथं ते स्वाश्रयमन्तरेण भवेयुः, संभवे वाऽना-  
श्रितत्वप्रसङ्गात् । एष आश्रितधर्मो यदाश्रयानुविधायित्वम् । दोषाश्रयश्च पुरुषः  
कर्त्ता, स च निवृत्तो वेद इति कुतो दोषाशङ्का । ये नष्टाः (एतेन नष्टा ?) संदिग्धा-  
सिद्धतापि ॥ २०८७ ॥

स्यादेतत्—दोषाश्रयस्य कर्तुरभावोऽपि कथं सिद्ध इत्यतस्तदभावस्तद्वाहकप्र-  
माणपञ्चकनिवृत्त्या प्रतिपादयति—कर्त्ता तावदित्यादि ।

कर्त्ता तावददृष्टः स कदाऽऽप्यासीदितिष्यते ।

अदृष्टपूर्वसम्बन्धः संप्रत्यज्ञानहेतुकः ॥ २०८८ ॥

अनुमानविहीनोऽपि सोस्तीति परिकल्प्यते ।

आगमोऽपि न तत्सिद्धयै इतरोऽकृतकोऽस्ति न ॥ २०८९ ॥

स्वयमेवाप्रमाणत्वात्कृतकोऽस्य न बोधकः ।

मन्वादिवचनस्यापि तत्कृतैव हि सत्यता ॥ २०९० ॥

असम्बद्धस्तु विद्विष्टः सत्यवादी कथं भवेत् ।

अतोऽन्यकर्तृकोऽप्यस्ति वेदकारागमो न नः ॥ २०९१ ॥

वेदकारसहकृच्छिद्यदि दृश्येत सम्प्रति ।

ततस्तेनोपमानेन कर्तुरप्युपमा भवेत् ॥ २०९२ ॥

वेदकाराहते किञ्चिन्न सिद्धयेत्प्रमितं यदि ।

अर्थापत्त्या प्रतीयेत वेदकारस्ततो ध्रुवम् ॥ २०९३ ॥

ननु तेन विना किञ्चिद्वेदे यन्नोपपद्यते ।

अस्मिन्सति हि बह्वेष प्रामाण्यादि न सिद्धयति ॥ २०९४ ॥

स पञ्चभिरगम्यत्वाद्भावेनैव गम्यते ।

तेन घुर्लभभावोऽसौ प्रामाणाभावबाधनात् ॥ २०९५ ॥

न तावत्प्रत्यक्षतः कर्त्ता वेदस्य सिद्धः—तथाहि—अयमसाविति न शक्यते श्रुत-  
 ग्राहिकया प्रतिपादयितुमिदानीमनुपलभ्यमानत्वात् । आसीत्कर्त्तव्येवं तु कल्पनीयं,  
 स चादृष्टः सन् कदाप्यासीदितिप्यते, यत्तदप्रमाणकमिति शेषः । नाप्यनुमानतः  
 सिद्ध इत्याह—अदृष्टपूर्वेत्यादि । अदृष्टपूर्वेण कर्त्ता सम्बन्धो जन्यजनकभावलक्षणो  
 यः क्रियते संप्रति वेदस्य वेदनिन्दकैः सोऽज्ञानहेतुकः, ज्ञापकप्रमाणाभावात् न  
 दृष्टेन वह्निना सह कश्चिद्धूमस्य सम्बन्धं ग्रहीतुं प्रभुः । तस्मादनुमानविहीनोऽपि  
 स कर्त्ता कल्प्यते । अपिशब्दान्न केवलं प्रत्यक्षविहीनः । शाब्दप्रमाणनिवृत्तिमाह—  
 आगमोऽपीत्यादि । वेदस्य व्यतिरेकेणाकृतस्याभावान्न तावदकृतकः । नापि कृतक-  
 स्तस्य स्वयमेवाप्रमाणत्वात् । तथाहि—कृतको भवन्नागमो वेदसम्बद्धमनुप्रभृतिपु-  
 रुषकर्तृको भवेत् । तदसम्बद्धसाध्यमुनिप्रभृतिप्रणीतो वा, प्रथमपक्षमधिकृत्याह—  
 मन्वादिवचनस्येत्यादि । तत्कृतैवेति । वेदकृतैव । अनेन स्वतः प्रामाण्याभाव-  
 माह । द्वितीये पक्षे दोषमाह—असम्बद्धस्त्विति । असम्बद्धो वेदेन, तत्रानधिकृ-  
 तत्वात् । अन्यकर्तृक इति । असम्बद्धपुरुषकर्तृकः । वेदकारागमो—वेदकारप्रति-  
 पादकः । उपमानाभावमाह—वेदकारसदृशित्यादि । अर्थापत्तेरभावमाह—वेदका-  
 रादत् इति । प्रमितमिति । प्रमितिप्रमाणषट्कपरिच्छिन्नं । तेन विनेति । कर्त्ता ।  
 किञ्चिदिति । प्रमितम् । अस्मिन्निति । कर्त्तरि । प्रामाण्यादीत्यादिशब्देन धर्मादि-  
 व्यवस्था । अभावेनैवेति । अभावेन प्रमाणेन नास्तीत्येवं गम्यते । तस्य प्रतिषेधवि-  
 षयत्वान् । अथवा अभावेन रूपेण नास्तीत्येवं गम्यत इति यावत् । प्रमाणाभावात् ।  
 प्रमाणाभावबाधनादिति । प्रमाणानामभावो निवृत्तिः । अभावप्रमाणमिति यावत् ।  
 तेन बाधनात् । नास्ति वेदस्य कर्त्तृत्वमिति सिद्धम् ॥ २०८८ ॥ २०८९ ॥ २०९० ॥  
 ॥ २०९१ ॥ २०९२ ॥ २०९३ ॥ २०९४ ॥ २०९५ ॥

स्यादेतत्—यदि वेदस्यापौरुषेयत्वमेवं प्रसाध्य प्रामाण्यं प्रसाध्यते, हन्त तर्हि  
 परतः प्रामाण्यं प्रयुक्तं वेदस्य, तथाहि न तावद्वेदस्य प्रामाण्यं प्रतीयते यावदपौरुषे-  
 यता न साध्यत इत्याशङ्क्याह—अप्रामाण्येत्यादि ।

अप्रामाण्यनिवृत्त्यर्था वेदस्यापौरुषेयता ।

येष्टा साऽपि त्वद्यस्तुत्वात्साधनीया न साधनैः ॥ २०९६ ॥

अनेनैतदाह—न ह्यस्माभिरसिद्धं प्रामाण्यं विधिरूपेण प्रसाध्यते । किं तर्हि ? ।

परेण यदप्रामाण्यमासक्तं तन्निवृत्तिः क्रियते । अपवादे च निरस्ते स्वयमेवोत्सर्गोऽ-  
नपोदितः सिद्धोऽवतिष्ठते । नाप्यपौरुषेयत्वं प्रसाध्यते, यतस्तत्साधनद्वारेण साम-  
र्थ्यात्परतः प्रामाण्यप्रसङ्गः स्यात् । किं तर्हि ? । तस्यापौरुषेयतानिवृत्तिमात्रलक्षण-  
त्वेनावस्तुत्वात् ॥ २०९६ ॥

यदि न साध्यते कथं तर्हि स्वयं सिध्यतीत्याह—यन्नामेत्यादि ।

यन्नाम तार्किको ब्रूयात्पौरुषेयत्वसाधनम् ।

तन्निराकरणात्सिद्धा वेदस्यापौरुषेयता ॥ २०९७ ॥

ननु निराकृतेऽपि परपक्षे स्वपक्षमसाध्यतः प्रमाणेन कथं तत्सिद्धिर्येन कृतार्था  
वेदवादिनो भवन्तीत्याह—वस्तुभूतावित्यादि ।

वस्तुभूतौ हि यौ पक्षौ प्रधानपरमाणुवत् ।

तयोरन्यतरासिद्ध्या नेतरः सिद्धयति स्वयम् ॥ २०९८ ॥

प्रधानपरमाणुवदित्येतद्व्याचष्टे—प्रधानकारणत्वस्येत्यादि ।

प्रधानकारणत्वस्य निराकृत्यापि साधनम् ।

साध्यं हेत्वन्तरेणैव परमाणुकृतं जगत् ॥ २०९९ ॥

वैशेषिकेण यद्यपि साङ्ख्योपन्यस्तप्रधानकारणजगत्साधनं निराकृतम्, तथाऽपि  
हेत्वन्तरेणैव परमाणुकृतं जगत्साधनीयम्, इहाप्येवं भविष्यतीति ॥ २०९९ ॥

अत्राह—भावपक्षेत्यादि ।

भावपक्षप्रसिद्धयर्थमुच्यते यत्तु साधनम् ।

तस्मिन्निराकृते सम्यग्भावः सिद्धयति स्वयम् ॥ २१०० ॥

यत्पूर्वापरयोः कोटयोः परैः साधनमुच्यते ।

तन्निराकरणं कृत्वा कृतार्था वेदवादिनः ॥ २१०१ ॥

भावपक्षः पौरुषेयता, तन्निवृत्तिरभावपक्षः । अन्योन्यपरिहारस्थितलक्षणयो-  
श्चैकप्रतिषेधस्यापरविधिनान्तरीयकत्वादित्यभावः स्वयं सिद्धयतीति भावः । तथाहि  
—वेदस्य पूर्वापरयोः कोटयोरुत्पादविनाशलक्षणयोः सिद्धये यद्वौद्वैः साधनमुच्यते  
तन्निराकरणमात्रेणैव वेदापौरुषेयत्वस्य कोटिद्वयशून्यतालक्षणस्य सिद्धाविष्टसिद्ध्या  
कृतार्था वेदवादिनः ॥ २१०० ॥ २१०१ ॥

ननु निराकृतेऽपि तत्साधने वेदस्य नित्यत्वं विधिरूपं यन्नान्तरेण साधनीयम्,

तत्कथमसाध्यन्तो वेदस्य नित्यत्वं कृतार्था भवेयुर्वेदविद इत्याह—नित्यत्वं वस्तु-  
रूपमित्यादि ।

नित्यत्वं वस्तुरूपं यस्तदसाध्यतामपि ।

स्वयं भवति तत्सिद्धिः पूर्वपक्षद्वये हते ॥ २१०२ ॥

पूर्वपक्षद्वयम्—पूर्वापरयोः कोटयोः साधनम् ॥ २१०२ ॥

यथा पूर्वपक्षद्वये हते नित्यत्वस्य स्वयं सिद्धिर्भवति तद्दर्शयति—पूर्वा वेदस्येत्यादि ।

पूर्वा वेदस्य या कोटिः पौरुषेयत्वलक्षणा ।

परा विनाशरूपा च तदभावो हि नित्यता ॥ २१०३ ॥

पूर्वापरकोटिद्वयपरिहारस्थितलक्षणत्वान्नित्यत्वस्य, परस्परपरिहारस्थितलक्षणयोश्चै-  
कनिराकरणस्यापरसद्भावानन्तरीयकत्वादित्युक्तम् ॥ २१०३ ॥

यद्येवं, यदि तदभावो नित्यता, न तर्हि वस्तुधर्मो नित्यता प्राप्नोतीत्याह—य-  
न्नादौ क्रियत इति ।

यन्नादौ क्रियते वेदः पञ्चाक्षैव विनश्यति ।

तदेव तस्य नित्यत्वं ज्ञेयं तदपि चेन्मतम् ॥ २१०४ ॥

अकृतत्वाविनाशाभ्यां नित्यत्वं हि विवक्षितम् ।

तौ चाभावात्मकत्वेन नापेक्षेते स्वसाधनम् ॥ २१०५ ॥

अनेन वस्तुभूतस्य वेदस्यात्मगत एवासौ धर्म इति प्रतिपादयति । यद्येवं वस्तु-  
भूतत्वात्साध्यं तर्हि नित्यत्वं प्राप्तमिति परवचनावकाशमाशङ्कते—ज्ञेयमित्यादि ।  
ज्ञेयम्—प्रमाणेन ज्ञातव्यम्, साध्यमिति यावत् । तौ चेति । अकृतत्वाविनाशौ ।  
स्वरूपस्य साधनं स्वसाधनम् । अभावस्यापि वस्तुत्वाविरोधात्सत्यप्यकृताविनाशित्व-  
लक्षणत्वे नित्यत्वस्य नावस्तुत्वमिति भावः ॥ २१०४ ॥ २१०५ ॥

एवं तावत्प्रमाणपञ्चकनिवृत्त्या वेदे कर्तुरभावसिद्ध्या यन्मिथ्यात्वहेतुदोषसं-  
र्गरहितमित्यस्य हेतोर्नासिद्धिः, नापि विरुद्धता सपक्षे भावात्, विपक्षे चाभावात्प्रा-  
प्यनैकान्तिकत्वमिति सिद्धं वेदस्य प्रामाण्यम् ॥ साम्प्रतं परप्रयुक्तस्य वेदाप्रामाण्य-  
साधनद्वयस्य विस्तरेण दूषणमारभते । तत्रेदं साधनद्वयं यदैन्द्रियकं प्रयत्नानन्तरी-  
यकं च, तदनित्यं, यथा घटः, तथा च शब्दः, इति स्वभावहेतुसामान्येन शब्दस्या-  
नित्यत्वे सिद्धे वेदस्याप्यनित्यत्वसिद्ध्या सामर्थ्यादस्याः पुरुषवाक्यवन्मिथ्यात्वं सेत्स्य-

तीति परस्य बौद्धादेरभिप्रायः । अत्र शाब्दादिप्रमाणैः प्रतिज्ञाबाधां विस्तरेण प्रतिपादयति । तत्र शाब्दप्रमाणबाधां तावदाह—वेदवाक्यार्थमित्यादि ।

**वेदवाक्यार्थमिध्यात्वं यो वदत्यनुमानतः ।**

**तस्य वैदिकविज्ञानबलात्पक्षो निवर्त्तते ॥ २१०६ ॥**

वेदादागतं वैदिकम्—अग्निहोत्रात्स्वर्गो भवतीत्यादि । तद्वलात्पक्षो निवर्त्तते, तेन बाध्यमानत्वात् । यथोक्तम्—“न चास्य चोदना स्याद्वा नवेति संशयितं प्रत्ययमुत्पादयति, न च मिथ्यैतदिति कालान्तरे पुरुषान्तरे देशान्तरेऽवस्थान्तरे वा पुनरव्यपदेश्यप्रत्ययो भवति । योऽप्यन्यप्रत्ययविपर्यासं दृष्ट्वाऽत्रापि विपर्ययः सिद्धयतीत्यानुमानिकः प्रत्यय उत्पद्यते, सोऽप्यनेन प्रत्यक्षेण विरुध्यमानो बाध्येते”ति ॥ २१०६ ॥

ननु च तुल्यबलयोः कथमेकेनेतरस्य बाधा । अथ तुल्यबलत्वेऽपि बाधा, अनुमानेन तर्हि तस्य किं न बाधा स्यादित्याह—तच्च प्रत्यक्षतुल्यत्वादिति ।

**तच्च प्रत्यक्षतुल्यत्वाद्द्वैदिकं बलवत्तरम् ।**

**न शक्यमनुमानेन कथंचिदपि बाधितुम् ॥ २१०७ ॥**

अनुमानं कथं तर्हि तेन बाध्यत इत्याह—प्रत्यक्षेत्यादि ।

**प्रत्यक्षपक्षनिक्षिप्तं शास्त्रमेव यतः स्थितम् ।**

**बलवत्तरमित्येतदनुमानस्य बाधकम् ॥ २१०८ ॥**

यथोक्तम्—“प्रत्यक्षस्तु वेदवचनप्रत्ययः, न चानुमानं प्रत्यक्षविरोधि प्रमाणं भवति”ति ॥ २१०८ ॥

कथमनुमानादागमस्य बलीयस्त्वं येन प्रत्यक्षतुल्यत्वं तस्येत्याह—दृष्टान्तनिरपेक्षत्वादिति ।

**दृष्टान्तनिरपेक्षत्वादोषाभावाच्च लाघवम् ।**

**आगमस्य प्रमाणत्वे नानुमानस्य तादृशम् ॥ २१०९ ॥**

**तेनागमानुमानाभ्यां यत्रार्थे संशयो भवेत् ।**

**तत्रागमबलीयस्त्वात्कार्यस्तेनैव निर्णयः ॥ २११० ॥**

प्रमाणत्व इति । लाघवापेक्षा विषयसप्तमी । नानुमानस्य तादृशमिति । तस्य दृष्टान्तापेक्षत्वादोषसद्भावाच्च । दोषस्तु प्रत्यक्षतुल्येन वैदिकेन ज्ञानेन बाध्यमानत्वात् ॥ २२०९ ॥ २११० ॥

ननु च यदेवोभयसिद्धं तदेव दूषणं भवति, न च बौद्धस्यागमः प्रमाणम्, द्वे एव प्रमाणे इत्यवधारणात्, तत्कथमसिद्धेनागमप्रामाण्येन बाधा क्रियते बौद्धं प्रतीत्या-  
शङ्क्याह—मम।प्रमाणमित्यादि ।

ममाप्रमाणमित्येवं वेदोऽर्थं बोधयन्नपि ।

वक्तुं न द्वेषमात्रेण शक्यते सत्यवादिना । २१११ ॥

द्वेषादसम्मतत्वाद्वा न च स्यादप्रमाणता ।

न च प्रीत्यभ्यनुज्ञाभ्यां प्रमाणमवकल्प्यते ॥ २११२ ॥

द्विषन्तोऽपि च वेदस्य नैवाप्रामाण्यकारणम् ।

किञ्चिज्जल्पन्ति ये नैते भवेयुः सत्यवादिनः ॥ २११३ ॥

धारणाध्ययनव्याख्याकर्मनित्याभियोगिभिः ।

मिथ्यात्वहेतुरज्ञातो दूरस्थैर्ज्ञायते कथम् ॥ २११४ ॥

अभियुक्ता हि ये यत्र तन्निबद्धप्रयोजनाः ।

तत्रत्यगुणदोषाणां ज्ञाने तेऽधिकृता यतः ॥ २११५ ॥

ये तु ब्रह्मद्विषः पापा वेदाहरं बहिष्कृताः ।

ते वेदगुणदोषोक्तीः कथं जल्पन्त्यलज्जिताः ॥ २११६ ॥

एवं मन्यते—नहीच्छामात्रेण वस्तुनः सिद्धयसिद्धी भवतः, येनाभ्युपगमात्रेण न सिद्धमागमप्रामाण्यं भवेत्, किं तर्हि !, प्रमाणबलेन यत्सिद्धं तद्वयोरपि सिद्धम्, दृढतरश्चाभिहोत्रादिवाक्यात्प्रत्यय इति प्रतिपादितम्, तत्कथमप्रमाणमिति शक्यं वक्तुम् । केवलं वाङ्मात्रमेतद्भवताम्, निर्युक्तिकमिति सङ्केपार्थः । असम्मतत्वादिति । लोकस्याभ्यनुज्ञा—लोकसम्मतत्वम् । दूरस्था इति । शाक्यादयो वेदात् । तद्धारणा-  
दिकर्मबहिष्कृतत्वात् । तन्निबद्धप्रयोजना इति । तत्र—वेदे, निबद्धम्—उक्तम्, प्रयोजनम्—पुरुषार्थो यागादिलक्षणो येषां ते । ब्रह्मद्विष इति । वेदद्विषः । तदुद्धृतं वा ज्ञानं ब्रह्म ॥ २१११ ॥ २११२ ॥ २११३ ॥ २११४ ॥ २११५ ॥ २११६ ॥

अथवा—माम्भूदागमतो बाधा, तथाऽपि दुष्ट एव प्रतिज्ञार्थः, प्रत्यक्षादिभिर्मानै-  
र्बाध्यमानत्वादिति प्रतिपादयन्नाह—किञ्चेत्यादि ।

किं च शब्दस्य नित्यत्वं श्रोत्रजप्रत्यभिज्ञया ।

विमुत्वं च स्थितं तस्य कोऽध्यवस्येद्विपर्ययम् ॥ २११७ ॥

अनेन प्रत्यक्षतो बाधामाह । तथाहि—सर्वकालं स एवायमिति प्रत्यक्षाभिज्ञा-  
यमानत्वान्नित्यत्वं प्रत्यभिज्ञारूपात्प्रत्यक्षसिद्धम् । सर्वत्र देशे प्रत्यभिज्ञानाद्विभुत्वं च  
सिद्धमिति को विपर्ययं नित्यविभुत्वयोरध्यवस्येत्, नैव कश्चित् । नित्यत्वव्यापित्ववि-  
पर्ययोऽनित्यत्वमविभुत्वं च ॥ २११७ ॥

तस्मादित्युपसंहरति—

तस्माद्वा सर्वकालेषु सर्वदेशेषु चैकता ।

प्रत्यक्षप्रत्यभिज्ञानप्रसिद्धा साऽस्य बाधिका ॥ २११८ ॥

सर्वकालेष्विति । अतीतानागतवर्षमानेषु । अस्येति । विपर्ययस्य ॥ २११८ ॥

ज्वालादेरित्यादिना प्रत्यभिज्ञाया व्यभिचारमाशङ्कते ।

ज्वालादेः क्षणिकत्वेऽपि प्रत्यभिज्ञेति चेन्न तत् ।

तत्र हि प्रत्यभिज्ञेयं सामान्यं नित्यमेव नः ॥ २११९ ॥

भेदबुद्धिस्तु यत्रांशे स्यात्केनचिदुपाधिना ।

न तत्र प्रत्यभिज्ञानं भेदबुद्ध्याऽवधारितम् ॥ २१२० ॥

आदिशब्देन छतपुनर्जातानां केशनखतृणादीनां निर्झगादीनां ग्रहणम्, यतस्तत्रापि  
प्रत्यभिज्ञाऽस्ति, त एवामी केशास्तान्येव तृणानि सैव निर्झरघारा तदेव सरितो जल-  
मिति । नैतदस्ति । तत्र हि सामान्यं तेजस्त्वादि प्रत्यभिज्ञायते । तच्च नित्यमिष्टमे-  
वेति कुतो व्यभिचारः । यदपि व्यक्तिरूपमनित्यं तच्च नैव प्रत्यभिज्ञायत इति कुतो  
व्यभिचारः । यत्रांश इति । मन्दतरतमादौ । केनचिदुपाधिनेति । मन्दत्वोद्भूत-  
मनादिना । कथमवगतमित्याह—भेदबुद्ध्याऽवधारितमिति । भिन्नबुद्धेरेतदवगत-  
मित्यर्थः ॥ २११९ ॥ २१२० ॥

अनुमानैर्बाधामाह—देशकालादीत्यादि ।

देशकालादिभिन्नाश्च गोशब्दव्यक्तिबुद्धयः ।

समानविषयाः सर्वा नवा नानार्थगोचराः ॥ २१२१ ॥

गौरित्युत्पद्यमानत्वात्सम्प्रत्युत्पन्नबुद्धिवत् ।

गोशब्दबुद्ध्या ह्यस्तन्या गोशब्दोऽयं प्रकाशितः ॥ २१२२ ॥

गोशब्दविषयत्वेन यथैवाद्य प्रसूतया ।

इयं वा तं विजानाति तद्धेतोः पूर्वबुद्धिवत् ॥ २१२३ ॥



उमे वाऽप्येकविषये भवेतामेकबुद्धिवत् ।  
 देशकालादिभिन्ना वा समस्ता गोत्वबुद्धयः ॥ २१२४ ॥  
 एकगोशब्दजन्याः स्युर्गोधीत्वादेकबुद्धिवत् ।  
 अस्तनोच्चारणो वाऽपि गोशब्दोऽद्यापि विद्यते ॥ २१२५ ॥  
 गोशब्दज्ञानगम्यत्वादयोच्चारितशब्दवत् ।  
 गौरिति श्रूयमाणोऽथ योऽपि शब्दो मया श्रुतः ॥ २१२६ ॥  
 हेतोः पूर्वोदितादेव अ उच्चारितशब्दवत् ।  
 शब्दो वा वाचको यावान्स्थिरोऽसौ दीर्घकालभाक् ॥ २१२७ ॥  
 सम्बन्धानुभवापेक्षज्ञेयज्ञानप्रवर्तनात् ।  
 य ईदृक्स स्थिरो दृष्टो धूमसामान्यभागवत् ॥ २१२८ ॥  
 अस्थिरस्तु न सम्बन्धज्ञानापेक्षोऽवबोधकः ।  
 तादात्विकनिमित्तत्वादीपविद्युत्प्रकाशवत् ॥ २१२९ ॥  
 शब्दानित्यत्वपक्षोऽतः सर्वैरेभिर्विरुध्यते ।  
 अनुमानैर्दृष्टैः सिद्धैर्नित्याः शब्दास्ततः स्थिताः ॥ २१३० ॥

गोशब्दव्यक्तिषु या बुद्धयो देशकालद्रुतमध्यविलम्बितादिप्रतिभेदभासभिन्नास्ता  
 एकार्थविषयाः, नानार्थविषया न वा भवन्ति, गौरित्याकारोपग्रहणोत्पद्यमानत्वात् ।  
 सम्प्रत्युत्पन्नगोबुद्धिवत् । अथवा—या या गोशब्दविषया बुद्धिः साऽद्यतनगोश-  
 ब्दविषया, गोशब्दविषयत्वात् । अथ प्रसूतगोशब्दबुद्धिवत् । गोशब्दविषया च  
 अस्तनी गोशब्दबुद्धिरिति स्वभावहेतुः । अथवा—अस्तनी गोशब्दबुद्धिर्धर्मिणी,  
 अस्तनगोशब्दविषयत्वं साध्यधर्मः, गोशब्दविषयत्वादिति हेतुः, अस्तनी गोशब्दबु-  
 द्धिर्दृष्टान्तः । एतदेवाह—इयमित्यादि । इयमित्यद्यतनी । तमिति । अस्तनगोशब्द-  
 ज्ञानोपलब्धं गोशब्दम् । तद्धेतोरिति । गोशब्दविषयत्वात् । अथवा—उमे अस्त-  
 न्यद्यतन्यौ बुद्धी एकविषये गोशब्दविषयत्वादेकगोशब्दबुद्धिवत् । उमे चेत्येतदेव  
 दर्शयति । हेतुः प्रकृतत्वात्सुज्ञात इति नोक्तः । अथवा—समस्ता गोत्वबुद्धयो देशा-  
 दिभेदभिन्ना एकगोशब्दजन्या गोधीत्वादेकगोबुद्धिवत् । पूर्वं गोशब्दविषया बुद्धयो  
 धर्मिण्यः, एकविषयत्वं च साध्यम्, इदानीं च गोत्वजातिविषया बुद्धयो धर्मिण्यः,  
 एकगोशब्दजन्यत्वं साध्यमिति विशेषः । अस्तनमुच्चारणमत्येति अस्तनोच्चारणः ।

अयं च धर्मिनिर्देशः । अद्यापि वर्त्तनं साध्यधर्मः शेषं सुबोधम् । गौरिति श्रूयमाणोऽद्येति धर्मिनिर्देशः । तस्य षोऽपि श्रवणं साध्यधर्मः । पूर्वोदितादिति । गोशब्दज्ञानगम्यत्वात् । अथवा—यावान्वाचकशब्द इत्ययं धर्मिनिर्देशः । तस्य दीर्घकालभाक्त्वं साध्यधर्मः । सम्बन्धानुभवापेक्षज्ञेयज्ञानप्रवर्त्तनादिति हेतुः । सम्बन्धानुभवमपेक्षत इति सम्बन्धानुभवापेक्षं तच्च तत् ज्ञेयज्ञानप्रवर्त्तनं चेति तथोक्तम् । तस्मात्स्थिरो ज्ञेयः स्थिरस्यैव विशेषणं दीर्घकालभागिति । कालस्थैर्येण स्थिरत्वमत्राभिप्रेतं न तु देशस्थैर्येण पर्वतादेरिवेति विशेषणेन दर्शयति । घूमसामान्यभागवदिति दृष्टान्तः । स्वलक्षणस्यानन्वयान्न लिङ्गत्वमिति सामान्यभाग एव दृष्टान्तः । अस्थिरस्त्वित्यादि व्यतिरेककथनम् । तादात्विकनिमित्तत्वादिति । तादात्विकम्—तावत्कालिकं व्यवहारकालानुयायि निमित्तं सम्बन्धो यस्य स तथोक्तः तद्भावस्तत्त्वम् ॥ २१२१ ॥ २१२२ ॥ २१२३ ॥ २१२४ ॥ २१२५ ॥ २१२६ ॥ २१२७ ॥ २१२८ ॥ २१२९ ॥ २१३० ॥

ननु चानया दिशा घटादीनामप्येकत्वं शक्यते वक्तुम् । तथाहि—सर्वा देशकालादिभिन्ना घटादिव्यक्तिबुद्ध्यः समानविषया न वा नानार्थगोचराः । घट इत्युत्पद्यमानत्वात्सम्प्रत्युत्पन्नघटबुद्धिवदित्येवमादि । न चैकत्वं घटादिनामिष्टं दृष्टं वा । तस्मादेते सर्वे एव हेतवो व्यभिचारिण इत्याशङ्क्याह—घटादेरित्यादि ।

**घटादेरेकतापत्तौ जाल्येष्टं सिद्धसाधनम् ।**

**व्यक्तीनामेकतापत्तिं कुर्याच्चेदनया दिशा ॥ २१३१ ॥**

**तथा दृष्टविरुद्धत्वं वाच्यं सर्वप्रमाणकम् ।**

**यतोऽध्यक्षादिभिर्मानैर्व्यक्तिभेदः सुनिश्चितः ॥ २१३२ ॥**

यदि जात्या—जातिरूपेण, घटादीनामेकत्वं साध्यते प्रसङ्गेन तदा सिद्धसाधनम् । तदुक्तम्—“अंशो ह्येतस्य जात्याख्यो नित्यो ध्वंसीतरो मत” इति । अथ—व्यक्तिरूपाणामेकत्वं प्रसङ्गेन साध्यते, तदापि न व्यभिचारः । प्रत्यक्षादिभिर्बाधितत्वादस्याः प्रतिज्ञायाः । यस्मादबाधितविषयत्वेन सतीति सर्वे हेतवः सविशेषणा इहाभिप्रेताः । तत्कुतो व्यभिचार इत्यभिप्रायः । दृष्टविरुद्धत्वमिति । प्रतिज्ञाया इति शेषः । शेषं सुगमम् ॥ २१३१ ॥ २१३२ ॥

पुनरपि शब्दानित्यत्वप्रतिज्ञाया अनुमानार्थापत्तिभ्यां बाधामाह—तत्रेदमनुमा-

नम्—ययोरकृत्रिमः सम्बन्धस्तावकृत्रिमौ यथाऽऽकाशपरमाणू, अकृत्रिमश्च सम्बन्धः शब्दस्य जातिसंज्ञकेनार्थेन वाच्यवाचकभावलक्षण इति स्वभावहेतुः । असिद्धिं परिहरन्नाह—कृत्रिमत्वे चेत्यादि ।

कृत्रिमत्वे च सम्बन्धस्तत्प्रयोगापवर्जनात् ।

तदेकव्यक्तिनिष्ठत्वात्तैव सार्धत्रिको भवेत् ॥ २१३३ ॥

पार्थिवद्रव्यसप्ताकिलाङ्गलत्वादिसङ्करात् ।

विना प्रयोगभूयस्त्वं न स्याद्गोत्वावधारणा ॥ २१३४ ॥

तस्मादकृत्रिमः शब्दो न कदाचिद्विनश्यति ।

नित्येन नित्यसम्बन्धादाकाशपरमाणुवत् ॥ २१३५ ॥

कृत्रिमत्वे च सम्बन्धस्येत्यपेक्षणीयम् । यदि सम्बन्धः कृत्रिमो भवेत्तदा तत्प्रयोगापवर्जनात्—शब्दप्रयोगविनाशात्, शब्दस्यापि विनाश इति सार्धत्रिकः—सर्वप्रयोगानुयायी, न स्यात् । कुताः ?, तदेकव्यक्तिनिष्ठत्वात्—एकगोव्यक्तिनिष्ठत्वात् । तत्रार्थापत्तिः—येयं समुखेऽनेकस्मिन्नेकस्यामपि गोव्यक्तौ सामान्यस्थिते सति गोशब्दान्निष्कृष्टस्य गोत्वस्यैव प्रतिपत्तिः, सा शब्दमन्तरेणानुपपन्ना । कथमित्याह—पार्थिवेत्यादि । शाब्दप्रमाणपूर्वकेयमर्थापत्तिः । तस्मादकृत्रिमः शब्द इत्यनुमानमुपसंहरति । नित्येनेति । जातिसंज्ञकेनार्थेन । नित्यं सर्वकालं सम्बन्धात् । यथा परमाणूनां नित्येनाकाशेनेति ॥ २१३३ ॥ २१३४ ॥ २१३५ ॥

अर्थापत्तेरनैकान्तिकत्वं परिहरन्नाह—संमुखानेकसामान्येत्यादि ।

संमुखानेकसामान्यविषयश्च सकृच्छ्रुतः ॥

निष्कृष्टं स्वार्थवाचित्वं गोशब्दो न प्रपद्यते ॥ २१३६ ॥

बहुभिः श्रवणैरेष प्राणित्वादीनि वर्जयन् ।

शुक्लादिगमनादीनि सास्त्रालाङ्गलतादि च ॥ २१३७ ॥

शावलेयादिखण्डादिव्यक्तीः स्वस्वनिबन्धनाः ।

निष्कृष्टगोत्ववाचित्वं चिरेण प्रतिपद्यते ॥ २१३८ ॥

यथोक्तं भाष्ये—“नित्ये तु खलु वै शब्दे बहुकृत्व उच्चारितः श्रुतपूर्वस्त्वन्या-  
न्यासु गोष्वन्वयव्यतिरेकाभ्यामाकृतिवचनत्वमवगमयति तस्मादपि नित्य” इति ।  
व्यक्तीः स्वस्वनिबन्धना इति । यथास्वं भेदभिन्ना इत्यर्थः । भिन्नत्वं हि तासां भेद-

प्रतिपत्तिनिबन्धनम् । तेन स्वं भिन्नत्वं भेदप्रतिपत्तिनिबन्धनं यासां ताः स्वनिबन्धनाः । वर्जयन्निति सम्बन्धः ॥ २१३६ ॥ २१३७ ॥ २१३८ ॥

स्यादेतत्—यदि नाम चिरेण प्रतिपद्यते, तथापि कथं सर्वकालभावित्वं सिध्यति शब्दस्येत्याह—तावत्कालमित्यादि ।

तावत्कालं स्थिरं चैनं कः पश्चान्नाशयिष्यति ।

सम्भाव्यतेऽस्य नाशित्वं न भूयोऽन्येन हेतुना ॥ २१३९ ॥

यथा शस्त्रादिभिश्छेदाज्जरया वा घटादयः ।

नङ्क्षयन्तीत्यवगम्यन्ते नैवं शब्देऽस्ति कारणम् ॥ २१४० ॥

तावत्कालम्—निष्कृष्टस्वार्थप्रतिपादनकालम् । ननु यथा घटादीनां तवत्कालं स्थिराणामपि मुद्गरादिभ्यः पश्चाद्विनाशस्तथा शब्दस्यापि भविष्यतीत्याह—सम्भाव्यतेऽस्येत्यादि । भूय इति । पुनः । यथा शस्त्रादिभिश्छेदाद्विनाशं प्रतिपद्यन्ते घटादयो जरया वा, नैवं शब्देऽस्ति कारणम् । कथम् ?, अभूर्त्तत्वात्, घटादीनां च मूर्त्तत्वादिति भावः ॥ २१३९ ॥ २१४० ॥

यदुक्तम्—“घटादेरेकतापत्तौ जात्येष्टं सिद्धसाधनम् । व्यक्तीनामेकतापत्तिं कुर्याच्चेदनया दिशा ॥ तदा दृष्टविरुद्धत्वं वाच्यं सर्वप्रमाणकम् ॥” इति तदिहापि समानम्—गादीनामेकतापत्तौ जात्येष्टं सिद्धसाधनमिति सर्वं वाच्यम् । तथाहि—देशकालप्रयोक्तृभेदाद्गवादिव्यक्तिवद्गादिवर्णव्यक्तयो बह्व्यः तदाधारं च गोत्वादि, त(द्व)द्वत्वाद्यपि सामान्यमिष्टमिति सर्वं समानमित्याशङ्क्याह—देशकालप्रयोक्तृणामित्यादि ।

देशकालप्रयोक्तृणां भेदेऽपि च न भेदवान् ।

गादिवर्णो यतस्तत्र प्रत्यभिज्ञा परिस्फुटा ॥ २१४१ ॥

प्रत्यभिज्ञारूपात्तु प्रत्यक्षाद्व्यक्तीनामेकत्वं सिद्धम्, नानुमानं प्रत्यक्षविरोधे प्रमाणीभवति, प्रत्यक्षस्य सर्वप्रमाणज्येष्ठत्वादित्यभिप्रायः ॥ २१४१ ॥

ननु द्रुतमध्यविलम्बितादिप्रतीतिभेदाद्भेदः सिद्ध एव व्यक्तीनाम्, तत्कथमुच्यते प्रत्यभिज्ञा परिस्फुटेत्याह—नहि द्रुतादिभेदेऽपीति ।

न हि द्रुतादिभेदेऽपि निष्पन्ना सम्प्रतीयते ।

गव्यक्तयन्तरविच्छिन्ना गव्यक्तिरपरा स्फुटा ॥ २१४२ ॥

निष्पन्नेति । अकल्पिता । विच्छिन्नेति । भिन्ना । गव्यक्तिर्गकारव्यक्तिः । प्रत्यभिज्ञयैकीकृतत्वान्न गव्यक्तिरपराऽस्तीति भावः ॥ २१४२ ॥

ननु च गत्वादिजातिरेवात्र प्रत्यभिज्ञायते न व्यक्तिस्तत्कथं व्यक्तेः प्रत्यभिज्ञे-  
त्याह—गकार इत्यादि ।

**गकारोऽत्यन्तनिकृष्टगत्वाधारो न विद्यते ।**

**गान्यबुद्ध्यनिरूप्यत्वात्परकल्पितगत्ववत् ॥ २१४३ ॥**

गान्यबुद्ध्यनिरूप्यत्वादिति । गकारादन्यो गान्यः, तस्मिन्बुद्धिस्तयाऽनिरूप्य-  
त्वादप्राप्तत्वात् । परकल्पितगत्ववदिति । निःसामान्यानि सामान्यानीति परेषां  
सिद्धान्तात् ॥ २१४३ ॥

**वर्णत्वाच्चापि साध्योऽयमिति ।**

**वर्णत्वाच्चापि साध्योऽयं स्वकारादिवदेव च ।**

**व्यतिरेकस्य चादृष्टेर्नात्र दृष्टं निवर्त्तकम् ॥ २१४४ ।**

गत्वनिषेध इति शेषः । तत्र प्रयोगः—यो गवर्णसोऽत्यन्तनिकृष्टगत्वाधारो  
न भवति, यथा स्वकारादिवर्णः, वर्णश्चायं गकार इति विरुद्धव्याप्तोपलब्धिः ।  
गत्वाधारत्वविरुद्धेन किल वर्णत्वस्य व्याप्तत्वात् । न चात्र प्रतिज्ञाया दृष्टविरोध  
इत्याह—व्यतिरेकस्येत्यादि । व्यतिरेको—भेदः । दृष्टम्—प्रत्यक्षम् ॥ २१४४ ॥

स्यादेतत्—बौद्धं प्रति सिद्धसाध्यता, तथाहि—एकत्वबुद्धिरन्यापोहनिबन्धनैवेष्टा न  
व्यतिरिक्तगत्वनिबन्धना, ततश्च प्रतिषिद्धेऽपि व्यतिरिक्ते गत्वे नैकत्वबुद्धिवशादे-  
कत्वं वर्णस्य सिद्ध्यति, अन्यापोहनिबन्धनत्वात्तस्येत्याशङ्क्याह—द्वयसिद्धस्त्विति ।

**द्वयसिद्धस्तु वर्णात्मा नित्यत्वादि यथैव च ।**

**कल्पितस्येष्यते तद्वत्सिद्धस्यैवाभ्युपेयताम् ॥ २१४५ ॥**

**तेनैकत्वेन वर्णस्य बुद्धिरेकोपजायते ।**

**विशेषबुद्धिसङ्गाधो भवेद्बुद्धयस्त्रयमेवतः ॥ २१४६ ॥**

किमित्युभयसिद्धं वर्णात्मानं परित्यज्य कल्पितस्यैवान्यापोहस्य नित्यत्वानेकत्व-  
व्यापित्वादयो वर्णन्ते, जातिधर्मव्यवस्थितेरिति वचनात् । युक्तं यदेवोभयसिद्धं तस्यैव  
करुणयितुम्, अन्यथा दृष्टकल्पनाप्रसङ्गः स्यात् । तस्मादेकत्वादेव वर्णस्यैका  
प्रत्यभिज्ञाबुद्धिरुपजायते । यथेवं द्रुतमध्यविलम्बितादिविशेषबुद्धिः कथं भवेदित्याह  
—विशेषबुद्धीत्यादि । व्यञ्जका वायवीयाः संयोगविभागाः ॥ २१४५ ॥ २१४६ ॥

ननु बायोरश्रोत्रविषयत्वात्तदीया अपि संयोगविभागा अश्रोत्रा एव । तत्कथमगृ-

हीने व्यञ्जके व्यञ्जयस्य ग्रहणं भवति नद्यालोकग्रहणे तद्व्यञ्जयस्य घटादेर्ग्रहणं युक्तमिति मन्यमानश्चोदयति—नन्वित्यादि ।

**ननु यस्य द्वयं श्रौत्रं तस्य बुद्धिद्वयं भवेत् ।**

**भवतोऽतीन्द्रियत्वात्तु कथं नादैर्विशेषधीः ॥ २१४७ ॥**

यस्येति । यस्य—वैयाकरणादेशोष्मात्मको ध्वनिर्व्यञ्जको न तु वायवीयसंयोगविभागात्मकः, तस्य द्वयम्—व्यञ्जयं व्यञ्जकं च श्रोत्रप्राप्तमिति बुद्धिद्वयम्—एकबुद्धिर्विशेषबुद्धिश्च भवति । भवतस्तु मीमांसकस्य कथं नादैर्वायवीयसंयोगविभागात्मकैर्विशेषधीर्भवेत्, कुतः ?, अतीन्द्रियत्वात् ! नादानामिति शेषः ॥ २१४७ ॥

नादेनेत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

**नादेन संस्कृतानुच्चार्यदा शब्दः प्रतीयते ।**

**तदुपश्लेषतस्तस्य बोधं केचित्प्रचक्षते ॥ २१४८ ॥**

तदुपश्लेषत इति । शब्दोपश्लेषतः । तस्य—नादस्य । बोधं—ग्रहणम् । केचित्प्रचक्षते—यद्यपि केवलस्य नादस्य श्रोत्रेणाग्रहणम्, तथापि शब्दोपश्लेषस्य तु ग्रहणमस्येवेति बुद्धिद्वयं भवेदेवेति तेषां भावः ॥ २१४८ ॥

नैव वेत्यनेनाग्रहणपक्षेऽपि बुद्धिद्वयं समर्थयते ।

**नैव वा ग्रहणे तेषां शब्दे बुद्धिस्तु तद्वशात् ।**

**संस्कारानुकृतेश्चाऽपि महत्त्वाद्यवबुध्यते ॥ २१४९ ॥**

तेषामिति । नादानां । वायवीयसंयोगविभागात्मनाम् । कथमगृहीतव्यव्यञ्जके व्यञ्जये बुद्धिर्भवेदित्याह—शब्दे बुद्धिस्तु तद्वशादिति । नादवशात् । तत्सत्त्वामात्रेणैवेति यावत् । भवतु नाम स्वरूपमात्रग्रहणं महत्त्वादिविशेषग्रहणं तु कथं भवतीत्याह—संस्कारानुकृतेरित्यादि । यदा महद्भिर्नादैर्महान्संस्कार आधीयते श्रोत्रे, तदा महत्त्वं प्रतीयते शब्दे । यदा त्वल्पैरल्पत्वमित्येवं संस्कारानुकारात्तरतममेदोऽपि योज्यः ॥ २१४९ ॥

ननु च यदेतन्महत्त्वादि गृह्यते तद्व्यञ्जकस्थमेव भवन्मते न व्यञ्जयस्यम्, तच्च व्यञ्जकाग्रहणादगृहीतमेवेति तत्कथमगृहीत्वा व्यञ्जकस्थं महत्त्वादि शब्दे समारोपयेत् । न ह्यविषयीकृतस्य जलादेर्भीरुचिकादावारोपो भवेदित्याह—मधुरं तिक्तरूपेणेत्यादि ।

मधुरं तिक्तरूपेण श्वेतं पीततया यथा ।

गृह्णन्ति पित्तदोषेण विषयं भ्रान्तचेतसः ॥ २१५० ॥

यथा वेगेन धावन्तो नाधारूढाश्च गच्छतः ।

पर्वतादीन्प्रजानन्ति भ्रमेण भ्रमतश्च तान् ॥ २१५१ ॥

मण्डूकवसयाऽक्ताक्षा वंशानुरगबुद्धिभिः ।

व्यक्तयल्पत्वमहत्त्वाभ्यां सामान्यं च तदाश्रयम् ॥ २१५२ ॥

गृह्णन्ति यद्वदेतानि निमित्तग्रहणाद्विना ।

व्यञ्जकस्थमबुद्धैवं व्यङ्ग्ये भ्रान्तिर्भविष्यति ॥ २१५३ ॥

यथा पित्तदोषेणं मधुरादिकं विषयं तिक्तादिरूपेण गृह्णन्त्यगृहीत्वैव पित्तस्वरूपम् । यथा वाऽऽशुगमननौयानभ्रमणैराहितविभ्रमाः पर्वतादीन्गच्छतो भ्रमतश्च पश्यन्ति । यथा च मण्डूकवसयाऽक्तचक्षुषो वंशानुरगरूपेण वीक्षन्ते । यथा च व्यक्तेरल्पत्वमहत्त्वाभ्यां सामान्यं तदाश्रयम्—अल्पत्वाद्याश्रयम्, प्रतिपद्यन्ते, सत्कारुण्यं महासामान्य-मरूपं तु गोत्वादीति । अन्यथा हि नित्यसर्वगतत्वेन सर्वस्य तुल्यत्वार्तिककृतं सामान्यस्याल्पत्वं महत्त्वं स्यात् । तस्माद्यद्वदेतानि मधुरादीनि तिक्तादिरूपेण गृह्णन्ति निमित्तस्य पित्तादेर्ग्रहणमन्तरेण, तथा व्यञ्जकस्थं मदत्त्वादिकमगृहीत्वैव शब्दे महत्त्वादिभ्रान्तिर्भविष्यति । अबुद्धेति । भ्रान्तिक्रियापेक्षया समानकर्तृत्वम्, अन्यथा त्वाप्रत्ययो न स्यात् ॥ २१५० ॥ २१५१ ॥ २१५२ ॥ २१५३ ॥

अथ कथमवगतं येयं ह्रस्वमहत्त्वादिषीः शब्दे भवति सा परोपाधिका, न तु स्वत एव महत्त्वादिभेदसद्भावादित्याह—स्वतो ह्रस्वादिभेद इत्यादि ।

स्वनो ह्रस्वादिभेदस्तु नित्यत्वादेर्विरुध्यते ।

सर्वदा यस्य सद्भावः स कथं मात्रिकः स्वयम् ॥ २१५४ ॥

तस्मादुच्चारणं तस्य मात्राकालं प्रतीयताम् ।

द्विमात्रं त्रिमात्रं वा न वर्णो मात्रिकः स्वयम् ॥ २१५५ ॥

आदिशब्देन दीर्घप्लुतोदात्तानुदात्तस्वरितषड्भादिभेदपरिग्रहः । नित्यत्वादेर्विरु-  
ध्यत इति । प्रत्यभिज्ञया नित्यत्वस्य सिद्धत्वादिति भावः ॥ २१५४ ॥ २१५५ ॥

नन्वित्यादिना परमतेनाभिव्यक्तेरसिद्धिमाशङ्कते ।

ननु नादैरभिव्यक्तिर्न शब्दस्योपपद्यते ।

सा हि स्याच्छब्दसंस्कारादिन्द्रियस्योभयस्य वा ॥ २१५६ ॥

तत्र सर्वैः प्रतीयेत शब्दः संस्क्रियते यदि ।

निर्भागस्य विभोर्नः स्यादेकदेशे हि संस्क्रिया ॥ २१५७ ॥

साऽभिव्यक्तिः शब्दस्य भवन्ती वायवीयैः संयोगविभागैः शब्दसंस्काराद्वा भवेत्, इन्द्रियसंस्काराद्वा, उभयस्य वा—शब्दस्येन्द्रियस्य च संस्कारात् । तत्र यदि शब्दः संस्क्रियते तदा पाटलिपुत्रादावेकत्र देशे संस्कृतः सर्वदेशस्थैर्गृह्येत, युगपत्तस्य सर्वगतत्वात् । अथापि स्यादेकांशस्तस्य संस्कृतो न तु सर्व इत्याह—निर्भागस्येति । निरवयवो हि शब्दोऽमूर्त्तत्वात्, कथं विभुत्वेऽपि निरवयवस्यैकदेशेन संस्कारः स्यात् ॥ २१५६ ॥ २१५७ ॥

अथापि स्यादाधारभेदानिरवयवस्यापि सतो भेदेन संस्कारो भविष्यतीत्याह—  
न चापीति ।

न चाप्याधारभेदेन संस्कारनियमो भवेत् ।

यतः शब्दो निराधारो व्योमात्मादिवदेव च ॥ २१५८ ॥

विभुत्वादाकाशात्मादिवन्निराधारः शब्दः ॥ २१५८ ॥

नन्वाकाशगुणत्वाच्छब्दस्य गुणाश्च गुणिनाश्रिता इत्याकाशमाधारोऽस्ति शब्दस्येत्याह—अथाप्याकाशमित्यादि ।

अथाप्याकाशमाधारस्तत्रानवयवे मति ।

न स्यात्प्रदेशसंस्कारः कृत्स्नशब्दगतेरपि ॥ २१५९ ॥

तस्याप्याकाशस्यानवयवत्वान्नाधारप्रदेशभेदेन संस्कारभेदोऽस्ति । ननु च यद्यप्याकाशमनवयवं तथाऽपि संयोगिभेदात् घटाकाशादिवत्कर्णशण्डुलीपर्यन्तपरिच्छिन्नमाकाशं भिन्नं भविष्यतीत्याह—कृत्स्नशब्दगतेरपीति । न स्यात्प्रदेशसंस्कार इति सम्बन्धः । अखण्ड एव हि शब्दः प्रतीयते सा च प्रतीतिर्व्योमैकदेशसंस्कृतौ न स्यात् ॥ २१५९ ॥

कथमित्येतदेव निगमयन्नाह—नहीत्यादि ।

नहि सामस्यरूपेण यावद्ब्रह्मोम व्यवस्थितः ।

शक्यते सकलो बौद्धमेकदेशेन संस्कृतः ॥ २१६० ॥

नन्वाकाशं व्याप्य व्यवस्थितः शब्दस्तदेकदेशेन संस्कृतः शक्यते सकलो ज्ञातुम् ॥ २१६० ॥



इन्द्रियसंस्कारपक्षे दूषणमाह—आकाशश्रोत्रपक्ष इत्यादि ।

आकाशश्रोत्रपक्षे च विभुत्वात्प्राप्तितुल्यता ।

दूरभावेऽपि शब्दानामिह ज्ञानं प्रसज्यते ॥ २१६१ ॥

श्रोत्रस्य चैवमेकत्वं सर्वप्राणभृतां भवेत् ।

तेनैकश्रुतिवैलायां शृणुयुः सर्वे एव ते ॥ २१६२ ॥

येषां स्वं श्रोत्रमिति पक्षस्तेषामेकत्वाद्विभुत्वाच्च नभसः सर्वशब्दैस्तुल्या प्राप्तिरिति दूरस्थस्यापि शब्दस्य ग्रहणं प्राप्नोति । श्रोत्रस्य च सर्वप्राणभृतामेकत्वं स्यात् । ततश्चैको यदा शृणोति तदैव सर्वैरपि श्रूयते, अभिन्नत्वाच्छ्रोत्रस्य । एकाश्रवणे सर्वेषामश्रवणदोषश्च वक्तव्यः ॥ २१६१ ॥ २१६२ ॥

स्यादेतत्—धर्माधर्माभिसंस्कृतया कर्णशष्कुल्या परिच्छिन्नमाकाशं श्रोत्रम्, अतः कर्णशष्कुलिमत्याकाशदेशे श्रोत्रव्यवस्थितेर्दोषद्वयमपीदमनास्पदं यद्विभुत्वात्प्राप्तितुल्यता श्रोत्रस्य चैकत्वं सर्वप्राणभृतां भवेदिति । अत्राह—तस्यानवयवत्वादिति ।

तस्यानवयवत्वाच्च न धर्माधर्मसंस्कृतः ।

नभोदेशो भवेच्छ्रोत्रं व्यवस्थाद्वयसिद्धये ॥ २१६३ ॥

नह्यनवयवस्य परमार्थतः एकदेशाः सन्ति । येन कश्चिदेव नभोदेशः श्रोत्रं भवेत् । व्यवस्थाद्वयम्—प्राप्तेरतुल्यत्वव्यवस्था, श्रोत्रानेकत्वव्यवस्था च । यद्वा—शब्दस्य ग्रहणाग्रहणे व्यवस्थाद्वयम् ॥ २१६३ ॥

सकृच्च संस्कृतं श्रोत्रं सर्वशब्दान्प्रबोधयेत् ।

घटायोन्मीलितं चक्षुः पटं नहि न बुद्ध्यते ॥ २१६४ ॥

एतदेव प्रसक्तव्यं विषयस्यापि संस्मृतौ ।

समानदेशवृत्तित्वात्संस्कारस्याविशेषतः ॥ २१६५ ॥

किंच—सकृत्—एकवारं संस्कृतं श्रोत्रं सर्वशब्दान्प्रबोधयेत्—ग्राहयेत् । तस्य सर्वशब्दसाधारणत्वात् । तेषां च शब्दानां विभुत्वेनाभिन्नयोग्यदेशत्वात् । स्यादेतत्प्रतिपत्त्यर्थमेव वक्त्रा श्रोतुः श्रोत्रमभिसंस्कृतं तमेव शब्दं तच्छ्रोत्रं ग्राहयेन्नान्यमित्याह—घटायेत्यादि । नहि न बुद्ध्यते, अपि तु बुद्ध्यत एव, तुल्यत्वाद्देशयोग्यताया इति भावः । सर्वशब्दग्रहणं कथमित्याह—समानदेशवृत्तित्वात्संस्कारस्याविशेषत इति । सर्वेऽपि हि शब्दा विभुत्वेन समानाकाशदेशवृत्तयः, ततश्चैषां संस्कारोऽ-

प्यविशिष्ट एवेति सर्वग्रहणप्रसङ्गः । क्वचित्पाठः—‘ संस्कारो ष्वविशेषतः ’ इति तत्र हिशब्दो हेतौ । अविशेषत इति । आद्यादित्वात्तृतीयान्तात्तसिः । ततश्चायमर्थो भवति—अविशेषेण यस्माच्छब्दानां संस्कारः कृतः, समानदेशवृत्तित्वात्, ततः सर्वशब्दग्रहः प्राप्नोतीति ॥ २१६४ ॥ २१६५ ॥

स्यादेतत्—यद्यप्यविशेषेण संस्कारः, तथापि य एव जिघृक्षितः श्रोत्रा शब्दः स एव गृह्यते नान्य इति, अत्राह—स्थिरवाय्वित्यदि ।

स्थिरवाय्वपनीत्या च संस्कारोऽस्य भवन् भवेत् ।

दृष्टमावरणापाये तद्देशोऽस्यो(शस्थो?)पलम्भमनम् ॥२१६६॥

द्विविधो हि वायुः स्थिरोऽस्थिरश्च, तत्र यः स्थिरः सद्यनाव(घनान्ध?)कारवत् शब्दमावृत्यास्ते । तस्य च वक्तृप्रयत्नसमुत्थेन वायुना संयोगविभागा उत्पद्यन्ते । तैश्च संयोगविभागैस्तस्य स्थिरस्य वायोरपनयः क्रियते स एव च शब्दस्य संस्कारो नान्यः स्वलक्षणपृष्ठ्यादिः, तस्य नित्यत्वेनैकरूपत्वात् । ततः किमित्याह—दृष्टमित्यादि । दृष्टमिति । लोकशास्त्रयोः । यथा घटादेरन्धकारापगमे सति पुरोऽवस्थितस्यानमीष्टस्याप्युपलब्धिर्भवत्येव योग्यदेशावस्थानात् ॥ २१६६ ॥

यदुक्तम्—“ तत्र सर्वैः प्रतीयेत शब्दः संस्क्रियते यदि ॥” इति, तत्र न दोषो यस्मादेकोऽपि शब्दः कंचित्पुरुषं प्रत्यसंस्कृतः कंचित्प्रति संस्कृतः । यथा एका स्त्री व्यपेक्षामेदान्माता च दुहिता चेत्याह—संस्कृतासंस्कृतत्वे इति ।

संस्कृतासंस्कृतत्वे न शब्दैकत्वेन सिद्ध्यतः ।

एकावस्थाभ्युपेतौ च सर्वैर्ज्ञायेत वा न वा । २१६७ ॥

शब्दस्यैकत्वे सति संस्कृतासंस्कृतत्वे द्वे अवस्थे निष्पर्यायेण न प्राप्नुतः, अवस्थाया अवस्थातुरमेदात् अवस्थातृस्वरूपवदवस्थयोरप्येकत्वमेव प्राप्नोति । यत्पुनरेका स्त्री माता चोच्यते दुहिता चेति । तत्र शब्द एव केवलं भिन्नो न वस्तु । इह तु न व्यपदेशमात्रं भिन्नम्, शब्दस्य सर्वपुरुषग्रहणयोग्यत्वाविशेषेणावस्थानात् । ततश्च ग्रहणाग्रहणे न स्याताम् । नहि व्यपदेशान्यथात्वमात्रेणार्थक्रियानियतस्वभावहानिर्युक्ता । अथ प्रतिनियतपुरुषग्राह्य एव तस्य स्वभावस्तेन ग्रहणाग्रहणे पुरुषशक्तिमेवादविरुद्धे इति चेन्न । येन लोकदा न गृहीतः पुरुषेण, तेन न कदाचिदपि गृह्यते । न चैवम् । तस्मान्माभूदेकत्वहानिरिति । एकैवाऽवस्था संस्कृतासंस्कृतयोरन्यतराऽभ्युपगन्तव्या शब्दस्य, ततः किमित्याह—एकावस्थाभ्युपेतावित्यादि ॥ २१६७ ॥

उभयसंस्कारपक्षे दोषमाह—प्रत्येकमित्यादि ।

**प्रत्येकामिहिता दोषाः स्युर्द्वयोरपि संस्कृतौ ।**

**अतो न व्यञ्जकः शब्दे कथञ्चिदपि युज्यते ॥ २१६८ ॥**

प्रत्येकं शब्दम्येन्द्रियस्य च संस्कारे येऽमिहिता दोषास्ते द्वयोरपि संस्कारे भवेयुः ।  
अत इत्युपसंहरति ॥ २१६८ ॥

उत्तरमित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

**उत्तरं श्रोत्रसंस्काराद्भाष्यकारेण वर्णितम् ।**

**तद्भेदाच्छ्रुतिभेदश्च प्रतिश्रोतृव्यवस्थितः ॥ २१६९ ॥**

भाष्यकारेणेति । यथोक्तम्— “ यस्याप्यभिव्यञ्जन्ति तस्याप्येष न दोषो दूरे  
सत्याः कर्णशङ्कुल्या अनुपकारकाः संगोगविभागास्तेन दूरे यच्छ्रोत्रं तेन नोपल-  
भ्यन्त ” इति । तद्भेदादिति—कर्णशङ्कुलीश्रोत्रमेदात् । श्रुतिभेदः—प्रतीतिभेदः  
॥ २१६९ ॥

ननु च कथमन्यस्य संस्कारेऽन्यस्याभिव्यक्तिर्भवतीत्याह—यथा घटादेरित्यादि ।

**यथा घटादेर्दीपादिरभिव्यञ्जक इष्यते ।**

**चक्षुषोऽनुग्रहादेव ध्वनिः स्याच्छ्रोत्रसंस्कृतेः ॥ २१७० ॥**

यथा हि दीपादिश्चक्षुषोऽनुग्रहेण घटादेरभिव्यञ्जको भवति, तथा ध्वनिरपि  
श्रोत्रसंस्कृतेः—श्रोत्रसंस्करणात्, शब्दस्याभिव्यञ्जको भविष्यति ॥ २१७० ॥

ननु च वक्तव्यमेतत्केन प्रकारेण ध्वनिना श्रोत्रस्य संस्कारः क्रियते निष्पन्नस्ये-  
त्यत आह—न च पर्यनुयोगोऽत्रेति ।

**न च पर्यनुयोगोऽत्र केनाकारेण संस्कृतिः ।**

**उत्पत्तावपि तुल्यत्वाच्छक्तिस्तत्राप्यतीन्द्रिया ॥ २१७१ ॥**

उत्पत्तावपि तुल्यत्वात्—पर्यनुयोगस्येति शेषः । उत्पत्तावपि हि शब्दस्य कार-  
णेभ्यः सत्यां तुल्यः पर्यनुयोगस्तत्रापि शक्यत एवैतद्वक्तुम्—केनाकारेण ध्वनिना  
त्रायवीथसंयोगविभागात्मकेनाऽन्येन वा कारणेन कथं शब्दः क्रियत इति । यतः  
शक्तिस्तत्राप्यतीन्द्रिया । तत्रापि—शब्दानामुत्पत्तौ क्रियमाणानां—शब्दकारणानां  
यथोत्पादकशक्तिरतीन्द्रिया तथाऽभिव्यक्तावपीति तुल्यः पर्यनुयोगः ॥ २१७१ ॥

यद्यतीन्द्रिया शक्तिः सा कथमनुमन्तव्येत्याह—नित्यमित्यादि ।

नित्यं कार्यानुमेया च शक्तिः किमनुयुज्यते ।

तद्भाषभावितामात्रं प्रमाणं तत्र गम्यते ॥ २१७२ ॥

उत्पादकशक्तिर्वाऽभिसंस्कारकशक्तिर्वा भवतु, सर्वथा यावती काचिच्छक्तिः सा सर्वा सदैव कार्यानुमेया । तस्मात्सा नानुबोगमर्हति । किं तत्कार्यं यतः सा गम्यत इत्याह—तद्भावेत्यादि । तद्भावे—ध्वनिभावे सति, तद्भाविता—शब्दग्रहणस्य भाविता या, तदेव तत्र शब्दव्य(ल्लकश)क्तौ प्रमाणम् । शब्दग्रहणकार्येण शक्तिर्गम्यत इति यावत् । (मात्र)ग्रहणेनोत्पत्तेर्निरासः ॥ २१७२ ॥

अत इत्युपसंहरति ।

अनोऽतीन्द्रिययैवैते शक्त्या शक्तिमतीन्द्रियाम् ।

इन्द्रियस्यादधाना हि स्फुरन्ति व्यक्तिहेतवः ॥ २१७३ ॥

तस्मादेते ध्वनयोऽतीन्द्रियया शक्त्या श्रोत्रेन्द्रियस्य शक्तिमतीन्द्रियामुत्पादयन्तः स्फुरन्ति व्यक्तिहेतवः । शब्दानामित्यपेक्षणीयम् ॥ २१७३ ॥

अथोत्पत्तिहेतव एव कस्मान्ध्वनयो न विज्ञायन्त इत्याह—येषामित्यादि ।

येषां त्वप्राप्तजातोऽयं शब्दः श्रोत्रेण गृह्यते ।

तेषामप्राप्तितुल्यत्वाद्दूरव्यवहितादिषु ॥ २१७४ ॥

तत्र दूरसमीपस्थग्रहणाग्रहणे समे ।

स्यातां न च क्रमो नापि तीव्रमन्दादिसम्भवः ॥ २१७५ ॥

येषां बौद्धानां शब्दोऽप्राप्तजातो गृह्यते श्रोत्रेण । अप्राप्तश्चासौ जातश्चेत्यप्राप्तजातः । चक्षुःश्रोत्रमनोऽप्राप्तविषयम्, उपात्तानुपात्तमहाभूतहेतुः शब्द इति सिद्धान्तात् । तेषां मतेन शब्दानां दूरव्यवहितसमीपस्थानां श्रोत्रेणाप्राप्तेस्तुल्यत्वाद्दूरसमीपस्थैः पुरुषैर्ग्रहणाग्रहणे तुल्ये म्याताम्, समीपस्थस्य यादृशं ग्रहणं तादृशं दूरस्थस्यापि स्यादविशेषात् । क्रमेण च ग्रहणं न स्यात्, यत्पूर्वं समीपस्थैर्ग्रहणं पश्चाद्दूरस्थैरिति । नापि तीव्रमन्दतरतमादिश्रुतिभेदः स्यात्, यत्समीपस्थैस्तीव्रः श्रूयते मन्दो दूरस्थैरिति । एवं तरतमभेदोऽपि योज्यः ॥ २१७४ ॥ २१७५ ॥

ननु यस्यापि मीमांसकस्य प्राप्तजातः शब्दो गृह्यते श्रोत्रेण तस्यापि कस्मादेष सर्वप्रसङ्गो न भवतीत्यतः प्रतिपादयितुं विशेषमुपक्रमते—तस्मादित्यादि ।

तस्माच्छ्रोत्रियदृष्ट्याऽपि कल्पनेयं निरीक्ष्यताम् ।

प्रयत्नाभिहतो वायुः कोष्ठयो यातीत्यसंशयम्(?) ॥ २१७६ ॥

स संयोगविभागौ च तात्त्वादेरनुरुध्यते ।  
 वेगनस्वाच्च सोऽवह्यं यावद्वेगं प्रतिष्ठते ॥ २१७७ ॥  
 तस्यात्मावयवानां च स्तिमितेन च वायुना ।  
 संयोगा विप्रयोगाश्च जायन्ते गमनाद्भुवम् ॥ २१७८ ॥  
 कर्णव्योमनि संप्राप्तः शक्तिं श्रोत्रे नियच्छति ।  
 तद्भावे शब्दबोधोऽसंस्कारोऽदृष्ट इष्यते ॥ २१७९ ॥  
 उत्पत्तिशक्तिवत्सोऽपीत्यधिकं नो न किञ्चन ।  
 तथैव तद्विशेषोऽपि विशेषग्रहणाद्भवेत् ॥ २१८० ॥

श्रोत्रियग्रहणमताकिंकत्वप्रतिपादनपरम् । अनेन च स्वपक्षोत्कर्षं वक्रोक्त्या कथ-  
 यति । काऽसौ कल्पनेत्याह—प्रयत्नाभिहत इत्यादि । प्रयत्नस्त्वादिकरणव्यापा-  
 रस्तेनाभिहतः प्रेरितः क्रोष्ठभवो वायुर्नाभिप्रदेशादुत्थित उरसि विस्तीर्णः कण्ठे वर्त्तितो  
 मूर्द्धानमाहत्य वक्त्रे सञ्चरन्निर्गच्छति । एतदेव दर्शयति(०००)स इत्यादि । स वायुर्नि-  
 ष्क्रामंस्तस्त्वादेः संयोगविभागावनुभवति । गच्छंश्च न स यावदाकाशमभिगच्छति ।  
 किं तर्हि ? । यावद्वेगम्—यावास्तस्य वेगस्तदनुरूपमेव गच्छतीति यावत् । कुतः—  
 वेगवत्त्वात् । तस्य च वायोर्गच्छत आत्मीयावयवानां स्तिमितेन स्थिरेण वायुना  
 संयोगविभागाः समुपजायन्ते । अवश्यं स च कर्णरन्ध्रं प्राप्य श्रोत्रे शक्तिमाधत्ते ।  
 तद्भावे—वायवीयसंयोगविभागसद्भावे सति, शब्दस्यावगमाददृष्टः संस्कारः श्रोत्रस्ये-  
 ष्यते । यथा शब्दस्य शब्दान्तैर्ध्वनिमिर्वोत्पत्तिर्ह(चेरह ?)ष्टाऽपीष्यते भवद्भि(शक्ति)-  
 स्तथा संस्कारोऽपीति । यथोक्तं भाष्ये—“अभिघातेन प्रेरितावयवः स्तिमितानि वाद्य-  
 न्तराणि प्रबाधमानाः सर्वतोदिकान् संयोगविभागानुत्पादयन्तो यावद्वेगमभिप्रतिष्ठन्ते,  
 ते च वायोरप्रत्यक्षत्वात्संयोगविभागा नोपलभ्यन्ते । अनुपरतेष्वेव च तेषु शब्द उप-  
 लभ्यते नोपरतेष्विति । यद्येवं न तर्हि संस्कारपक्षस्योत्पत्तिपक्षाद्विशेषः कथितो  
 भवतीत्याह—तथैवेत्यादि । तद्विशेषः—संस्कारविशेषः, शब्दग्रहणविशेषादुपप-  
 ष्यते । तेन दूरसमीपस्थानां ग्रहणाग्रहणे न समे भवतः, पुरुषमेदेन संस्कारस्य भिन्न-  
 त्वात् ॥ २१७६ ॥ २१७७ ॥ २१७८ ॥ २१७९ ॥ २१८० ॥

कुब्जाद्यावरणे कथमग्रहणं शब्दस्येत्याह—कुब्जादीत्यादि ।

कुब्जादिप्रतिबन्धोऽपि युज्यते मातरिश्चनः ।  
 श्रोत्रदेशाभिघातोऽपि तेन तीव्रप्रवृत्तिना ॥ २१८१ ॥

तस्य च क्रमवृत्तित्वात्क्षयिवेगित्वसम्पदः ।

संस्कारक्रमतीव्रत्वमन्दतादिनिमित्ताता ॥ २१८२ ॥

यद्यपि शब्दो न प्रतिघाती तथापि मातरिश्वनो वायोः कुण्डस्य च मूर्त्तत्वे प्रतिघातित्वात् कर्णदेशागमनमिति श्रोत्रसंस्कारो न जायते, तेनावृत्तस्याश्रवणं भवति । येषां त्वप्राप्तस्य ग्रहणं तेषामेष दोष एव । तीव्रतरतमश्रुतिभेदस्तर्हि कथं भवतीत्याह—श्रोत्रदेशाभिघातोऽपीति । युज्यत इति प्रकृतं सर्वत्र योजनीयम् । क्षयिवेगित्वसम्पद इति । क्षयित्वसम्पदो वेगित्वसम्पदो युज्यन्त इति विभक्तिविपरिणामेन सम्बन्धः । अथवा—क्षयिण्यश्च ता वेगित्वसम्पदश्चेति विग्रहः । यद्वा—क्षयिणी वेगित्वसम्पदस्य वायोरिति बहुव्रीहिः । ततश्च संस्कारक्रमतीव्रत्वमन्दतानिमित्ताता युज्यत इति सम्बन्धः । संस्कारक्रमो युज्यते तस्य वायोः क्रमवृत्तित्वात् । तीव्रता च युज्यते वेगित्वसम्पदा युक्तत्वात् । मन्दताऽपि च क्षयित्वात् । आदिशब्देन तरतमादिभेदो योज्यः ॥ २१८१ ॥ २१८२ ॥

ननु चाकाशश्रोत्रपक्षे—‘विभुत्वात्प्राप्तितुल्यते’त्यादिना श्रोत्रसंस्कारे दोषा बहवः पूर्वमुक्तास्तत्कथमुत्तरं श्रोत्रसंस्काराद्वाप्यकारेण वर्णितमित्याह—नावश्यं श्रोत्रमाकाशमित्यादि ।

नावश्यं श्रोत्रमाकाशमस्माभिश्चाभ्युपेयते ।

न चानवयवं व्योम जैनसाङ्ख्यनिषेधतः ॥ २१८३ ॥

तेनाकाशौकदेशो वा यद्वा वस्त्वन्तरं भवेत् ।

कार्यार्थापत्तिगम्यं तच्छ्रोत्रं प्रतिनरं स्थितम् ॥ २१८४ ॥

तेन तत्पक्षभाविनो दोषास्तदनङ्गीकारादेव नापतन्तीत्युक्तम् । न चानवयवं व्योमेति । अभ्युपेयत इति सम्बन्धः । कुतः ? । जैनसाङ्ख्यनिषेधतः—जैनैरार्हतैः साङ्ख्यैश्च निरवयवस्य व्योमो निषिद्धत्वात् । नहि मीमांसकैः परसिद्धान्तप्रसिद्धेर्न व्यवहियते । यदेव हि युक्तया समापतति तदेव तैरङ्गीक्रियते, अन्यथा मीमांसकत्वमेव हीयेत । ततश्च जैनसाङ्ख्यप्रसिद्धव्योमात्मकश्रोत्राङ्गीकरणस्य दोषः । यद्वा वस्त्वन्तरमिति । कर्णशष्कुलीसंज्ञकम् । कार्यार्थापत्तिगम्यमिति । शब्दग्रहणान्यथानुपपत्तिगम्यम् ॥ २१८३ ॥ २१८४ ॥

अथवा—अनवयवाकाशश्रोत्रपक्षेऽपि न दोष इति प्रतिपादयन्नाह—यद्यपीत्यादि ।

यद्यपि व्यापि चैकं च तथापि ध्वनिसंस्कृतिः ।

अधिष्ठाने तु सा यस्य स शब्दं प्रतिपद्यते ॥ २१८५ ॥

यद्यपि व्यापि चैकं चेति । श्रोत्रमिति शेषः । तथापि सा ध्वनिभिः संस्कृति-  
र्यस्य पुरुषस्याधिष्ठाने—कर्णशष्कुल्यां भवति, स एव शब्दं प्रतिपद्यते नान्यः ।  
अनेनाधिष्ठानसंस्कार एवोक्तो न श्रोत्रस्य । तस्य चाधिष्ठानस्य प्रतिपुरुषं भिन्नत्वाच्च  
यथोक्तदोषप्रसङ्ग इति भावः ॥ २१८५ ॥

श्रोत्रसंस्कारेऽपि न दोष इति प्रतिपादयति—अथापीति ।

अथापीन्द्रियसंस्कारः सोऽप्यधिष्ठानदेशतः ।

शब्दं न श्रोष्यति श्रोत्रं तेनासंस्कृतशष्कुलि ॥ २१८६ ॥

अधिष्ठानम्—कर्णशष्कुली । तत्संस्कारद्वारेण श्रोत्रस्य संस्कारो न केवलम्य ।  
तेनासंस्कृताधिष्ठानत्वाच्च विदूरस्थान्यचित्तसुप्तमूर्छितानां श्रोत्रं न शृणोति । असं-  
स्कृता कर्णशष्कुली यस्य तत्तथोक्तम् । अधिष्ठानदेशत इति सप्तम्यर्थे तसिः ॥ २१८६ ॥

ननु यदि ध्वनयोऽधिष्ठानं तद्देशं वेन्द्रियं संस्कुर्वन्ति, कस्माद्यत्र कवनोपलब्ध-  
सद्भावाः सकलप्राणिजातेन्द्रियाधिष्ठानसंस्कारकारिणो न भवन्तीत्याह—अप्राप्तकर्ण-  
देशत्वादित्यादि ।

अप्राप्तकर्णदेशत्वाद्द्वनेर्न श्रोत्रसंस्क्रिया ।

अतोऽधिष्ठानभेदेन संस्कारनियमः स्थितः ॥ २१८७ ॥

यद्यप्यधिष्ठानसंस्कारकारिणो, नोदास्तद्देशेन्द्रियसंस्कारका वा । तथापि प्राप्ता एव  
सन्तः संस्कारभाजि पदार्थे संस्कारं कुर्वन्ति, नाप्राप्ता इत्यतो न सर्वपुरुषाधिष्ठाना-  
दिसंस्कारः । श्रोत्रग्रहणमुपलक्षणम् । अधिष्ठानसंस्कारोऽपि न भवत्येव । क्वचित्—  
अप्राप्तकर्णदेशाद्भेदेति पाठः । तत्र पूर्वमधिष्ठानसंस्कारमुखेन श्रोत्रसंस्कारमाश्रित्य परि-  
हार. उक्तः । साम्प्रतं माभूदधिष्ठानसंस्कारद्वारेण श्रोत्रसंस्कारस्तथाऽप्यदोषो यतः  
प्राप्तकर्णशष्कुलीमूला एव वायवः श्रोत्रसंस्कारायाम्, नाप्राप्ता इत्यतः पक्षान्तर-  
मुक्तम् । अत इत्युपसंहारः ॥ २१८७ ॥

नन्वित्यादिना पक्षत्रयेऽप्यनन्तरोदिते परस्य चोपमाशङ्कते ।

नन्वेकस्मिन्नधिष्ठाने लब्धसंस्कारमिन्द्रियम् ।

बोधकं सर्वदेहेषु स्यादेकेन्द्रियवायिनः ॥ २१८८ ॥

एकस्य श्रोत्रस्य संस्कृतासंस्कृतपरस्परविरुद्धधर्मद्वयायोगादेकत्र संस्कारात्सर्वदेहे-  
ष्वभिन्नात्सासंस्कृतमेवेति बधिरादेरपि बोधकं प्राप्नोति श्रोत्रमेकेन्द्र-वादिनः । ततश्च  
बाधिर्यादिव्यवस्थानं न स्यात् ॥ २१८८ ॥

पुंसामित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

पुंसा देहप्रदेशेषु विज्ञानोत्पत्तिरिष्यते ।

तेन प्रधानवैदेश्याद्विगुणा श्रोत्रसंस्कृतिः ॥ २१८९ ॥

पुंसामात्मनां सर्वगतत्वेऽपि शरीरेष्वेव धर्माधर्मपरिगृहीतेषु विज्ञानोत्पत्तिर्मीमां-  
सकादिभिरिष्यते । तेन प्रधानस्य देहस्य वैदेश्यात्—भिन्नदेशत्वात् । श्रोत्रस्यैवं सर्व-  
गतस्यापि संस्कृतिर्विगुणा तेन यथोक्तदोषानवसरः । क्वचित्—सात्र संस्कृतिरिति  
पाठः । तत्र सा संस्कृतिः श्रोत्रस्येति सम्बन्धः ॥ २१८९ ॥

अनु च सर्वगतत्वादात्मनः सर्वत्र ग्रहणप्रसङ्गः शब्दस्यानिवारित एवेत्याह—  
निष्प्रदेशोऽपि चेति ।

निष्प्रदेशोऽपि चात्मा नः कात्स्न्येन च विदन्नपि ।

शरीर एव गृह्णातीत्येवमुक्तिर्न दुष्यति ॥ २१९० ॥

बाधिर्यादिव्यवस्थानमेतेनैव च हेतुना ।

तदेवाभोग्यमन्यस्य धर्माधर्मावशीकृतम् । २१९१ ॥

यथा तत्र भवन्नेव स्वामित्वादवरोपितः ।

न भोगं लभते तद्बद्धधिरोऽन्यत्र शृण्वति ॥ २१९२ ॥

एतदुक्तं भवति । यद्यप्येवम्, तथापि धर्मादिवशीकृतशरीरावधिकमेवात्मनः  
शाब्दग्रहणमतो न दोषः । कथं पुनरभिन्नात्मात्मनः श्रोत्रस्य ग्रहणाग्रहणसंस्कारासं-  
स्कारविभाग इति चेत् । न । यथाऽऽकाशस्यानवयवस्यापि संयोगिभेदाद्येदादृष्टा-  
काशं पिठराकाशमिति भेदो भवति तथेहापि भविष्यति । अत एव च व्यापिनिर-  
वयवस्य श्रोत्रस्य संसर्गिभेदाद्बाधिर्यादिव्यवस्थितिरिति दर्शयति । ( बाधिर्यादीति ) ।  
एतेनेति । संयोगिभेदेन हेतुना । यदि नाम संयोगिनो भिन्नास्तथापि किमिति क-  
श्चिदेव बधिरो भवतीत्याह—तदेवाभोग्यमिति । तदेव श्रोत्रमन्यस्य पुरुषस्य न  
भोग्यं भवति, कुतः ?, धर्माधर्माभ्यामवशीकृतत्वात् । एतदेव दृष्टान्ते स्फुटयन्त्याह  
—यथा तत्रेत्यादि । यथा कश्चिद्भामादेः स्वामी तत्र भ्रामादौ भवन्नेव विद्यमान



एव राज्ञा स्वामित्वादवरोपितस्तस्मिन्नेव ग्रामे भोगं न लभते, तद्ब्रह्मविरोऽन्यत्रान्य-  
स्मिन्पुरुषे शृण्वत्यपि सति न शृणोति ॥ २१९० । २१९१ ॥ २१९२ ॥

ननु च—श्रोत्रशब्दाकाशानां त्रयाणामपि निरवयवत्वाद्विशुक्त्वाच्च (न) प्रदेशवृ-  
त्तिरस्ति । तत्कथमेकदेशवृत्तित्वनियतग्रहणाग्रहणादिविभागो लभ्यत इत्याह—श्रोत्र-  
शब्दाश्रयाणामित्यादि ।

**श्रोत्रशब्दाश्रयाणां च न नामावयवाः स्वयम् ।**

**न चैकदेशवृत्तित्त्वं तथाऽप्येतन्न दुष्यति ॥ २१९३ ॥**

श्रोत्रं च शब्दश्चाश्रयश्च—शब्दस्याकाशमिति, श्रोत्रशब्दाश्रयाः । न नामाव-  
यवाः स्वयमिति । संयोगिमेदादुपचारितास्तु विद्यन्त एवेति स्वयमित्याह—तथा-  
ऽप्येतदिति । प्रदेशवृत्तित्वनियतग्रहणादिकम् ॥ २१९३ ॥

कथमित्याह—व्यञ्जकानामित्यादि ।

**व्यञ्जकानां हि वायूनां भिन्नावयवदेशता ।**

**जातिभेदश्च तेनैव संस्कारो व्यवतिष्ठते ॥ २१९४ ॥**

भिन्नाः—अवयवदेशाः—ऋणशष्कुल्यधिष्ठानसंज्ञिता येषां ते तथोक्ताः । तद्भावो  
—भिन्नावयवदेशता । जातिभेदश्चेति । भिन्नताल्वादिकारणसामग्रीमेदात् ॥ २१९४ ॥

ननु चोक्तं सकृच्च संस्कृतं श्रोत्रं सर्वशब्दान्प्रबोधयेदित्यत्रोत्तरमाह—अन्यार्थं  
प्रेरित इत्यादि ।

**अन्यार्थं प्रेरितो वायुर्यथा नान्यं करोति सः ।**

**तथाऽन्यवर्णसंस्कारशक्तो नान्यं करिष्यति ॥ २१९५ ॥**

अन्यार्थमिति । अन्यवर्णनिष्पत्त्यर्थम् । अन्यवर्णसंस्कारशक्त इति । अन्यवर्ण-  
प्रतीत्यर्थः संस्कारो यः श्रोत्रस्य सोऽन्यवर्णसंस्कारशब्देनोक्तः । न तु वर्णसंस्कार एव,  
श्रोत्रसंस्कारस्य प्रकृतत्वात् । नान्यं करिष्यतीति । नान्यं वर्णं श्रोत्रसंस्कारद्वारेण  
संस्करिष्यतीत्यर्थः ॥ २१९५ ॥

अथ वायूनामेव कस्मादेष प्रतिनियम इत्याह— अन्यैरित्यादि ।

**अन्यैस्ताल्वादिसंयोगैर्वर्णो नान्यो यथैव च ।**

**तथा ध्वन्यन्तरक्षेपो न ध्वन्यन्तरसारिभिः ॥ २१९६ ॥**

ताल्वादिसंयोगमेदाद्यञ्जका वायवो ध्वनयो भिन्ना इत्यभिप्रायः । वर्णो नान्य

इति । क्रियते इत्यध्याहारः । ध्वन्यन्तराणां क्षेपः—प्रेरणम् । ध्वन्यन्तरसारिभिस्ता-  
स्वादिसंयोगैरिति सामानाधिकरण्यम् ॥ २१९६ ॥

तस्मादित्युपसंहरति ।

तस्मादुत्पत्त्यभिव्यक्तयोः कार्यार्थापत्तितः समः ।

सामर्थ्यभेदः सर्वत्र स्यात्प्रयत्नविवक्षयोः ॥ २१९७ ॥

उत्पत्त्यभिव्यक्तयोरिति सप्तम्यन्तम् । शब्दस्योत्पत्तावभिव्यक्तौ च प्रयत्नस्य विव-  
क्षायाश्च तुल्यः सामर्थ्यभेदः । कुतः ? । कार्यान्यथानुपपत्तिगम्यत्वात् । उभयत्रापि  
कार्यार्थापत्तेर्व्याप्रियमाणत्वादिति यावत् ॥ २१९७ ॥

एवं तावत्सिद्धान्तान्तरप्रतीतं लोकप्रतीतं च यथाक्रममाकाशकर्णशङ्कुलीलक्षणं  
श्रोत्रमभ्युपगम्य तत्संस्कारद्वारेण शब्दाभिव्यक्तौ न दोष इति प्रतिचोदितम् । सा-  
म्प्रतं वेदप्रसिद्धं दिग्लक्षणं श्रोत्रमाश्रित्य तत्संस्कारभेदाच्छब्दाभिव्यक्तावदोषं प्रति-  
पादयन्नाह—यद्वेत्यादि ।

यद्वा वेदानुसारेण कार्या दिक्श्रोत्रतामतिः ।

नाकाशाद्यात्मकं ह्युक्तं वेदे श्रोत्रं कथञ्चन ॥ २१९८ ॥

दिशः श्रोत्रमिति होतत्प्रलयेष्वभिधीयते ।

तच्च प्रकृतिगामित्ववचनं चक्षुरादिवत् ॥ २१९९ ॥

दिक्श्रोत्रतामतिरिति । दिगेव श्रोत्रमित्येवं दिशः श्रोत्रत्वनिश्चयः कार्यं  
इत्यर्थः । कथमित्याह—नाकाशात्मकमिति । यद्येवं दिक्श्रोत्रमित्येवमपि वेदे नो-  
क्तम्, तत्कथं लभ्यत इत्याह—दिशः श्रोत्रमित्यादि । प्रकृतिषु स्वभावेषु लयाः  
प्रलयाः । नाशकाले प्राणिनां चक्षुरादयः स्वस्यां स्वस्यां प्रकृतौ लीयन्ते । तत्र च  
प्रलये पशुमधिकृत्योक्तं वेदे—“सूर्यमस्य चक्षुर्गमयतात्, दिशः श्रोत्र”मिति । अ-  
त्रापि गमयतादिति सम्बन्धः । गमयतादिति । यद्यत आगतं तत्तत्र गच्छत्वित्यर्थः ।  
तेन यद्यपि वेदे दिक् श्रोत्रमित्याहृत्य नोक्तम् । तथापि दिशः श्रोत्रं गमयतादित्यनेन  
वाक्येन सामर्थ्यादुक्तमेव । कथमित्याह—तद्वेत्यादि । तच्च दिशः श्रोत्रमिति वचनं  
श्रोत्रस्य प्रकृतिगामित्वप्रतिपादनपरम् । श्रोत्रं कर्तुं दिशो गच्छतु प्रकृतिमूता इत्यर्थः ।  
कथमिवेत्याह—चक्षुरादिवदिति ॥ २१९८ ॥ २१९९ ॥

एतदेव विवृणोति—सूर्यमस्येत्यादि ।

सूर्यमस्य यथा चक्षुर्भ(रु)क्तं गमयतादिति ।

तेजःप्रकृतिविज्ञानं तथा श्रोत्रं दिगात्मकम् ॥ २२०० ॥

यथा सूर्यमस्य चक्षुर्गमयतादिति वाक्येन तेजःप्रकृतिविज्ञानमुक्तम्, चक्षुष इत्य-  
ध्याहारः, तथा श्रोत्रं दिगात्मकमुक्तं दिशः श्रोत्रमित्यनेन वाक्येनेत्येवं पदानां स-  
म्बन्धः कार्यः । तेजःप्रकृतिविज्ञानं तेजोमयत्वमित्यर्थः ॥ २२०० ॥

अथ कीदृशी सा दिगित्याह—दिक् चेत्यादि ।

दिक् च सर्वगतैकैव यावद्वद्योम व्यवस्थिता ।

कर्णरन्ध्रपरिच्छिन्ना श्रोत्रमाकाशदेशवत् ॥ २२०१ ॥

सर्वगतस्यैव विवरणम्—यावद्वद्योम व्यवस्थितेति । यद्येवं बधिरादिव्यवस्था न  
प्राप्नोति, एकत्वाद्दिश इत्याह—कर्णरन्ध्रेत्यादि । न सर्वात्मना दिक् श्रोत्रम्, किं  
तर्हि ? कर्णशङ्कुलीपर्यन्तपरिच्छिन्ना ॥ २२०१ ॥

ननु निरवयवत्वात्तस्य कथमवयवविभागो लभ्यत इत्याह—यावानिति ।

यावांश्च कणभुङ्क्न्यागो नभोभागत्वकल्पने ।

दिग्भागेऽपि समञ्चासावागमात्तु विशिष्यते ॥ २२०२ ॥

यथाऽऽकाशस्य संयोगिभेदेनावयवकल्पना तथा दिशोऽपि भविष्यति । कस्तर्हि-  
काशश्रोत्रपक्षादस्य विशेष इत्याह—आगमादिति ॥ २२०२ ॥

तस्मादित्युपसंहारेण बधिरादिव्यवस्थानं सूचयति ।

तस्माद्दिग्द्रव्यभागो यः पुण्यापुण्यवशीकृतः ।

कर्णरन्ध्रपरिच्छिन्नः श्रोत्रं संस्क्रियते च सः ॥ २२०३ ॥

विषयसंस्कारपक्षेऽपि न दोष इति प्रतिपादयन्नाह—विषयस्यापीति ।

विषयस्यापि संस्कारे तेनैकस्यैव संस्कृतिः ।

नरैः सामर्थ्यभेदाच्च न सर्वैरवगम्यते ॥ २२०४ ॥

यदुक्तम्—“ तत्र सर्वैः प्रतीयेत शब्दः संस्क्रियते यदी ”ति, तत्र न दोषः ।  
कुतः ? नराणां सामर्थ्यभेदात्—वायोः श्रोत्रसंस्कारकस्य सन्निधानासन्निधानाभ्यां  
श्रोत्रसंस्कारस्य भिन्नत्वात्सामर्थ्यभेदः ॥ २२०४ ॥

ननु च नित्यसर्वगतत्वेन सर्वान्पुरुषान्प्रत्यविशिष्टत्वाच्छब्दस्य कथं ग्रहणाग्रहणे  
स्यातामित्याह—यथैवेत्यादि ।

यथैवोत्पद्यमानोऽयं न सर्वैरवगम्यते ।

दिग्देशादिविभागेन सर्वान्प्रति भवन्नपि ॥ २२०५ ॥

तथैव यत्समीपस्थैर्नादैः स्याद्यस्य संस्कृतिः ।

तेनैव श्रूयते शब्दो न दूरस्थैः कथञ्चन ॥ २२०६ ॥

अथ कथमिदमवसीयते वायुभ्यो विषयस्य संस्कारो भवति । न तु विषय एवेत्याह—शब्दोत्पत्तेरित्यादि ।

शब्दोत्पत्तेर्निषिद्धत्वादन्यथाऽनुपपत्तितः ।

विशिष्टसंस्कृतेर्जन्म ध्वनिभ्योऽध्यवसीयते ॥ २२०७ ॥

प्रत्यभिज्ञया शब्दस्य विभुत्वैकत्वयोः सिद्धत्वान्न शब्दोत्पत्तिः । तस्मात्सामर्थ्यात्संस्कारोत्पत्तिर्ध्वनिभ्यो भवति न शब्दस्येति गम्यते ॥ २२०७ ॥

ननु च बीजाङ्कुरादाविव तद्भावभावितया ध्वनिकार्यत्वं शब्दानां सिद्धम् । यथा हि बीजादिभावेऽङ्कुरादीनामुपलम्भात्कार्यत्वं तेषाम् । एवं ध्वनिभावे शब्दानामुपलम्भोऽस्ति, किमिति तत्कार्यत्वं न भवेत्, एतावन्मात्रनिबन्धनत्वात्कार्यव्यवहारस्येत्याह—तद्भावभावितेत्यादि ।

तद्भावभाविता चात्र शक्त्यस्तित्वावबोधिनी ।

श्रोत्रशक्तिवदेवेष्टा बुद्धिस्तत्र हि संहता ॥ २२०८ ॥

यथा हि श्रोत्रभावे शब्दोपलम्भोऽस्ति, न च ततस्तद्भावभावित्वाच्छ्रोत्रस्य शब्दं प्रति जननशक्तिरनुमीयते, किं तर्हि ?, ग्रहणशक्तिः, एवमिहापि ध्वनीनां शक्तिसद्भावमात्रावबोधिनी भवेत्तद्भावभाविता, न तूत्पादकशक्त्यवबोधिनी, शक्तिमात्रे तस्याः प्रतिबन्धो न तु शक्तिविशेष इति यावत् । अतः शक्तिविशेषे साध्ये व्यभिचारित्वमस्या इति प्रतिपादितं भवति । कथमिदानीं संस्कारशक्तिविशेषावगतिरित्याह—बुद्धिस्तत्र हि संहतेति । प्रत्यभिज्ञया नित्यत्वस्य सिद्धत्वात् । अन्यथानुपपत्त्या तत्र संस्कारविशेषे तु बुद्धिरुपसंहता भाष्यकारेण न तु तद्भावभावितामात्रतः संस्कारशक्तिरनुमीयत इत्यर्थः ॥ २२०८ ॥

उभयसंस्कारपक्षे यदुक्तम्—प्रत्येकाभिहिता दोषाः स्युर्द्वयोरपि संस्कृताविति, अत्राह—संस्कारद्वयपक्षे तु वृथा दोषद्वयं हि तदिति ।

संस्कारद्वयपक्षे तु वृथा दोषद्वयं हि तत् ।

येनान्यतरवैकल्यात्सर्वैः शब्दो न गम्यते ॥ २२०९ ॥

दोषद्वयमुभयोरपि पक्षयोर्यत्रागुक्तं तत्तु वृथा—अनर्थकम् । कथमित्याह—  
येनेत्यादि । येनेति । यस्मात् । अन्यतरस्य—श्रोत्रसंस्कारस्य (अर्थसंस्कारस्य) वा  
वैकल्यात् । न शब्दो गम्यते । तथाहि—सत्यपि शब्दसंस्कारे बधिरस्य श्रोत्रसं-  
स्कारवैकल्यात् शब्दग्रहणम् । अवधिरस्याप्यनभिव्यक्तेः शब्द(स्या)ग्रहणम् । कचि-  
त्पाठो मृषा दोषद्वये वच इति । स च सुबोधः ॥ २२०९ ॥

ननु च यदि सर्वगतः शब्दः कथमस्य घटादेरिव देशविच्छेदे नानात्वमुपलभ्यते ।  
यावता सर्वत्र सद्भावादविच्छिन्नरूपेण सर्वत्रावगतिर्युक्ता । न च सर्वगतस्य दूरास-  
न्नादिभेदो युक्तः । नाप्यागमः कुतश्चिद्देशात्, तस्य सर्वत्र स्थितत्वात् । नापि नि-  
त्यस्य दीर्घह्रस्वमन्दतरतमादिस्वभावभेदो युक्तः । कालभेदश्च न युक्तः । तस्माद्देश-  
कालस्वभावभेदेन वेद्यमानत्वाद्घटादिवद्विज्ञोऽनित्यश्च सिद्धः शब्दः इति तत्कथमु-  
च्यते—शब्दोत्पत्तेर्निषिद्धत्वादन्यथाऽनुपपत्तितः । विशिष्टसंस्कृतेर्जन्म ध्वनिभ्योऽ-  
ध्यवसीयते ॥ इति । अत्राह—जलादिष्वत्यादि ।

जलादिषु यथैकोऽपि नानात्मा सवितेक्ष्यते ।

युगपन्न च भेदोऽस्य तथा शब्दोऽपि गम्यताम् ॥ २२१० ॥

अनेन देशभेदेन वेद्यमानत्वस्यानैकान्तिकत्वमाह ॥ २२१० ॥

ननु जलाद्याधारभेदः सवितर्यनेकत्वव्यामोहकारणमस्ति, इह तु न किञ्चिद्भा-  
न्तिकारणं विद्यते, यतः सविशेषणो हेतुरसति भ्रान्तिकारणे इत्यत्राभिप्रेतः, तत्कथं  
व्यभिचारिता हेतोरित्याह—व्यञ्जकध्वन्यधीनत्वादिति ।

व्यञ्जकध्वन्यधीनत्वात्तद्देशे हि स गृह्यते ।

न च ध्वनीनां सामर्थ्यं व्याप्तुं व्योम निरन्तरम् ॥ २२११ ॥

तेनापिच्छिन्नरूपेण नासौ सर्वत्र गम्यते ।

ध्वनीनां भिन्नदेशत्वाच्छ्रुतिस्तत्रानु(व?)रुध्यते ॥ २२१२ ॥

अपूरितान्तरालत्वाच्चिच्छेदश्चावसीयते ।

तेषां चाल्पकदेशत्वाच्चच्छेदोऽप्यविभ्रुतामतिः ॥ २२१३ ॥

गतिमद्वेगवत्त्वाभ्यां ते चायान्ति यतो यतः ।

भ्रोता ततस्ततः शब्दमायान्तमिष मन्यते ॥ २२१४ ॥

अत्रापि व्यञ्जकध्वनिभेदो भ्रान्तिनिमित्तमस्तीति समानम् । व्यञ्जकध्वन्यधी-

नत्वादिति । शब्दग्रहणस्येति शेषः । तद्देश इति । ध्वनिदेशः । स इति । शब्दः । यथा च व्यञ्जको ध्वनिः शब्दस्य विच्छिन्नादिविभ्रमकारणं भवति तथा योजय-  
न्नाह—न चेत्यादि । असाविति । शब्दः । श्रुतिः—शब्दस्येति शेषः । तत्रेति—  
आकाशदेशे । अपूरितान्तरालत्वम्—ध्वनिभिरित्यपेक्षणीयम् । तेषां चेति । ध्वनि-  
नाम् । ते चायान्तीति । ध्वनयः ॥ २१११ ॥ २२१२ ॥ २२१३ ॥ २२१४ ॥

ननु चादित्यस्याप्येकस्य सतो देशविच्छेदेन ग्रहणमसिद्धम् । तथाहि—चक्षुषा  
प्रतिपात्रं पृथक्पृथग्भिन्नान्येव सूर्यादिप्रतिबिम्बानि परिच्छिद्यन्ते । न पुनरादित्यः ।  
भवतस्तु प्रतिबिम्बमर्थान्तरमनिच्छतोऽनेकप्रतिबिम्बग्रहणे न किञ्चित्कारणमुत्पश्याम  
इत्येवं मन्यमानस्य परस्य प्रत्यवस्थानमाशङ्कमान आह । आहेत्यादि ।

आह केन निमित्तेन प्रतिपात्रं पृथक्पृथक् ।

भिन्नानि प्रतिबिम्बानि गृह्यन्ते युगपत्तया ॥ २२१५ ॥

आहेति । परः । युगपत्तयेति । युगपद्येन ॥ २२१५ ॥

अत्रोत्तरमाह—अत्र ब्रूम इत्यादि ।

अत्र ब्रूमो यदा तावज्जले सौरेण तेजसा ।

स्फुरता चाक्षुषं तेजः प्रतिस्त्रोतः प्रवर्तितम् ॥ २२१६ ॥

स्वदेशमेव गृह्णाति सवितारमनेकधा ।

भिन्नमूर्त्तिर्यथापात्रं तदाऽस्यानेकता कुतः ॥ २२१७ ॥

जलदेशस्थेन भानवीयेन तेजसा प्रस्यन्दनधर्मणा चाक्षुषं तेजः प्रतिस्त्रोतः प्रवर्त्ति-  
तम्—प्रत्यग्गीतं सत्सवितारमादित्यं स्वदेशस्थमेव गृह्णाति । यथापात्रम्—यावत्पात्रम् ।  
अतो भिन्नमूर्त्तिः प्रतिभातीति तदाऽस्यानेकता कुतः, नैव, भिन्नत्वाच्चक्षुर्वृत्तेरिति भावः  
॥ २२१६ ॥ २२१७ ॥

चक्षुर्वृत्तिवशादेवाभिन्नोऽपि भिन्न एव गृह्यत इति दर्शयन्नाह । ईषदित्यादि ।

ईषत्संमीलितेऽङ्गुल्या यथा चक्षुषि गृह्यते ।

पृथगेकोऽपि भिन्नत्वाच्चक्षुर्वृत्तेस्तथैव नः ॥ २२१८ ॥

ईषत्—मनाक् । अङ्गुल्या चक्षुषि निमीलिते—अवष्टब्धे सति यथैकोपि प-  
दार्थः पृथक्—नाना दृश्यते । कुतः !, चक्षुर्वृत्तेर्भिन्नत्वात् । तथैव नोऽस्माकमेको-  
ऽपि शब्दो भिन्नो गृहीष्यत इत्यदोषः ॥ २२१८ ॥

अन्ये त्विति ।

अन्ये तु चोदयन्त्यत्र प्रतिबिम्बोदयैषिणः ।

स एव चेत्प्रतीयेत कस्मान्नोपरि दृश्यते ॥ २२१९ ॥

कूपादिषु कुतोऽधस्तात्प्रतिबिम्बाद्विनेक्षणम् ।

प्राङ्मुखो दर्पणं पश्यन् स्याच्च प्रत्यङ्मुखः कथम् ॥ २२२० ॥

जलादिषु यथैकोऽपि नानात्मा सवितेक्ष्यते—इत्यस्य हेतुव्यभिचारविषयत्वेनोक्तस्यासिद्धिं मन्यमानाः प्रतिबिम्बमर्थान्तरमिच्छन्तश्चोदयन्ति । यदि स एवादित्यो दृश्यते न प्रतिबिम्बं, तत्किमित्युपरिष्ठादस्य न दर्शनं भवति । एवं हि तस्य दर्शनं भवेत्, यदि देशावस्थितस्वरूपं गृहीयात् । नान्यथा । अन्यथा ह्यतिप्रसङ्गः स्यात् । किञ्च—कूपादिषु च दूग्धः संविष्टस्यार्कादिः कथं ग्रहणं भवेत् । यदि तत्र प्रतिबिम्बं नात्पन्नं स्यात् । नहि तत्र तथाऽर्कादिव्यवस्थितः । अपि च प्राङ्मुखो दर्पणमवलोकयन्कथमिव प्रत्यङ्मुखो भवति । नहि तस्य तदा पृष्ठाभिमुखं मुखमुपजातं दृश्यते ॥ २२१९ ॥ २२२० ॥

अप्सूर्येत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

अप्सूर्यदर्शिनां नित्यं द्वेषा चक्षुः प्रवर्त्तते ।

एकमूर्ध्वमधस्ताच्च तत्रोर्ध्वांशुप्रकाशितम् ॥ २२२१ ॥

अधिष्ठानानृजुस्थत्वात्त्वात्मा सूर्यं प्रपद्यते ।

पारम्पर्यार्पितं सन्तमवाग्वृत्त्याऽवबुध्यते ॥ २२२२ ॥

ऊर्ध्ववृत्तिं तदेकत्वादवागिव च मन्यते ।

अधस्तादेव तेनार्कः सान्तरालः प्रतीयते ॥ २२२३ ॥

एवं मन्यते—यदि बहिर्निर्गतमिन्द्रियमादित्यं बोधयेत्तत एतत्स्यादुपरिस्थितमेव पश्येन्नाधस्तादिति । यावता धर्माधर्मवशीकृते शरीरे एव तदिन्द्रियं ग्राहकमिष्यते, नोपरिस्थम् । यथोक्तम्—“तत्रैव बोधयेदर्थं बहिर्यातं यदीन्द्रियम् । तत एतद्भवेदेवं शरीरे तत्त्व(च ?)बोधकम् ॥” इति तथा ह्ययं क्रमः । ये हि जलपात्रे जलं सूर्यं च पश्यन्ति तेषामप्सूर्यदर्शिनामेकमेव चक्षुर्ध्वमधश्च द्विधा भागशः प्रवर्त्तते । तत्रोर्ध्वभागप्रकाशितमादित्यमात्मा पुरुषो न गृह्णाति, कुतः ? अधिष्ठानानृजुस्थत्वात्—चक्षुरिन्द्रियाधिष्ठानस्यार्जवेन तदाऽनवस्थितत्वात् । पारम्पर्येण तु सौरेण तेजसा

वृत्तेरर्पितमादित्यमवाग्भृच्या कारणभूतया बुध्यते । तथाहि किल सौरं तेजस्तेजस्विनं  
वृत्तेरर्पयति, वृत्तिश्चक्षुषश्चक्षुरात्मन इत्येतत्पारम्पर्यार्पणं सूर्यस्य तेजस्विन इत्यादित्यमूर्ध्व-  
वृत्तिम्—उपरिस्थं च तमादित्यमवागिव—अधःस्थितमिव मन्यते । कः ? । आत्मा ।  
न पुनरधस्तादन्य एवादित्यः, कुतः ? , तदेकत्वात्—तस्यादित्यस्याभिन्नत्वात् । च-  
क्षुष इत्यपरे । तस्मादनन्तरोदितेनैव चक्षुषो वृत्तिवशेन सान्तरालोऽधस्तात्कूपादिषु  
सूर्यो दृश्यते । जलादि पात्रभेदाच्च । अन्यथा कथमभेदेनं ग्रहणं स्यात् ॥ २२२१ ॥  
॥ २२२२ ॥ २२२३ ॥

यदुक्तं प्राङ्मुखो दर्पणं पश्यन्नित्यादि । तत्राह—एवमित्यादि ।

एवं प्राग्गतया वृच्या प्रत्यग्वृत्तिसमर्पितम् ।

बुद्ध्यमानो मुखं भ्रान्त्या प्रत्यगित्यवगच्छति ॥ २२२४ ॥

प्रथमं किल चक्षुरश्मयो मुखमादाय निर्गच्छन्ति यावदादर्शादिदेशम्, सा प्राङ्-  
तावृत्तिरुच्यते । ते च तत्रादर्शादौ प्रतिहता निवर्त्तमानाः स्वमुखमेव यथावस्थितमा-  
गच्छन्ति । सा च प्रत्यग्वृत्तिः । तत्र प्राङ्गता वृत्तिर्मुखं प्रत्यग्वृत्तेरर्पयति प्रत्यग्वृत्ति-  
श्चात्मनः, तत आत्मा प्रत्यग्वृत्तिसमर्पितमवगच्छन्मुखं भ्रान्त्या प्रत्यङ्मुखं यास्या-  
मीति मन्यते । चक्षुर्वृत्तेर्वैचित्र्यमेव भ्रान्तेर्बीजमिति भावः ॥ २२२४ ॥

अभ्युपगम्य प्रतिबिम्बोदयं परिहारमाह—अनेकदेशवृत्तौ चेत्यादि ।

अनेकदेशवृत्तौ वा सत्यपि प्रतिबिम्बके ।

समानबुद्धिगम्यत्वाद्भ्रान्तानात्वं नैव विद्यते ॥ २२२५ ॥

सत्यपि प्रतिबिम्बेऽर्थांतरभूते नैव तेषां प्रतिबिम्बानां नानात्वमस्ति । कुतः ? ।  
समानबुद्धिगम्यत्वात्—एकबुद्धिपरिच्छेद्यत्वात् । तथा शब्दस्याप्येकबुद्धिगम्यत्वादे-  
कत्वं सिद्धम् ॥ २२२५ ॥

ननु कुतो देशभेदेन वेद्यमानस्यापि नानात्वं न भविष्यति । ननु यद्देशभेदेन वेद्य-  
मानत्वाद्भिन्नत्वं सिद्धं तत्कथमेकबुद्ध्या बाध्यत इत्याह—देशभेदेनेत्यादि ।

देशभेदेन भिन्नत्वमित्येतच्चानुमानिकम् ।

प्रत्यक्षस्तु स एवेति प्रत्ययस्तेन बाधकः ॥ २२२६ ॥

बाधक इति । प्रत्यक्षस्य सर्वप्रमाणज्येष्ठत्वादिति भावः ॥ २२२६ ॥

देशकालभेदेन वेद्यमानत्वस्य व्यभिचारित्वादप्रामाण्यमेवेति प्रतिपादयन्नाह—  
पर्यायेणेत्यादि ।



पर्यायेण यथा चैको भिन्नदेशान्त्रजज्ञपि ।

देवदत्तो न भिद्येत तथा शब्दो न भिद्यते ॥ २२२७ ॥

तथा शब्दो न भिद्यत इति । देशतः कालतश्चेत्यपेक्षणीयम् ॥ २२२७ ॥

एवं देशव्यभिचारमुखेनोभयोरपि व्यभिचार उक्तः । इदानीं कालमेदव्यभिचारद्वारेण चोभयोरपि देशकालमेदेनोपलम्भयोर्व्यभिचारमाह । ज्ञातैकत्व इत्यादि ।

ज्ञातैकत्वो यथा चैको दृश्यमानः पुनः पुनः ।

न भिन्नः कालमेदेन तथा शब्दो न देशतः ॥ २२२८ ॥

ज्ञातमेकत्वं प्रत्यभिज्ञानाद्यस्य स तथा । न देशत इत्युपलक्षणम्, तथा कालतोऽपि न भिन्नः । अविरोधादेकव्यभिचारमुखेनान्यत्रापि व्यभिचारोद्भावनम् ॥ २२२८ ॥

पर्यायेत्यादिना दृष्टान्तस्य वैषम्यमाशङ्कते ।

पर्यायादविरोधश्चेद्द्वयापित्वादपि दृश्यताम् ।

दृष्टसिद्धयै हि यो धर्मः सर्वेषां सोऽभ्युपेयते ॥ २२२९ ॥

तथाहि—देवदत्तस्य यद्देशकालमेदेनोपलम्भेऽपि न मेदस्तत्र पर्यायोऽस्त्यविरोधकारणम्, शब्दे तु न किञ्चिदपीत्यतो वैषम्यं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः । अत्राप्यविरोधकारणमाह—व्यापित्वादपि दृश्यतामिति । अविरोध इति सम्बन्धः । ध्वनीनां चापूरितान्तरालत्वादित्येतदपिशब्देन पूर्वोक्तं च निर्दिशति । कस्माद्द्वयापित्वमङ्गीक्रियत इत्याह—दृष्टसिद्धयै हीति । भिन्नेषु दिग्देशेष्वभिन्नस्य शब्दस्य ग्रहणसिद्धयर्थं यो धर्मो युज्यते स एवान्यथानुपपत्त्याऽङ्गीक्रियते । अत्र च शब्दस्य नित्यव्यापित्वमन्तरेण सर्वस्मिन्काले देशे च न ग्रहणं सिद्धयतीत्यतो नित्यविमुत्वे शब्दस्यान्यथानुपपत्त्या सिद्धे ॥ २२२९ ॥

स्वभावमेदेन वेद्यमानत्वस्यापि व्यभिचारितां प्रतिपादयन्नाह—यथा महत्यामित्यादि ।

यथा महत्यां खातायां मृदि व्योम्नि महत्त्वधीः ।

अल्पायां वाऽरूपधीरेवमत्यन्ताकृतके मतिः ॥ २२३० ॥

तेनात्रैव परोपाधिशब्दवृत्तौ मतिभ्रमः ।

न च स्थूलत्वसूक्ष्मत्वे लक्ष्येते शब्दवर्तिनी ॥ २२३१ ॥

बुद्धितीव्रत्वमन्दत्वे महत्त्वाल्पत्वकल्पना ।

सा च पट्टी भवत्येव महातेजःप्रकाशिते ॥ २२३२ ॥

मन्दप्रकाशिते मन्दा घटादावपि सर्वदा ।

एवं दीर्घादयः सर्वे ध्वनिधर्मा इति स्थितम् ॥ २२३३ ॥

अत्रायमभिप्रायः—यदि शब्दगतास्तीव्रमन्दादयो भेदा हेतुत्वेनोपादीयन्ते तदा न सिद्धो हेतुः । यो हि नित्यं शब्दमिच्छति स कथमपरोपाधिकांस्तस्य स्वभावभेदान् ब्रूयात् । अथ तीव्रमन्दाद्याकारे तद्विषया बुद्धिर्हेतुत्वेनोच्यते, सा हि न स्वभावे भेद-मन्तरेण सम्भवतीति । तदाऽनैकान्तिकताहेतोः । यथाहि महत्यां मृदि पृथिव्यां स्वातायां सत्यां व्योम्नि—आकाशे तदाश्रयं महत्त्वादिज्ञानमुत्पद्यते स्वतो महत्त्वा-देरभावेऽपि, तथा शब्देऽप्यत्यन्ताकृत्रिमेऽयं व्यञ्जकध्वनिभेदाद्बुद्धिभेदो भविष्यति तथाविधस्वभावभेदमन्तरेणापि । तदेवाह—तेनात्रैवमित्यादि । अथ परोपाधिर-यम्, न तु स्वत एवेति कथमवगतमिति चेदाह—न चेत्यादि । अनेनैतदाह—बुद्धि-गते एव तीव्रमन्दत्वे शब्दे समारोप्य भ्राम्भति, न तु पुनः शब्दस्य स्वतः स्थूला-दिसम्भवः, तस्य प्रत्यभिज्ञैकत्वस्य सिद्धत्वात् । अथापि स्याद्यदि विषयस्य तथा स्वभावभेदो न भवेद्बुद्धेरपि कुतो भवेदित्याह—सा च पट्टीत्यादि । यथैव हि घटा-दावसत्यपि स्वभावभेदे प्रकाशभेदाद्बुद्धेः पट्टमन्दतादिभेदो भवति, तथा शब्देऽपि दीर्घादिभेदो व्यञ्जकध्वनिभेदाद्भविष्यति, असत्यपि स्वतः स्वभावभेद इत्यदोषः ॥ २२३० ॥ २२३१ ॥ २२३२ ॥ २२३३ ॥

पुनरपि शब्दानित्यत्वप्रतिज्ञाया बाधां शब्दस्य वाचकसामर्थ्यान्यथानुपपत्त्या प्रतिपादयन्नाह—न चादृष्टार्थसम्बन्ध इत्यादि ।

न चादृष्टार्थसम्बन्धः शब्दो भवति वाचकः ।

तथा चेत्स्यादपूर्वोऽपि सर्वः स्वार्थं प्रबोधयेत् ॥ २२३४ ॥

अर्थापत्तिपूर्विकेयमर्थापत्तिस्तथाहि—शब्दस्य वाचकसामर्थ्यं शाब्दज्ञानान्यथा-नुपपत्त्या सिद्धम्, तदपि सामर्थ्यं शब्दनित्यत्वमन्तरेणानुपपन्नमित्यर्थापत्तिपूर्विकेय-मर्थापत्तिः । तामेव विस्तरेण प्रतिपादयति—नहि तावदगृहीतसम्बन्धः शब्दः सत्तामात्रेण वाचको भवति । तथा चेत्स्यादिति । यद्यदृष्टार्थसम्बन्धोऽपि वाचको भवेत्तदाऽपूर्वोऽपि प्रथममश्रुतोऽपि नालिकेरद्वीपनिवासिनां गवादिशब्दः स्वार्थं प्रका-शयेत् ॥ २२३४ ॥

ननु चात्र सर्वेषामविवादात्सिद्धसाध्यता, नहि कश्चिदज्ञातसम्बन्धं शब्दं वाचकमिच्छति । नित्यस्तु स कथमनेन ज्ञातसम्बन्धेन प्रतिपादितो भवतीत्याह—सम्बन्धदर्शनमित्यादि ।

**सम्बन्धदर्शनं चास्य नानित्यस्योपपद्यते ।**

**सम्बन्धज्ञानसिद्धिश्चेद्भ्रुवं कालान्तरस्थितिः ॥ २२३५ ॥**

शब्दमर्थं च पुरोऽवस्थाप्य तयोः सम्बन्धः क्रियते, कृतश्चोत्तरकालं ज्ञायेत । उच्चरितप्रध्वंसित्वात्तु शब्दस्यैतदयुक्तम् । तदाह—नानित्यस्योपपद्यत इति । अथ तावत्कालमवतिष्ठेत, हन्त तर्हि कालान्तरमप्यवस्थानमनिवार्यमेवाविरोधात् । यथोक्तम्—“तावत्कालं स्थिरं चैनं कः पश्चान्नाशयिष्यती”ति ॥ २२३५ ॥

अथापि स्यात्सम्बन्धकालं यावदवतिष्ठेत, पश्चात्स्वयमेव नश्यतीत्याह—अन्यस्मिन्नित्यादि ।

**अन्यस्मिन् ज्ञातसम्बन्धे न चान्यो बोधको भवेत् ।**

**गोशब्दे ज्ञातसम्बन्धे नाश्वशब्दो हि वाचकः ॥ २२३६ ॥**

अन्यस्मिन्—सङ्केतकालभाविनि । शेषं सुबोधम् ॥ २२३६ ॥

अथेति पराभिप्रायमाशङ्कते ।

**अथान्योऽपि स्वभावेन कश्चिदेवाबोधकः ।**

**तत्रानिबन्धने न स्यात्कोसाविति विनिश्चयः ॥ २२३७ ॥**

अथान्योऽपीति । प्रयोगकालभावी प्रकृत्यैव सङ्केतकालभाविशब्दवद्वाचकः स्यादिति चेत्तदसम्यक् । निबन्धनमन्तरेणासौ शब्दोऽस्यार्थस्य वाचक इति निश्चयाभावात् ॥ २२३७ ॥

ननु च कथमुच्यते निश्चयो नास्तीति, यावता यतोऽर्थप्रत्ययो भवति स एव स्वभावतोऽर्थस्य बोधक इति स्पष्टमेव निश्चीयत इत्याह—यत इत्यादि ।

**यतः प्रत्यय इत्येव व्यवहारे प्रकल्पिते ।**

**श्रोतृणां स्यादपीत्थं तु वक्तृणां नावकल्पते ॥ २२३८ ॥**

सत्यं श्रोतृणां सम्भवेदयं निश्चयोऽयमर्थस्य प्रत्यायक इति । तेषां ततोऽर्थप्रत्ययोत्पत्तेः । प्रयोक्तृणां त्वयं दुर्लभः, नहि ते ततः शब्दादर्थं प्रतिपद्यन्ते, परप्रत्यायनार्थमेव शब्दं ते प्रयुज्यते । तत्कुतो वक्तृणामवकल्पते निश्चयः ॥ २२३८ ॥

एतदेव दर्शयति—अज्ञात्वेत्यादि ।

अज्ञात्वा कमसौ शब्दमादावेव विवक्षतु ।

जानाति चेदवश्यं स पूर्वमेवावधारितः ॥ २२३९ ॥

तदेवमज्ञानपक्षेऽयं दोषः, ज्ञानपक्षेऽपि नियतमसौ प्राक्तेन ज्ञात इति स्थिरत्व-  
मस्य बलादापततीति दर्शयन्नाह—जानाति चेदित्यादि ॥ २२३९ ॥

ननु यथा दीपादितेजोऽभिनवमपि प्रकाशयत्यर्थं तथा शब्दोऽपि प्रतिपादयिष्य-  
तीत्याह—तेजः प्रत्यक्षशेषत्वादिति ।

तेजः प्रत्यक्षशेषत्वान्नवत्वेऽपि प्रकाशकम् ।

सदृशत्वाप्रतीतेश्च तद्वारेणाप्यवाचकः ॥ २२४० ॥

प्रत्यक्षशेषत्वम्—( प्रत्यक्षे ) अङ्गभावः । तद्विषयसंस्कारादिन्द्रियसंस्काराद्वा  
प्रत्यक्षे ज्ञानेऽङ्गतामुपागच्छदभिनवमपि प्रकाशकं भवति । शब्दस्य साक्षादतीन्द्रियार्थ-  
प्रतिपादकत्वान्न प्रत्यक्षाङ्गतो वैषम्यम् । अथवा—यत्प्रत्यक्षाङ्गं तत्सम्बन्धपरिज्ञा-  
ननिरपेक्षमपि प्रकाशयति । यथा चक्षुस्तेजश्च प्रत्यक्षाङ्गम् । तस्मादभिनवमपि प्रका-  
शयति । शब्दस्तु परोक्षविषयत्वान्न प्रत्यक्षाङ्गमिति वैषम्यम् । ननु चाभिनवमपि  
शब्दान्तरं पूर्वसादृश्यानुसारेण वाचकं भविष्यतीत्याह—सदृशत्वाप्रतीतेरित्यादि ।  
न चप्रतीते सादृश्ये तद्वारेण वाचकत्वं युक्तमतिप्रसङ्गात् ॥ २२४० ॥

किञ्च—आस्तां तावत्सादृश्यप्रतीतिः, सादृश्यमेव न सम्भवतीति प्रतिपादय-  
न्नाह—कस्य चैकस्येत्यादि ।

कस्य चैकस्य सादृश्यात्कल्प्यतां वाचकोऽपरः ।

अदृष्टसङ्गतित्वेन पूर्वेषां तुल्यता यदा ॥ २२४१ ॥

अर्थवान्पूर्वदृष्टश्चेत्तस्यैतावान् क्षणः कुतः ।

द्विस्त्रिर्वाऽनुपलब्धो हि नार्थवान्संप्रतीयते ॥ २२४२ ॥

एकस्मिन् हि वाचके सिद्धे तत्सादृश्यादितरस्तथैवेति कल्प्येत तच्च न सम्भवति,  
सर्वेषामेव शब्दानामर्थसम्बन्धित्वेन प्रतीतत्वात् । अथापि स्याद्यः प्राक् मङ्केतकाले  
दृष्टः सोऽर्थवानेव सादृश्यमितरेषां भविष्यतीत्याह—तस्यैतावान् क्षणः कुत  
इति । तस्य—पूर्वदृष्टस्य शब्दस्य—एतावतः क्षणान्कुतोऽवस्थानमुच्चरितप्रध्वंसित्वा  
त्तस्य । यदि नामोच्चरितप्रध्वंसी, तथाऽप्यर्थवान्किं न भवतीति चेदाह—द्विस्त्रिर्वे-  
त्यादि । भूयोदर्शनभावि हि शब्दार्थसम्बन्धज्ञानम् ॥ २२४१ ॥ २२४२ ॥

अथ सजातीयान्यग्रहणे सति स एव सार्थको भवतीत्युच्यते, तदयुक्तमित्याह—  
अप्रतीतान्यशब्दानामित्यादि ।

**अप्रतीतान्यशब्दानां तत्कालेऽसावनर्थकः ।**

**स एवान्यश्रुतीनां स्यादर्थवानिति विस्मयः ॥ २२४३ ॥**

येषां हि प्रतिपत्तृणां शब्दान्तरमप्रतीतिं तेषां हि श्रवणकाले नासावर्थस्य प्रत्या-  
यकः । भेदाधिष्ठानस्य सादृश्यस्य तदानीमभावात् । पुनः स एव तेषामेव प्रतिप-  
त्तृणां प्रतीतशब्दान्तराणामर्थप्रत्यायक इत्यलौकिकम् । कथं हि नामैकस्य क्रियाक्रिये  
परस्परविरुद्धे स्याताम् । अन्यश्रुतीनामिति । अन्या—सजातीयशब्दविषया श्रुति-  
र्येषां प्रतिपत्तृणां ते तथा ॥ २२४३ ॥

एवं तावद्वाचकत्वान्यथानुपपत्त्या शब्दनित्यत्वं प्रतिपाद्य, इदानीं सम्बन्धकर-  
णान्यथानुपपत्त्या प्रतिपादयन्नाह—शब्दं तावदित्यादि ।

**शब्दं तावदनुच्चार्य सम्बन्धकरणं न च ।**

**न चोच्चारितनष्टस्य सम्बन्धेन प्रयोजनम् ॥ २२४४ ॥**

**तेनासम्बन्धनष्टत्वात्पूर्वस्तावदनर्थकः ।**

**उत्तरोऽकृतसम्बन्धो विज्ञायेतार्थवान्कथम् ॥ २२४५ ॥**

पूर्वमुच्चारणं ततः सम्बन्धकरणं ततो व्यवहार इत्ययं क्रमेण व्यवहार उच्चारित-  
प्रध्वंसिनोऽक्रमस्य कथं स्यात् । न केवलं नष्टस्य सम्बन्धोऽशक्यक्रियः, नापि तेन  
प्रयोजनम्, व्यवहारकालाननुयायित्वात् । व्यवहारार्थत्वाच्च सङ्केतस्य । तेनेत्या-  
दिना निगमयति । अविद्यमानः सम्बन्धो यस्यासावसम्बन्धः, तत्त्वान्नष्टत्वाच्च पूर्व-  
स्तावत्सङ्केतकालभावी शब्दोऽनर्थकः । व्यवहारकालभावी तर्हि सार्थको भविष्यती-  
त्याह—उत्तर इत्यादि ॥ २२४४ ॥ २२४५ ॥

यदि तर्ह्यक्रमस्य क्रमेणोच्चारणादयोऽनुपपत्ता युगपत्तर्हि भवन्त्वित्याह—शब्दो-  
च्चारणेत्यादि ।

**शब्दोच्चारणसम्बन्धकरणव्यावहारिकीः ।**

**क्रियाः क्रमस्वभावत्वात्कः कुर्याद्युगपत्कचित् ॥ २२४६ ॥**

शब्दोच्चारणं सम्बन्धकरणं लोकव्यवहारश्चेत्येतास्तिः क्रियाः स्वभावत एव क्रम-  
वत्यः, ता युगपत्कर्तुमशक्याः । असति च यौगपद्ये सम्बन्धकरणानुपपत्तिः । क्रम-  
प्रतीक्षायां कालान्तस्थायी शब्दोऽभ्युपगतः स्यात् ॥ २२४६ ॥

देशकालादिभिन्नानामिति निगमनम् ।

देशकालादिभिन्नानां पुंसां शब्दान्तराश्रुतेः ।

पूर्वं कृत्रिमसम्बन्धोऽप्येकः शब्दो न सिद्धयति ॥ २२४७ ॥

सम्बन्धकथनेऽप्यस्य स्यादेवैव प्रतिक्रिया ।

नष्टासङ्कर्तमानेषु नाख्यानस्य हि सम्भवः ॥ २२४८ ॥

आदिशब्देन बालकुमाराद्यवस्थापरिग्रहः । पूर्वमिति । शब्दान्तराश्रुतेरिति सम्बन्धनीयम् । नष्टेत्यादि । नष्टः—अतीतः, असन्—अनागतः, तयोरसत्त्वादेव न सम्बन्धाख्यानसम्भवः । वर्तमानोऽप्युच्चार्यमाणस्तस्य समनन्तरध्वंसित्वेन कुतस्तावान्कालः ॥ २२४७ ॥ २२४८ ॥

एतदेव दर्शयति—अर्थवानित्यादि ।

अर्थवान्क(तरः)शब्दः श्रोतुर्धक्का च कथ्यताम् ।

यदा पूर्वश्रुतः शब्दो नासौ शक्नोति भाषितुम् ॥ २२४९ ॥

न तावदर्थवन्तं स ब्रवीति सदृशं वदेत् ।

नार्थवत्सदृशः शब्दः श्रोतुस्तत्रोपपद्यते ॥ २२५० ॥

अर्थवद्ग्रहणाभावान्न चासावर्थवान्स्वयम् ।

वक्तुः श्रोतृत्ववेलायामेतदेव प्रसज्यते ॥ २२५१ ॥

न हि वक्ता पूर्वश्रुतं शब्दं श्रोतुः कथयितुं शक्तः, तस्य पूर्वनिरुद्धत्वात् । यमपि प्रतिपादयति न तमर्थवन्तं शक्नुयात्प्रतिपादयितुम् । तस्य पूर्वमकृतसम्बन्धत्वात् । एतावत्सम्भाव्यते—सदृशं ब्रूयदिति । तदपि न सम्भवतीत्याह—नार्थवत्सदृश इत्यादि । नष्टत्र केनचित्सादृश्यमिष्टम्, किं तर्हि ?, अर्थवता, तच्चानुपपन्नम् । यदि हि श्रोत्रा कश्चिच्छब्दोऽर्थवानुपलब्धः स्यात्तदाऽनेन सादृश्यमुपपद्येत, यावता पूर्वसङ्केतकालेऽर्थवतो ग्रहणाभावान्न युक्तमेतत् । कथ्यमानो यः सोऽर्थवांस्तर्हि भविष्यतीत्याह—न चासावित्यादि । न चासावुच्चार्यमाणोऽर्थवान्, तस्य पूर्वमकृतसम्बन्धत्वादित्युक्तम् । वक्तुरित्यादिना यथा वक्ताऽपि पर्यायेण श्रोता भवति तदा तस्याप्येतदेव सर्वं दोषजातं—न तावदर्थवन्तं स ब्रवीतीत्यादिकमापततीति दर्शयति । तदनेन सर्वेषामेव वक्तॄणां न कश्चिदर्थवान् शब्दः सम्भवतीत्युक्तं भवति ॥ २२४९ ॥ २२५० ॥ २२५१ ॥

तस्मादित्युपसंहरति ।

तस्माच्छब्दार्थसम्बन्धो नित्य एवाभ्युपेयताम् ।

न तु सामयिको युक्तः सर्वथा तदसम्भवात् ॥ २२५२ ॥

स्वत इत्यादिना परस्य पूर्वपक्षमाशङ्कते ।

स्वतो नैवास्ति शक्तत्वं वाच्यवाचकयोर्मिथः ।

प्रतीतिः समयात्पुंसां स्याच्चेदक्षिनिकोचवत् ॥ २२५३ ॥

वाच्यवाचकयोः परस्परं नैव स्वभाविकी यथाक्रमं वाच्यवाचकशक्तिः । कथं तर्हि प्रतीतिः शब्दादुदेतीत्याह—प्रतीतिः समयादित्यादि । यस्य यत्र सङ्केतापेक्षः कारणभावो न स तस्य स्वाभाविकः, यथाऽक्षिनिकोचस्य प्रतिपत्तौ, सङ्केतसापेक्षश्च प्रतिपत्तौ कारणभावः शब्दस्येति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः । अनेन चानित्यत्वप्रतिज्ञा-बाधां विस्तरेणोक्तां विघटयति ॥ २२५३ ॥

समय इत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

समयः प्रतिमर्त्यं वा प्रत्युच्चारणमेव वा ।

क्रियते जगदादौ वा सकृदेकेन केनचित् ॥ २२५४ ॥

प्रत्येकं वाऽपि सम्बन्धो भिद्येतैकोऽथवा भवेत् ।

एकत्वे कृतको न स्याद्भिन्नश्चेद्भेदधीर्भवेत् ॥ २२५५ ॥

इयमस्य संज्ञेति समयः सा प्रतिपत्त्यर्थं प्रतिपुरुषं वा क्रियेत, प्रतिपुरुषमेव प्रत्युच्चारणं प्रतिप्रयोगं वा । अथवा—जगदादौ—जगतः सृष्टिकाले केनचित्—ईश्वरादिना धात्रा, सकृत्—एकयैव हेलया, क्रियेतेति त्रयो विकल्पाः । प्रत्येकं वाऽपीति । सम्बन्धोऽपि शब्दार्थयोः क्रियमाणः कदाचित्प्रतिसत्त्वं भिद्येत्, यद्वैक एवेति द्वितीयकल्पना । एकत्वपक्षे जातिवद्देशकालमेदानुयायित्वाकृतको न स्यात् । नित्य एव स्यादिति यावत् । अथ प्रतिसत्त्वं भिन्नस्वभावस्तदा प्रतिसत्त्वं भेदबुद्धिः प्राप्नोति, ज्ञेयभेदनिबन्धनत्वाज्ज्ञानभेदस्य । न च गवादिशब्दानां शतकृत्वोऽपि प्रयोगे व्यवहर्तृणां भेदबुद्धिर्भवत्यभेदाध्यवसायेनैव व्यवहारात् ॥ २२५४ ॥ ॥ २२५५ ॥

किंच—यदि प्रतिसत्त्वं भिन्नः सम्बन्धस्तदाऽवश्यं भेदधिया भाव्यम्, ततश्च व्यवहारोच्छेदः प्राप्नोतीति दर्शयन्नाह—वक्तृश्रोतृधियोरिति ।

वक्तृश्रोतृधियोर्भेदाद्व्यवहारश्च दुष्यति ।

वक्तुरन्यो हि सम्बन्धो बुद्धौ श्रोतुस्तथाऽपरः ॥ २२५६ ॥

भेदादिति । विषयस्येत्यहार्यम् । तेनायमर्थो भवति—वक्तृश्रोतृधियोर्योऽर्थो विषय-  
स्तस्य भेदादेकार्थाध्यवसायेन व्यवहारो न स्यात् । कथमित्याह—वक्तुरन्यो हीति  
॥ २२५६ ॥

यदुक्तं समयः प्रतिमर्त्य वेति । अत्र दूषणमाह—श्रोतुः कर्तुं चेत्यादि ।

श्रोतुः कर्तुं च सम्बन्धं वक्ता कं प्रतिपद्यताम् ।

पूर्वं दृष्टो हि यस्तेन तं श्रोतुर्न करोत्यसौ ॥ २२५७ ॥

यं करोति नवं सोऽपि न दृष्टप्रतिपादकः ।

घटादावपि तुल्यं चेन्न सामान्यप्रसिद्धितः ॥ २२५८ ॥

यद्यपि ज्ञातसामर्थ्या व्यक्तिः कर्तुं न शक्यते ।

क्रियते या न तस्याश्च शक्तिः कार्येऽवधारिता ॥ २२५९ ॥

तथाऽप्याकृतितः सिद्धा शक्तिरुच्चारणादिषु ।

तस्या न चादिमत्ताऽस्ति सम्बन्धस्त्वादिमांस्ततः ॥ २२६० ॥

यदि तस्यापि सामान्यं नित्यमभ्युपगम्यते ।

तथाऽप्यस्मन्मतं सिद्धं न तु ह्याकारसम्भवः ॥ २२६१ ॥

शक्तिरेव हि सम्बन्धो भेदश्चास्या न दृश्यते ।

सा हि कार्यानुमेयत्वात्तद्भेदेमनुवर्तते ॥ २२६२ ॥

अन्यथाऽनुपपत्त्या च शक्तिसद्भाषकल्पनम् ।

न चैकयैव सिद्धेऽर्थे बह्वीनां कल्पनेष्यते ॥ २२६३ ॥

तं श्रोतुर्न करोतीति । तस्य नष्टत्वात् । न दृष्टप्रतिपादक इति । तस्य पूर्वम-  
दृष्टत्वात् । घटादावपीति । अतिप्रसङ्गोद्भावनया दूषणस्यानैकान्तिकत्वमाशङ्कते ।  
घटादावपि तुल्यः प्रसङ्गः, तथाहि—यो घटोऽर्थक्रियासमर्थो दृष्टो नासौ कर्तुं  
शक्यः, तस्य निष्पन्नविनष्टत्वात् । यश्चाधुना क्रियते नासावर्थक्रियासमर्थो दृष्टस्त-  
स्यानिष्पन्नत्वात् । उत्तरमाह—न सामान्यप्रसिद्धित इति । नेति पूर्वपक्षप्रतिक्षेपः ।  
कुतः ? । सामान्यस्य प्रसाधितत्वात् । तद्वारेण सामर्थ्यसिद्धेरिति भावः । एतदेव  
स्पष्टयन्माह—यद्यपीत्यादि । यद्यप्युदकाहरणादिषु दृष्टसामर्थ्या घटव्यक्तिः कर्तुं न



पार्यते, निष्पन्नविनष्टत्वात् । याऽप्यधुनातनी न तस्या अर्थक्रियासामर्थ्यमवधारितम् । तथाप्याकृतिद्वारेणैवार्थक्रियासामर्थ्यं सर्वस्यां व्यक्तौ सिद्धयति । कथमित्याह—तस्या इत्यादि । तस्या इति । आकृतेः । कचित्—न च तस्यादिमचेति पाठः । तस्यायमर्थः—न च तस्योदकाहरणादिसामर्थ्यस्यादिमचास्ति, आकृतेर्नित्यत्वात् । तस्याश्चाश्रयतोऽत्यन्तमभिव्रत्वात् । यथोक्तम्—“स्थितं नैव च जात्यादेः परत्वं व्यक्तितो हि नः” इति । सम्बन्धोऽपि तर्द्धाकृतिद्वारेणानादिर्भवत्विति चेत्तदेतदयुक्तमित्याह—सम्बन्धस्त्वित्यादि । किञ्च—यदि भवता तस्यापि शब्दार्थसम्बन्धस्य नित्यं सामान्यमभ्युपगम्यते तथाऽपि नित्यं नाम वस्त्वस्तीत्यस्मन्तं सिद्धम् । शब्दस्तु प्रकृत एव न सिद्धयतीति चेदाह—(?) न तु द्वयाकारसम्भव इति । द्वावाकारौ—सम्बन्धस्तत्सामान्यं च । एकस्यैवाकारस्य सम्भवो न तु सामान्यस्य, तस्यानेकव्यक्तिनिष्ठत्वात् । सम्बन्धस्य चैकत्वात् । कथमेकत्वं सम्बन्धस्येत्याह—शक्तिरेव हीत्यादि । नहि शक्तिव्यतिरिक्तः सम्बन्धोऽस्ति । यदि नामैवं ततः किमित्याह—भेदश्चेत्यादि । भेदो—नैकत्वम् । किमिति न दृश्यत इत्यत्र कारणमाह—सा हीति । सा हि नित्यं कार्यानुमेया । यथोक्तम्—“शक्तयः सर्वभावानां कार्यार्थापत्तिप्राधना” इति । ततोऽसौ कार्यभेदमनुघत्ते—अनुधावति, आत्मगतभेदप्रत्यायने । कार्यभेददर्शनं विना न शक्यः शक्तिभेदो ज्ञातुमिति यावत् । न चात्र कार्यभेदोऽस्ति । तथाहि—कार्यं तस्याः प्रतीतिरेव, सा च शब्दालम्बना वा स्यादर्थविलम्बना वा । न तावदाद्याया भेदः शब्दस्य नित्यं प्रत्यभिज्ञायमानत्वात् । नाप्यर्थाविलम्बनायाः, नहि शतकृत्वोऽप्युच्चार्यमाणो(णे ?) गोशब्दादेरन्याहशी प्रतीतिरुपजायते । उपचयमाह—अन्यथेत्यादि । अर्थप्रतीत्यनुपपत्त्या हि वाच्यवाचकशक्तिः कल्प्यते । एकैव च शक्त्या विवक्षितार्थस्य सिद्धत्वादपार्थक्यमनेकशक्तिपरिकल्पनम् । न चान्यथानुपपत्त्या शक्तिभेदोऽनुमातुं शक्यः । शक्तिमात्र एव तस्याः सामर्थ्यात् ॥ २२५७ ॥ २२५८ ॥ २२५९ ॥ २२६० ॥ ॥ २२६१ ॥ २२६२ ॥ २२६३ ॥

इत्थञ्च सम्बन्धस्य करणमयुक्तमतो नित्य एव सम्बन्ध इति प्रतिपादयन्माह—सम्बन्धाख्यानेत्यादि ।

सम्बन्धाख्यानाकाले च गोशब्दावाबुदीरिते ।

केचित्सम्बन्धबुद्ध्याऽर्थं बुद्ध्यन्ते नापरे तथा ॥ २२६४ ॥

तत्र सम्बन्धनास्तित्वे सर्वोऽर्थं नावधारयेत् ।

अस्तित्वे सर्वबोधश्चन कैश्चिदनुपग्रहात् ॥ २२६५ ॥

तथा शेष गौः पदा न स्पष्टव्य इत्युक्ते केचित्पुरुषा वाच्यवाचकसम्बन्धमवधार्य सम्बन्धपुरःसरमेवार्थमवबुध्यन्ते । अन्ये त्वज्ञातसम्बन्धाः स्वरूपमेवावयन्ति नार्थम् । तत्र यदि वस्तुभूतः सम्बन्धो न स्यात्तदा सर्व एव पुरुषो व्युत्पन्नव्यवहारो नार्थमवधारयेत् । न श्लोकस्य सदसत्त्वे परस्परविरुद्धे युक्ते । तस्मान्नित्यावस्थित एव सम्बन्ध इति । ननु यदि नित्यावस्थितः सम्बन्धः किमिति सर्वदा सर्वेषामर्थप्रतिपत्तिर्न भवेदित्येतच्चोद्यमाशङ्क्य विस्तरेण परिहरन्नाह—अस्तित्व इत्यादि । नेति प्रसङ्गं निवर्त्तयति । कुतः ? । कैश्चित्तस्याग्रहणात् ॥ २२६४ ॥ २२६५ ॥

यदि नाम न गृहीतस्तथाऽपि किमिति स्वकार्यं न जनयेत् । नहि खलबिलाष-  
न्तर्गतत्वादात्मकार्यं बीजादयो विजहतीत्याह—ज्ञापकत्वाद्धीत्यादि ।

ज्ञापकत्वाद्धि सम्बन्धः स्वात्मज्ञानमपेक्षते ।

तेनासौ विद्यमानोऽपि नागृहीतः प्रकाशकः ॥२२६६॥

अन्यो हि ज्ञापकधर्मोऽन्यश्चोत्पादकस्य, शब्दस्तु धूमवदर्थस्य ज्ञापको न तु बी-  
जादिवदुत्पादक इत्यदोषः ॥ २२६६ ॥

ननु चैकस्य सदसत्त्वे परस्परविरुद्धत्वादयुक्ते, तथा ग्रहणाग्रहणे अपि । अथान-  
योरविरोधः, क इदानीं प्रद्वेषः सदसत्त्वयोरित्याह—विद्यमानस्येत्यादि ।

विद्यमानस्य चार्थस्य दृष्टं न ग्रहणं कश्चित् ।

न त्वत्यन्तासतोऽस्तित्वं कांश्चित्प्रत्युपपद्यते ॥२२६७॥

विरुद्धौ सदसद्भावौ न स्यातामेकवस्तुनि ।

न च तुल्यं विरोधित्वं ज्ञाताज्ञातत्वयोरपि ॥ २२६८ ॥

ज्ञानं हि पुरुषाधारं तद्भेदात्न विरुध्यते ।

पुरुषान्तरसंस्थं च न (ना?) ज्ञानं तेन चार्थते ॥२२६९॥

एकत्र हि धर्मिणि परस्परविरुद्धधर्माध्यासो विरुद्धः, न तु धर्म्यन्तरे, ग्रहणाग्र-  
हणे च पुरुषमेदेन मिश्रधर्म्याधारत्वादविरुद्धे, न तु सदसत्त्वे, तयोरैकधर्म्याधार-  
त्वेनेष्टत्वादिति समासार्थः ॥ २२६७ ॥ २२६८ ॥ २२६९ ॥

ननु च ग्रहणाग्रहणपक्षेऽपि सामर्थ्यादेकाधिकरणे सदसत्त्वे परस्परविरुद्धे तथा-

(त्रा ?)पि समापतत एव । तथाहि—पदार्थसदसत्त्वाभ्यां ग्रहणाग्रहणे व्याप्ते तन्नि-  
बन्धनत्वात्तयोः । अन्यथा तुल्ययोग्यदेशयोः पुरुषयोरेक एव पश्येन्नापर इत्यत्र  
कारणं वक्तव्यमित्याशङ्क्याह—अन्धानन्धेत्यादि ।

**अन्धानन्धसमीपस्थः शुक्लोऽन्धैर्नावगम्यते ।**

**गम्यते चेतरेस्तस्य सदसत्त्वे न तान्प्रति ॥२२७०॥**

यथा ह्यन्धेतरयोः समीपस्थं रूपमविकलचक्षुष एवोपलभन्ते, नेतरे, न च  
तान्प्रति तस्य शुक्लरूपस्य सदसत्त्वे स्तः, तद्वत्सम्बन्धेऽपीति ॥ २२७० ॥

किमत्र कारणमित्यपेक्षानिवृत्त्यर्थमुपपत्तिमाह—शक्त्यशक्तयोरित्यादि ।

**शक्त्यशक्तयोर्नराणां तु भेदात्तत्राविरोधिता ।**

**न ह्यन्यो दर्शनस्यास्ति सम्बन्धाद्धेतुरत्र हि ॥ २२७१ ॥**

एतदाचष्टे—नह्यर्थसत्त्वोपलम्भकारणम्, किं तर्हि ?, पुरुषगता च शक्तिः, तेन  
सत्यप्यर्थे कस्यचित्पुरुषस्य शक्त्यभावादग्रहणमविरुद्धमिति नाग्रहणमर्थासत्त्वेन व्या-  
प्तम् । यद्येवमसत्यपि सम्बन्धे पुरुषाणां शक्त्यशक्तिभेदानर्थस्य ग्रहणाग्रहणे भविष्यत  
इति सर्वं समानमित्याह—न ह्यन्य इत्यादि । सम्बन्धग्रहणपुरस्सरत्वादर्थप्रत्यय-  
स्येति भावः । अन्य इति हेतुः सम्बन्ध्यते । दर्शनस्येति । शब्दार्थप्रतीतेः । हेतु-  
रित्येतदपेक्षा चेयं षष्ठी । सम्बन्धादित्यन्यापेक्षा पञ्चमी । अत्रेति । शब्दार्थव्यव-  
हारे । अन्ये तु—शक्त्यशक्तयोर्नराणां तु भेदात्तत्राविरोधितेत्यत्रैवोपपत्तिरूपेण वर्ण-  
यन्तो व्याचक्षते—सम्बन्धादिति । पुरुषशक्तेरित्यर्थः । अत्रेति शुक्रे ॥ २२७१ ॥

दाष्टान्तिकमुपसंहरन्नाह—एवमेवेत्यादि ।

**एवमेवेन्द्रियैस्तुल्यं व्यवहारोपलम्भनम् ।**

**येषां स्यात्तेऽवबुध्यन्ते ततोऽर्थं नेतरेऽन्धवत् ॥२२७२॥**

व्यवहियते अस्मादिति व्यवहारः शब्दार्थसम्बन्धः । तस्योपलम्भनम्—परि-  
ज्ञानम् । तदिन्द्रियैस्तुल्यम् । तथाहि । येषामेवेन्द्रियमस्ति, तेऽर्थमुपलभन्ते । येषां  
तु नास्ति, ते सत्यप्यर्थे नोपलभन्ते । एवं येषां सम्बन्धपरिज्ञानमस्ति, ते शब्दाद-  
र्थमवबुध्यन्ते । येषां तु नास्ति, ते सत्यपि सम्बन्धे नोपलभन्त इति सर्वं समाप्तं  
किल ॥ २२७२ ॥

योऽयं प्रथमं सम्बन्धस्य कर्त्ता केन न तस्मै सम्बन्धः प्रतिपादित इति वक्तव्यम्,

स्वयमेवेति चेन्न, तथैवाऽन्येषामपि प्रसङ्गात् । अथान्यतस्तस्याप्यन्यत इति चेत्, एवं तर्हनादित्वात्न केनचित्क्रियत इति दर्शयति—सर्वेषामित्यादि ।

**सर्वेषामनभिज्ञानां पूर्वपूर्वप्रसिद्धितः ।**

**सिद्धः सम्बन्ध इत्येवं सम्बन्धादिर्न विद्यते ॥२२७३॥**

(यः) शब्दार्थसम्बन्धः स षट्शब्दव्यवहारपूर्वकः, सम्बन्धत्वादिदानीन्तनसम्बन्ध-  
वत् । सम्बन्धश्च विवादास्पदीभूतः सम्बन्ध इति स्वभावहेतुः ॥ २२७३ ॥

एवं तावत्प्रतिमर्त्यं न समयः सम्भवतीति प्रतिपादितम्, अधुना प्रत्युच्चारणमे-  
वेति यदुक्तं तत्प्रत्युद्गाराह—प्रत्युच्चारणेत्यादि ।

**प्रत्युच्चारणनिर्वृत्तिर्न युक्ता व्यवहारतः ।**

**सर्गादौ च क्रिया नास्ति तादृक्कालो हि नेष्यते ॥२२७४॥**

**इष्यते हि जगत्सर्वं न कदाचिदनीदृशम् ।**

**न महाप्रलयो नाम ज्ञायते पारमार्थिकः ॥२२७५॥**

**रात्रिर्वा प्रलयो नाम लीनत्वात्सर्वकर्मणाम् ।**

**दिवसः सृष्टिसंज्ञश्च सर्वचेष्टाऽतिसर्जनात् ॥२२७६॥**

**देशोत्सादकुलोत्सादरूपो वा प्रलयो भवेत् ।**

**प्रलये तु प्रमाणं नः सर्वोच्छेदात्मके नहि ॥२२७७॥**

व्यवहारत इति । व्यवहारप्रवृत्तेः । अन्यथा हि पूर्वमकृतसम्बन्धाद्ब्यवहारप्रवृ-  
त्तिर्न स्यादिति यावत् । साम्प्रतं जगदादौ चेति यदुक्तं तस्य प्रतिविधानमाह—  
सर्गादौ चेति । तादृगिति । शब्दार्थसम्बन्धशून्यः सृष्टिसंहारात्मकः । अनीदृ-  
शमिति । सर्वोच्छेदात्मकम् । तत्र प्रमाणाभावात् । कथं तर्हि लोके प्रलयादिव्यव-  
हारप्रसिद्धिरित्याह—न महाप्रलय इत्यादि । ज्ञायत इति । लोकेन । पारमा-  
र्थिक इति । सर्वोच्छेदात्मकः परिकल्पितस्तु न वार्यत इत्यभिप्रायः । तमेव दर्श-  
यति—रात्रिर्वेत्यादि । अथ पारमार्थिकः कस्मान्नेष्यत इत्याह—प्रलये त्वित्यादि ॥  
॥ २२७४ ॥ २२७५ ॥ २२७६ ॥ २२७७ ॥

भवतु नाम परमार्थिकः प्रलयः, तथापि तदानीमग्रष्टम्भृतिप्रज्ञादिसंस्कारकस्य  
कस्यचिदीश्वरादेः कर्तुरभावान्न सम्बन्धकरणं युक्तमिति दर्शयन्नाह—न चालुमेत्यादि ।

**न चालुप्रसृतिः कश्चित्सृष्टिसंहारकारकः ।**

**ईश्वरादिः स्थिरो युक्तो यः सम्बन्धं प्रकल्पयेत् ॥२२७८॥**

न युक्त इति । तस्य विस्तरेण प्रतिषिद्धत्वात् ॥ २२७८ ॥

नन्वित्यादिना परस्य प्रत्यवस्थानमाशङ्कते ।

नन्वानुपूर्व्यनित्यत्वादनित्यो वाचको भवेत् ।

पदं वाचकमिष्टं हि क्रमाधीना च तन्मतिः ॥ २२७९ ॥

वर्णानुपूर्वी हि पदमिष्टं न स्फोटस्तस्याश्च पुरुषेच्छाधीनत्वादनित्यत्वमतो वर्णा-  
नामप्यनित्यत्वं प्राप्नोति । वर्णेभ्योऽनर्थान्तरत्वादानुपूर्व्याः । कथमित्याह—पदमि-  
त्यादि । तथाहि—वर्णात्मकं पदमेव वाचकमिष्यते, यतो वर्णक्रमकृता पदबुद्धिर्न  
स्फोटकृता, स च क्रमः पौरुषेयः ॥ २२७९ ॥

एतदेव विवृणोति—वर्णाः सर्वगतत्वाद् इति ।

वर्णाः सर्वगतत्वाद्दो न स्वतः क्रमवृत्तयः ।

अनित्यध्वनिकार्यत्वात्क्रमस्यातो विनाशिता ॥ २२८० ॥

पुरुषाधीनता चास्य तद्विषक्षावशाद्भवेत् ।

वर्णानां नित्यता तेन भवतां निष्फला भवेत् ॥ २२८१ ॥

वो युष्माकं मीमांसकानां वर्णानां सर्वगतत्वान्न देशकृतः क्रमः, नापि कालकृतो  
नित्यत्वात्तेषाम्, तस्मादभिव्यञ्जकध्वनिकृतः । तस्य चानित्यत्वात्तत्कृतस्याप्यनित्य-  
त्वमिति भावः । प्रयोगः—तदनित्यकृतं तदनित्यं यथा घटादि, अनित्यकृतश्च वर्ण-  
क्रम इति स्वभावहेतुः । यत्पुरुषविवक्षावशाद्भवति तत्पौरुषेयत्वेन प्रेक्षावता व्यव-  
हर्तव्यम्, यथा पाणिकम्पाक्षिनिकोचादयः, पुरुषेच्छावशाच्च वर्णानां भक्ति क्रम  
इति स्वभावहेतुः ॥ २२८० ॥ २२८१ ॥

अथापि स्याद्विनैव क्रमेण वर्णा एव श्रोत्रपरिच्छिन्ना अर्थप्रत्यायका भविष्यन्तीत्यत  
आह—न चेत्यादि ।

न च क्रमाद्विना वर्णा निर्ज्ञाताः प्रतिपादकाः ।

क्रमस्यैवं पदत्वं च तस्मादेवं प्रसज्यते ॥ २२८२ ॥

पदं वर्णातिरिक्तं तु येषां स्यात्क्रमवर्जितम् ।

तेषामेवार्थवत्येषा शब्दनित्यत्वकल्पना ॥ २२८३ ॥

नहि क्रमं विना वर्णा एवार्थप्रतिपत्तिहेतवो दृष्टास्तस्मादेषामवश्यं क्रमोऽभ्युपग-  
न्तव्यः । एवं सति क्रमस्यैव पदत्वं वाचकत्वं भवतां मीमांसकानां प्रसज्यते, न तु

केवलानां वर्णानाम् । तस्य च क्रमस्यानित्यत्वाद्वाचकस्याप्यनित्यत्वं स्यात् । ततश्च व्यर्था शब्दनित्यत्वकल्पना । तथाहि—वाचकस्य शब्दस्य नित्यत्वं साधयितुमिष्टं नान्यस्य, ततश्च यत्केवलवर्णनित्यसाधनं भवतां तत्प्रस्तुतानुपयोगि । तस्यावाचकत्वात् । यच्च बाध(वाच ?)कं क्रमरूपं न तन्नित्यमभ्युपगतमिति सर्वो विफल एव प्रयासः । येषां पुनस्त्व(र्वै ?)याकरणानां वर्णव्यतिरिक्तं स्फोटारूप्यमनवयवं पदं वाचकमितीष्टं तेषामर्थवत्येषा शब्दनित्यत्वकल्पना । तस्य स्फोटारूप्यस्य वस्तुनो नित्यत्वात् ॥ २२८२ ॥ २२८३ ॥

अत्र परिहारमाह—न तावदित्यादि ।

न तावदानुपूर्वस्य पदत्वं नः प्रसज्यते ।

नहि वस्त्वन्तराधारमेतदुष्टं प्रकाशकम् ॥ २२८४ ॥

अनुपूर्वस्वभाव आनुपूर्व, तस्यानुपूर्वमात्रस्य नास्माकं वाचकत्वं प्रसज्यते व्यभिचारित्वादिति भावः । तदेव दर्शयन्नाह—नहीत्यादि । वस्त्वन्तराधारमिति । मणिमुक्ताद्याधारम् ॥ २२८४ ॥

नापि वर्णाधारमानपूर्वमेव केवलं वाचकमिष्टम्, कथमित्याह—धर्ममात्रमिदमिति ।

धर्ममात्रमिदं तेषां न वस्त्वन्तरमिष्यते ।

इत्थं प्रतीयमानाः स्युर्वर्णाश्चैवावबोधकाः ॥ २२८५ ॥

न वस्त्वन्तरमिति । स्वतन्त्रवाचकत्वेनेत्यभिप्रायः । अन्यथा हि पारमार्थिको धर्मधर्मिणोर्भेदः स्यात् । स च नामीष्टः । किं तर्हि वाचकमित्याह—इत्थमित्यादि । इत्थम्—विशिष्टेन क्रमेण । एतदुक्तं भवति—न क्रममात्रं वाचकं, नापि वर्णाधारं, नापि वर्णमात्रं, किं तर्हि ?, वर्णा एव क्रमोपसृष्टा वाचका इति । तेन न क्रमस्य वाचकत्वं प्रति प्राधान्यं तस्य तद्वृत्तया प्रतीयमानस्य गुणीभूतत्वात् । किं तर्हि ? वर्णानां तेषां धर्मितया प्रतितेरिति दर्शितं भवति ॥ २२८५ ॥

यदुक्तमनित्यध्वनिकार्यत्वादिति हेतुद्वयं तस्यासिद्धतामाह—न च क्रमस्येत्वादि ।

न च क्रमस्य कार्यत्वं पूर्वसिद्धपरिग्रहात् ।

वक्ता नहि क्रमं कश्चित्स्वातन्त्र्येण प्रपद्यते ॥ २२८६ ॥

यथैवास्य परैरुक्तस्तथैवेनं विवक्षन्ति ।

परोऽप्येवमतश्चास्य सम्बन्धवदनादिता ॥ २२८७ ॥

पूर्वसिद्धपरिग्रहादिति । व्यवस्थितस्यैव क्रमस्योपादानात् । एतदेव स्पष्टवर्ति  
—वक्ता नहीत्यादि । सम्बन्धवदेव हि क्रमोऽप्यनादिः ॥ २२८६ ॥ २२८७ ॥  
तेनेत्यादिनोपसंहरति ।

तेनेयं व्यवहारास्स्यादकौटस्थेऽपि नित्यता ।

यत्नतः(यत्क्रमे?) प्रतिषेध्या नः पुरुषाणां स्वतन्त्रता ॥२२८८॥

न इति कृत्यप्रयोगे कर्त्तरि षष्ठी । कृत्वा न सा दोषो(यत् क्रमेस्वतन्त्रताप्रतिषेधो?)  
विहितः । तस्मादसत्यपि पर्वतादिवदस्य क्रमस्य कूटस्थत्वे वृद्धव्यवहारादेव नित्यत्व-  
मवसेयम् । तदनेन व्यवहारनित्यता कथिता भवति क्रमस्य, न कूटस्थनित्यता यथा  
पर्वतादीनामिति ॥ २२८८ ॥

यद्येवं वर्णानामपि क्रमस्वेव व्यवहारनित्यत्वं कस्मान्नेष्यत इत्याह—वर्णाना-  
मपीति ।

वर्णानामपि न त्वेषमकौटस्थेऽपि सेत्स्यति ।

नित्येषु सत्सु वर्णेषु व्यवहारात्क्रमोदयः ॥ २२८९ ॥

घटादिरचना यद्वन्नित्येषु परमाणुषु ।

तदभावे हि निर्मूला रचना नावधार्यते ॥ २२९० ॥

नहि वर्णानां क्रमवदकौटस्थनित्यत्वेऽपि व्यवहारनित्यतयाऽर्थप्रतिपत्तिव्यवहारः  
सिद्धयति । कथं न सिद्धयतीत्याह—नित्येष्वित्यादि । यदि हि कूटस्थनित्यतया  
वर्णा नित्या भवेयुरेवं सति पुरुषपरम्परया व्यवहारसंभवात्क्रमोदयः—क्रमस्या-  
त्मलाभो भवेत्, यथा घटादिरचना परमाणुमूलात् । क्वचित्क्रमादय इति पाठः ।  
तत्रादिशब्देन सम्बन्धप्रत्यभिज्ञानादयो गृह्यन्ते । अथोभयोरपि वर्णपरमाण्वोर्नित्य-  
त्वमन्तरेण कस्माद्रचना न सम्भवतीत्याह—तदभाव इत्यादि । तदभाव इति ।  
वर्णपरमाण्वोर्द्वयोरपि कूटस्थनित्य(भावा)भावे । ननु च घटाद्यारम्भका इव परमाण्वो  
वर्णानामपि सूक्ष्मभागाः सन्ति, यथाहुः—“वर्णानामपि वर्णतुरीया भागा” इति ।  
तत्कथं वर्णानां कूटस्थनित्यता वर्ण्यते । नैष दोषः । स्कोटदूषणेन प्रतिपादितमेतत् ।  
यथा न वर्णभागाः सन्तीति ॥ २२८९ ॥ २२९० ॥

किंच—यदि कूटस्थनित्यतया वर्णा नित्या न भवेयुस्तदा सर्वेषां प्रयोक्तृणां पर-  
प्रयुक्तानेव शब्दान्ब्रमह इत्येषा विवक्षा न स्यात्, अथ च भवति, तस्मात्सा वर्ण-  
नित्यत्वमन्तरेण न युक्तेति दर्शयन्नाह—परेणोक्तानित्यादि ।

परेणोक्तान्ध्रवीमीति विवक्षा चेदृशी भुवम् ।

तथा च नित्यतापत्तिर्नचान्यच्चिह्नमस्ति वः ॥ २२९१ ॥

ननु च यदि गकारादिक्रमः परमार्थतो न नित्यः, नापि व्यञ्जका ध्वनयो नापि तेषां प्रेरकास्ताल्वादिसंयोगविभागाः, ध्वनीनां प्रेरकास्तात्र शक्नोति कर्तुम्, यांश्चा-  
भिनवान्करोति न ते दृष्टाः प्रेरकाः, ततश्च कथं वर्णाः क्रमेणामिव्यक्ता अर्थमेवप्र-  
तीतिहेतवो भवन्तीति सर्वमेतदाशङ्क्य परिहरन्नाह—जात्या यथेत्यादि ।

जात्या यथा घटादीनां व्यवहारोपलक्षणम् ।

तथैव चानुपूर्व्यादेर्जातिद्वारेण सेत्स्यति ॥ २२९२ ॥

यथा घटादेः सत्यप्यनित्यत्वे जात्याश्रयेण व्यवहारः सिद्धयति तथा आनुपूर्व्या-  
देरनित्यत्वेऽपि सेत्स्यति ॥ २२९२ ॥

व्यवहारोपलक्षणं कथमित्याह—ताल्वादिजातय इत्यादि ।

ताल्वादिजातयस्तावत्सर्वपुंसु व्यवस्थिताः ।

वक्ता तांश्च ध्वनींस्ताभिरुपलक्ष्य निरस्यति ॥ २२९३ ॥

तेषां च जातयो भिन्नाः शब्दाभिव्यक्तिहेतवः ।

यावद्दूर्णं प्रवर्तन्ते व्यक्तयो वा तदन्विताः ॥ २२९४ ॥

तथाहि—ताल्वादिस्थानजातयः सर्वपुरुषसमवायिताल्वादिसमवायात्सर्वपुरुषेषु  
व्यवस्थिताः । प्रयोक्ता च तामिरेव ताल्वादिजातिभिस्ताल्वादीन्युपलक्ष्यावकर्ष्य  
पश्चाद्द्वनीन्व्यञ्जकान्वायुन्निरस्यति—प्रेरयति । नागृहीतविशेषणा विशेषे बुद्धिरिति  
न्यायात् । तेषां ध्वनीनां यद्यप्यनित्यत्त्रम्, तथापि गवाश्चादिजातिवद्यावद्दूर्णं क-  
वन्तो वर्णास्तावत्यो जातयः सन्ति; ता एव व्यक्तिसहायिन्यः शब्दाभिव्यक्तिहेतवो  
भवन्ति । यद्वा—ध्वनिव्यक्तय एव जातिसहायिन्यो वर्णानुरूपेण व्यञ्जनाय प्रव-  
र्तत इति पक्षान्तरम् ॥ २२९३ ॥ २२९४ ॥

ननु च यद्यपि ध्वनीनां जातयो भिन्नाः सन्ति, तथापि ते ध्वनयो जात्युपल-  
क्षिता अपि न क्रममन्तरेण वर्णाभिव्यक्तिक्रमं सम्पादयितुमलम् । तथाहि—तेषां  
जातिभेदेन भिन्नानामपि न स्वतः क्रमोऽस्ति, निरवयवत्वात् । तत्कथं व्यञ्जकक्रम-  
हृतो वर्णानां क्रमावसाय इत्याशङ्क्याह—तत्रेत्यादि ।

तत्र ताल्वादिसंयोगविभागक्रमपूर्वकम् ।

ध्वनीनामानुपूर्व्यं स्याज्जात्या चोभयनित्यता ॥ २२९५ ॥



यद्यपि ध्वनीनामानुपूर्व्यं न स्वतः, तथापि तेषां तास्वादिसंयोगविभागा एवानु-  
पूर्व्यं सम्पादयन्ति । उभयस्य च तास्वादिसंयोगादिक्रमस्य ध्वनिक्रमस्य च स्वाश्रय-  
समवेतजातिद्वारेण नित्यतेति सर्वमनाकुलम् ॥ २२९५ ॥

कथं पुनर्जात्या क्रमस्यानित्यस्यापि सतो नित्यत्वं लक्षयितुं शक्यम् । येन तत्रो-  
पलक्षितो व्यवहाराङ्गतां यास्यतीत्याह—यथैवेत्यादि ।

यथैव भ्रमणादीनां भागा जात्यादिलक्षिताः ।

क्रमानुवृत्तिरेवं स्यात्ताल्वादिध्वनिवर्णभाक् ॥ २२९६ ॥

यथा भ्रमणरेचनादीनां क्रियाविशेषाणाम्—आदिशब्दात्पिपीलिकादीनां ग्रह-  
णम्, तेषां क्रमानुवृत्तिर्यथा भावा(व ?) जात्यादिना लक्षिता व्यवहाराङ्गम् । अत्रा-  
प्यादिशब्देन पिपीलिकादिजातिपरिग्रहः । तथा तास्वादध्वनिवर्णभाक् क्रमानुवृत्ति-  
स्तास्वादजातिभिर्लक्षिता व्यवहाराय सम्पद्यत इति सम्बन्धः । ताल्वादिध्वनि-  
वर्णभागिति ! तास्वादयश्च ध्वनयश्च वर्णाश्चेति विगृह्य समासः, तान्भजत इति  
तत्रोक्ता । अनेन तास्वादिसंयोगविभागक्रमः स्वजात्युपलक्षितो ध्वनिनिरासहेतुः, ध्व-  
निक्रमोऽपि तास्वादिसंयोगविभागक्रमपूर्वकः स्वजात्युपलक्षितो वर्णाभिव्यक्तिक्रमः  
निबन्धनम्, सोऽप्यर्थप्रतीतेरित्युक्तं भवति । क्वचिद्भागा इति पाठः । तत्रैवं स-  
म्बन्धः । यथा भ्रमणादीनां कर्मणां भागा अंशाः क्रमवन्तो जात्या तदन्येन वा केन-  
चिद्धर्मेणोपलक्षिता व्यवहारहेतवो भवन्ति । तथा तास्वादिभाक् क्रमानुवृत्तिव्यवहारा-  
ङ्गमिति । केचित्—क्रमानुस्मृतिरेवं स्यादिति पठन्ति । तत्रैवं योजना—यथा  
(भ्रमण) रेचनादीनां भागा जात्यादिलक्षिताः स्मर्यन्ते । एवं तास्वादिध्वनिवर्णभाक्  
तास्वादिष्वपि तास्वादजात्युपलक्षिताः क्रमानुस्मृतिर्भविष्यति ॥ २२९६ ॥

अथवा न ध्वनीनां तास्वादिसंयोगविभागक्रमकृतमानुपूर्व्यम्, अपि तु स्वत-  
एव, सावयवत्वादिति दर्शयन्नाह—व्यक्तीनामिति ।

व्यक्तीनामेष वा सौक्ष्म्याज्जातिधर्मावधारणम् ।

तद्वशेन च वर्णानां व्यापित्वेऽपि क्रमग्रहः ॥ २२९७ ॥

ध्वनीनाम् । तेषां हि ये भागा आरम्भकाः क्रमवन्तस्ते सूक्ष्मा न तैर्व्यवहार-  
सिद्धिः । अतस्तेषु जातिस्वभावा धर्मा नित्यत्वादयः प्रतिनियतशब्दामिव्यक्तिहेतवो  
निरूप्यन्ते । निश्चीयन्त इति यावत् । ततः किं सिद्धं स्यादित्याह—तद्वशेनेत्यादि ।  
सत्यपि हि व्यापित्वे वर्णाः क्रमवद्भ्रमणनिवशात्क्रमवन्त इव भासन्ते ॥ २२९७ ॥

एवमित्यादिना प्रकृतमुपसंहरति ।

एवं ध्वनिगुणान्सर्वाभित्यत्वेन व्यवस्थितान् ।

वर्णा अनुपतन्तः स्युरर्थभेदावबोधिनः ॥ २२९८ ॥

ध्वनिगुणाः—क्रमतीव्र(त्व)मन्दत्वप्रदेशवृत्तित्वादयः । नित्यत्वेन व्यवस्थिता-  
निति । जातिद्वारेण । अनुपतन्तः—अनुवर्त्तमानाः ॥ २२९८ ॥

एवं यदि नाम नित्यत्वसर्वगतत्वाभ्यां वर्णानां स्वतःक्रमादयो न सम्भवन्ति,  
तथापि व्यञ्जकध्वनिगता एते वर्णेष्वर्थप्रतिपत्त्यङ्गमिति विस्तरेण प्रतिपादितम् ।  
साम्प्रतम्—यद्वा कालगता एवैते ध्वन्युपाधिकाः प्रविभागा वर्णेषु गृह्यमाणाः  
प्रतिपत्त्यङ्गमिति पक्षान्तरं दर्शयन्नाह—आनुपूर्वीत्यादि ।

आनुपूर्वी च वर्णानां ह्रस्वदीर्घप्लुताश्च ये ।

कालस्य प्रविभागास्ते ज्ञायन्ते ध्वन्युपाधयः ॥ २२९९ ॥

ध्वनयो व्यञ्जका वायव उपाधयो विशेषणभूता येषां कालविभागानां ते  
तथोक्ताः ॥ २२९९ ॥

ननु च काल एको व्यापी नित्यश्चेतीष्टं कालवादिनाम् । यथोक्तम्—“व्यापा-  
स्व्यतिरेकेण परिमाणक्रियावताम् । नित्यमेकं विभु द्रव्यं कालमेके प्रचक्षते ॥” इति,  
तत्कथं तस्य प्रविभागो युज्यत इत्याह—कालश्चैक इत्यादि ।

कालश्चैको विभुर्नित्यः प्रविभक्तोऽपि गम्यते ।

वर्णवत्सर्वभावेषु व्यज्यते केनचित्कचित् ॥ २३०० ॥

वर्णेषु व्यज्यमानस्य तस्य प्रत्यायनाङ्गता ।

अन्यत्रापि तु सद्भावात्तत्स्वरूपस्य नित्यता ॥ २३०१ ॥

प्रविभक्तोऽपीत्यपिशब्द एकोऽपि नित्योऽपि विभुरपीति सम्बन्धनीयो भिन्नक-  
मत्वात् । कथं प्रविभक्त इत्याह—वर्णवत्सर्वभावेष्विति । एतदुक्तं भवति—यथै-  
कोऽपि नित्यो गकारादिवर्णो यदा केनचिद्धनिविशेषेण क्वचित्प्रदेशे वा व्यज्यते,  
तदा देशादिविभागेन प्रविभक्तो गम्यते तथा कालोऽपि । यद्यपि चासौ सर्वपदा-  
र्थव्यापी, तथापि यदा केनचित्क्रियाविशेषेण क्वचित्पदार्थे व्यज्यते, तदा प्रविभक्तो  
गृह्यते, यदा तु वर्णेषु व्यज्यते तदाऽर्थप्रत्ययाङ्गं भवति । यदि तर्हि प्रविभक्तो नित्य-  
विभुत्वं कथं तस्यावगतमित्याह—अन्यत्राप्यपीत्यादि । अन्यत्रापि लताकिसलयादौ

सद्भावात्सचावत्तस्य नित्यत्वं विभुत्वं च सिद्धम् । नित्यताग्रहणमुपलक्षणम् ॥२३००॥  
॥ २३०१ ॥

तस्मान्न पदधर्मोऽस्ति विनाशी कश्चिदीदृशः ।

तेन नित्यं पदं सिद्धं वर्णनित्यत्ववाचिनाम् ॥२३०२॥

तस्मादित्यादिना स्वपक्षसिद्धेरुपसंहारः । कश्चिदीदृश इति । क्रमादिरूपः ॥२३०२॥

यदि तर्हि कालधर्मो व्यञ्जकध्वनिधर्मो वा क्रमः, न तु परमार्थतो वर्णधर्मस्तत्क-  
थमस्य प्रत्यायनाङ्गत्वम् । न ह्यन्यधर्मोऽन्यस्य भवतीत्याह—परधर्मेऽपीत्यादि ।

परधर्मेऽपि चाङ्गत्वमुक्तमश्वजवादिषत् ।

नित्यतायां च सर्वेषामर्थापत्तिप्रमाणता ॥२३०३॥

उक्तमिति । नावारूढाश्च गच्छन्त इत्यादिना । नावारूढवचनं हि सकलयानारू-  
ढोपलक्षणम् । अश्वजवादिषदिति । यथा—अश्वादिगतो जवस्तदारूढानां पुंसां  
देशान्तरप्राप्तेर्वृक्षादेश्च गमनप्रतिपत्तेरङ्गं भवति, तथा ध्वनिगतोऽपि क्रमो वर्णस्वार्थ-  
प्रत्यायनाङ्गमिति । एवं विस्तरेण शब्दानित्यत्वप्रतिज्ञाया अर्थापत्तिप्रमाणबाधितत्वं  
समर्थं, उपसंहरन्नाह—नित्यतायामित्यादि । तस्मादित्युपसंहारोऽत्र द्रष्टव्यः ।  
सर्वेषामिति । न केवलं वर्णस्यार्थप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्या नित्यत्वं सिद्धम्, किं तर्हि !,  
तारुवादीनां ध्वनीनां च । यथोक्तं भाष्ये—“उच्चरितमात्रे हि विनष्टे शब्दे न चान्यो-  
ऽन्यानर्थं प्रत्याययितुं शक्नुयादतो न परार्थमुच्चार्येत । अथ न विनष्टस्ततो बहुश  
उपलब्धत्वादर्थावगम इति युक्त”मिति ॥ २३०३ ॥

स्ववचनाभ्युपेतागमप्रतीतिबाधामपि प्रतिज्ञायाः प्रतिपादयन्नाह—स्ववाक्या-  
दीत्यादि ।

स्ववाक्यादिविरोधश्च शब्दानित्यत्वसाधने ।

प्रतिज्ञोच्चार्यते सर्वा साध्यार्थप्रतिपत्तये ॥ २३०४ ॥

न चानित्या ब्रवीत्येषा स्वार्थमित्युपपादितम् ।

तेनार्थप्रत्ययापन्नास्त्रित्यत्वान्नाशबाधनम् ॥ २३०५ ॥

आदिशब्देनाभ्युपेतादिविरोधग्रहणम् । उपपादितमिति । “न चादृष्टार्थसम्बन्धः  
शब्दो भवति वाचक” इत्यादिना । तेनार्थप्रत्ययापन्नादिति । अर्थप्रत्ययात्—अर्थ-  
प्रतीतेः, आपन्नं—सिद्धम्, अर्थप्रत्ययापन्नम् । अर्थप्रतीत्यन्वथानुपपत्तिसिद्धास्त्रित्य-  
त्वादिति यावत् ॥ २३०४ ॥ २३०५ ॥

अभ्युपेतबाधामाह—( अर्थाभिधानेति )

अर्थाभिधानसामर्थ्यमभ्युपेत्य च साधयन् ।

पूर्वाभ्युपगतेनापि नाशित्वं बाधते परः ॥२३०६॥

अर्थप्रतीतिसामर्थ्यैः प्रतिशास्त्रमुपाश्रितैः ।

आगमेनापि नाशित्वं बाध्यते सर्ववादिनाम् ॥ २३०७ ॥

( आगमबाधामाह— ) अर्थप्रतीतिसामर्थ्यैरित्यादि । अर्थप्रतीतौ सामर्थ्यानि यानि शब्दानां तैः । प्रतिज्ञार्थस्य बाधनादित्युपस्कारः ॥ २३०६ ॥ २३०७ ॥

प्रतीतिबाधामाह—सर्वलोकेत्यादि ।

सर्वलोकप्रसिद्ध्या च बाधः पूर्वोक्तया दिशा ।

अनुमानविरोधोऽपि प्रागुक्तेनैव हेतुना ॥२३०८॥

श्रोत्रजप्रत्यभिज्ञानाच्छब्दाभेदावसायतः ।

प्रत्यक्षेण विरुद्धत्वं प्रागेव प्रतिपादितम् ॥२३०९॥

पूर्वोक्ता दिक्—समनन्तरश्लोकोक्ता । एवं तु पठितव्यम् ।—“अर्थप्रतीति-सामर्थ्यैः सर्वलोकावधारितैः । लोकप्रसिद्ध्या नाशित्वं बाध्यते सर्ववादिनाम् ॥” इति । पूर्वोक्तमनुमानादिविरोधं सारयन्नाह—अनुमानविरोधोऽपीत्यादि । प्रागुक्तो हेतुर्नानाप्रकारः—“देशकालादिभिन्नाश्च गोशब्दव्यक्तिबुद्धयः । समानविषयाः सर्वा नवा नानार्थगोचराः ॥ गौरित्युत्पद्यमानत्वात्सम्प्रत्युत्पन्नबुद्धिव”दित्यादिना । प्रागे-वेति । “किंच शब्दस्य नित्यत्वं श्रोत्रजप्रत्यभिज्ञया । विभुत्वं च स्थितं तस्य कोऽ-ध्यवस्येद्विपर्ययम् ॥” इत्यनेन ॥ २३०८ ॥ २३०९ ॥

शिष्टानपि पक्षदोषान्हेतुदोषांश्च कांश्चित्प्रतिपिपादयिषुराह—वक्तव्यमित्यादि ।

वक्तव्यं चैष कः शब्दो विनाशित्वेन साध्यते ।

त्रिगुणः पौद्गलो वाऽयमाकाशस्याथवा गुणः ॥२३१०॥

वर्णाद्वन्योऽथ नादात्मा वायुरूपमवाचकम् ।

पदवाक्यात्मकः स्फोटः सारूप्यान्यनिवर्त्तने ॥२३११॥

एतेषामस्त्वनित्यत्वं नास्माकं तेषु नित्यता ।

अप्रसिद्धविशेषत्वमाश्रयासिद्धहेतुता ॥२३१२॥

सिद्धान्तमेदेन शब्दगतान्विकल्पानाह । तत्र सत्त्वरजस्तमःस्वभावत्वात्त्रिगुणः

साङ्गैरिष्टः शब्दः । पौद्गलो दिग्म्बरैः । पुद्गलः परमाणव उच्यन्ते । तेषामयं पौद्गलः । तदात्मक इति यावत् । आकाशगुणः काणादैरिष्टः । वर्णव्यतिरिक्तो नादात्मा लौकिकैः । यथोक्तं पातञ्जले भाष्ये—“अथवा प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द” इति । वायुरूपमवाचकं शिक्षाकारैः । यथाहुः—“वायुरापद्य(ते) शब्दमा(वा ?)”निति । पदस्फोटात्मको वाक्यस्फोटात्मकश्च वैयाकरणैरिष्टः । तद्यथाहुः—“नादैराहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह । आवृत्तिपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवधार्यते ॥” इति । सारूप्यं—सादृश्यं विन्ध्यवासीष्टम् । बौद्धैरन्यनिवर्त्तनमन्यापोहो वाचकत्वेन य इष्टः । तत्र यद्येवं साङ्ख्यादीष्टानामनित्यत्वं साध्यते तदा सिद्धसाध्यता पक्षदोषः । स्वरूपेणैव निर्दिश्यत इत्यनेन सिद्धरूपस्य निरस्तत्वात् । न च मीमांसकैरीदृशे शब्दे नित्यत्वं साधयितुमिष्टम् । किञ्चास्मान्प्रति त्रिगुणाद्यात्मकस्य शब्दस्य धर्मिणो विशेषस्यासिद्धत्वादप्रसिद्धविशेषत्वं पक्षदोषः । हेतोश्चाश्रयासिद्धतादोषः । तथाविधस्य धर्मिणोऽसिद्धत्वात् ॥ २३१० ॥ २३११ ॥ २३१२ ॥

अथेति ।

**अथास्मदिष्टः पक्षः स्यात्स्वयमेतद्वयं तव ।**

**शब्दमात्रमथोच्येत शब्दत्वं वस्तथासति ॥ २३१३ ॥**

**अनित्यं तच्च सर्वेषां नित्यमिष्टं विरुध्यते ।**

**यत्किञ्चिदिह सामान्यं नित्यं सर्वेण कल्प्यते ॥ २३१४ ॥**

अथास्माभिर्मीमांसकैर्योऽभिमतो वर्णा एव गकारादयः शब्दो न व्यतिरिक्तः इत्येष पक्षः स्यात् । तथासति बौद्धादेरेतद्वयम्—अप्रसिद्धविशेषत्वं प्रतिज्ञादोष आश्रयासिद्धता च हेतुदोष आपद्यते । शब्दमात्रमथोच्येत, साध्यधर्मित्वेनेति शेषः । ततश्च शब्दत्वसामान्यं वो युष्माकमनित्यम्, प्राप्नोतीत्यध्याहार्यम् । तथाहि—मात्रशब्देन सर्वविशेषत्यागे कृते किमपरमन्यत्सामान्याच्छब्दमात्रं भवेत् । तस्मात्सामर्थ्याद्भवद्भिः शब्दत्वमेवानित्यं प्रतिज्ञातं स्यात् । भवत्वेवमिति चेत्, नेत्याह—तच्च सर्वेषां नित्यमिष्टमित्यादि । तथाहि बौद्धैरन्यन्यापोहवादिभिरुक्तम्—“जातिधर्मव्यवस्थिते”रिति । अनेनाभ्युपेतबाधादोष उक्तः । तदेव दर्शयति—यत्किञ्चिदिहेत्यादि । यत्किञ्चित्स्वसिद्धान्तानुसारेण सामान्यं व्यवस्थापितं तत्सर्वं सर्ववादिभिर्नित्यमिष्यते । अन्यथा व्यक्तिवदपरापरोत्पत्तेर्व्यक्त्यन्तर्गत्यापना(पाता ?)त्स्य सामान्यरूपतैव हीयते ॥ २३१३ ॥ २३१४ ॥

एवं तावत्साध्यधर्मविकल्पेन पक्षदोषमुद्गाय्येदानीं साध्यधर्मविकल्पेनोद्विभावयिषुराह—अनित्यत्वं चेत्यादि ।

**अनित्यत्वं च नाशित्वं यद्यात्यन्तिकमुच्यते ।**

**ततोऽस्मान्प्रति पक्षः स्यादप्रसिद्धविशेषणः ॥ २३१५ ॥**

**यथाकथंचिदिष्टा चेदनित्यव्यपदेश्यता ।**

**अनभिव्यक्त्यवस्थातः साऽभिव्यक्त्यात्मतेष्यते ॥ २३१६ ॥**

यद्यात्यन्तिकं निरन्वयप्रध्वंसलक्षणं नाशित्वं यत्तदनित्यत्वमिष्टं साध्यत्वेन तदा अस्मान्—मीमांसकान्प्रत्यप्रसिद्धविशेषणः पक्षदोषः । तथाहि मीमांसकानां कापिलानामिव निरन्वयविनाशित्वविशेषणमसिद्धम् । तिरोभावेऽपि घटादीनां शक्तिरूपेणावस्थानात् । प्रदीपादावपि लघवो ह्यवयवास्तदा देशान्तरं लघु लघु प्रयान्तीति मतत्वात् । अथ यथाकथञ्चिदनित्यव्यपदेशत्वं साध्यितुमिष्टं तदा सिद्धसाध्यतादोषः । तथाहि—नित्येष्वप्यभिव्यक्त्यनभिव्यक्त्यवस्थाश्रयेणानित्यव्यपदेश इष्ट एव ॥ २३१५ ॥ २३१६ ॥

एवं तावदनित्यः शब्द इत्येषा प्रतिज्ञा विस्तरेण दूषिता, इदानीमैन्द्रियकत्वादित्यस्य हेतोर्दोषमुद्गावयन्नाह—केवलैन्द्रियेत्यादि ।

**केवलैन्द्रियकत्वे च हेतावत्र प्रकल्पिते ।**

**जात्या साधितयेदानीं व्यभिचारः प्रतीयते ॥ २३१७ ॥**

केवलमैन्द्रियकत्वम्—कार्यत्वे सतीत्यादि विशेषणरहितम्, तस्मिन्निर्विशेषणहेतौ सति, जात्या—सामान्येन, प्राक् प्रसाधितयाऽनैकान्तिको हेतुः । व्यतिरेकासिद्धेः ॥ २३१७ ॥

स्यादेतत्—यदि नाम प्रतिवादिनो जातेरभ्युपगमाच्च्यतिरेको न सिद्धस्तथापि बौद्धादेः स्ववादिनो जातेरनभ्युपगमात्सिद्ध एव तत्कथमनैकान्तिकतेत्याह—असिद्ध इत्यादि ।

**असिद्धे पक्षधर्मत्वे यथैव प्रतिवादिनः ।**

**न हेतुर्लभ्यते तद्वदन्वयव्यतिरेकयोः ॥ २३१८ ॥**

य एव तूभयनिश्चितवाची स एव साधनं दूषणं वेति न्यायात् यथा पक्षधर्मस्यान्यतरासिद्धौ हेतुर्दुष्टो भवति तथाऽन्वयव्यतिरेकयोरन्यतरासिद्धौ दुष्ट एव । अन्वयव्यतिरेकयोरसिद्धयोरिति वचनविपरिणामेन सम्बन्धः ॥ २३१८ ॥

यद्युभयसिद्धमेव साधनं दूषणं वा तत्कथं बौद्धं प्रत्यसिद्धया जात्या व्यभिचारो-  
ऽभ्यधायि भवतेत्याह—तत्रेत्यादि ।

तत्र यद्यप्यसिद्धा स्याज्जातिः साधनवादिनः ।

तावत्तथाऽप्यहेतुत्वं यावत्सा न निराकृता ॥ २३१९ ॥

यद्यपि बौद्धादेः साधनवादिनो न जातिर्विपक्षत्वेन सिद्धा, तथाप्याशङ्का न  
निवर्त्तते । तस्याः प्रतिषेद्धमशक्यत्वात् । ततश्च संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिकतेति भावः  
॥ २३१९ ॥

अपरमपि साध्यसाधनयोर्विकल्पान्तरेण दूषणमाह—कार्या चैन्द्रियकत्वा-  
दाविति ।

कार्या चैन्द्रियकत्वादी किं वस्त्विति निरूपणा ।

व्यक्तिभ्योऽनन्यनानात्वभेदाभेदेषु च स्फुटा ॥ २३२० ॥

तत्रासाधारणासिद्धसाध्यहीनसपक्षताः ।

विकल्पितानुसारेण वक्तव्या वाच्यपेक्षया । २३२१ ॥

आदिशब्देनानित्यत्वपरिग्रहः । तत्र किमात्मकमैन्द्रियकत्वादीति निरूपणा कार्या,  
किं व्यक्तिभ्योऽनन्यदाहोस्विद्व्यतिरिक्तम्, तथा व्यतिरेकपक्षे तदा भेदेषु च विचा-  
रणा कार्या, किं तद्व्यतिरिक्तं भिन्नभिन्नमाहोस्विदभिन्नमेकमेवेति यावत् । तत्राव्य-  
तिरेकपक्षे ऐन्द्रियकत्वस्य हेतोरसाधारणता, व्यक्तेरव्यतिरेकात्, तत्स्वरूपवत्तस्य  
व्यक्त्यन्तरानुगमाभावात् । व्यतिरेकपक्षेऽपि मीमांसकस्य व्यतिरेकानिष्टेः प्रतिव्य-  
क्तिभिन्नमभिन्नं वा असिद्धमित्यसिद्धता हेतोः । अत एव भेदाभेदपक्षे दोषो नोक्तः ।  
सिद्धे हि व्यतिरेके तस्यावकाशात् । अनित्यत्वस्यापि व्यतिरेकपक्षे साध्यहीनसप-  
क्षता । दृष्टान्तस्य साध्यविकल्पतेति यावत् । अव्यतिरेकपक्षेऽपि साध्यहीनतैव दृष्टा-  
न्तस्य, व्यक्तेर्व्यक्त्यन्तरानुगमाभावात् ॥ २३२० ॥ २३२१ ॥

इदानीं प्रयत्नान्तरीयत्वादित्यस्य हेतोरनैकान्तिकत्वमाह—प्रयत्नानन्तरमि-  
त्यादि ।

प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं कृतकानित्यसाधनम् ।

यत्तत्राप्यस्यनेकान्तः क्षणिकव्यतिरेकिणः (भिः?) ॥ २३२२ ॥

प्रतिसङ्ख्याऽप्रतिसङ्ख्याननिरोधयोमभिस्त्रिभिः ।

बुद्धिपूर्वविनाशे हि प्रतिसङ्ख्याननिरोधधीः ॥ २३२३ ॥

अबुद्धिपूर्वकस्तेषां निरोधोऽप्रतिसङ्ख्यया ।

तौ च द्वावप्यनाशित्वादिष्टावकृतकावपि ॥ २३२४ ॥

प्रयत्नानन्तरमुपलभ्यमानत्वं हि प्रयत्नानन्तरीयत्वमुच्यते । तच्च विपक्षेऽपि हेतो-  
रनैकान्तिकत्वात् कृतकानित्यत्वमाधनम् । तथाहि बौद्धेः प्रतिसङ्ख्याननिरोधोऽप्रतिस-  
ङ्ख्याननिरोध आकाशं चेति त्रिविधमसंस्कृतं वस्तु क्षणिकव्यतिरिक्तमक्षणिकं नित्यं  
चेष्टम् । तत्र चास्य हेतोर्वृत्तिरिति दर्शयन्नाह—बुद्धिपूर्वेत्यादि । यो बुद्धिपूर्वो घटा-  
दीनां विनाशः स प्रतिसङ्ख्याननिरोधः, यत्स्वबुद्धिपूर्वः सोऽप्रतिसङ्ख्याननिरोध इत्येषा  
किल बौद्धप्रक्रिया । तेषामिति । घटादीनाम् । तौ चेति । प्रतिसङ्ख्याऽप्रतिसङ्ख्या-  
निरोधौ । अकृतकावपीति । अपिशब्दानित्यावपि ॥ २३२२ ॥ २३२३ ॥ २३२४ ॥

यथा चानयोरकृतकत्वनित्यत्वे । यथा च तत्र हेतौ वृत्तिस्तथा परमतेनैवोपपा-  
दयन्नाह—आहुरित्यादि ।

आहुः स्वभावसिद्धं हि ते विनाशमहेतुकम् ।

भवति ह्यग्निसम्बन्धात्काष्ठादङ्गारसन्ततिः ॥ २३२५ ॥

स्वाभाविको विनाशस्तु जातिमात्रप्रतिष्ठितः ।

सूक्ष्मः सदृशसन्तानवृत्तेरनुपलक्षितः ॥ २३२६ ॥

यदा विलक्षणो हेतुः पतेत्सदृशसन्ततौ ।

विलक्षणेन कार्येण स्थूलोऽभिव्यज्यते तदा ॥ २३२७ ॥

तेनासदृशसन्तानो हेतोः संजायते यतः ।

तेनैवाक्रियमाणोऽपि(नाशोऽ)भिव्यज्यते स्फुटः ॥ २३२८ ॥

त इति बौद्धाः । ननु च (नाश्यते) अग्निना काष्ठं दण्डेन घट इति नाशहेतवो  
दृश्यन्ते, तत्कथमहेतुकत्वमस्येत्याह—भवति हीत्यादि । वह्न्यादयो हि तत्राङ्गारा-  
दिपदार्थान्तरहेतुत्वेनान्वयव्यतिरेकाभ्यां निश्चिता न विनाशस्य । तस्य निसर्ग-  
सिद्धत्वात् । यदि तर्हि स्वाभाविको नाशः किमिति वह्न्यादिसंपातात्प्रागपि नोप-  
लक्ष्यत इत्याह—सूक्ष्म इत्यादि । सदृशापरापरोत्पत्तेर्विप्रलब्धा हि मन्दा नावस्वन्ति  
(सूक्ष्मं नाशम्) । सदृशसन्तानोत्पत्त्या तूत्प्रेक्षन्ते (अविनष्टमेव) । विलक्षणो हेतु-  
र्मुद्गरादिः । विलक्षणं कार्यं कपालादि । अस्मां किलावस्थायां विनाशस्य स्थूलत्वं  
व्यक्तीभवति । तेनेत्यादिनोपसंहारः । असदृशसन्तान इति । विलक्षणः । हेतो-



र्यत इति सामानाधिकरण्यम् । तेनैवेति । हेतुना । यत इति यो निर्दिष्टः । तस्मा-  
मिव्यज्यत इति परेणामिसम्बन्धः ॥ २३२५ ॥ २३२६ ॥ २३२७ ॥ २३२८ ॥

विपश्चवृत्तितां हेतोरुपदर्शयन्नाह— स मुद्गरेत्यादि ।

स मुद्गरप्रहारादिप्रयत्नानन्तरीयकः ।

यस्मादकृतको दृष्टो हेतुः स्याद्व्यभिचार्यतः ॥ २३२९ ॥

स इति । द्विविधोऽपि निरोधः, मुद्गरप्रहारादिप्रयत्नानन्तरज्ञानो मुद्गरप्रहारादि-  
प्रयत्नानन्तरीयक उच्यते ॥ २३२९ ॥

त्रिभिरित्युक्तम् । तत्र द्वाभ्यां व्यभिचारमुपदर्श्य तृतीयेनाप्याकाशेन व्यभिचार-  
मुपदर्शयन्नाह—आकाशमपीत्यादि ।

आकाशमपि नित्यं सद्यदा भूमिजलाष्टतम् ।

व्यज्यते तदपोहेन खननोत्सेचनादिभिः ॥ २३३० ॥

प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं यदा तत्रापि दृश्यते ।

तेनानैकान्तिको हेतुर्यदुक्तं तत्र दर्शनम् ॥ २३३१ ॥

तदपोहेनेति । तस्य भूम्यादेः खननादिकरणभूतैरपनयेन । तत्रेति । शब्दे ।  
दर्शनम्—प्रयत्नानन्तरज्ञानम् ॥ २३३० ॥ २३३१ ॥

एवं हेतुदोषानभिधाय दृष्टान्तदोषान्वक्तुकाम आह—सपक्षोऽपीत्यादि ।

सपक्षोऽपि विकल्पोऽत्र श्रुत्यर्थे साध्यहीनता ।

व्यक्तिलक्षणपक्षेऽपि जात्यन्यानन्यकल्पना ॥ २३३२ ॥

अन्यत्वे धर्म्यसिद्धेर्नोऽनन्यत्वेपि परान्प्रति ।

अविशेषेऽपि नानित्यं न नित्यं वस्तु तन्मम ॥ २३३३ ॥

अंशो ह्येतस्य जात्याख्यो नित्यो ध्वंसीतरो मतः ।

शबलाकारमेकं हि वस्तु प्राक्प्रतिपादितम् ॥ २३३४ ॥

सपक्षो दृष्टान्तः । स किं श्रुत्यर्थोऽभिप्रेतः आहोस्विद्व्यक्तिः । यदि श्रुत्यर्थस्तदा  
साध्यविकलता दृष्टान्तदोषः । तथाहि—श्रुतिः शब्दः । तस्यार्थोऽभिधेयः । स  
पुनः सामान्यं घटत्वादि, न च (तच्च ?) सर्ववादिनां नित्यमेवेष्टमिति न तत्रानित्य-  
त्वस्य साध्यधर्मस्यानुगमः । क्वचिज्जात्यर्थ इति पाठः । तत्र कर्मधारयः समासः  
कार्यः । अर्थस्तुल्य एव । अथ द्वितीयः पक्षस्तदाऽपि तस्या व्यक्तेर्दृष्टान्तत्वेनेष्टाया

जात्यन्यानन्यकरूपना कार्या । किं सा व्यक्तिर्जातिरन्या, आहोस्विदनन्या । य(दाऽ-  
न्या) तदा दृष्टान्तधर्मिणो मीमांसकं प्रत्यसिद्धिः । नहि मीमांसको वैशेषिकादिव(दे)-  
कान्तेन व्यक्तेरन्यां जातिमिच्छति । यथोक्तम्—“स्थितं नैव तु जात्यादेः परत्वं  
व्यक्तितो हि न” इति । अथानन्यपक्षस्तदा परान् बौद्धादीन्प्रति दृष्टान्तधर्म(र्म्य ?)-  
सिद्धिः । नहि परे व्यक्तेरन्यां जातिं मन्यन्ते । अथ भेदाभेदविकल्पमवधूय घटो  
निदर्शनत्वेनोपादीयते, तदाऽप्यस्मान्प्रति साध्यविकलता दृष्टान्तस्ये(ति) निदर्शय-  
न्नाह—अविशेषेऽपीत्यादि । तदिति । घटवस्तु । कथमित्याह—अंश इत्यादि ।  
एतस्य हि घटवस्तुनो जातिसंज्ञको भागो नित्यः । इतरस्तु व्यक्तिसंज्ञको ध्वंसी—  
विनाशी । स्यादेतत्कथमेकस्य परस्परविरुद्धं स्वभावद्वयं युक्तमित्याह—शबलाका-  
रमित्यादि ॥ २३३२ ॥ २३३३ ॥ २३३४ ॥

पुनरपि साध्यधर्मविकल्पमुखेन दृष्टान्तदोषान्वक्तुकाम आह—अनित्यतेत्यादि ।

**अनित्यता विकल्प्यैवं नाशश्चेत्साध्यहीनता ।**

**ममान्यस्यां तु भवतामित्येषा दूषणोक्तिदिक् ॥२३३५॥**

यद्यनित्यता निरन्वयविनाशलक्षणा साध्यत्वेनेष्टा तदा मम मीमांसकस्य दृष्टान्ते  
साध्यविकलता । न ह्यस्माभिरत्यन्तसमुच्छेदो भावानामिष्टः, शक्तिरूपेणावस्थानात् ।  
यद्यपि नाश इति सामान्यशब्दस्तथापि प्रकरणान्निरन्वयविनाशात्मकेऽर्थविशेषेऽस्य  
वृत्तिर्विज्ञायते । अन्यथा कथं साध्यविकलताप्रसङ्गो दृष्टान्तस्य योक्ष्यते । ननु चा-  
नित्यत्वं नाशित्वं यद्यात्यन्तिकमुच्येतेत्यादिना अनित्यता विकल्पितैव, तत्किमिति  
भूयोऽपि विकल्प्यते । सत्यम्, सा हि पक्षस्य दोषोद्भावनाथेमिदानीं तु दृष्टान्त-  
स्येति विशेषः । अथ न निरन्वयविनाशलक्षणाऽनित्यताऽभिप्रेता किं त्वन्यैवाविर्मा-  
वतिरोभावलक्षणा, अत्राह—अन्यस्यामिति । अनित्यतायामिति सम्बन्धः । भव-  
तामिति । साध्यहीनतेति योजनीयम् । तत्रापि दृष्टान्तस्येति शेषः । नहि भवद्भि-  
र्बौद्धैः साङ्ख्यैरिव सान्वयो विनाश इष्यते । तस्माद्दृष्टान्तस्य साध्यविकलता भव-  
त्पक्षे स्यादित्येष शब्दानित्यत्वसाधनदूषणमार्गो विदुषामारूयातः, अन्यदपि प्राज्ञैः  
स्वयमभ्यूह्य कर्तव्यम् ॥ २३३५ ॥

पदार्थेत्यादिना परस्य चोद्यमाशङ्कते ।

**पदार्थपदसम्बन्धनित्यत्वे साधितेऽपि वा ।**

**नैव वेदप्रमाणत्वं वाक्यार्थं प्रति सिध्यति ॥ २३३६ ॥**

समयात्पुरुषाणां हि गुणवृद्ध्यादिवन्मतिः ।

निष्कारणोऽपि सन्नर्थो याज्ञिकैः परिकल्पितः ॥२३३७॥

अपि चास्य कथावत्तु सङ्घातात्पौरुषेयता ।

न चाप्तः पुरुषो वास्ति तेन वेदाप्रमाणता ॥ २३३८ ॥

विशिष्टसाधनावच्छिन्नक्रियाविशेषविधिप्रतिषेधलक्षणो हि वाक्यार्थः । तत्रैव चोदनायाः प्रामाण्यं न पदार्थे । ततश्च वेदस्य प्रामाण्ये साध्ये यत्पदपदार्थतत्सम्बन्धानां त्रयाणामपि नित्यत्वप्रतिपादनं तत्प्रकृतानुपयोगि । किं च—या या वाक्यार्थप्रतिपत्तिः सा सङ्केतप्रभवा, यथा—आद्गुण इत्यादेर्वाक्यात् गुणवृद्ध्यादिमतिः, वाक्यार्थप्रतिपत्तिश्च चोदनावक्त्यसमुद्भवेति स्वभावहेतुः । एतदेव दर्शयति—समयादित्यादि । गुणवृद्ध्यादिवदिति । समर्थे वतिः । अस्यैव समर्थनमाह—निष्कारणोऽपीत्यादि । निष्कारणोऽपि निर्निबन्धनोऽपि सन् स्वोत्प्रेक्षया निरङ्कुशया याज्ञिकैराजीविकार्थमेवामिहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम इत्यादिवेदवाक्यार्थः परिकल्पित इति सम्भाव्यम् । किं च यत्सङ्घातरूपं तत्पौरुषेयं, यथा नाटकारुण्ययिक्यादिकथा, पदसङ्घातश्च वेद इति स्वभावहेतुः । ततश्च पौरुषेयत्वाद्दृष्ट्यापुरुषवाक्यवदप्रमाणं वेदः स्यात् । आप्तप्रणीतत्वात्पौरुषेयोऽपि प्रमाणं भविष्यतीति चेदाह—न चाप्त इत्यादि ॥ २३३६ ॥ २३३७ ॥ २३३८ ॥

सम्बन्धेत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

सम्बन्धाकरणन्यायाद्ब्रुक्तव्या वाक्यनित्यता ।

दृष्टार्थव्यवहारत्वाद्वृद्ध्यादौ सम्भवेदपि ॥२३३९॥

मतिः सामयिकी वेदे न त्वेषा युज्यते यतः ।

स्वर्गयागादिसम्बन्धः केन दृष्टो ह्यतीन्द्रियः ॥२३४०॥

पदपदार्थयोः सम्बन्धाकरणे यो न्याय उक्तः—“श्रोतुः कर्तुं च सम्बन्धं वक्ता कं प्रतिपद्यता”मित्यादिना, तत एव वैदिकवाक्यस्यापि नित्यता वक्तव्या । ‘समयात्पुरुषाणां हि गुणवृद्ध्यादिवन्मतिः’ इत्यत्रानैकान्तिकतामाह—दृष्टार्थव्यवहारत्वादित्यादि । अदेकादौ दृष्टेऽर्थे गुणादिव्यवहारात्समयात्तत्र सम्भाव्यत एव प्रतीतिः, नतु वेदे, स्वर्गादिरतीन्द्रियत्वेन समयस्य कर्तुमशक्यत्वात् ॥ २३३९ ॥ २३४० ॥

यद्येवमानर्थक्यं तर्हि प्राप्तमस्येत्याह—न चानर्थकता तस्येति ।

न चानर्थकता तस्य तदर्थप्रत्ययोदयात् ।

सङ्घातत्वस्य वक्तव्यमीदृशं प्रतिसाधनम् ॥ २३४१ ॥

वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम् ।

वेदाध्ययनवाच्यत्वाद्घुनाध्ययनं यथा ॥ २३४२ ॥

तस्येति । वेदस्य । सङ्घातत्वादित्यत्रापि साधने प्रतिसाधनेनानैकान्तिकतामेव दर्शयन्नाह—सङ्घातत्वस्येत्यादि ॥ २३४१ ॥ २३४२ ॥

ननु च भारताध्ययनेऽपि शक्यमेवं वक्तुम्, यद्भारताध्ययनं तत्सर्वं गुर्वध्ययन-पूर्वकं यथेदानीन्तनमिति । न चैवं शक्यते कर्तुम् । तस्मात्तद्वदनैकान्तिकता प्रतिसाध-नस्येत्याशङ्क्याह—भारतेऽपीत्यादि ।

भारतेऽपि भवेदेवं कर्तृस्मृत्या तु बाध्यते ।

वेदे तु तत्स्मृतिर्यापि साऽर्थवादनिबन्धना ॥ २३४३ ॥

भारतेऽपि भवेदेवं प्रसङ्गनं, तत्र कर्ता व्यासः स्मर्यत इति तथा कर्तृस्मृत्या प्रतिज्ञार्थस्य बाधितत्वादप्रसङ्गः । वेदे तु न स्मृतिः । कर्तुरिति शेषः । ननु च वेदे-ऽपि कर्ता स्मर्यत एव । यथा—“अग्निरावश्चक्रुः सामानि सामगिरौ भगवति क-पोतके अथर्वानाग्निरस” इत्यत आह—यापि साऽर्थवादनिबन्धनेति । यापि वेदे कर्तुः स्मृतिः साऽर्थवादनिबन्धना—अर्थपरं वचनमर्थवाद, तन्निबन्धनं यस्याः सा तथोक्ता । तथाहि चक्रुरिति न करणार्थपरः करोतिः । किं तर्हि स्मरणार्थः । चक्रुः—स्मृतवन्त इत्यर्थः ॥ २३४३ ॥

कथमयमर्थोऽवसित इत्याह—अतीतानागतावित्यदि ।

अतीतानागतौ कालौ वेदकारवियोगिनौ ।

कालत्वात्तद्यथा लोके (कालो?) वर्त्तमानः समीक्ष्यते ॥२३४४॥

ब्रह्मादयो न विद्यानां कर्त्तार इति गम्यताम् ।

पुरुषत्वादिहेतुभ्यस्तद्यथा प्राकृता नराः ॥२३४५॥

प्रमाणद्वयं सुगमम् ॥ २३४४ ॥ २३४५ ॥

ततश्चेत्यादिना प्रकृतं सकलमुपसंहृत्य प्रमाणयति ।

ततश्च गम्यतां व्यक्तममृषा वैदिकं वचः ।

स्वार्थं वक्रनपेक्षत्वात्पदार्थं पदबुद्धिवत् ॥ २३४६ ॥

\* तत्कृतः प्रत्य(यः सम्यग्यदयं नित्यवाक्यजः ।  
 वाक्यस्वरूपविषयप्रत्ययस्तद्भवो यथा ॥२३४७॥  
 चोदनावाक्यजनितप्रत्ययस्य प्रमाणता ।  
 आसवाक्यसमुद्भूतप्रत्ययस्येव सिद्धयति ॥२३४८॥  
 यतोऽयं प्रत्ययस्तावदनाप्ताकृतवाक्यजः ।  
 कालावस्थादिभेदेऽपि विसंवादोऽस्य नास्ति यत्) ॥२३४९॥  
 प्रमाणोऽवस्थिते वेदे शिष्याचार्यपरम्परा ।  
 (अनादिः कल्प्यमानाऽपि) निर्दोषत्वाय कल्पते ॥२३५०॥

यद्यत्र कर्तृभूतवक्रनपेक्षं ज्ञानमुत्पादयति, तत्तत्र मृषा न भवति, यथा पदार्थे पदं, कर्तृभूतपुरुषवक्रनपेक्षं स्वार्थे प्रत्ययमुत्पादयति वेदवाक्यमिति व्यापकविरुद्धो-  
 पलब्धिः । कर्तृभूतपुरुषसापेक्षज्ञानोत्पादकत्वेन मृषात्वस्य व्याप्तत्वात् । तद्विरुद्धं च  
 स्वार्थे वक्रनपेक्षत्वम् । पदबुद्धिवदिति । पदानामविसंवादिप्रत्ययनिमित्तत्वप्रदर्शन-  
 परमेतत् । न तु पदबुद्धिर्दृष्टान्तत्वेनाभिप्रेता । किं तर्हि ? । पदान्येव । तथा ह्यत्र  
 शब्दात्मकः साध्यधर्मी, तस्य चाविसंवादिज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वेनामृषात्वे साध्ये  
 तथाभूत एव दृष्टान्तधर्मी न्याय्यः । अन्यथा साध्यविकलता दृष्टान्तस्य स्यात् ।  
 तथाऽपरः प्रयोगः—यो नित्यवाक्यजनितः प्रत्ययः स यथार्थत्वेन सम्यक्, यथा  
 वाक्यस्वरूपविषयः, नित्यवाक्यजनितश्चाग्निहोत्रादेः स्वर्गादिसंसिद्धिनिश्चय इति स्व-  
 भावहेतुः । पूर्वं विस्तरेण नित्यत्वस्य प्रतिपादितत्वान्नासिद्धो हेतुः । चोदनेत्यादि  
 पूर्वमेव व्याख्यातम् । तथाऽपरौ प्रयोगा—योऽनाप्ताप्रणीतवाक्यजनितः प्रत्ययो(य)श्च  
 देशकालनरावस्थाभेदादौ विसंवादरहितः स प्रमाणम्, यथाऽऽसवाक्यजनितः प्र-  
 त्ययः, तथा चायं चोदनावाक्यजनितः प्रत्यय इति स्वभावहेतुः । प्रथमस्य हेतो-  
 नासिद्धिः । विस्तरेणापौरुषेयत्वस्य प्रसाधितत्वात् । नापि द्वितीयस्य । यथोक्तम्—  
 “न च स्वर्गकामो यजेतेत्यतो वचनात्संदिग्धमवगम्यते, भवति वा स्वर्गो न वा भव-  
 तीति । न चासंदिग्धमवगम्यमानमिदं मिथ्या स्यात् । यो हि जन्त्वा प्रध्वंसते  
 नैतदेवमिति स मिथ्याप्रत्ययो न चैष कालान्तरे अवस्थान्तरे पुरुषान्तरे वा विप-  
 र्येति तस्मादवितथ” इति । तस्मात्सिद्धमालोकवत्सर्वलोकसाधारणो धर्मादिव्यवस्था-  
 हेतुः स्वत एव प्रमाणं वेद इति । ततश्च चित्तमात्रतादिनयो यो बौद्धादिभिर्वर्ण्यते  
 सोऽयुक्त इति स्थितम् ॥ २३४६ ॥ २३४७ ॥ २३४८ ॥ २३४९ ॥ २३५० ॥

ननु यदि स्वत एव प्रमाणमालोकवत्सर्वसाधारणो वेदः किमिति केचित्तत्र बौद्धादयो विप्रतिपद्यन्ते । नहि तान्प्रति तस्याप्रामाण्यं युक्तमित्याशङ्क्याह—तस्मादित्यादि ।

**तस्मादालोकवद्वेदे सर्वलौकिकबभ्रुषि ।**

**उलूकवत्प्रतीघातः किलान्येषामधर्मजः ॥२३५१॥**

यथा किल पटुतरकिरणनिकरप्रोत्सारितसकलतिमिरप्रसरे सवितरि सकलजनसाधारणचक्षुषि च समन्ताद्भात्यपि स्वकर्मापरावा(वा ?)नुरूपासंज्ञापटुतरलोचनस्योल्कादेर्न रूपमवतरति दर्शनपथम्, एवमधर्मतिमिरोपहतबुद्धिलोचनाः प्रतिहृतिमेवासादयन्ति स्थितेऽपि सकललोकैकचक्षुषि वेदे शाक्यादय इति । किलशब्दोऽरुचिसूचकः ॥ २३५१ ॥

तामेवाभिव्यनक्ति—सर्वमेतदित्यादि ।

**सर्वमेतद्द्विजातीनां मिथ्याभानविजृम्भितम् ।**

**घुणाक्षरवदापन्नं सूक्तं नैषां हि किञ्चन ॥२३५२॥**

घुणाक्षरवदिति । काकतालीयन्यायेनापीत्यर्थः ॥ २३५२ ॥

तत्र यदुक्तं यन्मिथ्यात्वहेतुदोषसंसर्गरहितं तदवितथज्ञानकारणमित्यादि । तदत्र हेतोस्तावत्सिद्धत्वमभ्युपगम्यानैकान्तिकतामुद्गावयन्नाह—कर्तर्यसत्यपीत्यादि ।

**कर्तर्यसत्यपि ह्येषा नैव सत्यार्थतां ब्रजेत् ।**

**तद्वेतुगुणवैकल्यादोषाभावे मृषार्थवत् ॥२३५३॥**

एषेति । श्रुतिः । यथा रागादियुक्तो मृषावादी दृष्ट इत्यन्वयतिरेकाभ्यां गिरां मिथ्यात्वहेतवो दोषा निश्चितास्तथा कृपादिगुणयुक्तः सत्यवाक् दृष्ट इति कृपादयो गुणाः सत्यत्वहेतव इति । ततश्च कारणनिवृत्त्या मिथ्यात्ववत्सत्यत्वमपि निवर्तेत । सत्यप्यपौरुषेयत्वे सत्यत्वं न सिद्धयत्य(तोऽ)नैकान्तिकता हेतोः ॥ २३५३ ॥

अथ गुणनिवृत्तिः कथं निश्चितेत्याह—गुणा सन्तीत्यादि ।

**गुणाः सन्ति न सन्तीति पौरुषेयेषु शङ्क्यते ।**

**आनर्थक्यमतः प्राप्तं गुणाशङ्केषु नास्ति नः ॥२३५४॥**

यदेव दोषाभावे कारणं भवताऽभ्यधाषि तदेव सत्यत्वहेतुगुणाभावेऽपीति दर्शयति ॥ २३५४ ॥

अत इत्यादिनोपसंहृत्य, कारणानुपलब्ध्या सत्यत्वमिथ्यात्वयोरभावप्रसङ्गं दर्शयति ।

अतः सत्यत्वमिथ्यात्वहेतूनां न च संश्रयात् ।

प्रज्ञादयाऽकृपादीनामभावाच्चास्ति तद्द्वयम् ॥२३५५॥

तत्र प्रज्ञादयः सत्यत्वहेतवो मिथ्यात्वहेतवस्त्वकृपादय इति यथाक्रमं सम्बन्धः । द्वयमिति । सत्यत्वमिथ्यात्वे ॥ २३५५ ॥

द्वयाभावे सति यत्प्रसज्यते तद्दर्शयति—आनर्थक्यमित्यादि ।

आनर्थक्यमतः प्राप्तं षड्रूपवादिवाक्यवत् ।

अर्थाश्रित्यसम्प्रतीयन्ते क्रियाकारकयोगिनः ॥२३५६॥

एषा स्यात्पुरुषाख्यानादुर्बशीचरितादिवत् ।

प्रतिपत्तिरतादर्थेऽप्यस्य प्रकृतिस्तव ॥२३५७॥

षड्रूपा दश दाडिमानीत्याद्युन्मत्तकवाक्यवदानर्थक्यं वेदस्य प्राप्तम् । ननु चानर्थक्यं वेदस्य साधयतो बौद्धस्य दृष्टबाधा प्रतिज्ञाया भवेत् । तथा अग्निहोत्रात्स्वर्गो भवतीत्यतो वाक्यादर्थप्रतीतिः प्रत्यक्षमनुभूयते । सा कथमपोह्यत इत्याशङ्क्य परस्य वचनावकाशं परिहरति—एषेत्यादि । एवं मन्यते—यदि हि स्वातन्त्रेणानर्थक्यं वेदस्य साध्येत तदा स्यात्प्रतिज्ञाबाधा, यावता प्रसङ्गापादनमेतत्क्रियते । न च तत्र प्रसङ्गेन प्रतिज्ञाबाधासम्भवः, तत्र प्रतिज्ञायमानस्याभावात् । केवलं परस्यैव व्यापकधर्मनिवृत्त्यापि व्याप्यनिवृत्तिमनिच्छतोऽनिष्टापत्या वचनव्याघातः प्रतिपाद्यते । नापि दृष्टबाधा । तथाहि—पुरुषव्याख्यानवशादेषा प्रतीतिर्भवेदनर्थकादपि वेदात् । यथा केनचिदग्निहोत्रात्स्वर्गो भवतीत्यादिवेदवाक्यस्य भरतोर्वश्यादिचरितमनेनाभिधीयत इत्यस्मिन्नर्थेऽनभिज्ञाया व्याख्याते पश्चात्तस्य ततो वाक्यात्तदर्थप्रतीतिर्भवत्येव । न च तत्तेनार्थेनार्थवत् । तद्वदियमर्थप्रतीतिः प्रकृत्या निरर्थकादपि वेदाद्भवेदिति; कुतो दृष्टबाधा प्रतिज्ञायाः ॥ २३५६ ॥ २३५७ ॥

किञ्च—भवतु नाम मिथ्यात्वहेतोर्दोषस्यैव निवृत्तिर्न गुणस्य, तथापि हेतोरनैकान्तिकत्वमनिवार्यमेवेति दर्शयन्नाह—दोषाभावेऽपीत्यादि ।

दोषाभावेऽपि सत्यत्वं न सिद्धयत्यन्यभावनः ।

आनर्थक्याख्यमप्यस्ति तस्माद्वाह्यन्तरं परम् ॥ २३५८ ॥

यदि हि सत्यत्वमिध्यात्वव्यतिरेकेण शब्दानां राश्यन्तरं न स्यात्, तदैकराश्य-  
भावे द्वितीयराशिसद्भावो नान्तरीयकः स्यात् । यदा त्वानर्थक्यमपि तृतीयं राश्य-  
न्तरमस्ति, तदा न मिध्यात्वनिवृत्त्या सत्यत्वनिश्चयोऽपरस्यापि तृतीयत्वानर्थकस्या-  
विनिवृत्तेः ॥ २३५८ ॥

अथ सत्यार्थविज्ञानजन्मशक्तः स्वतः स्थितः ।

वेदो नरनिराशंसः सत्यार्थोयमतो मनः ॥२३५९॥

यद्येवं सर्वदा ज्ञानं नैरन्तर्येण तद्भवेत् ।

सदाऽवस्थितहेतुत्वात्तथाभिमतो क्षणे ॥२३६०॥

एकविज्ञानकाले वा तज्जन्यं सकलं भवेत् ।

शक्तं हेतुतया यद्वत्तद्विज्ञानं विवक्षितम् ॥२३६१॥

स्यादेतत्—यदि वेदे कृपादिगुणहेतुकं सत्यत्वमभ्युपगतं स्यात्तदा गुणानां पुरु-  
षाश्रितत्वेन पुरुषनिवृत्त्या निवृत्तौ सत्यां मिध्यात्ववत्सत्यत्वमपि निवर्त्तेत । यावता  
स्वतःप्रामाण्याद्वेदस्य प्रकृत्यैव सत्यार्थज्ञानहेतुत्वं न तु पुनर्गुणकृतं तेन नानैकान्ति-  
कता हेतोः, नाप्यानर्थक्यप्रसङ्गो वेदस्येत्येतत् । परस्योत्तरमाशङ्क्य परिहरन्नाह—  
यद्येवमित्यादि । यथैव हि प्रकृत्याऽर्थवत्त्वमस्य वेदस्य तथा मिध्यात्वमपि सम्भा-  
व्यत इत्यनैकान्तिकतैव हेतोरित्यभिप्रायः । एतच्च पश्चादभिधास्यति । प्रकृत्या च  
ज्ञानहेतुत्वे सर्वदा युगपच्च तद्भाविज्ञानं प्रामोत्यविकलकारणत्वादिति कथमानर्थक्या-  
प्रसङ्गः । प्रयोगः—यदा यदविकलकारणं तत्तदा भवत्येव, यथा—अभिमतक्षणा-  
वस्थायां अग्निहोत्रादिवाक्यसम्भूतं ज्ञानम्, अविकलकारणं च वेदवाक्यहेतुकं सर्व-  
ज्ञानं सर्वम्यामवस्थायामिति स्वभावहेतुः ॥ २३५९ ॥ २३६० ॥ २३६१ ॥

युगपज्ज्ञानप्रसङ्गपक्षे च दोषान्तरमाह—ततः परमित्यादि ।

ततः परमतो ज्ञानजन्मशक्तिपरिक्षयात् ।

न नित्यः स्यादयं वेदः शक्ती वा प्रीः पुनर्भवेत् ॥२३६२॥

तथाहि—यदि युगपदशेषज्ञानान्युत्पाद्योत्तरकालं ततो ज्ञानोत्पादनशक्तेः परि-  
हीयते वेदस्तदा शक्तेरात्मभूतायाः परिक्षयात् क्षयी प्रामोति । अथ न परिहीयते  
तदोत्तरकालं पुनरपि ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्ग इति न कथञ्चित्कित्यस्यार्थक्रियासामर्थ्यम्  
॥ २३६२ ॥



अथापीत्यादिना यदविकलकारणमित्यस्य हेतोरसिद्धतामाशङ्कते ।

अथापि सहकारीणि व्याख्यादीनि व्यपेक्षते ।

तेषां च क्रमसङ्गावाप्तद्विज्ञानं क्रमीष्यते ॥२३६३॥

व्याख्यादीनीत्यादिशब्देन सङ्घेतादिपरिग्रहः । तेषां चेति । व्याख्यादीनाम्  
॥ २३६३ ॥

नैवमित्यादिना परिहरति ।

नैवं तस्य हि शक्तस्य व्यपेक्षा कीदृशी भवेत् ।

तद्योगात्स समर्थश्चेन्नित्यताशेह का तव ॥२३६४॥

असमर्थो हि परमपेक्षेत ततः समर्थस्वभावोत्पादलिप्सायाम् । यस्तु समर्थस्तस्य  
न किञ्चित्स्वभाववैकल्यमस्तीति कीदृशी तस्य व्यपेक्षा । अथ प्रागसमर्थः सहका-  
रिकारणयोगात्पश्चात्समर्थो भवतीत्यभ्युपेयते, तदा जहतु भवन्तो वेदे नित्यताशाम्  
॥ २३६४ ॥

कथमित्याह—प्रागशक्त इत्यादि ।

प्रागशक्तः समर्थश्च यदि तैः क्रियते पुनः ।

प्रसक्तः पौरुषेयोऽयं ज्ञानाङ्गं हि नराश्रयात् ॥२३६५॥

शक्तेरव्यतिरेकादिति भावः । व्यतिरेके तु सम्बन्धासिद्धेर्वेदस्याकारकत्वप्रसङ्गः,  
शक्तेरेव कार्योत्पत्तेरिति वाच्यम् । ज्ञानाङ्गमिति । ज्ञानस्याङ्गं यो भवति वेदः स  
नराश्रयाज्जातः वेदस्वरूपं च नराश्रयाज्जातं, तच्च वेदाव्यतिरेकात्, सोऽपि जात  
एव ॥ २३६५ ॥

किञ्च—न केवलं परापेक्षायामनित्यत्वप्रसङ्गः, अपौरुषेयत्वकल्पना च व्यर्था  
प्राप्नोतीति दर्शयन्नाह—नहीत्यादि ।

नहि तावत्स्थितोऽप्येष ज्ञानं वेदः करोति नः ।

यावन्न पुरुषैरेव क्षीपभूतैः प्रकाशितः ॥२३६६॥

ततश्चापौरुषेयत्वं भूतार्थज्ञानकारणम् ।

न कल्प्यं ज्ञानमेतद्वि पुंढ्याख्यानात्प्रवर्त्तते ॥२३६७॥

सत्यप्येषा निरर्थाऽतो वेदस्यापौरुषेयता ।

यदिष्टं फलमस्या हि ज्ञानं तत्पुरुषाश्रितम् ॥२३६८॥

यथार्थज्ञानार्थमस्मात्पौरुषेयता कल्प्यते । सा च कल्पनाऽपि न पुरुषनिरपेक्षा तज्ज्ञानोत्पादने समर्थेति व्यर्था तत्कल्पना । पुरुषा एव प्रमाणभूताः प्रणेतारो यथार्थज्ञानकारणं सन्तु । किमिदानीमपौरुषेयतया सिद्धोपस्थापिन्या ॥ २३६६ ॥  
॥ २३६७ ॥ २३६८ ॥

अथ माभूदनित्यत्वप्रसङ्गोऽपौरुषेयत्वकल्पनायाश्च व्यर्थंतेति सर्वदैव शक्तो वेदोऽभ्युपगम्यते तदा पूर्ववद्दोषप्रसङ्ग इति दर्शयति—शक्तश्चेदित्यादि ।

शक्तश्चेत्सर्वदैवायं तत्किमन्यदपेक्षते ।

शक्तैकहेतुभावे तु ज्ञानं स्यादेव तेन चः ॥ २३६९ ॥

स्यादेतत्—पुरुषापेक्षायां नापौरुषेयता व्यर्थायते । यथावस्थित एवार्थः पुरुषैः प्रकाश्यते नापूर्वः क्रियते । अपूर्वकरणे हि स्वातन्त्र्यमेषामभ्युपगतं स्यात् । ततश्च रागादिभिरुपप्लुता विपरीतार्था श्रुतिमारचयन्तः केन प्रतिबध्येरन् । तदेतद्व्याख्यायामपि पुरुषैः क्रियमाणायाम् दोषजातं समानमिति दर्शयन्नाह—स्वतन्त्रा इत्यादि ।

स्वतन्त्राः पुरुषाश्चेह वेदे व्याख्यां यथारुचि ।

कुर्वाणाः प्रतिबद्धं ने शक्यन्ने नैव केनचित् ॥ २३७० ॥

मोहमानादिभिर्दोषैरतोऽस्मी विप्लुताः श्रुतेः ।

विपरीतामपि व्याख्यां कुर्युरित्यभिशाङ्क्यते ॥ २३७१ ॥

अपि च न वेदार्थस्यातीन्द्रियार्थस्य कश्चित्स्वातन्त्र्येण परिज्ञाता नरोऽभ्युपगतो यो वेदार्थमाख्यास्यति । तथाहि वेदार्थपरिज्ञानद्वारेणातीन्द्रियार्थदर्शित्वमस्य न स्वातन्त्र्येण, वेदार्थपरिज्ञानं तनो(तु ना ?)तीन्द्रियार्थदर्शित्वमन्तरेणेति व्यक्तमवतरति नित्तरामितरेतराश्रयत्वमिति दर्शयन्नाह—न चातीन्द्रियदृशित्यादि ।

न चातीन्द्रियदृक्तेषामिष्ट एकोऽपि मानवः ।

स्वर्गयागादिसम्बन्धज्ञानं नैव ह्यचोदनम् ॥ २३७२ ॥

यस्मात्तीन्द्रियार्थानां द्रष्टा साक्षात्त चास्ति चः ।

वचनेन हि नित्येन यः पश्यति स पश्यति ॥ २३७३ ॥

अविद्यमाना चोदना अस्येत्यचोदनं ज्ञानम् । चोदनानिरपेक्षमिति यावत् । अत्र कारणमाह—यस्मादिति । एतदपि कथमित्याह—वचनेनेत्यादि । तदुक्तम् 'तस्मा-

दतीन्द्रियार्थानां साक्षात् द्रष्टा न विद्यते । वचनेन तु नित्येन यः पश्यति स पश्यतीति' ॥ २३७२ ॥ २३७३ ॥

स्यादेतद्वेद एव स्वयं पुरुषव्यापारमनपेक्ष्यास्मै पुरुषाय स(स्व ?)मर्थमावेदयिष्यते । तेनेतरेतराश्रयत्वप्रसङ्गो नावतरतीत्याह—वेद इत्यादि ।

**वेदो नरं निराशंसो ब्रूतेऽर्थं न सदा स्वतः ।**

**अन्धात्तयष्टितुल्यां तु पुंढ्याख्यां समपेक्षते ॥ २३७४ ॥**

नहि प्रथमश्रुतोऽसमयज्ञस्य स्वयं स(स्व ?)मर्थमावेदयते वेदः । किन्नाम कुरुत इत्याह—अन्धात्तेत्यादि । अन्धैरात्ता गृहीता (यष्टि) तथा तुष्ट्येति विग्रहः ॥ २३७४ ॥

अपेक्षतां को दोष इत्याह—स तयेत्यादि ।

**स तथा कृष्यमाणश्च कुवर्त्मन्यपि सम्पतेत् ।**

**ततो नालोकवद्वेदश्चक्षुर्भूतश्च युज्यते ॥ २३७५ ॥**

स इति । वेदः । तयेति । पुंढ्याख्या । कुवर्त्मन्यपि सम्पतेदिति । विपरीतार्थप्रकाशनात् । ततश्च यदुक्तम्—'तस्मादालोकवद्वेदे सर्वलोकैकचक्षुषि । नैव विप्रतिपत्तव्यमिति' तदनुपपन्नम् ॥ २३७५ ॥

स्वतन्त्रस्येत्यादिना प्रकृतमुपसंहरति ।

**स्वतन्त्रस्य च विज्ञानजनकत्वे सति स्फुटम् ।**

**प्रामाण्यमपि नैवाद्य सम्भाव्यं पुरुषेक्षणात् ॥ २३७६ ॥**

शक्तस्य हि न पुरुषापेक्षया ज्ञानजनकत्वं युक्तमिति प्रतिपादितम् । भवतु नाम पुरुषापेक्षया शक्तस्यापि ज्ञानजनकत्वं तथापि—पुरुषापेक्षया ज्ञानजनकत्वेऽपि, प्रामाण्यमस्य स्फुटं न सम्भाव्यमिति पदार्थयोजना । अपिशब्दो भिन्नकमः ज्ञानजनकत्वे सतीत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः ॥ २३७६ ॥

अस्यैवार्थं व्यक्तीकुर्वन्नाह—यथार्थबोधेत्यादि ।

**यथार्थबोधहेतुत्वात्प्रामाण्यं स्वकल्पने ।**

**पुंढ्याख्यापेक्षणे चास्य न साध्वी मानकल्पना ॥ २३७७ ॥**

न साध्वी मानकल्पनेति । 'स तथा कृष्यमाणश्च कुवर्त्मन्यपि सम्पते'दित्यनेन पूर्वमसाधुत्वस्य प्रतिपादितत्वात् ॥ २३७७ ॥

ततश्च, यदुक्तम्—‘प्रमाणेऽवस्थिते वेदे शिष्याचार्यपरम्परा । अनादिः कल्प्यमा-  
नापि निर्दोषत्वाय कल्पते’ इति तदयुक्तमिति दर्शयन्नाह—इत्थमित्यादि ।

**इत्थं मानेऽस्थिते वेदे शिष्याचार्यपरम्परा ।**

**अनादिः कल्प्यमानाऽपि निर्दोषत्वाय युज्यते ॥ २३७८ ॥**

अस्थित इत्यकारप्रश्नोऽनुद्रष्टव्यः ॥ २३७८ ॥

कथं न युज्यत इत्याह—यस्मादेकोऽपीति ।

**यस्मादेकोऽपि तन्मध्ये नैवातीन्द्रियहृग्मतः ।**

**अनादिः कल्पिताऽप्येषा तस्मादन्धपरम्परा ॥ २३७९ ॥**

यदि नामान्धपरम्परा जाता, ततः किमित्याह—अन्धेनान्ध इत्यादि ।

**अन्धेनान्धः समाकृष्टः सम्यग्बर्त्म प्रपद्यते ।**

**ध्रुवं नैव तथाऽप्यस्या विफलाऽनादिकल्पना ॥ २३८० ॥**

यथोक्तं शाबरे भाष्ये—“नैवंजातीयकेष्वर्थेषु पुरुषवचनं प्रामाण्यमुपैति, अन्धा-  
नामिव वचनं रूपविशेषेष्विति ॥ २३८० ॥

एवमनादित्वं शिष्यपरम्परया सिद्धमभ्युपगम्य दोष उक्तस्तदपि न सिद्धमिति  
दर्शयन्नाह—परत इत्यादि ।

**परतो वेदतत्त्वज्ञा मनुष्यासादयोऽपि च ।**

**तैरेवारचितो नायमर्थ इत्यत्र न प्रमा ॥ २३८१ ॥**

न प्रमेति । अत्यन्तपरोक्षत्वात् ॥ २३८१ ॥

म्यादेतत्—नावितथज्ञानहेतुत्वादपौरुषेयत्वेन प्रामाण्यमिष्टम्, किं तर्हि ! सत्या-  
र्थान्नित्याच्छब्दार्थमम्बन्धमात्रात् । नवा (स चा ?) पौरुषेयतायां सत्यां भवतीति  
तदत्राप्यनैकान्तिकमेव । को ह्यत्र नियमे हेतुर्यदपौरुषेयेण सत्यार्थेन भवितव्यमिति ।  
भवतु नाम तथाऽपि दोष एवेति दर्शयन्नाह—

**सत्यार्थनित्यसम्बन्धमात्रात्प्रामाण्यमस्तु वा ।**

**अतीन्द्रियं तु तं योगं नैव कश्चिद्व्यवस्यति ॥ २३८२ ॥**

**अतीन्द्रिया यतस्तेऽर्थास्तस्थो योगोऽप्यतीन्द्रियः ।**

**अनत्यक्षहृशः सर्वे नराश्चैते स्वतस्सदा ॥ २३८३ ॥**

सत्यार्थश्चासौ नित्यसम्बन्धश्चेति विग्रहः । कल्पितो हि नित्यः सम्बन्धः, यद्य-

सावर्धप्रतीतिहेतुर्न भवेत्तदा व्यर्था तत्कल्पना । न चान्यत्तस्य रूपमन्यत्रार्धप्रतीति-  
जनकत्वात् । इयानेव हि सम्बन्धस्य व्यापारो यदर्धप्रतीतिजननम्, तदकुर्वाणः  
कथं सम्बन्धः स्यात् । नाप्यसौ सत्तामात्रेणार्धप्रतीतिहेतुः, किं तर्हि ?, ज्ञातः सन्,  
अन्यथा षड्गृहीतसमयस्यापि ततः प्रतीतिर्भवेत्, न चासौ ज्ञातुं केनचिच्छक्यते,  
सम्बन्धिनः स्वर्गादिरतीन्द्रियत्वेन तस्याप्यतीन्द्रियत्वात् । अतीन्द्रियार्धदर्शिनस्तर्हि  
तं ज्ञास्यन्तीति चेदित्याह—अनत्यक्षदृश इत्यादि । तदुक्तम्—“तस्मादतीन्द्रिया-  
र्थानां साक्षाद्द्रष्टा न विद्यते । वचनेन तु नित्येन यः पश्यति स पश्यति ॥” इति  
अनत्यक्षदृशः—अतीन्द्रियार्थदर्शिनः ॥ २३८२ ॥ २३८३ ॥

श्रुतिरेव स्वयमावेदयिष्यतीति चेदाह—अयं ममेत्यादि ।

अयं ममार्थसम्बन्ध इत्याह च न सा श्रुतिः ।

नरकलृप्तोऽर्थयोगस्तु पौरुषेयात् न भिद्यते ॥ २३८४ ॥

न ह्येते भवन्तो ब्राह्मणा ममायमर्थो गृह्यतामित्याह्वय प्रवृद्धतरकारुण्यः पुण्यैक-  
प्रवणचेताः परहितनिरतः सन्वदान्य इव ब्राह्मणेभ्यः स्वयं स्वमर्थमर्पयति वेदपुरुषः ।  
तर्हि स्वयमेवोत्प्रेक्षिष्यन्त इत्याह—नरकलृप्त इत्यादि ॥ २३८४ ॥

तमेवामेदं दर्शयति—तद्यथेत्यादि ।

तद्यथा पौरुषेयस्य शक्नुयते विपरीतता ।

नरैरुत्प्रेक्षितस्यापि सा शक्नुयैव न किं भवेत् ॥ २३८५ ॥

अपि नाम सङ्कीर्णमर्थं जानीयामिति सङ्करहेतुः पुरुषोऽपाकीर्णं यथा पुरुषैः  
स्वयं प्रयुक्ताः शब्दाः सङ्कीर्यन्ते (?) तथा तैरुपकल्पितार्था अपीति कोऽत्र विशेषः ।  
सेति । विपरीतता । शक्नुयति । शक्नीया ॥ २३८५ ॥

पूर्वमप्रामाण्याद्वेदस्य शिष्याचार्यपरम्पराकल्पना व्यर्थेति प्रतिपादितम्, इदानीं  
भवतु नाम नित्यसम्बन्धद्वारेण प्रामाण्यम्, उभयथा शिष्याचार्यपरम्परोपकल्पना  
व्यर्थेत्युपदर्शयति—माने स्थितेऽपीत्यादि ।

माने स्थितेऽपि वेदेऽतः शिष्याचार्यपरम्परा ।

अनादिः कल्पिताऽप्येषा संजाताऽन्धपरम्परा ॥ २३८६ ॥

यदुक्तम्—‘नरैरुत्प्रेक्षितस्यापि सा शक्नुयैव न किं भवेत्, इति, अत्र परोऽसम्भव-  
माशङ्काया दर्शयति—नन्वित्यादि ।

नन्वारेकादिनिर्मुक्ता स्वर्गादौ जायते मतिः ।

अग्निहोत्रादिवचसो निष्कम्पाध्यक्षबुद्धिबत् ॥ २३८७ ॥

नावलम्बेत तां कुर्वन्कथं वेदः प्रमाणताम् ।

न ह्यतो वचनादर्थं संदिग्धं वेत्ति कश्चन ॥ २३८८ ॥

आरेकः—संशयः । आदिशब्देन विपर्यासो गृह्यते । यथोक्तं भाष्ये शाबरे—  
“न च स्वर्गकामो यजेतेत्यतो वचनात्संदिग्धमवगम्यन्ते—भवति वा स्वर्गो न वा  
भवतीति । न च विनिश्चितमवगम्यमानमिदं मिथ्या स्यात् । यो हि जनित्वा प्रध्वं-  
सते नैतदेवमिति स मिथ्याप्रत्ययः । न चैष देशान्तरे कालान्तरे विपर्येति । तस्मा-  
दवितथ” इति । अन्यथा हि प्रत्यक्षं स्फुटस्फुलिङ्गप्रकरप्रसरोपरुद्धान्तरालमकृश-  
कृशानुराशिमनुभवतोऽपि भवतः किमिति संशयदोलाविलोलं मनो न भवेत् ।  
ततश्च न किञ्चिदपि ते प्रमाणं स्यादिति परस्याभिप्रायः । प्रयोगः—यः संशयवि-  
पर्यासरहितः प्रत्ययः स प्रेक्षावतां प्रमाणव्यवहारविषयः, यथा—वद्भावभ्रान्तचे-  
तसो दाहपाकाद्यर्थिनस्तन्निश्चयहेतुः प्रत्ययः, संशयविपर्यासरहितश्चामिहोत्रादिवाक्यो-  
द्भवः प्रत्यय इति स्वभावहेतुः । नावलम्बेतेति । प्रमाणतामित्यनेन सम्बन्धः ।  
तां कुर्वन्निति । मतिम् ॥ २३८७ ॥ २३८८ ॥

नैवमित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

नैवं संशयसंजातेर्विपरितान्यवाक्यवत् ।

प्रेक्षावन्तो हि नैतेषां भेदं पश्यन्ति कश्चन ॥ २३८९ ॥

नातीन्द्रिये हि युज्येते सदसत्तानिश्चयौ ।

निश्चयो वेदवाक्याद्येदन्याहृत्त किमन्यतः ॥ २३९० ॥

यदि तावत्प्रेक्षावतां संशयादिरहितः प्रत्ययो वेदवाक्याद्भवतीति हेत्वर्थस्तदा  
हेतोरसिद्धता । तथाहि प्रेक्षावतामग्निहोत्रात्स्वर्गो न भवतीत्यतो विपरीतान्यवाक्या-  
दिवाग्निहोत्रात्स्वर्गो भवतीत्यतोऽपि संशयः समान एव, अतीन्द्रियेऽर्थे सदसत्तानिश्चय-  
कारणाभावादर्थसंवादस्योभयत्राप्यनुपलम्भात् । विपरीतान्यवाक्यवदिति । सप्त-  
म्यन्ताद्वृत्तिः । अथापि स्याद्वेदवाक्यादेव निश्चयो भवति तत्किमन्येन कारणेन पर्ये-  
षितेनेत्यत आह—अन्याहृत्तित्यादि । वेदार्थविपरीतार्थाध्यवसायी निश्चयः । अ-  
न्यत इति । पौरुषेयात् । किं न भवति—भवत्येवेति यावत् । ततश्च साऽपि प्रमाणं  
स्यादुभयोरपि तदानीं बाधाऽनुपलम्भेनाविशेषात् ॥ २३८९ ॥ २३९० ॥

अथ प्रेक्षावतां श्रोत्रियाणामकम्प्यो जायते प्रत्यय इत्यतो नासिद्धता हेतोरिति चेत्, जायतां तथापि यदि नामासिद्धता न भवेत्, अनैकान्तिकता तु दुर्वारिति दर्शयति—श्रोत्रियाणामित्यादि ।

श्रोत्रियाणां तु निष्कम्पा बुद्धिरेषोपजायते ।

श्रद्धाविषयशुद्धीनां साऽन्येषामन्यतः समा ॥ २३९१ ॥

तथाहि सौगतादीनां धीरकम्पोपजायते ।

अपायदुःखसम्भूतिर्यागात्प्राणिवधान्विनात् ॥ २३९२ ॥

अस्याश्च न धियः काचिद्वाधा सम्प्रति दृश्यते ।

क्वचित्कदाचिच्छङ्कया चेद्वेदवाक्येऽपि सा समा ॥ २३९३ ॥

सेति । अकम्पा बुद्धिः । अन्येषामिति । बौद्धादीनाम् । अन्यत इति यागात्प्राणिवधान्श्रितापायदुःखसम्भूतिरित्यतो वाक्यात् । एतदेव दर्शयति तथा हीत्यादि । सुबोधम् ॥ २३९१ ॥ २३९२ ॥ २३९३ ॥

भूयोऽप्यनैकान्तिकतामपौरुषेयत्वस्य दर्शयति—नरेच्छेत्यादि ।

नरेच्छाधीनसङ्केतनिरपेक्षो यदि स्वयम् ।

वेदः प्रकाशयेत्स्वार्थं प्रमाणं युज्यते तदा ॥ २३९४ ॥

तदा हि मोहमानादिदोषोपप्लुतबुद्धिभिः ।

अन्यथाऽऽख्यायमानो हि(पि?)निजमर्थं न मुञ्चति ॥ २३९५ ॥

यस्मात्तद्विषयमेव धियमुत्पादयत्यरम् ।

न त्विष्टं पुरुषैरर्थमपरं द्योतयत्ययम् ॥ २३९६ ॥

नरेच्छायास्त्वपेक्षायां पौरुषेयास्त भिद्यते ।

द्योतनं हि तदायत्तं विपर्यस्ताऽपि सा भवेत् ॥ २३९७ ॥

इच्छायाः स्वातन्त्र्यात्तदधीनसङ्केतसापेक्षस्य वेदस्य स्वार्थप्रकाशने नेष्टार्थप्रकाशनं स्यान्नियमाभावात्, यदा तु तन्निरपेक्षो वेदोऽर्थं बोधयेत्तदा प्रमाणं युज्येत, पुरुषव्याख्यामनाहत्य क्षिप्रतरं स्वार्थप्रतीतिजननात्, अन्यथा व्याख्यायमानस्यापि चक्षुरादिवत्प्रकृत्यैव स्वार्थप्रकाशनापरित्यागादिति समुदायार्थः । आख्यायमान इति । व्याख्यायमानः । अरमिति । क्षिप्रम् । ज्ञगितीति यावत् । विपर्यस्ताऽपि सेति । नरेच्छा ॥ २३९४ ॥ २३९५ ॥ २३९६ ॥ २३९७ ॥

भवतु नाम स्वाभाविकोऽर्थसम्बन्धोऽपौरुषेयत्वेन वेदस्य, तथापि नेष्टसिद्धिरित्य-  
नैकान्तिकतामेव समर्थायमान आह—अपि चेत्यादि ।

अपि चापौरुषेयस्य यथा प्राकृतमिष्यते ।

सत्यार्थत्वमसत्यत्वमेवमाशङ्कयते न किम् ॥ २३९८ ॥

स्वतः सत्यार्थबोधस्य हेतुत्वात्सत्यताऽस्य हि ।

एवं मिथ्यात्वबोधेऽपि हेतुत्वं शङ्कयते स्वतः ॥ २३९९ ॥

प्रकृतौ भवं प्राकृतम्—स्वाभाविकमित्यर्थः ॥ २३९८ ॥ २३९९ ॥

प्रमाणभूतपुरुषकृतत्वमेव प्रामाण्यकारणमास्थीयतां वेदस्य किं जाड्यसंसूचकेना-  
कृतकत्वेनेति दर्शयन्नाह—किं चेत्यादि ।

किं च वेदप्रमाणत्वे निर्बन्धो यदि वो ध्रुवम् ।

निर्दोषकर्तृकत्वादौ तदा यत्नो विधीयताम् ॥ २४०० ॥

निर्दोषेण हि कर्त्राऽयं कृतोऽदोषैः प्रकाशकैः ।

द्योतमानश्च लोकेऽस्मिन्भूतार्थज्ञानसाधनः ॥ २४०१ ॥

निर्दोषकर्तृकत्वादावित्यादिशब्देन व्याख्यातृत्वं गृह्यते ॥ २४०० ॥ २४०१ ॥

अथ निर्दोषैः कृतव्याख्यातस्यापि कथं प्रामाण्यं सिद्धयतीत्याह—प्रज्ञाकृपादि-  
युक्तानामित्यादि ।

प्रज्ञाकृपादियुक्तानां तथाहि सुविनिश्चिताः ।

पौरुषेय्योऽपि सद्वाचो यथार्थज्ञानहेतवः ॥ २४०२ ॥

यथोक्तं शबरस्वामिना—“यत्तु लौकिकं वचनं तच्चेत्प्रत्यायितात्पुरुषादिन्द्रिय-  
विषयं वाऽवितथमेव तदि”ति । सद्वाच इति । शोभनाः ॥ २४०२ ॥

पुनरप्यपौरुषेयत्वस्यानैकान्तिकतां प्रतिपादयन्नाह—न नराकृतमित्यादि ।

न नराकृतमित्येव यथार्थज्ञानकारि तु ।

दृष्टा हि दाववह्वयादेर्मिथ्याज्ञानेऽपि हेतुता ॥ २४०३ ॥

नहि पुरुषदोषोपघानादेवार्थेषु ज्ञानविभ्रमस्तद्रहितानामपि दाववह्वयादीनां नीलो-  
त्पलादिषु वितथज्ञानजननात् । दावो वनगतो वह्निः । स पुनर्यः स्वयमेव वेण्वा-  
दीनां संघर्षसमुद्गतः स इह व्यभिचारविषयत्वेन द्रष्टव्यः । यस्त्वरणिनिर्मथनादि  
पुरुषैर्निवृत्तं तत्रापौरुषेयत्वासम्भवात्ततो न हेतोर्व्यभिचार इति भावः । आदिश-  
ब्देन मरीच्यादिपरिग्रहः ॥ २४०३ ॥



तामेव मिथ्याज्ञानहेतुतां दर्शयति—रक्तमित्यादि ।

रक्तं नीलसरोजं हि बह्व्यालोके सतीष्यते ।

बह्व्यादिः कृतकत्वाद्येषां हेतुरुपपद्यते ॥ २४०४ ॥

अथापि स्यान्नापौरुषेयत्वमेव केवलमस्माभिर्हेतुत्वेन वर्णितम् । किं तर्हि ! । अकृतकत्वे सतीति विशेषणम् । यद्वा—पौरुषेयग्रहणमकृतकोपलक्षणमतो न दावबहिना कृतकेन व्यभिचार इति मन्यमानस्य परस्योत्तरमाशङ्क्यन्नाह—बह्व्यादेरित्यादि । तद्धेतुः—मिथ्याज्ञानहेतुः ॥ २४०४ ॥

किं वैकृतकतेत्यादिना परिहरति ।

किं वैकृतकताऽर्थानां मिथ्याज्ञाननिबन्धनम् ।

एवं हि नैव धूमोऽग्नेर्यथावद्योतकं भवेत् ॥ २४०५ ॥

तद्विशेषणं भवति यद्विषयाद्देतुं व्यवच्छिन्नमिति, अन्यथा हि येन केनचिद्विशेषणेन हेतौ यद्यैकान्तिकता लभ्येत तदा न कश्चिदनैकान्तिको हेतुः स्यात्, इच्छाप्रतिबद्धत्वेन सर्वत्र विशेषणस्य सौकर्यात् । न चाकृतकत्वं विशेषणं वेदस्य मिथ्याज्ञानहेतुतां निवर्त्तयति । तथाहि—यदि कृतकता मिथ्याज्ञानहेतुत्वेन सिद्धा स्यात्तदा सा निवर्त्तमाना तामपि निवर्त्तयेत् । कदाचित्परो ब्रूयात्सिद्धैवेति, आह—एवं हीत्यादि । यदि कृतकता मिथ्याज्ञाननिबन्धनं तदा सम्यग्ज्ञानस्याकृतकता हेतुरिति प्राप्तः । सम्यग् मिथ्याज्ञानयोः परस्परविरुद्धयोरेककारणानुपपत्तेः, नहि बह्वेरण्यस्पर्शहेतोः शीतहेतुता युक्ता । ततश्च कृतकत्वाद्भूमो बहौ यथावत्प्रतीतिहेतुर्न स्यात् ॥ २४०५ ॥

अथापि स्यान्नैवमवधारितं मिथ्याज्ञानस्यैव कृतकता हेतुर्नान्यस्येति । किं तर्हि ! । मिथ्याज्ञाने कृतकत्वेन निबन्धनं नान्यदित्यहेतुकताऽस्य निषिध्यते । न तु सम्यक्ज्ञानस्य कृतकहेतुकत्वनिषेधः । न च सर्वस्य कृतकस्याविशेषेण मिथ्याज्ञानहेतुत्वमिष्टम् । येन परस्परविरुद्धत्वात्सम्यक्मिथ्याज्ञानयोः सामर्थ्यात्कृतकविपरीतस्य सम्यग्ज्ञानहेतुत्वं स्यात् । किन्तु कृतकस्य बहुभिन्नत्वात्किञ्चिदेव मिथ्याज्ञानकारणं यथा कामलादि, किञ्चित्सम्यग्ज्ञानकारणं यथाऽनुपहतेन्द्रियादिकलापः । अन्यथा हि शीतस्पर्श प्रति हिमादेः कृतकस्य कस्यचित्कारणत्वोपलम्भात्सामर्थ्याच्छीतविरुद्धोष्णस्पर्श प्रत्यकृतको हेतुः कल्पनीयः स्यात् । न चैवम् । तस्मात्कृतकस्य सम्यग्ज्ञानं प्रति हेतुत्वानिषेधाद्भवत्येव धूमः सम्यग्ज्ञाननिबन्धनमित्येतदाशङ्क्याह—एवं चापौरुषेयोऽपीत्यादि ।

एवं चापौरुषेयोऽपि (सम्यग्ज्ञाने) निबन्धनम् ।

वेदः सन्तिष्ठते नैव तद्वृथैवास्य कल्पना ॥ २४०६ ॥

यदि हि सम्यग्मिथ्यात्वयोरुभयोरपि कृतकता निबन्धनं सा निवर्त्तमाना मिथ्या-  
सम्यग्ज्ञाने निवर्त्तयतीति न वेदस्याकृतकत्वेन सम्यग्ज्ञानहेतुत्वमवतिष्ठेत, तस्य तत्रा-  
निबन्धनत्वात्, ततश्च व्यर्थं विशेषणमित्यनैकान्तिकतैव हेतोः । अथापि स्यान्नरा-  
कृततयेत्यनेन मान्वयिव्यतिरेकी यथोक्तो हेतुः संसूचितः, किं तर्हि ? व्यतिरेकी  
प्रयोग एवायम् । यथा हि हेतुविपरीतेन कृतकत्वेन साध्यविपरीतं मिथ्यात्वं व्या-  
प्तम्, पौरुषेयेष्वेव मिथ्यात्वस्य दर्शनात्, ततश्च यत्र मिथ्यात्वव्यापकविरुद्धमकृत-  
कत्वं सन्निधीयते, तत्र विरोधेनाकृतकत्वस्य मिथ्यात्वव्यापकस्य निवृत्तौ व्याप्यस्यापि  
मिथ्यात्वस्य सामर्थ्यान्निवृत्तिसिद्धिरित्यकृतकं सत्यार्थमिति सामर्थ्याद्भवेद्विनाप्यन्व-  
येनेति व्यर्थमन्वयप्रदर्शनम् । सत्यमेवमेतत् । यदि विपर्ययस्य यो व्याप्यव्यापक-  
भावः सिद्धयेत् । स तु न सिद्धः । तथाहि साध्यविपक्षे हेतौ यदि बाधकं प्रमाणं  
स्यात्, तदा भवेद्विपक्षयोर्व्याप्तिः, तच्च नास्ति । न चानुपलम्भमात्रादभावसिद्धिव्य-  
भिचारात् । स्यादेतदकृतकविरुद्धे कृतके मिथ्यात्वस्य दर्शनात्सामर्थ्यादकृतके तस्या-  
भावः सिद्धयतीति । तदेतदसम्यक् । न ह्येकत्र दृष्ट्याऽन्यत्राभावनिश्चयः शक्यते  
कर्तुम्, एकस्यापि हि विरुद्धव्यापकदर्शनात् । तथा ह्येकमनित्यत्वं विरुद्धौ प्रयत्नान-  
न्तरीयकेतरौ व्याप्नुवद्दृश्यते । न ह्यनित्यत्वं प्रयत्नानन्तरीयके दृष्टमित्यप्रयत्नानन्तरी-  
यके तस्याभावः स्यात् । किञ्च—तत्र दृष्टमित्येतावन्मात्रेण यदि मिथ्यात्वं कृतक-  
त्वेन व्याप्येत सत्यत्वमपि पौरुषेये कचिद्दृष्टमिति तदपि तेन व्याप्येत, ततश्च कृत-  
कत्वनिवृत्तौ मिथ्यात्ववत्सत्यत्वस्यापि निवृत्तेर्नापौरुषेयत्वात्सत्यार्थत्वं सिद्धयेदित्यलम्  
॥ २४०६ ॥

एवं तावद्यन्मिथ्यात्वहेतुदोषसंसर्गरहितमित्यस्य हेतोर्नराकृततयेत्यनेनाक्षिप्तस्या-  
कृतकस्य वा तदुपलक्षितस्यापौरुषेयत्वस्य वा स्वशब्देनोपात्तस्य विस्तरेणानैकान्तिक-  
कतां प्रतिपाद्य प्र(अ?)सिद्धतां प्रतिपाद्यदयिपुरुषसंहरन्नाह—ततश्चेत्यादि ।

ततश्चापौरुषेयत्वव्यक्तित्यत्वसाधनम् ।

नित्यशब्दार्थयोगश्च व्यर्थ ए(वोपवर्णि)तः ॥ २४०७ ॥

तस्मिन् सत्यपि नैवास्य यथार्थज्ञानहेतुता ।

उपगम्यत इत्युक्तं व्यासतः समनन्तरम् ॥ २४०८ ॥

तेनैवैतत्प्रतिक्षेपे नास्माकं गुरु(रादरः) ।

(अ)प्रस्तुतोपयोगस्य को हि कुर्यान्निषेधनम् ॥ २४०९ ॥

अपौरुषेयत्वं च व्यक्तित्वं नित्यत्वं चेत्यपौरुषेयत्वव्यक्तिनित्यत्वानि, तेषां साधनमिति समासः । साध्यतेऽनेनेति साधनं हेतुः । तच्च नानाविधं पूर्वमुक्तम् । तस्मिन्निति । अपौरुषेयत्वादौ । अस्येति । वेदस्य । उपगम्यत इति । उपपद्यते । व्यासत इति । विस्तरेण । एतत्प्रतिक्षेप इति । अपौरुषेयत्वादिदूषणे । सत्यपि तस्मिन्नाभिमतार्थासिद्धिरिति प्रतिपादितत्वात्क्रियमाणे तदूषणे प्रकृतानुपयोगित्वं स्यात् ॥ २४०७ ॥ २४०८ ॥ २४०९ ॥

एतदेव दर्शयति—यथार्थेत्यादि ।

यथार्थज्ञानहेतुत्वं श्रुतेः प्रकृतमत्र हि ।

न नराकरणेऽप्येतत्सिद्धयतीति च साधितम् ॥ २४१० ॥

आहोपुरुषिका येति ।

आ(होपुरु)षिका याऽत्र संक्षिप्तं किञ्चिदुच्यते ।

विसरन्ति यथाऽनेन गतयः सूक्ष्मधीदृशाम् ॥ २४११ ॥

आहोपुरुष इति यस्याभिमानोऽस्ति सोऽहोपुरुषस्तद्भाव आहोपुरुषिका । मनोज्ञादित्वाद्बुद्धिः । अभिमान एवोच्यते । धीरेव दृक्, साधर्म्याद्दृक्सा, सूक्ष्मा धीदृक् तेषां ते तथोक्ताः ॥ २४११ ॥

यदुक्तं—स पञ्चभिरगम्यत्वादित्यादि, तत्राह—प्रमाणानामित्यादि ।

प्रमाणानां निवृत्त्याऽपि न प्रमेयं निवर्त्तते ।

यस्माद्वापकहेतुत्वं तेषां तत्र न विद्यते ॥ २४१२ ॥

अनेनासिद्धतां मौले हेतौ प्रतिपादयति । व्यापको हि स्वभावः कारणं वा निवर्त्तमानं व्याप्यं कार्यं वा निवर्त्तयति । तादात्म्यतदुत्पत्तिभ्यां तयोस्तत्र प्रतिबद्धत्वात् । तदभावेऽपि भवतः कार्यव्याप्यत्वानुपपत्तेः । न तु तेषां प्रमाणानां तत्र सर्वस्मिन्वस्तुनि व्यापकहेतुत्वे सम्भवतः । तथाहि—देशकालस्वभावा(त्) विप्रकृष्टस्य वस्तुनो विनापि प्रमाणेन सम्भवान्न तेन व्याप्तिः; नापि कारणं प्रमाणमत एव, प्रमाणस्यैव च प्रमेयकार्यत्वात् । न च कार्यं निवर्त्तमानं कारणमात्रं निवर्त्तयति व्यभिचारदर्शनात् । न चाहेतव्यव्यापकयोर्निर्व(व?)र्त्तकत्वं युक्तमतिप्रसङ्गात् । तस्मात्प्रमाणमात्राभावो व्यभिचारी प्रमेयमात्राभावे साध्य इति स्थितम् ॥ २४१२ ॥

तामेव व्यभिचारितां विपक्षे सम्भवोपदर्शनेन व्यक्तीकुर्वन्नाह — तत्पञ्चभिरित्यादि ।

तत्पञ्चभिरगम्योऽपि नाभावेनै(वोऽस्या?)व गम्यते ।

कर्त्ता श्रुतेरविज्ञातकर्तृकाख्यायिकादिवत् ॥ २४१३ ॥

तदिति । तस्मात् । पञ्चभिरगम्योऽपीति कर्त्ता श्रुतेरिति व्यवहितेन सम्बन्धः । अविज्ञातः कर्त्ता येषामाख्यायिकादीनां ते तथोक्ताः । पञ्चादाख्यायिकादिशब्देन कर्मधारयस्ततः षष्ठ्यन्ताद्धतिः कार्यः ॥ २४१३ ॥

अथापीत्यादिना हेतोर्व्यभिचारविषयासिद्धिमाशङ्कते ।

अथापि सार्थकत्वेन विभक्तार्थतयाऽपि वा ।

तेषां कर्त्ताऽनुमीयेत, श्रुतेरपि तथा न किम् ॥ २४१४ ॥

तेषामिति । आख्यायिकादीनाम् । श्रुतेरपि तथा न किमिति । वेदस्यापि तथैव सार्थकत्वविभक्तार्थत्वाभ्यां किं न कर्त्ताऽनुमीयते विशेषाभावात् । ततश्च प्रमाणाभावोऽसिद्धः ॥ २४१४ ॥

किञ्च—सर्वसत्त्वप्रमाणनिवृत्तिः स्वस्य प्रमाणनिवृत्तिर्वेति पक्षद्वयम् । तत्राद्ये पक्षे सन्दिग्धासिद्धता हेतोः, द्वितीयेऽप्यनैकान्तिकतेति दर्शयन्नाह—सर्वसत्त्वेत्यादि ।

सर्वसत्त्वैरगम्यत्वं संदिग्धं तु कदाचन ।

केनचित्कोऽपि मानेन वेत्तीत्यपि हि शङ्क्यते ॥ २४१५ ॥

येन (यन्न?) त्रिभुवनान्नस्थाः सर्वे प्राणभृतः स्फुटम् ।

सर्वात्मनाऽपरिच्छिन्नाः सुनिश्चेतुमिमं क्षमाः ॥ २४१६ ॥

स्वयं त्वगम्यमानत्वं व्यभिचारि तथाहि ते ।

पुरुषान्तरसंकल्पैस्तदभावो न निश्चितः ॥ २४१७ ॥

इममिति । सर्वसत्त्वैर्न वेदस्य कर्त्ता ज्ञायत इत्येवम् । तथाहीत्यादिना पुरुषान्तरभाविभिश्छात्रादिसङ्कल्पैर्व्यभिचारितामेव समर्थयते ॥ २४१५ ॥ १४१६ ॥ ॥ २४१७ ॥

यदुक्तं कर्त्ता तावददृष्ट इति, अस्यासिद्धतां प्रतिपादयन्नाह—अध्येतारश्चेत्यादि ।

अध्येतारश्च वेदानां कर्त्तारोऽध्यक्षतो मताः ।

न हि ते व्यञ्जका युक्ता नित्यानां व्यक्तयसम्भवात् ॥ २४१८ ॥

यदि यः कश्चित्कर्ता न दृष्ट इत्यभ्युपगम्यते तदाऽध्येतृणां दृष्टत्वात्स्फुटतरमव-  
तरत्यसिद्धता । अथादिकर्ता न दृष्ट इतीष्टं तदापि संदिग्धासिद्धतैव । कदाचित्के-  
नचिद्दृष्टोऽभूदिति सम्भाव्यमानत्वात् । अथापि स्यादध्येतारो न कर्तारः सिद्धाः,  
किं तर्हि ? , व्यक्त्वार इत्याह—न हीत्यादि । त इति । अध्येतारः । यथा च नि-  
त्यानां व्यक्तेरसम्भवस्तथा पश्चात्प्रतिपादयिष्यति । अनित्यस्यापि घटादेः कथं व्य-  
ञ्जक इति चेत् । सत्यम् । तत्रापि न कश्चिद्व्यञ्जकः सम्भवति । कथं तर्हि दीपा-  
दयो व्यञ्जकत्वेन प्रतीता इति चेत् । न । तत्र हि विज्ञानजनने योग्यं घटं जनय-  
न्प्रदीपादिर्जनक एव । विशिष्टजनकस्वभावस्यापनाय लोके व्यञ्जक इति प्रतीयते ।  
न तु तथा वेदस्य कश्चिद्व्यञ्जकः सम्भवति, अव्यक्तानुत्पन्नपूर्वापरस्वभावत्वात्तस्य  
॥ २४१८ ॥

भवतु नाम नित्यस्य व्यञ्जकस्तथाप्यसौ कारकान्न विशिष्यत इति दर्शयन्नाह —  
उपलभ्येत्यादि ।

**उपलभ्यस्वभावानां तद्व्यापारे समुद्भवः ।**

**तेषां प्रागपि सद्भावे उपलब्धिः प्रसज्यते ॥ २४१९ ॥**

नष्टकिञ्चित्करो व्यञ्जको युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । किञ्चित्करत्वे जनकत्वमेवास्या-  
भ्युपगतं स्यात् । जन्यमानस्य विशेषस्य स्वभावान्तरोत्पत्तिलक्षणत्वात् । उपलभ्य-  
स्वभावानामिति । वेदानाम् । अथापि स्यात्प्रागप्युपलभ्यस्वभावा वेदाः स्थिता  
एव, तत्कथं तद्व्यापारेण सम्भवस्तेषामित्याह—तेषामित्यादि । तेषामिति । उप-  
लभ्यस्वभावानां वेदानाम् ॥ २४१९ ॥

तत्कार्येत्यादिना प्रमाणयति ।

**तत्कार्यव्यवहारादियोग्यो वेदोऽवसीयते ।**

**तद्व्यापारेऽस्य सद्भावाद्बीजादेरङ्कुरादिवत् ॥ २४२० ॥**

प्रयोगः—यो यद्व्यापारे सति भवति स तत्कार्यव्यवहारादियोग्यः, यथा  
बीजादिव्यापारे सति भवन्नङ्कुरादिस्तत्कार्यः, अध्येतृव्यापारे सति भवत्युपलभ्यस्व-  
भावो वेद इति स्वभावहेतुः । हानोपादानलक्षणमनुष्ठानं व्यवहारः । आदिशब्देन  
ज्ञानाभिधानपरिग्रहः । नासिद्धो हेतुः प्रागप्युपलब्धिप्रसङ्गात् । नाप्यनैकान्तिकः,  
कार्यव्यवहारस्य निमित्तान्तराभावात् ॥ २४२० ॥

यदुक्तमदृष्टपूर्वसम्बन्ध इत्यादि तत्राह—व्यञ्जनेत्यादि ।

व्यञ्जनक्रमरूपत्वात्नाटकारुयायिकादिवत् ।

वेदानां पौरुषेयत्वमनुमाऽप्यवगच्छति ॥ २४२१ ॥

प्रयोगः—यद्व्यञ्जनक्रमरूपं तत्पौरुषेयम्, यथा नाटकारुयायिकादि व्यञ्जन-  
क्रमरूपश्च वेद इति स्वभावहेतुः । नासिद्धो हेतुः, क्रमेणैव वर्णानां प्रतिभासनात्  
॥ २४२१ ॥

नाप्यनैकान्तिक इति दर्शयन्नाह—अन्यथेत्यादि ।

अन्यथा क्रमरूपत्वं नित्यत्वाद्ब्रूयासितश्च न ।

नाभिव्यक्तिक्रमश्चास्ति नित्यत्वे व्यस्ययोगतः ॥ २४२२ ॥

अन्यथेति । यदि पौरुषेयत्वं न स्यादपि तु नित्यत्वं विभुत्वं च वर्ण्येत तदा  
क्रमो न स्यात् । तथाहि—न तावद्दीजाङ्गुरलतादिवत्कालकृतः क्रमो युज्यते, नि-  
त्यत्वेन सर्वेषां समकालत्वात् । नापि पिपीलिकादिपङ्क्तिवद्देशकृतः, व्यापित्वेन  
सर्वेषामेकनभोदेशावस्थानात् । नाप्यभिव्यक्तिकृतः, अनाधेयातिशयत्वेन नित्यस्य  
व्यक्तेरयोगात् ॥ २४२२ ॥

यदुक्तमागमोऽपि न तत्सिद्धयै कृतकाकृतकोऽस्तीत्यादि, अत्राह—आगमस्ये-  
त्यादि ।

आगमस्योपमायाश्च सार्थापत्तेः प्रमाणता ।

निषिद्धा प्राक्ततस्तासामुपन्यासो न युज्यते ॥ २४२३ ॥

निषिद्धेति । प्रमाणपरीक्षायाम् । तासामिति । आगमोपमानार्थापत्तीनाम्  
॥ २४२३ ॥

यदुक्तप्रामाण्यनिवृत्त्यर्थेत्यादि । अत्राह—अप्रामाण्येत्यादि ।

अप्रामाण्यनिवृत्त्यर्था वेदस्यापौरुषेयता ।

येष्टा साऽपि च वस्तुत्वात्साधनीयैव साधनैः ॥ २४२४ ॥

कथं वस्तुत्वं तस्या इत्याह—श्रुतेरित्यादि ।

श्रुतेः स्वतन्त्रतैषादि(मेष्टा हि?) पुंव्यापारानपेक्षणात् ।

सा च वस्तुगतो धर्मो वस्तुत्वात्मा वा तथाविधः ॥ २४२५ ॥

अपौरुषेयतेत्यनेन श्रुतेः स्वतन्त्रताऽभिधीयते । पुरुषव्यापारनिरपेक्षा तत एव

श्रुतिः प्रमाणमित्यभिसम्बन्धेन प्रयोगात् । अन्यथा हि कोऽतिशयः पौरुषेयत्वनिवृत्तिमात्रे प्रतिपादिते प्रतिपादिनः स्यात् । सा चापौरुषेयता वस्तुधर्मो येषां धर्मधर्मिभेदः पारमार्थिकः । परमार्थस्तु स्वभाव एव वस्तुनो मेदान्तरप्रतिक्षेपजिज्ञासायां तथोच्यत इति दर्शयति—वस्त्वात्मा वेति । तथाविध इति । स्वतन्त्रः ॥ २४२५ ॥

यदुक्तम्—भावपक्षप्रसिद्धयर्थमित्यादि, तत्राह—भावपक्षेत्यादि ।

भावपक्षप्रसिद्धयर्थमुच्यते यच्च साधनम् ।

निराकृतेऽपि ते तस्मिन्नाभावः सिद्धयति स्वयम् ॥२४२६॥

तद्भावसाधनेऽप्यस्ते न स्यात्तद्भावनिश्चयः ।

तद्भावविनिवृत्तेस्तु तन्मात्रान्नास्ति निश्चयः ॥ २४२७ ॥

निवृत्तावपि मानानामर्थाभावाप्रसिद्धितः ।

तेनैतावद्भवेन्नास्ति पक्षसिद्धिर्द्वयोरपि ॥ २४२८ ॥

यस्य हि वस्तुनो निश्चयाय साधनमुपादीयते तस्मिन्निराकृते तत्र वस्तुनि ततो निश्चयो न भवतीत्येतावन्मात्रं स्यात्, न वस्तुनोऽपि निवृत्तिः, यतः प्रमाणनिवृत्तावपि प्रमेयस्य न निवृत्तिरिति प्रतिपादितम् । तस्य हेतुत्वव्यापकत्वविकल्पात् । अस्त-इति । क्षिप्ते । एतावत्तु वक्तुं युक्तं द्वयोरपि पक्षसिद्धिर्नास्तीति । इतिशब्दोऽध्याहार्यः । स च नास्तीत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः ॥ २४२६ ॥ २४२७ ॥ २४२८ ॥

एतदेवोदाहरणेन द्रढयन्नाह—नामूर्त्तत्वादिति ।

नामूर्त्तत्वाद्यथा शब्दः सुखादौ व्यभिचारतः ।

इत्युक्तेऽपि न शब्दस्य विनाशित्वं प्रसिद्धयति ॥ २४२९ ॥

यथाहि नित्यवादिना शब्दस्य वस्तुभूतं नित्यत्वं सिसाधयिषता नित्यः शब्दो अमूर्त्तत्वादाकाशवदिति प्रयोगे कृते, प्रतिवादिना नामूर्त्तत्वान्नित्यः शब्दो युक्तः सुखादिभिरनैकान्तादित्येवं वस्तुभूतनित्यत्वे साधने निराकृतेऽपि नहि शब्दस्थानित्यत्वं सिद्धयति, तथेदमपीति शेषः । यथेति भिन्नक्रमः । उक्तेऽपीत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । शब्द इत्यस्यानन्तरं नित्यः सिद्धयतीत्येतदध्याहार्यम् । एकदेशप्रयोगो वा मीमादिवद्द्रष्टव्यः ॥ २४२९ ॥

यत्तु पूर्वापरयोरित्यादावाह—तत्पूर्वापरयोरित्यादि ।

तत्पूर्वापरयोः कोऽप्योर्यदुक्तं साधनं परैः ।

तन्निराकरणेऽप्येनेऽकृतार्था वेदवादिनः ॥ २४३० ॥

तदिति । तस्मात् । अकृतार्था इति । स्वपक्षासिद्धेः ॥ २४३० ॥

यदुक्तम्—अकृतत्वाविनाशाभ्यां नित्यत्वं हि विवक्षितमित्यादि । अत्राह—अकृतत्वेत्यादि ।

अकृतत्वाविनाशाभ्यां नित्यत्वं चेद्विवक्षितम् ।

निषेधमात्ररूपाभ्यां निरुपाख्येऽपि तत्समम् ॥ २४३१ ॥

अतो गगनराजीव नित्यताऽस्ति न वास्तवी ।

यथा तथैव वेदेऽपि तत्प्रामाण्यं न सिद्धयति ॥ २४३२ ॥

अत्र द्वयीकरणेन, किं प्रसज्यप्रतिषेधरूपाभ्यामकृतकत्वाविनाशाभ्यां नित्यत्वमिष्टम्, पर्युदासरूपाभ्यां वा । तत्राद्ये पक्षे गगनपद्मादिनाऽनैकान्ताद्वेदस्य न वस्तुभूतनित्यत्वसिद्धिः । तथाऽऽकाशकुशेशयस्य कृतकत्वविनाशित्वनिषेधेऽपि न वस्तुभूतनित्यत्वसिद्धिः । तथा वेदेऽपीत्यनैकान्तिकता हेतोः । ततश्चाकाशकुसुमवदेव प्रामाण्यमपि न स्यात् ॥ २४३१ ॥ २४३२ ॥

असिद्धतामपि दर्शयन्नाह—कृतकत्वेत्यादि ।

कृतकत्वविनाशित्वनिषेधोऽपि न सिद्धयति ।

साधनेऽस्त इति प्रोक्तं तन्नित्यत्वं न सिद्धयति ॥ २४३३ ॥

अस्त इति दूषिते । तदिति तस्मात् ॥ २४३३ ॥

अथ द्वितीयः पक्षः, न तर्हि वक्तव्यमेतत्—तौ चाभावात्मकत्वेन नापेक्षेते स्वसाधनमिति तद्दर्शयति—पर्युदासात्मकाभ्यामित्यादि ।

पर्युदासात्मकाभ्यां चेन्नाभ्यां नित्यत्वमिष्यते ।

तौ तद्भावात्मकत्वेन व्यपेक्षेते स्वसाधनम् ॥ २४३४ ॥

नित्यत्वं वस्तुरूपं यत्तदसाधयतां न तत् ।

स्वयं भवति तत्सिद्धिः पूर्वपक्षद्वये हते ॥ २४३५ ॥

सुबोधम् ॥ २४३४ ॥ २४३५ ॥

यदुक्तं वेदवाक्यार्थमिध्यात्वं यो वदत्यनुमानत इत्यादि । तत्राह—विनिश्चितत्रिरूपमित्यादि ।

विनिश्चितत्रिरूपं च साधनं यत्प्रकाशितम् ।

निषेधः शक्यते तस्य त्वत्पित्राऽपि न जातुचित् ॥ २४३६ ॥



प्रकाशितमिति । अनुमानपरीक्षायां स्वभावकार्यानुपलम्भलिङ्गजम् । तन्न शक्यते प्रतिषेद्धुम्, वस्तुप्रतिबद्धत्वादस्य । न च वस्तुनः स्वभावान्यथात्वं केनचि-  
त्क्रियेत, स्वभावान्तरोत्पत्तिलक्षणत्वात्तस्य । न च स्वभावान्तरकरणे तस्य किञ्चित्कृतं  
भवत्यतिप्रसङ्गात् । तस्माद्यत्प्रमाणसिद्धवस्तु न तस्य केनचिद्वाधा । अन्यथा हि  
प्रमाणलक्षणोपपन्नस्य बाधायां तल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासान्न कचि-  
त्तत्प्रमाणं स्यात् ॥ २४३६ ॥

एतदेव दर्शयति—न हि शीर्यत इत्यादि ।

न हि शीर्यत इत्युक्तो वेदे यः पुरुषोऽस्य च ।

बाधाऽनुमानतः स्पष्टा नैरात्म्ये प्रतिपादिता ॥ २४३७ ॥

जात्याद्यन्यदपि प्रोक्तं बाधितं तत्र साधितम् ।

ज्ञापितप्रतिबन्धा च साऽनुमा प्राक्प्रबाधिका ॥ २४३८ ॥

तथोक्तं वेदे “स एवायमात्मे”ति प्रकृत्यामनन्ति—“अशीर्यो न हि शीर्यत”  
इति । पुनोश्चक्तम्—“अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छिन्तिधर्मे”ति । न शीर्यत  
इत्यशीर्यो नित्य इत्यर्थः । अरे इत्यामन्नणपदम् । जात्यादीत्यादिशब्देन गुणद्रव्यक-  
र्मादिपरिग्रहः । तच्च जात्यादि यथा प्रमाणबाधितं तच्च षट्पदार्थपरीक्षायां साधि-  
तम् । या चात्मनो बाधिकाऽनुमा साऽपि ज्ञापितप्रतिबन्धा नैरात्म्याधिकारे  
॥ २४३७ ॥ २४३८ ॥

ननु च वेदे प्र(मी)यमाणं तत्कथमत्र(नु?)मया बाध्यते, अथ प्रमाणमपि बाध्येत ।  
अनुमाऽपि कस्मात्तेन न बाध्यत इत्याशङ्क्याह—तस्या इत्यादि ।

तस्या वस्तुनिबद्धायाः को बाधां मंस्यते जडः ।

शब्दमात्रेण तुच्छेन तद्भाविन्याऽथवा धिया ॥ २४३९ ॥

तस्या इति । अनुमायाः । शब्दस्येच्छामात्रनिबन्धनत्वान्न प्रमेये वस्तुनि प्रतिब-  
न्धोऽस्तीति न स तत्र प्रमाणम् । अनुमा तु तादात्म्यतदुत्पत्तिप्रतिबद्धलिङ्गबलेनो-  
त्पद्यमाना तत्र वस्तुनि प्रतिबद्धेति सैव प्रमाणमतो बाधिका । तद्भाविन्येति ।  
शब्दभाविन्या ॥ २४३९ ॥

अथाप्रतिबद्धोऽपि वस्तुनि शब्दः प्रमाणं स्यात्तदाऽतिप्रसङ्गः स्यादित्यादर्शयति  
—पुंवाक्यादपीति ।

पुंवाक्यादपि विज्ञानं यत्प्रवृत्तमतीन्द्रिये ।

तस्याप्यध्यक्षतुल्यत्वं कस्मादभिमतं न वः ॥ २४४० ॥

अग्निहोत्रात्स्वर्गो न भवतीत्यस्यापि वाक्यस्य किं न प्रामाण्यं स्यात्, उभयत्रा-  
प्रतिबद्धत्वेनाविशेषात् ॥ २४४० ॥

तमेवाविशेषं दर्शयन्नाह—इष्टान्तेत्यादि ।

इष्टान्तनिरपेक्षत्वाद्दोषाभावोऽप्यदृष्टितः ।

तस्याप्यस्येव बाधा चेच्छङ्कयतेऽस्य नराभ्रयात् ॥ २४४१ ॥

यथेवं वैदिकेऽप्येषा न शङ्का विनिवर्त्तते ।

मिथ्यावबोधहेतुत्वं तस्य हि प्राकृतं भवेत् ॥ २४४२ ॥

अथापि स्यात्—यदि नाम तदानीं दोषो नोपलभ्येत तथापि पुरुषाश्रयत्वेन  
सम्भाव्यत इति; एतद्वेदेऽपि समानम्, यथा हि तस्य प्राकृतं सत्यार्थत्वं तथा  
मिथ्यार्थत्वमपि सम्भाव्येतेति न कश्चिद्विशेषः ॥ २४४१ ॥ २४४२ ॥

यदुक्तं ममाप्रमाणमित्यादि, तदेतत्पौरुषेयेऽप्यग्निहोत्रात्स्वर्गो न भवतीत्यादौ  
वाक्ये शक्यमेव वक्तुमित्यादर्शयति—ममाप्रमाणमित्यादि ।

ममाप्रमाणमित्येवं शब्दोऽर्थं बोधयन्नपि ।

नारोऽसौ द्वेषमात्रेण शक्यो वक्तुं न साधुना ॥ २४४३ ॥

अग्निहोत्रात्स्वर्गो न भवतीत्ययं नारः—पौरुषेयशब्दोऽर्थं बोधयन्नपि मम मीमां-  
सकस्याप्रमाणमित्येवं न साधुना द्वेषमात्रेण शक्यं वक्तुमिति वाक्यार्थः । अनेन  
( पौरुषा ) पौरुषेययोरत्यन्तपरोक्षेऽर्थे तुल्यं प्रतीतिनिबन्धनत्वमाह । ततश्च तुल्ये  
प्रतीतिनिबन्धनत्वे यदपौरुषेयस्यैव प्रामाण्यं तद(नेतर?)स्येति निर्युक्तिकमेतत् ।  
न च दोषाणां पुरुषाश्रयत्वात्तत्र मिथ्यात्वं शङ्कयते नापौरुषेयेष्विति शक्यं वक्तुम् ।  
अपौरुषेयेष्वपि मिथ्यार्थप्रत्ययहेतुत्वस्य सम्भाव्यमानत्वात् ॥ २४४३ ॥

एनमेवार्थं दर्शयति—इत्यत्यक्षेष्विति ।

इत्यत्यक्षेषु सर्वोऽपि शब्दस्तुल्यबलाबलः ।

एकत्रैवानुरागोऽयं तद्वः केनेह हेतुना ॥ २४४४ ॥

सर्व इति । पौरुषेयः । एकत्रैवेति अपौरुषेये ॥ २४४४ ॥

यदुक्तं द्विषतोऽपीत्यादि, तत्राह—अनन्तरोदितमित्यादि ।

अनन्तरोदितं न्यायं वेदाप्रामाण्यकारणम् ।

प्राज्ञा जरूपन्ति तेनामी भवेयुः सत्यवादिनः ॥ २४४५ ॥

अनन्तरोदितमिति । शब्दस्येच्छामात्रवृत्तित्वेन वस्तुनि प्रतिबन्धाभावादित्यादि । प्राज्ञा इति । सौगताः । यथो(चो?)क्तं भाष्यकारेण—‘प्रत्यक्षस्तु वेदवचने प्रत्ययो न चानुमानं प्रत्यक्षविरोधेन प्रमाणीभवती’ति, यच्चेदमुक्तं—‘चोदना हि मृतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थं शक्तोत्यवगमयितुं नान्यत्किञ्चनेन्द्रिय’मित्येवमादि, तत्सर्वम(मे?)तेनैव प्रत्यक्षं (स्तं?) भवति । पौरुषेयेऽपि वाक्ये सर्वत्यैतस्य समानत्वात् ॥ २४४५ ॥

यदुक्तं धारणाध्ययनव्याख्येत्यादि, तत्राह—मिथ्यानुरागेत्यादि ।

मिथ्यानुरागसंजातवेदाध्यानजडीकृतैः ।

मिथ्यात्वहेतुरज्ञात इति चित्रं न किञ्चन ॥ २४४६ ॥

नहि मातृविवाहादौ दोषः कश्चिदपीक्ष्यते ।

पारसीकादिभिर्धूर्तैस्त्वदाचारपरैः सदा ॥ २४४७ ॥

मिथ्यानुरागेण संजातं च तद्वेदाध्यानं चेति समस्य तेन जडीकृता इति पश्चात्तृतीयासमासः । आध्यानं चानुपूर्व्येण चिन्ता । मिथ्यानुरागेण हि विद्यमानस्यापि दोषस्यादर्शनात् । यथा पारसीकादिभिर्मातृविवाहादेरिति न किञ्चिदाश्चर्यम् ॥ २४४६ ॥ २४४७ ॥

यदुक्तं किञ्च शब्दस्य नित्यत्वमित्यादि, तत्राह—प्रत्यक्षेत्यादि ।

प्रत्यक्षप्रत्यभिज्ञा तु प्रागेव विनिवारिता ।

भ्रान्तेः सकल्पनत्वाच्च नातो नित्यत्वनिश्चयः ॥ २४४८ ॥

कल्पनापोढमभ्रान्तमिति हि प्रत्यक्षलक्षणम्, न च प्रत्यभिज्ञानं कल्पनापोढम्, स एवायमिति शब्दाकारोल्लेखेन प्रवृत्तेः । नाप्यभ्रान्तं पूर्वदृष्टप्रत्युत्पन्नयोरैक्यानुसन्धानात् । न च यदेव पूर्वदृष्टं तदेव पश्चाद्दृश्यते, अकमिणः सकाशात् क्रमिज्ञानानुत्पत्तेः । कार्यं हि कुतश्चिद्भवन्धर्मि, यत्कदाचिन्न भवति तत्तस्याविकलं चेत्कारणं किमिति कार्याणि परिलम्बन्ते । न चापि नित्यस्यानुपकार्यतया काचिदपेक्षा सम्भविनी । तस्मात्तद्भावीनि ज्ञानानि युगपद्भवेयुः । प्रयोगः—यद्यदाऽविकलकारणं तत्तदा भवत्येव, तथा समवहितसकलचक्षुरादिकारणकलापं चक्षुर्ज्ञानम् । अवि-

कलकारणानि च सर्वस्याभवस्थायां गवादिशब्दभावीनि विज्ञानानीति स्वभावहेतुः ।  
तस्माद्भ्रान्तेः सविकल्पकत्वाच्च प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षत्वेन सिद्धेति प्रागेव स्थिरभावप-  
रीक्षायां प्रतिपादितम् ॥ २४४८ ॥

न चापि स्वरूपतः सर्वत्र प्रत्यभिज्ञानं सिद्धमित्यादर्शयन्नाह—व्यावर्त्तमानेत्यादि ।

व्यावर्त्तमानरूपश्च भूयसा प्रत्ययो ध्वनौ ।

शुकस्य व्याहृतं चेदं शारिकाया इतीक्षणात् ॥ २४४९ ॥

सोऽयं व्यञ्जकभेदाचेद्वक्ष्यामो व्यक्त्यपाक्रियाम् ।

अस्मादेव च ते न्यायात्सर्वमेकमिदं भवेत् ॥ २४५० ॥

ततो न व्यञ्जकं किञ्चिद्व्ययं किञ्चिन्न वा भवेत् ।

एकस्मिन्नविभक्ते हि व्याहृता भेदकल्पना ॥ २४५१ ॥

पौरुषेया इमे शब्दा एते चानरकर्तृकाः ।

व्यवस्थेषाऽपि वो न स्यात्प्रत्यभिज्ञोपजीविनी ॥ २४५२ ॥

यदा हि शुकसारिकादिमिर्व्याह्रियते शब्दस्तदा—इदं शारिकाया व्याहृतमिदं  
शुकस्येति परस्परमिन्नविषयाध्यवसायाद्व्यावर्त्तमानः प्रत्ययो भवतीति न सर्वत्र  
सिद्धा प्रत्यभिज्ञा । अथापि स्याद्व्यञ्जकभेदादयं शुकादिव्याहारे परस्परव्यावृत्तः प्र-  
त्ययो जायत इति, एतदपि वार्त्तम्, व्यञ्जकस्य निराकरिष्यमाणत्वात् । एतदेवाह—  
सोऽयमित्यादि । सोऽयमिति । व्यावर्त्तमानरूपः प्रत्ययः । किञ्च—यदि सिद्धो-  
ऽपि भेद शब्दानां व्यञ्जककृतो व्यवस्थाप्यते, न स्वतः, तदा सर्वत्रानाश्वास इत्य-  
तिप्रसङ्गमापादयन्नाह—अस्मादेव चेत्यादि । सर्वमिति । विश्वम् । भवत्वेवमिति  
चेदाह—ततो नेत्यादि । इदं व्यञ्जकमयं व्यञ्ज्य इति भेदनिबन्धनो व्यवहारो न  
स्या(द)भेदात् । तथा—इमे पौरुषेया एते च शनो देवीरित्यादयोऽपौरुषेया इति व्य-  
वस्था प्रत्यभिज्ञानपरायणानां भवतां नैव भवेद्विशेषाभावात् ॥ २४४९ ॥ २४५० ॥  
॥ २४५१ ॥ २४५२ ॥

केचिदित्यादिना परो वैदिकलौकिकभेदव्यवस्थां दर्शयति ।

(केचिदेक)क्रमा एव व्यञ्जकक्रमसंस्थितेः ।

इष्टा अपौरुषेयास्ते नियतक्रमयोगिनः ॥ २४५३ ॥

व्यञ्जकक्रमस्य संस्थितेर्नियतत्वात्केचिच्छनो देवीरित्यादयो नियतक्रमा एव प्रती-

यन्ते, अतस्ते नियतक्रमयोगिनोऽपौरुषेया इष्टाः, तद्विपरिताः सामर्थ्यात्पौरुषेया इति सिद्धम् ॥ २४५३ ॥

नन्वयमित्यादिना दूषयति ।

नन्वयं पौरुषो धर्मस्ताल्वा(दिव्यञ्जकक्रमः) ।

(तस्मात्कदाचित्तस्यापि सम्भाव्येत)विपर्ययः ॥ २४५४ ॥

नियतक्रमयोगित्वमसिद्धम् । तथाहि—व्यञ्जकक्रमनियमात्तद्विष्टं, स च व्यञ्जकानां ताल्वादीनां क्रमः पुरुषेच्छायत्तत्त्वित्वादनियतः पुरुषेच्छायाः स्वातन्त्र्यात् । यदाह—‘यत्र स्वातन्त्र्यमिच्छाया नियमो नाम तत्र क’ इति । ततश्च शंनो देवीरित्यादेः सर्वकालमयमेव क्रमोऽभूद्भविष्यतीत्यत्र नियामकप्रमाणाभावात्कदाचिदन्यथाऽपि सम्भाव्येत क्रमः ॥ २४५४ ॥

यदुक्तं ज्वालादेः क्षणिकत्वेऽपि प्रत्यभिज्ञेत्यादि, तत्राह—तेजस्त्वादीत्यादि ।

तेजस्त्वादि च सामान्यं विस्तरेण निराकृतम् ।

तत्रातः प्रत्यभिज्ञेयं सामान्यं नित्यमेव नः(न?) ॥ २४५५ ॥

सर्वमेतद्वर्णेष्वपि कल्पयितुं शक्यत इति दर्शयन्नाह—वर्णेष्वित्यादि ।

वर्णेषु शक्यते (चेयं प्रत्यभिज्ञा) विनाशिषु ।

सामान्यं प्रत्यभिज्ञेयं मत्वा(तं?) ये वा (षां?)विशेषतः ॥ २४५६ ॥

भेदबुद्धिस्तु यत्रांशे द्रुतमन्दादिके भवेत् ।

तत्र न प्रत्यभिज्ञानं भवे(.....) ॥ २४५७ ॥

सामान्यमिति । अन्यव्यावृत्तिलक्षणम् ॥ २४५६ ॥ २४५७ ॥

देशकालादिभिन्नाश्च गोशब्दव्यक्तिबुद्धय इत्यादावाह—शब्दैकत्वेत्यादि ।

(शब्दैकत्वप्रसिद्धयर्थं)प्रयुक्तेषु तु हेतुषु ।

विजातीयाविरोधित्वात्प्रतिबन्धो न सिद्धयति ॥ २४५८ ॥

शब्दैकत्वप्रतिपादनाय ये अनुमानप्रयोगा उक्तास्तेषु सिद्धे विपर्यये हेतोर्बाधकप्रमाणानुपदर्शनात् सर्वथैवानैकान्तिकता ॥ २४५८ ॥

यदुक्तम्—य ईदृक् स स्थिरो दृष्टो धूमसामान्यभागवदित्यस्य दृष्टान्तस्य साध्यविकलतामादर्शयन्नाह—धूमसामान्येत्यादि ।

धूमसामान्यभागोऽपि नैव(.....) ।

(.....) सिद्धसाधनम् ॥ २४५९ ॥

वस्त्वेव विजातीयपरावृत्तं सामान्यं लिङ्गमुच्यते नान्यत्, तन्नानित्यमेवेति साध्यविकलता दृष्टान्तस्य ॥ २४५९ ॥

यदुक्तं घटादेरेकतापत्तावित्यादि, तदयं वर्णेष्वपि परिहारः समान इत्यादर्शयति—गादेरित्यादि ।

गादेरप्येकतापत्तौ जात्येष्टं सिद्धसाधनम् ।

अतद्रूपपरावृत्तिरभिन्ना कल्पितैव हि ॥ २४६० ॥

व्यक्तीना(मेकतापत्तावनैकान्तिकता भवेत्) ।

(प्रति) प्रयोगमाक्षाद्यैर्बर्णभेदविनिश्चयात् ॥ २४६१ ॥

देशकालादिभिन्नाश्वेत्यादिना प्रयोगप्रपञ्चेन यद्यन्यापोहलक्षणस्य सामान्यस्यैकत्वं साध्यते तदा सिद्धसाध्यता, सर्वत्रातद्रूपव्यावृत्तिलक्षणस्य सामान्यस्यैकबुद्ध्याध्यवसायवशेनैकत्वस्येष्टत्वात् । अथ व्यक्तीनां स्वलक्षणानामेकत्वं साध्यते तदा प्रत्यक्षानुमानाभ्यां व्याप्तेर्बाधितत्वादनैकान्तिकता हेतूनाम् । आक्षाद्येरिति । अक्षमिन्द्रियं तत्र भवमाक्षम्, प्रत्यक्षमिति यावत् । आदिशब्देनानुमानपरिग्रहः । बहुवचनं व्यक्तिभेदापेक्षया ॥ २४६० ॥ २४६१ ॥

कथं प्रत्यक्षतो भेदोऽवगत इत्याह—यन्मनोज्ञेत्यादि ।

यन्मनोज्ञामनोज्ञादिभेदः प्रत्यक्षतो गतः ।

बुद्धीनां क्रमभाविताद्भेदः सिद्धः(कुमारिवत्) ॥ २४६२ ॥

(देशका)लादिभिन्ना हि गोशब्दव्यक्तिबुद्ध्यः ।

नैकार्था भिन्ननिर्भासाद्रसरूपादिवृद्धिवत् ॥ २४६३ ॥

षड्भादिभेदनिर्भासः प्रत्यक्षेण हि निश्चितः ।

न च व्यञ्जकव.....तदभिधास्यते ॥ २४६४ ॥

अनुकूलो मनोज्ञः । विपर्ययाद्विपर्ययः । अनुमानतोऽपि बाधामाह—बुद्धीनामित्यादि । अस्यार्थो ह्यस्तनाद्यतना इत्यादिना स्पष्टीकरिष्यते । प्रयोगः—या या भिन्नावभासा बुद्ध्यस्ताः सर्वा नैकविषयाः, यथा रसरूपादिविषयाः, भिन्ननिर्भासाश्च देशकालादिभिन्ना गोशब्दव्यक्तिबुद्ध्य इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः । असिद्धतामस्य परिहरमाह—षड्भादीत्यादि ॥ २४६२ ॥ २४६३ ॥ २४६४ ॥

बुद्धीनां क्रमभावाच्च भेदः सिद्धः कुमारिवदित्यस्यार्थं प्रमाणयन्माह—ह्यस्तना इत्यादि ।

खस्तनाद्यतनाः सर्वे गोशब्दप्रत्यया इमे ।

नैकार्थाः क्रमसम्भूते रूपगन्धादिबुद्धिषत् ॥ २४६५ ॥

प्रयोगः—ये ये क्रमिणः प्रत्ययास्ते नैकविषयाः, तद्यथा रसरूपादिप्रत्ययाः क्रमिणः, क्रमभाविनश्चेमे खस्तनाद्यतना गोशब्दविषयाः प्रत्यया इति व्यापकवि-  
रुद्धोपलब्धिः ॥ २४६५ ॥

अन्यथेत्यादिना द्वयोरपि हेत्वोरनैकान्तिकतां परिहरति ।

अन्यथा सर्वबुद्धीनामेकालम्ब(नतां भवे)त् ।

क्रमभावविरोधश्च शक्तकारणसन्निधेः ॥ २४६६ ॥

सर्वबुद्धीनामिति । रसरूपादिबुद्धीनाम् । परस्परमभिन्नालम्बनत्वप्रसङ्गो भिन्न-  
निर्भासादित्येतस्य हेतोर्बाधकं प्रमाणम् । क्रमभावविरोधश्चेत्येतत्तु क्रमसंभूतेरित्येतस्य  
॥ २४६६ ॥

यदुक्तं कृत्रिमत्वे च सम्बन्ध इत्यादि, तत्राह—प्रकृत्यैवेत्यादि ।

प्रकृत्यैव पदार्थानामेकप्रत्यवमर्शने ।

भेदेऽपि शक्तिनियमः पुरस्तात्प्रतिपादितः ॥ २४६७ ॥

.....प्रत्यवमर्षाच्च शब्दैकत्वादयोऽपि न ।

लोकः प्रयोगभूयस्त्वं शब्दस्यैकस्य मन्यते ॥ २४६८ ॥

अनेकव्यक्तिनिष्ठत्वात्सम्बन्ध उपपद्यते ।

तस्मात्सार्धत्रिको नाके(नैको?)व्यक्तीनां ऐकतां गतः ॥२४६९॥

सुबोधम् ॥ २४६७ ॥ २४६८ ॥ २४६९ ॥

अथ कस्माज्जोक इत्युच्यत इत्याह—वस्तुतस्त्वित्यादि ।

वस्तुतस्तु न सम्बन्धः शब्दस्यार्थेन विद्यते ।

भेदात्तस्मादनुत्पत्तेर्भ्रान्तेरारोपितस्ततः ॥ २४७० ॥

तथाहि विस्तरेणैषा प्रागेव प्रतिपादिता ।

शब्दार्थसंस्थितिः सर्वा विष्णुना व्याप्त्यसम्भवात् ॥ २४७१ ॥

भेदादित्यनेन तादात्म्यलक्षणं सम्बन्धं निषेधति । तस्मादनुत्पत्तेरित्यनेन तदु-  
त्पत्तिलक्षणम् । न चाभ्यामन्यः सम्बन्धोऽस्ति, न च प्रतिबन्धमन्तरेण शब्दस्यार्थप्रति-  
पादकत्वनियमो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । तस्मादारोपितः शब्दार्थयोः सम्बन्ध इति प्रागे-  
वान्यापोहचिन्तायां प्रतिपादितम् ॥ २४७० ॥ २४७१ ॥

तस्मादकृत्रिमः शब्द इत्यादिप्रयोगे हेतुदृष्टान्तयोरसिद्धत्वमुद्गावयन्नाह—गोत्वं नित्यमित्यादि ।

गोत्वं नित्यमपास्तं च सम्बन्धोऽपि च कल्पितः ।

अण्वाकाशाद्यपि च क्षिप्तं हेतूदाहरणे न तत् ॥ २४७२ ॥

गोत्वं नित्यमपास्तमित्यनेन नित्यत्वासिद्धतामाह । सम्बन्धोऽपि च कल्पित इत्यनेनापि सम्बन्धादित्यस्य, अण्वाकाशाद्यपि च क्षिप्तमित्यनेनाकाशपरिमाणुवन्नि(त्य-मि)त्यस्यासिद्धतामाह—अपास्तमिति । प्रतिक्षिप्तं षट्पदार्थपरीक्षायाम् । नेति प्रति-षेधि । तदिति तस्मादर्थे ॥ २४७२ ॥

संमुखानेकसामान्येत्यादावाह—निष्कृष्टेत्यादि ।

निष्कृष्टगोत्ववाचित्वं चिरेण प्रतिपद्यताम् ।

एकरूपतया भ्रान्तैर्जनैरध्यवसायतः ॥ २४७३ ॥

भ्रान्तत्वमस्य कथं सिद्धमित्याह—भावत इत्यादि ।

भावतः क्षणिकत्वात्तु तावत्कालमपि स्थिरः ।

नैवायमिति किं तस्य स्थितिः पश्चादपीष्यते ॥ २४७४ ॥

यथा शस्त्रादिभिश्छेद इत्यादावाह—घटादावपीत्यादि ।

घटादावपि नैवास्ति किञ्चिन्नाशस्य कारणम् ।

इतीदमपि निर्दिष्टं तत्क शब्दे भविष्यति ॥ २४७५ ॥

इतीदमपि निर्दिष्टमिति । स्थिरभावपरीक्षायाम् । विनाशस्याहेतुत्वप्रतिपाद-नेन । यदा घटादावपि नैव नाशकारणमस्तीति क शब्दे भविष्यतीति । नाशकार-णमिति व्यवहितेन सम्बन्धः । अनेन च सिद्धसाध्यता वैधर्म्यदृष्टान्तस्य चासिद्ध-तोक्ता भवति ॥ २४७५ ॥

देशकालप्रयोक्तृणामित्यादावाह—विप्लव इत्यादि ।

विप्लवे प्रत्यभिज्ञायाः पुरस्तादुपपादितः ।

देशकालप्रयोक्तृणां भेदाद्धर्मो विभिद्यते ॥ २४७६ ॥

षड्भूतव्यभिचारपञ्चमादिप्रभेदतः ।

प्रत्यक्षतो हि विज्ञाता गव्यक्तिरपरा स्फुटा ॥ २४७७ ॥

न च व्यञ्जकभेदेन युक्तेषां भेदसंस्थितिः ।

व्यक्तिर्नित्येषु नास्तीति पुरस्तादभिधास्यते ॥ २४७८ ॥



सुगमम् ॥ २४७६ ॥ २४७७ ॥ २४७८ ॥

गकारोऽत्यन्तेत्यादिके प्रयोगे सिद्धसाध्यतादोषमाह—गकारव्यतिरिक्तं चे-  
त्यादि ।

गकारव्यतिरिक्तं च सामान्यं गत्वमिष्यते ।

वास्तवं न प्रयोगेऽतो दुर्बारा सिद्धसाध्यता ॥ २४७९ ॥

इष्यत इति । नेति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः ॥ २४७९ ॥

अन्यापोहात्मकस्यापि न गत्वस्य समाश्रयः ।

इत्थमेवेति चेन्नैवमाश्रयासिद्धतासितः ॥ २४८० ॥

अगकारपरावृत्तगवर्णाभावतो भवेत् ।

गान्यबुद्ध्यनिरूप्यत्वं कस्य धर्मो हि धर्मिणः ॥ २४८१ ॥

अथापि स्यात्—अन्यापोहात्मकस्यापि गत्वस्याश्रयो न भवतीति, इत्थमनेन प्रकारेण साध्यते, तेन सिद्धसाध्यता न भवति, न चान्यापोहाधारो गकारादिर्भवतो नेष्ट इति पूर्वपक्षं प्रतिक्षिपति । एवं हि साध्यमाने हेतोरसिद्धिता प्राप्नोति । तथाहि—न चान्यापोहो नामान्य एव कश्चिदन्यत्र व्यावृत्तात्पदार्थात् । किं तर्हि ? । तदेव गकारादिव्यक्तिरूपं विजातीयव्यावृत्तिमेदान्तरप्रतिक्षेपेण तन्मात्रजिज्ञासायामन्य-  
व्यावृत्तिरन्यापोह इत्यादिभिः पर्यायैः कथ्यते । तस्य तु धर्मिस्वरूपस्याभावे साध्ये गान्यबुद्ध्यनिरूपणादित्ययं हेतुः कस्य धर्मिणो धर्मो भवेत्, नैव कस्यचित् ॥ २४८० ॥ २४८१ ॥

यश्च परकल्पितगत्ववदिति दृष्टान्तः सोऽपि धर्म्यसिद्ध इति दर्शयन्माह—वा-  
स्तवीत्यादि ।

वास्तवी चानुमा सर्वा द्वयसिद्धमपेक्षते ।

दृष्टान्तादि ततस्तेन दृष्टान्तो धर्म्यसिद्धिभाक् ॥ २४८२ ॥

दृष्टान्तादीत्यादिशब्देन हेत्वादिपरिमहः ॥ २४८२ ॥

किञ्च—अनुक्तोऽपि वादिना य एवेच्छया विषयीकृतः स एवायं साध्य इष्यते । न चापि भवता गत्वमात्रं सिसाधयिषितम् । किं तर्हि ? । अनेनोपायेन गकारास्यै-  
कत्वं प्रतिपादयितुमिष्टम् । अस्यां च प्रतिज्ञायां प्रत्यक्षादिबाधापूर्वमुक्तेति दर्शय-  
न्माह—सर्वश्चायमिति ।

सर्वध्यायं प्रयत्नस्ते गकारैकत्वसिद्धये ।

तत्र प्रत्यक्षबाधा च दुर्निवारोदिता तव ॥ २४८३ ॥

अयमिति व्यतिरिक्तगत्वाधारनिषेधः । प्रत्यक्षबाधा चेति । चशब्दादनुमान-  
नाभापरिग्रहः । उदितेति । यन्मनोज्ञामनोज्ञेत्यादिनोक्ता ॥ २४८३ ॥

यदुक्तं द्वयसिद्धस्त्वित्यादि तत्राह—ह्यस्तनेत्यादि ।

ह्यस्तनाद्यतनाद्याश्च गवर्णप्रत्यया इमे ।

क्रमभावेन नैकार्था रसरूपादिबुद्धिबत् ॥ २४८४ ॥

अतो न द्वयसिद्धोऽयमेको वर्णः सदा स्थितः ।

अदोषं(अपोह?)कल्पितस्यैव नित्यत्वं त्वस्य कल्पितम् ॥ २४८५ ॥

उदिता इत्यत्रापि लिङ्गविभक्तिपरिणामेन सम्बध्यते । ततः प्रत्यक्षानुमानाभ्यां  
शब्दभेदस्य प्रतिषिद्धत्वाच्चैको द्वयसिद्धो वर्णात्माऽस्तीति कल्पितस्यैवान्यापोहस्य  
नित्यत्वं कल्पितम्, तुल्यप्रत्ययवर्णप्रत्ययेनैकत्वाध्यवसायात् ॥ २४८४ ॥ २४८५ ॥

यदुक्तं नादेन संस्कृतादित्यादि, तत्राह—शब्दोपलम्भवेलायामित्यादि ।

शब्दोपलम्भवेलायां कर्णपर्यन्तवर्तिनः ।

न वायवोऽवगम्यन्ते श्रोत्रसंस्कारकारिणः ॥ २४८६ ॥

नादेन संस्कृताच्छ्रोत्राद्यदा शब्दः प्रतीयते ।

तदुपश्लेषतस्तस्य बोधोऽध्यक्षेण बाध्यते ॥ २४८७ ॥

यदि हि श्रोत्रसंस्कारकारिणो वायवः केनचित्प्रमाणेन सिद्धाः स्युः तदैवं स्याद्व-  
क्तुं—नादेन श्रोत्रं संस्क्रियत इति । न चैते सिद्धास्तस्मात् तदुपश्लेषतः—शब्दो-  
पश्लेषतः तस्य नादस्य बोधोऽध्यक्षमिति कल्पनास्पदमेतत् ॥ २४८६ ॥ २४८७ ॥

यदुक्तं मधुरं तिक्तरूपेणेत्यादि, तत्राह—तिक्त्पीतादिरूपेणेत्यादि ।

तिक्त्पीतादिरूपेण प्रवृत्तं मधुरादिषु ।

ज्ञानं निर्विषयं यद्वच्छब्दज्ञानं यथा भवेत् ॥ २४८८ ॥

एतेन—यदुक्तं शब्दे बुद्धिस्तु तद्वशादिति तदपास्तम् । नञानाकारस्य ज्ञान-  
स्यान्यो विषयो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् ॥ २४८८ ॥

अथापि स्यात्—यदि नाम शब्दो न तस्य ज्ञानस्य विषयं, निर्विषयत्वं तु  
तस्य कथमित्याह—दुतमध्यादीत्यादि ।

द्रुतमध्यादिभेदाद्धि नान्यः शब्दोऽवभासते ।

अतद्रूपे च तद्रूप्यज्ञानं नाविषयं कथम् ॥ २४८९ ॥

द्रुतमध्यविलम्बिनाऽऽकारेण हि ज्ञानमुपजायते, न च शब्दस्य द्रुताकारः समस्ति, तस्य नित्यव्यापित्वेनैकरूपत्वात् । न चान्यो द्रुताकारवानर्थः संभवति यः प्रत्यवभासेत । तस्मादाकारान् (नु ?)रूपस्यार्थस्याभावान्निर्विषयत्वमेवास्य ॥ २४८९ ॥

स्यादेतत्—स एव शब्दो द्रुतादिरूपेणान्यथा च भासमानस्तत्त्वालम्बनं भविष्यति । यथोक्तम्—“सर्वत्रालम्बनं बाह्यं देशकालान्यथात्मकः” इति, अत्राह—अन्यथा चेति ।

अन्यथा च तमेवार्थं वेत्तीति व्याहृतं वचः ।

अन्याकारस्य संबित्तौ स ह्यर्थो विदितः कथम् ॥ २४९० ॥

निराकारे हि विज्ञाने बाह्याकारः स ते ध्रुवम् ।

बाह्यश्च न तदात्मेति किमसौ विद्यते तथा ॥ २४९१ ॥

साकारज्ञानपक्षेऽपि बाह्याकारानुरूपतः ।

ज्ञाने निर्भाससंभूतावर्थो विदित उच्यते ॥ २४९२ ॥

इह बाह्यानुरूपेण न तु ज्ञानं प्रवर्तते ।

तस्मान्निर्विषयं सर्वं भ्रान्तं चित्तमिति स्थितम् ॥ २४९३ ॥

व्याहृतमिति । तत्त्वान्यथाकारयोः परस्परपरिहारस्थितलक्षणत्वेनैकत्र धर्मिण्ययोगात् । किञ्च—सर्वमेव भ्रान्तं निराकारपक्षे साकारपक्षे च निर्विषयमेवेति प्रतिपादयन्नाह—निराकारे हीत्यादि । निराकारज्ञानवादिनां हि नीलवाकारोऽर्थगत एवानुभूयते । न च यथा भ्रान्तज्ञानप्रतिभासी पीतादिस्तथा शङ्खादिरर्थोऽवस्थित इति स्फुटतरमेवाविषयत्वमस्य । ननु च पीताद्याकारो यदि नार्थगतस्तदाऽवश्यं तेन ज्ञानगतेन भवितव्यमन्यथोभयत्राभावे कथमनुभूयेत । ततश्च ज्ञानगतत्वे कथं निराकारता विज्ञानस्येति वक्तव्यम् । सत्यमेतत् । किन्तु—अभ्युपगम्ब निराकारज्ञानवादिपक्षमेतद्विज्ञानस्य निर्विषयत्वमुच्यते । यस्तु निराकारं ज्ञानमिच्छति तेनैवात्र परिहारो वाच्यः । साकारज्ञानपक्षेऽप्यर्थसदृशात्माकारानुभवादर्थानुभवो व्यवस्थाप्यते । न च भ्रान्ते ज्ञानेऽर्थसदृशात्माकारानुभूतिरस्तीत्यविषयमेव । न च साकारनिराकाराभ्यामन्यः प्रकारोऽस्ति विषयग्रहणं प्रतीति । तस्मात्सर्वमेव भ्रान्तं ज्ञानं निर्विषयमिति सिद्धम् ॥ २४९० ॥ २४९१ ॥ २४९२ ॥ २४९३ ॥

न चाप्यत्र भ्रान्तिनिमित्तं सम्भवतीति दर्शयन्नाह—न च व्यञ्जकसद्भाव इत्यादि ।

न च व्यञ्जकसद्भावो युक्तो नित्ये विशेषतः ।

तत्संस्कारानुरूपेण नातो भिन्ना धियो ध्वनौ ॥ २४९४ ॥

व्यञ्जकभेदो हि ध्वनौ—शब्दे भेदविभ्रमनिमित्तमुपवर्ष्यते, न च नित्यस्य कस्य-चिद्व्यञ्जकोऽस्ति, तस्य तत्राकिञ्चित्करत्वात्, न चाकुर्वन् कञ्चिद्विशेषं तस्य व्यञ्जको युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । एवं हि यत्किञ्चिद्यस्य कस्यचिद्व्यञ्जकं स्यात् । तस्मान्न व्यञ्जकसंस्काराद्भवति—शब्दे भिन्ना बुद्धयो युक्ताः ॥ २४९४ ॥

यदुक्तं यथा घटादेर्दीपादिरभिव्यञ्जक इष्यत इत्यादि, तत्रेदं प्रथमं श्लोकार्थ-मुपक्षिप्यैकेन श्लोकेन द्वितीयादिश्लोकैर्दूषयन्नाह—घटादीग्रहणार्थं हीत्यादि ।

घटादिग्रहणार्थं हि यथा शक्तिं नियच्छति ।

नेत्रेदीपस्तथा श्रोत्रे ध्वनिः शब्दोपलब्धये ॥ २४९५ ॥

श्रोत्रोपलब्धौ योग्यश्चेच्छब्दः प्रकृतिसंस्थितः ।

असंस्कृतेऽपि तच्छ्रोत्रे किमर्थं नोपलभ्यते ॥ २४९६ ॥

योग्यकारणसद्भावाद्भवेदेवोपलम्भनम् ।

संस्कृतश्रोत्रसद्भाववेलायामिव तस्य तत् ॥ २४९७ ॥

नोपलब्धौ स योग्यश्चेत्पश्चादपि कथं भवेत् ।

भावे च योग्यतायोगी शब्दो जातोऽपरो भवेत् ॥ २४९८ ॥

अथ पश्चादपि ज्ञानं नैव तद्भूलभावि तत् ।

संस्कृतश्रवणादिभ्यस्तस्योत्पादस्तु वर्ण्यते । २४९९ ॥

संस्कृतज्ञानाम श्रोत्रम्, इदं तु वक्तव्यम्, किन्तु प्रकृत्या शब्दः स्वविषयज्ञानो-त्पत्तौ समर्थ आहोस्विदसमर्थ इति । आद्ये पक्षे श्रोत्रसंस्कारात्प्रागप्युपलब्धिप्र-सङ्गः । एतदेवाह—असंस्कृतेऽपीत्यादि । तस्येति । शब्दस्य । तदिति । त-स्मात् । प्रयोगस्तु यदि विकल्परणमित्यादिकः पूर्ववद्वाच्यः, श्रोत्रसंस्कारवैयर्थ्य-प्रसङ्गश्च । अथ द्वितीयपक्षस्तदा श्रोत्रसंस्कारेऽपि शब्दोपलम्भो न प्राप्नोति, सर्व-देव शब्दस्वायोग्यत्वात् । ततश्चास्मिन्नपि पक्षे श्रोत्रसंस्कारवैयर्थ्यमेव । प्रयोगः—यो यदुत्पादनायोग्यावस्थातो न विशिष्यते न स तत्करोति, यथा क्रोद्धवः शाक्य-

कुरम, न विशिष्यते च संस्कृतेऽपि श्रोत्रे शब्दो ज्ञानोत्पादनायोग्यावस्थात इति व्यापकानुपलब्धिः । न चायमसिद्धो हेतुरित्यादर्शयति—भाव इति । योग्यतया सम्बन्धो यस्याऽस्ति स योग्यतायोगी ॥ २४९५ ॥ २४९६ ॥ २४९७ ॥ २४९८ ॥ २४९९ ॥

ननु च यदि हिशब्दो ज्ञानोत्पत्तौ कारणमिष्टः स्यात्तदा तत्र तस्य योग्यायोग्यविकल्पोऽवतारं लभेत, यावता श्रोत्रमेव संस्कृतं शब्दोपलब्धौ कारणमिष्यते न शब्दः, तेन न भवति यथोक्तदोषप्रसङ्गः इत्येतदागुर्य परिहरन्नाह—शब्दस्येत्यादि ।

**शब्दस्याग्राह्यतैवं स्यात्तस्मिन्ननुपयोगतः ।**

**तस्य नैवं रसादिभ्यो विशेषः कश्चनास्ति हि ॥ २५०० ॥**

एवं हि रसादिवच्छब्दस्यानुपयोगात्तज्ज्ञानज्ञेयता न प्राप्नोति । प्रयोगः—भो यत्र जाने नोपयोगं प्रतिपद्यते न स तज्ज्ञानज्ञेयः यथा रसादिः श्रोत्रज्ञाने, नोपयुज्यते च शब्दः श्रोत्रज्ञान इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः । नायमनैकान्तिकः, अनुपकारकस्य ज्ञेयत्वे सति नियमाभावाद्द्रसादेरपि श्रोत्रविज्ञानविज्ञेयत्वप्रसङ्गात् ॥२५००॥

ननु च स्वकारणस्य नियामकत्वान्नातिप्रसङ्गो भविष्यति, तथाहि—संस्कृतश्रोत्रमनन्तरप्रत्ययादिभ्यः समुत्पद्यमानं शब्दबोधधात्मकमेवोत्पद्यते न रसादिबोधधात्मकम्, कारणशक्तिप्रतिनियमात् । अवश्यं च शब्दस्य हेतुत्वाङ्गीकरणेऽपि कारणशक्तिप्रतिनियमोऽङ्गीकर्तव्यः, तथाहि—तुल्येऽपि सर्वेषां हेतुत्वे कस्माच्छब्दबोधधात्मकमेव भवति शब्दज्ञानं न श्रोत्रादिबोधधात्मकमिति चोद्ये हेतुशक्तिप्रतिनियमैरेवोत्तरं वाच्यमित्येतत्सर्वमालोच्यनैकान्तिकतां परिहरन्नाह—शब्दबोधस्वभावं वेत्यादि ।

**शब्दबोधस्वभावं वा जनितं नाम तैरिदम् ।**

**ज्ञानं शब्दनिराशंसैः संस्कृतश्रवणादिभिः ॥ २५०१ ॥**

नामेत्यभ्युपगमे । यथा चायं पक्षो न युज्यते तथा पश्चात्—“को वा ज्ञानस्येत्यादिना प्रतिपादयिष्यति । संस्कृतश्रवणादिभिरिति । आदिशब्देन समनन्तरप्रत्ययादिपरिग्रहः ॥ २५०१ ॥

यदि नाम शब्दो न कारणं तथापि दोष एव, तथाहि—किमसौ शब्दः प्रकृत्या तज्ज्ञानज्ञेयस्वभाव उत नेति पक्षद्वयम्, प्रथमे पक्षे दोषमाह—तज्ज्ञानज्ञेयेत्यादि ।

तज्ज्ञानज्ञेयरूपो यं यथाऽपि त्वनुवर्त्तते ।

शब्द इत्यनुवृत्तिः स्याद्विज्ञानस्यापि तस्य ते ॥ २५०२ ॥

अन्यथा ह्यनुवृत्तं न ज्ञानं स त्वनुवर्त्तते ।

तज्ज्ञेयः शब्द इत्येवं परा स्याद्व्याहृतिस्तव ॥ २५०३ ॥

ज्ञानज्ञेयस्वभावौ तौ बद्धौ शृङ्खलयेव हि ।

एकभावे द्वितीयस्य प्राप्तिरव्यभिचारतः ॥ २५०४ ॥

यदि तज्ज्ञानज्ञेयस्वभावः शब्दः स्यात्तदा सर्वकालं शब्दरूपवत्तद्विज्ञानस्यापि नित्यत्वं स्यात्, तद्विज्ञेयस्वभावानुवृत्तेः । न हि देवदत्तस्य दण्डसम्बन्धस्वभावानुवृत्तौ न दण्डस्यानुवृत्तिर्भवेत् । बद्धौ शृङ्खलयेव हीति । हिशब्दो यस्मादर्थे । यस्माज्ज्ञेयज्ञानयोः स्वभावौ शृङ्खलयेव बद्धौ, तस्मादेकस्वभावसद्भावे द्वितीयस्य प्राप्तिरद्भावः प्राप्नोत्यव्यभिचारादिति सिद्धम् ॥ २५०२ ॥ २५०३ ॥ २५०४ ॥

भवत्वेवं को दोष इत्याह— संस्कृतेत्यादि ।

संस्कृतश्रवणोत्पाद्यज्ञानसम्बद्ध एव हि ।

श्रोत्रासंस्करणेऽपीति ज्ञानमाक्षिप्यते स्फुटम् ॥ २५०५ ॥

संस्कृतश्रवणोत्पाद्यज्ञानसम्बद्ध एव हीति । शब्दोऽनुवर्त्तत इत्यध्याहारः । यस्मात्संस्कृतश्रवणोत्पाद्येन ज्ञानेन सम्बद्धः शब्दः सर्वदाऽनुवर्त्तते तस्मादसंस्कृतश्रोत्रस्यापि तद्विज्ञानं प्राप्नोतीति व्यर्थं श्रोत्रसंस्करणम् ॥ २५०५ ॥

द्वितीयेऽपि पक्षे दोषमाह—तज्ज्ञेयेत्यादि ।

तज्ज्ञेयात्मा न शब्दश्चेदतदात्मरसादिवत् ।

न तद्बोधस्वभावं यच्छ्रोत्रज्ञानं तथासति ॥ २५०६ ॥

सुबोधम् ॥ २५०६ ॥

एतच्च सर्वं तदनुपकार्यस्यापि ज्ञानस्य तद्बोधस्वभावत्वमभ्युपगम्योक्तम्, इदानीं तद्बोधस्वभावत्वमेवासति सम्बन्धे ज्ञानस्यायुक्तमिति प्रतिपादयन्नाह—को वेति ।

को वा ज्ञानस्य सम्बन्धः शब्देन यत इष्यते ।

तच्छब्दबोधरूपं हि न तादात्म्यं विभेदतः ॥ २५०७ ॥

न च तस्य तदुत्पत्तिः शब्दस्याजनकत्व(तः) ।

तदुत्पत्तौ तु नियमात्सा सदाभाविनी भवेत् ॥ २५०८ ॥

एवं तद्विषयं ज्ञानं सदोत्पद्येत वा न वा ।

इत्येकान्ते स्थिते व्यर्था श्रोत्रसंस्कारकल्पना । २५०९ ॥

द्विविध एव हि वस्तूनां प्रतिबन्धस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिश्च अन्यत्रोपकाराभावात् । न चानुपकार्योपकारकयोः सम्बन्धो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । स च द्विविधोऽपि प्रतिबन्धो नास्ति शब्दज्ञानयोरिति कथं तद्विधोऽस्वभावज्ञानमसति प्रतिबन्धे भवेत् । अन्यथा प्रतिप्रसङ्गः स्यात् । अथापि स्यात्तदाकारोत्पत्त्या तद्विधोऽस्वरूपं तज्ज्ञानं व्यवस्थाप्यते विनाऽपि प्रतिबन्धेनेति । तदेतदसम्यक् । निराकारज्ञानाभ्युपगमात् । न हि मीमांसकैः साकारं ज्ञानमभ्युपगम्यते । भवतु वा तथाप्ययुक्तं शब्दस्य परोक्षत्वप्रसङ्गात्, एवं हि शब्दपरोक्षत्वमेव स्यान्न प्रत्यक्षत्वं, ततश्च तत्साधकप्रमाणाभावात्, तदाकारं तद्विज्ञानमित्येतदेव न सिद्धयेत् । नापि कार्यव्यतिरेकात्तत्सिद्धिः, तस्य जनकत्वानभ्युपगमात् । स्यादेतत्—यस्यापि साकारवादिनो जनक एव विषयस्तस्यापि सर्वदैवार्थस्य परोक्षत्वात्कथमर्थाकारत्वं ज्ञानस्यावगतमिति । सत्यम् । किन्त्वयं तस्योपायो यत्तत्कार्यव्यतिरेकतः कारणान्तरं निश्चितं, तद्विज्ञानस्य नीलाद्याकारभेदकत्वेन निश्चितमन्वयव्यतिरेकाभ्याम् । तथाहि—चक्षुरालोकमनस्काराणां सर्वविज्ञानेषु तुल्यत्वात् तत्कृतो ज्ञानस्य नीलादिभेद इति सामर्थ्याद्यत्तत्कारणान्तरं व्यतिरेकतोऽनुमितं तत्कृतोऽयं भेद इति निश्चीयते । तेन तत्कृतत्वात्तस्यासावाकारो ज्ञानेन गृहीत इति व्यवस्थाप्यते । न त्वयमपि भवतोऽस्त्युपायस्तस्य कारणत्वानभ्युपगमात् । स्यादेतत्—चक्षुरादीनामपि सर्वदा परोक्षत्वात्सर्वविज्ञानेष्वविशिष्टत्वं कथमवसितमिति । सत्यमेवमेतद्विज्ञानवादचिन्तायाम् । स हि विज्ञानवादी स्वप्नादाविव समनन्तरप्रत्ययकृतमेव विज्ञानस्य विशेषं वर्णयति । न बाह्यकृतम् । किन्तु सति बाह्येऽर्थे सर्वमेतदुच्यते । अन्यथा हीदमेव चोदनीयं कार्यव्यतिरेकतोऽपि कथं बाह्यसिद्धिः स्यादिति कारणमात्रास्तित्वं सिद्धयेन्न तु बाह्यम्, तत्तु कारणं स्वप्नादाविवान्तरमपि सम्भाव्यमित्यलं प्रसङ्गेन । अथापि जनकत्वमभ्युपगम्यते शब्दस्य तथापि दोष इति दर्शयन्नाह—तदुत्पत्तावित्यादि । सेति । तदुत्पत्तिः । एवमित्यादिनोपसंहरति । नवेत्यजनकत्वपक्षे । इत्येकान्त इति । नित्यं ज्ञानस्य सदसत्तालक्षणे ॥ २५०७ ॥ २५०८ ॥ २५०९ ॥

एवं तावच्छ्रोत्रस्य संस्कारमभ्युपगम्य विषयस्य जनकाजनकत्वभावचिन्तया

श्रोत्रसंस्कारवैयर्थ्ययुक्तम्, इदानीं श्रोत्रसंस्कार एव न सम्भवतीति प्रतिपादयन्नाह  
— कादाचित्के हीत्यादि ।

कादाचित्के हि संस्कारे सत्येव ज्ञानसम्भवः ।

कदाचिदिति शोभेत संस्कारपरिकल्पना ॥ २५१० ॥

ज्ञानकार्यावसेयश्च संस्कारः शक्तिलक्षणः ।

तच्च ज्ञानं सदाभावि यदि वा भावि सर्वदा ॥ २५११ ॥

कादाचित्कं कथं नाम संस्कारं तस्य सूचयेत् ।

उत्तरं श्रोत्रसंस्काराद्भातः साधु प्रकाशितम् ॥ २५१२ ॥

एवं हि संस्कारकार्यं विज्ञानं कादाचित्कं युज्यते । यदि संस्कारः कादाचित्को भवेत् । अन्यथा कारणे नित्यमविकले स्थिते तत्कार्यं किमिति कदाचिद्भवेत् । न च संस्कारः कादाचित्को नित्यस्य श्रोत्रस्य युज्यते इति दर्शयन्नाह—ज्ञानकार्यावसे-  
यश्चेत्यादि । तथाहि श्रोत्रादेः संस्कारो ज्ञानकार्येणावसीयमानः शक्त्यात्मक एव संस्कारो भवेत्, शक्तेरेव कार्यावसेयत्वात्, सा च शक्तिः श्रोत्रस्यात्मभूतैव न तद्व्यतिरेकिणी, ततः कार्योत्पत्तेः श्रोत्रस्याकारणत्वप्रसङ्गात् । सम्बन्धासिद्धेश्च शक्तिसद्भावे तद्भाविज्ञानं सदा भवेत् । अथासद्भावस्तदा न कदाचित्तद्भाविज्ञानं भवेत् । ततश्च कादाचित्कत्वं ज्ञानस्य न स्यात्, तस्मात्कादाचित्कं विज्ञानं कथं श्रोत्रस्य शक्तिलक्षणं संस्कारं सूचयेत्, नैव ॥ २५१० ॥ २५११ ॥ २५१२ ॥

अथापि स्यान्नैव स्वाभाविकी शक्तिर्ज्ञानकार्याऽनुमेया । किं तर्हि ? नादैः श्रोत्र-  
स्यापूर्वैव कादाचित्की शक्तिराधीयते, सैव ज्ञानानुमेया, तेन कादाचित्कं विज्ञानं  
शक्तेः सूचकमुपपद्यत एवेत्याह—शक्तिराधीयत इत्यादि ।

शक्तिराधीयते श्रोत्रे यदि वाऽव्यतिरेकिणी ।

व्योम्नो दिशो वा नित्यत्वं ततो हीयेत जन्मतः ॥२५१३॥

आत्मभूता वा शक्तिराधीयेत, व्यतिरिक्ता वा, व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्ता वेति  
पक्षत्रयम् । प्रथमे पक्षे शक्तिस्वरूपवदनित्यत्वं श्रोत्रस्योभयात्मकस्यापि प्राप्नोति ।  
कुतः ?, जन्मतः—उत्पत्तेः । अथापि स्यान्न श्रोत्रस्य शक्तितोऽनन्यत्वमभ्युपगतम् ।  
किं तर्हि शक्तिरेव श्रोत्रादिति, तदेतत्पश्यत महतो ह्यन्वयस्य विलसितम् । कथं हि  
नामैकस्य स्वभावस्य संश्लेषे तदैवापरो दूरीभवेत् । परस्परस्वभावानुप्रवेशलक्षणत्वा-



दभेदस्य । न हि सलिलं पयसो दवीशसि गोचरे वर्त्तमानमनुभवति तत्संश्लेषमिति  
यत्किञ्चिदेतत् ॥ २५१३ ॥

भवतु चायं पक्षस्तथापि दोष एवेति दर्शयन्नाह—भावाच्चेत्यादि ।

भावाच्चाव्यतिरिक्तत्वान्नित्यत्वं संस्कृतेरपि ।

(प्राप्नोति, तेन वस्तूनां विज्ञानं सर्वदा भवेत्) ॥ २५१४ ॥

भावम्बरूपवत्संस्कारस्यापि नित्यत्वं प्राप्नोत्यव्यतिरेकात् । ततश्चायमपरो दोष  
इत्याह—तेनेत्यादि ॥ २५१४ ॥

द्वितीयेऽपि पक्षे दोषमाह—व्यतिरेके त्वित्यादि ।

व्यतिरेके तु तस्येति सम्बन्धो नोपपद्यते ।

श्रोत्रस्याकारकत्वं च शक्तेर्ज्ञानसमुद्भवात् ॥ २५१५ ॥

शक्तेर्भावाच्च्यतिरेकेऽभ्युपगम्यमाने तस्यासौ शक्तिरिति सम्बन्धो न स्यात् ।  
अनुपकार्यस्य पारतन्त्र्यायोगात् । अथ (न च ?) श्रोत्रं शक्तिमुपकरोति, व्यञ्जकस्यैव  
नादादेरुपकारकत्वेनेष्टत्वात् । अथ श्रोत्रस्याप्युपकारकत्वं तदा शक्त्युपकारिण्या अपि  
शक्तेः श्रोत्राद्व्यतिरेक इत्यनवस्था स्यात् । ततश्च शक्तीनामेव परम्परया घटनाच्छ-  
क्तेरेव कार्योत्पत्तेः श्रोत्रास्याकारकत्वं स्यात् । ततश्चावस्तुत्वप्रसङ्गः । अथ शक्त्युप-  
कारिण्याः शक्तेरव्यतिरेकोऽभ्युपगम्यते, क इदानीमाद्यायां शक्ताव्यतिरेके प्र-  
द्वेषः । किञ्च—नित्यं शक्त्युत्पत्तिप्रसङ्गः, तद्धेतोः श्रोत्रस्य नित्यत्वात्, न चानु-  
पकार्यस्य सहकार्यपेक्षा काचित् ॥ २५१५ ॥

तृतीयं पक्षमाह—भेदाभेदेत्यादि ।

भेदाभेदविनिर्मुक्तं व्यस्तं पक्षान्तरं ततः ।

उत्तरं श्रोत्रसंस्कारादसंस्कृततयोच्यते ॥ २५१६ ॥

एतेनैव निषेद्धव्या विषयोभयसंस्कृतिः ।

तस्मान्नित्येष्वभिद्यक्तिः सर्वथाऽपि निरास्पदाः ॥ २५१७ ॥

ततश्च व्यक्तिमाश्रित्य दीर्घह्रस्वक्रमादयः ।

ये केचित्प्रविभज्यन्ते तेऽपि सर्वे निरास्पदाः ॥ २५१८ ॥

व्यस्तमिति । पुद्गलादिपरीक्षायाम् । एकस्यैकदा विधिप्रतिषेधायोगात् । तथाहि

भेदाभेदौ परस्परपरिहारस्थितलक्षणौ, तयोरेकस्वभावव्यवच्छेदेनैवापरस्व परिच्छे-  
दात्, यस्य हि यदात्मव्यवच्छेदमन्तरेण न स्वभावः परिच्छिद्यते स तत्परिहारेण  
स्थितो यथा भावाभावयोरन्यतरः, यौ च परस्परपरिहारस्थितलक्षणौ तयोरेकस्व-  
भावनिषेधोऽपरविधिनान्तरीयक इत्यन्यत्वनिषेधे सामर्थ्यात्तादात्म्यविधिरिति तदानी-  
मेव तस्यापि प्रतिषेधो न युक्तः, अन्यत्वस्याप्यप्रतिषेधप्रसङ्गादित्येवमुभयपक्षे दोषो  
वाच्यः । एतेनैवेति । प्रकृत्या ज्ञानोत्पादनयोग्यायोग्यस्वभावविकल्पद्वारेण । तस्मा-  
दित्यादिनोपसंहरति । क्रमादय इत्यादिशब्देन प्लुतोदात्तादिपरिग्रहः ॥ २५१६ ॥  
॥ २५१७ ॥ २५१८ ॥

‘येषां त्वप्राप्तजातोऽयं शब्दः श्रोत्रेण गृह्यत’ इत्यादावाह—अप्राप्तिमात्रसाम्ये-  
ऽपीत्यादि ।

**अप्राप्तिमात्रसाम्येऽपि न सर्वस्य ग्रहो यथा ।**

**अयस्कान्तेन लोहस्य सामर्थ्यनियमस्थितेः ॥ २५१९ ॥**

यद्यपि सर्वोऽप्राप्तस्तथाऽपि पदार्थानां शक्तिप्रतिनियमान्न पूर्वस्य विषयस्य ग्रहः  
—ग्रहणं प्राप्नोति । यथा—अयस्कान्तो नामोपलोऽप्राप्तमयः कर्षणपि न सर्वमप्राप्तं  
कर्षति ॥ २५१९ ॥

अयस्कान्तप्रभेत्यादिना — शङ्करस्वामिमतेन दृष्टान्तासिद्धिमाशङ्कते ।

**अयस्कान्तप्रभाप्राप्त्या तत्राप्याकर्षणं यदि ।**

**ननु प्रभा न दृश्येयं कथमस्तीति गम्यते ॥ २५२० ॥**

स हि प्राह । तत्राप्ययस्कान्तमणिप्रभावेधवशादेवाकर्षणमयसोऽन्यथा सर्वदे-  
शावस्थितानामयसामाकर्षणं स्यात् । यद्यपि तस्य प्रभा प्रदीपप्रभावन्नोपलभ्यते,  
तथाऽप्यनुमेया, ध्यवधारे (अव्यवधाने ?) दूरे चाकर्षणदर्शनादिति । नन्वि-  
त्यादिना प्रतिविधत्ते । न दृश्येयमित्यनुपलम्भेन सद्ब्रह्मवहारनिषेधं करोति ॥ २५२० ॥

यदपि प्रसङ्गसाधनमुक्तं सर्वदेशावस्थितानामयसामाकर्षणप्रसङ्गादिति, तत्परि-  
हरन्नाह—कस्मादाप्तमित्यादि ।

**कस्मादाप्तं न काष्ठादि सा समाकर्षति प्रभा ।**

**तच्छक्तिनियतत्वांशेवप्राप्तावपि तत्समम् ॥ २५२१ ॥**

प्राप्तिपक्षेऽपि तुल्यः प्रसङ्गः, कस्मात्साऽयस्कान्तप्रभा सर्वं प्राप्तं काष्ठादिकं

नाकर्षतीति । पदार्थस्वभावप्रतिनियमाज्ञातिप्रसङ्गः इति चेदप्राप्तिपक्षेऽपि पदार्थस्व-  
भावस्य नियामकत्वं केनापहृतम्; येन तत्र नेष्यते, तस्माददृष्टप्रभाकरूपं व्यर्थ-  
मेव ॥ २५२१ ॥

यदुक्तम्—‘तत्र दूरसमीपस्वग्रहणाग्रहणे समे । स्यातां न च क्रम’ इति तत्राह  
—दूरेत्यादि ।

**दूरमध्यसमीपस्थैरक्रमेणैव गम्यते ।**

**प्रयोगानन्तरं तत्र सर्वेषां ज्ञानजातितः ॥ २५२२ ॥**

क्रमग्रहणमसिद्धं शब्दप्रयोगानन्तरं युगपद्विज्ञानोत्पत्तेः ॥ २५२२ ॥

यद्योक्तम्—नापि तीव्रमन्दादिसम्भव इति, तत्राह—दूरासन्नादीत्यादि ।

**दूरासन्नादिभेदेन स्पष्टास्पष्टं यथेक्ष्यते ।**

**रूपं तथैव शब्देऽपि तीव्रमन्दादिविभूवेत् ॥ २५२३ ॥**

यथा रूपमप्राप्य गृह्यमाणमध्या(व्या ?)पि च स्पष्टास्पष्टमीक्ष्यते तथा शब्देऽप्यध्या-  
(व्या ?)पिन्यप्राप्य गृह्यमाणे च तीव्रमन्दादिवेदना भविष्यति । ननु च परस्य रूप-  
स्याप्यप्राप्य ग्रहणमसिद्धं तत्कथं दृष्टान्तत्वेनोच्यत इति । नैष दोषः । यद्यपि  
परस्य वचनमात्रात् सिद्धम्, तथापि यत्प्रमाणसिद्धं तदुभयोरपि सिद्धम् । किं पुन-  
रत्र प्रमाणम्, सन्निकृष्टविप्रकृष्टयोस्तुल्यकालग्रहणम् । यो हि गतिमान्स सन्निकृ-  
ष्टमाशु प्राप्नोति, विप्रकृष्टं चिरेण, यथा देवदत्तो ग्रामाद्ग्रामान्तरं गच्छन्, शाखा-  
चन्द्रमसोस्तु तुल्यकालमुन्मेषसमनन्तरमेव ग्रहणं दृष्टं तस्मादप्राप्यकारि चक्षुरिति  
गम्यते । अत्रोद्योतकरः प्राह—ज्ञानानामाशूत्पत्तेः कालभेदस्याग्रहणान्मिथ्याप्र-  
त्यय एष उत्पलपत्रगतवेधवदिति । तदेतदसम्यक्, एवं हि सरो रस इत्यादावपि  
क्रमव्यवसायो न स्यादाशूत्पत्तेस्तुल्यत्वात्, तत्रश्च प्रतीतिभेदो न स्यात्, सर्वासां  
च बुद्धीनामाशूत्पत्तिरस्तीति न कदाचित्क्रमग्रहणं स्यादिति प्राग् निर्लोडितमेतद्वि-  
स्तरेण । पुनः स एवाह—यद्यप्राप्यकारि चक्षुर्मवेत्तदा न कुट्यादेरावरणस्य साम-  
र्थ्यमस्तीत्यावरणानुपपत्तिः । यच्च दूरीभूतस्याग्रहणं अन्तिके च ग्रहणं तत्र (ज्ञ ?)  
स्यादविशेषात् । स्यादेतत्—य एव हि चक्षुषो विषयीभवत्वर्थः स उपलभ्यते  
यश्च न भवति नासावुपलभ्यत इति । तच्च नैवम् । सम्बन्धव्यतिरेकेण विष-  
यीभावानुपपत्तेः । कोऽयं सम्बन्धव्यतिरेकेण विषयीभावो नाम । केवलं भयोच्यते

सम्बन्ध इति भवताऽभिधीयते विषयीभाव इति न कश्चिद्विशेष इति । तदेतदस-  
म्यक् । कारणीभावो हि विषयीभाव उच्यतेऽस्माभिर्न सम्बन्धः । तथाहि—रूपा-  
दिर्विषयश्चक्षुषो विज्ञानोत्पत्तौ सहकारितां प्रतिपद्यमानो विषयीभवतीत्युच्यते, न तु  
तेन सहाश्लिष्यन् । द्विविधश्च सहकारार्थः । परस्प(स्प?)रोपकारो वा, यथा—  
प्रभावश्च(प्रस?)रादपवरकप्रतिष्ठस्य, एकार्थक्रिया वा, यथोन्मिषतमात्रेण रूपं  
गृह्यतः । उभयथापि विज्ञानस्य कारणविशेष एव विषय उच्यते, न तु सम्बन्धी ॥  
स एव कारणविशेषप्रतिनियमोऽसति सम्बन्धे न स्यादिति चेत् । न । स्वकारण-  
शक्तितः प्रतिनियमसिद्धेस्तथाभूत एवासौ स्वकारणादुत्पद्यमान उत्प(पप?)द्यते,  
येन कश्चिदेव ज्ञानजनको भवति नान्यः, कारणमेदेन भिन्नस्वभावत्वात्सर्वभावाना-  
नाम् । यथा च भवतस्तुल्येऽपि सम्बन्धे किमिति चक्षु रूपमेवोपलभते न रसम् ।  
तेनासम्बन्धान्नोपलभत इति चेत्, स एव हि सम्बन्धः किमिति न स्यात्, देश-  
स्याभिन्नत्वात् । न ह्यत्र नियामकं किञ्चिदस्ति कारणम्, येनाभिन्नदेशत्वेऽपि रूप-  
मेवानुसरति चक्षुर्न रसं तद्देशवर्तिनमपि, नाप्यतिदूरदेशवर्ति रूपमिति । स्वहेतु-  
नियामक इति चेत् । तदेतदप्राप्तिपक्षेऽपि समानमित्यलं विस्तरेण ॥ २५२३ ॥

भिन्नाभानामित्यादिना परस्य चोद्यमाशङ्कते ।

**भिन्नाभानां मतीनां चेदेकालम्बनता कथम् ।**

**तुल्यं रूपधियामेतच्चोद्यं बाह्यार्थवादिनाम् ॥ २५२४ ॥**

कथं भिन्नाभानां मतीनामेको विषयो भवेत्, एवं हि रसरूपादिबुद्धीना-  
मेकालम्बनता स्यादिति परस्याभिप्रायः । परिहारमाह—तुल्यमित्यादि । रूपधियां  
—रूपविषयाणामपि बुद्धीनाम्, एतच्चोद्यं समानम्—कथमेकविषयता भवेद्दूरास-  
न्नादिमेदेन स्पष्टादिप्रतिभासानामिति । एतच्च बाह्यार्थवादिनां चोद्यम् । ये विष-  
यगतमेवाकारं वर्णयन्ति न विज्ञानगतं ते पुनर्विज्ञानवादिनस्तेषां सर्वमेव विज्ञानं  
निर्विषयमात्मसंवेदनं स्पष्टाद्याकारमेदवद्विन्नमेवोपजायत इति न तेषां चोद्यम् ।  
येषामपि बाह्यार्थवादिनां साकारं ज्ञानमिति पक्षस्तेषां सर्वात्मना विषयसारूप्यान-  
भ्युपगमात्केनचिदंशेन सारूप्याद्विन्नाभानामपि मतीनामेकविषयत्वमविरुद्धमेवेति  
न चोद्यम् ॥ २५२४ ॥

शब्दस्य तर्हि प्राप्तिग्रहणे किं बाधकं प्रमाणं अप्राप्तिग्रहणे च किं साधकमिति  
प्रश्ने सत्याह—प्राप्तीत्यादि ।

प्राप्तिग्रहणपक्षे तु कर्णाभ्यन्तरपक्षवत् ।

न विच्छिन्न इति ज्ञानं मेघशब्दादिके भवेत् ॥ २५२५ ॥

कर्णाभ्यन्तरपक्षवदिति वैधर्म्यदृष्टान्तः । षष्ठ्यन्ताद्वृत्तिः । यथा कर्णकण्डूविनो-  
दनकारिणः पतत्रिपक्षस्याविच्छिन्नं शब्द उपलभ्यते, तथा मेघादिशब्दस्यापि कद-  
म्बगोलकन्यायेन प्रविसर्पतः कर्णदेशमागतस्यैव ग्रहणात्सुख्यं ग्रहणं प्राप्नोति । न च  
स्वकारणसंयोगसमवायिदेशवशादयं विच्छेदविभ्रम इति शक्यं वक्तुम् । तेषां श्रोत्रे-  
णाग्रहणात् । न ह्यविषयीभूतपदार्थाकारमारोपयदुत्पद्यते क्वचिद्विज्ञानम् । नहि  
चक्षुर्विज्ञानं रससारूप्यं समारोपयतीति ॥ २५२५ ॥

तदेवं प्राप्तिग्रहणे बाधकं प्रमाणमभिधायप्राप्तिग्रहणे साधकमाह—तद्विच्छिन्न  
इत्यादि ।

तद्विच्छिन्न इति ज्ञानजनकत्वाद्यथा मनः ।

श्रोत्रमप्राप्यकारि स्यान्नान्यथैवं त्वगादिवत् ॥ २५२६ ॥

तदिति । तस्मात् । नान्यथैवं त्वगादिवदिति वैधर्म्यदृष्टान्तः । यथा त्वगादेरि-  
न्द्रियस्य विच्छेदेन ग्रहणं न भवति तथाऽत्रापि स्यादिति यावत् ॥ २५२६ ॥

मनोपीत्यादिना दृष्टान्तस्य साध्यविकलतामाशङ्क्य परिहरति ।

मनोऽपि प्राप्यकारीति ये प्राहुः क्षणमात्रतः ।

विदूरतरदेशस्थं चेतस्तेषां न युज्यते ॥ २५२७ ॥

अत्रोद्योतकरकुमारिलादयः प्रमाणयन्ति—प्राप्यकारिणी चक्षुःश्रोत्रे बाह्ये-  
न्द्रियत्वात् प्राणादिवत् । बाह्यग्रहणमन्तःकरणेन मनसा व्यभिचारपरिहारार्थम् ।  
तथा करणत्वे सति व्यवहितार्थानुपलम्भकत्वात् प्राणादिवत् । विषयनिवृत्त्यर्थं  
करणत्वे सतीति विशेषणम् । तथा रूपशब्दौ प्राप्यकारिबाह्येन्द्रियप्राणौ बाह्येन्द्रि-  
यार्थत्वात्, गन्धरसवत् । तथा रूपशब्दविज्ञाने प्राप्यकारिबाह्येन्द्रियप्राणविषया-  
लम्बने बाह्येन्द्रियार्थालम्बनत्वात्, गन्धरसज्ञानवदिति । अत्र दूषणमाह—यत्स्वि-  
त्यादि ।

यत्तु बाह्येन्द्रियत्वादि प्राप्यकारित्वसाधनम् ।

अन्यधर्मविजातीयाद्विरोधाद्बुधभिचारि तत् ॥ २५२८ ॥

सुबोधम् ॥ २५२८ ॥

तस्माच्छ्रोत्रियदृष्टेयमित्यादावाह—व्यस्ता इत्यादि ।

व्यस्ताः पूर्वं च संयोगविभागव्यतिरेकिणः ।

वायोरक्षति(णि?)कृत्वाच्च युक्ता नाव्यतिरेकिणः ॥ २५२९ ॥

अत एवाविशेषत्वाद्भूतिर्नास्योपपद्यते ।

वेगाभावादतो नासौ यावद्वेगं प्रतिष्ठते ॥ २५३० ॥

पूर्वमिति । षट्पदार्थपरीक्षायाम् । अव्यतिरिक्तास्तर्हि भविष्यन्तीत्याह—वायो-  
रित्यादि । वायव एव हि संयुक्ता वियुक्ताश्चोत्पद्यमाना अव्यतिरिक्ताः संयोगविभागा  
उच्यन्ते । न चाक्षणिकाः क्रमेणापि संयुक्तस्वभावा युज्यन्ते तेषामेकरूपत्वात्  
॥ २५२९ ॥ २५३० ॥

यदुक्तम्—कर्णव्योमनि संप्राप्त इत्यादि, तत्राह—कर्णेत्यादि ।

कर्णव्योमनि संप्राप्तः शक्तिं श्रोत्रे करोति चेत् ।

तत्कशाघातवत्कस्माच्छब्दवित्तौ न तद्भूतिः ॥ २५३१ ॥

शब्दावधानमेतस्य प्रतिबध्नाति वेदनाम् ।

इत्ययुक्तं कशाघातवातान्तरविदस्तथा । २५३२ ॥

अत्र पक्षद्वयं कदाचिदसौ वायुरुपलभ्यस्वभावो वा भवेत् । अनुपलभ्यस्वभावो  
वा । प्रथमे पक्षे शब्दवित्तिकाले कशाघातस्येव वायोरपि गतेरूपलब्धिः प्राप्नोति ।  
अथापि स्याद्युगपद्विज्ञानद्वयानुत्पत्तेः, शब्दावधानं—शब्दोपलम्भः, एतस्य वायो-  
वेदनामुपलब्धिं प्रतिबध्नातीति । तदेतदयुक्तं शब्दोपलब्धिकाले कशाघातवातान्त-  
रविदो वक्तुम् । यथा हि वातान्तरस्य व्यजनादिकृतस्य कशाघातस्य च शब्दोपल-  
म्भवेलायामनुभवो भवेत्तथा कर्णदेशप्राप्तस्यापि वायोः स्पर्शवित्तिः स्यात् । एतेन  
युगपद्विज्ञानानुत्पत्तिप्रतिज्ञायाः प्रत्यक्षविरोधमाह ॥ २५३१ ॥ २५३२ ॥

न चाश्लेषत्तिल्लघुगपद्ग्रहणभ्रान्तिरतिप्रसङ्गादिति प्रतिपादितम् । भवतु नाम्  
क्रमभागेऽपि लाघवकृतो यौगपद्यविभ्रमस्तथाप्येतदुत्तरमत्र प्रकृतानुपयोगित्वाच्च  
किञ्चिदिति प्रतिपादयति—लाघवादित्यादि ।

लाघवात्क्रमभावेऽपि युगपद्भ्रान्तिरित्यदः ।

न किञ्चित्सर्धथाऽप्यस्मिन्वायोरनुपलम्भनात् ॥ २५३३ ॥

यदि नाम विज्ञानस्योत्पत्तिलाघवाद्यौगपद्यविभ्रमो भवतीति, स्यात् । न तु पुन-

रूपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य सर्वथाऽनुपलम्भ एव भवति । तथा ह्यत्र सर्वथैव क्रमेण यौगपद्येन वा वायोः कर्णदेशप्राप्तस्यानुपलम्भ एव तस्मात्प्राप्तवकृतोऽयं विज्ञाने यौगपद्यविभ्रम इत्येतदुत्तरं न किञ्चित् । तुच्छमित्यर्थः ॥ २५३३ ॥

अथापीत्यादिना द्वितीयपक्षमाह ।

**अथाप्यतीन्द्रियो वायुः काणादैरिव वर्ण्यते ।**

**युष्माभिरपि तद्द्रव्य(द्राष्ये?)स्पृष्ट्याप्तिस्तत्र किंकृता ॥२५३४॥**

काणादाः—वैशेषिकाः । तेषां शब्दलिङ्गो वायुः । भाष्यकृताऽपि शबरेणोक्तम्—“वायवीयाः संयोगविभागा अप्रत्यक्षस्य वायोः कर्णशष्कुलीप्रदेशात्प्रादुर्भवन्तो नोपलभ्यन्त” इति । अत्र दूषणमाह—स्पृष्ट्याप्तिस्तस्य किंकृतेति । स्पृष्टिः स्पर्शः तस्याप्तिः प्राप्तिः प्रसङ्ग इति यावत् । एतदुक्तं भवति—तस्य वायोः स्पर्श-प्रसङ्गो योऽयं भाष्यकारेण कृतः स कथम्, तथाहि—वायुरापद्यते शब्दतामित्येवं-वादिनः शिक्षाकारान्प्रति भाष्यकृतोक्तम्—“वायवीयश्च शब्दो भवेद्वायोः सन्निवेशविशेषः स्यात् । न च वायवीयानवयवान्शब्दे सतः प्रत्यभिजानीमः । यथा पटस्य तन्तुमयान् । न चैवं भवति । स्याच्चेदेवं स्पर्शनेनोपलभेमहि । न च वायवीयानवयवान्शब्दगतान्स्पृशाम” इति ॥ २५३४ ॥

अभ्युपगम्याप्यतीन्द्रियत्वं दोषान्तरमाह—अस्तु वेत्यादि ।

**अस्तु वाऽतीन्द्रियो वायुस्तत्तद्योगिगतस्य तु ।**

**उष्णशीतेतरस्य स्यात्स्पृष्टव्यस्य विदन्यवत् ॥ २५३५ ॥**

तेन तेन वायुना योगस्तत्तद्योगः, स यस्यास्ति जलतेजोजगतीसंज्ञकस्य भूतत्रयस्य तत्तथोक्तम् । तद्गतं तत्प्राप्तं तदाश्रितमिति यावत् । द्वितीयाश्रितेत्यादिना द्वितीयासमासः । एतच्च स्पृष्टव्यस्येत्यनेन समानाधिकरणम् ! तस्य स्पृष्टव्यस्य शीतोष्णो तरस्वभावस्य वित्—वेदना प्राप्नोति । अन्यवदिति । शब्दव्यञ्जकामिमतकोष्ठवायुगतादन्यस्येव । षष्ठ्यन्ताद्वृत्तिः । यथा शिशिरसमये हिमनिचयव्यासङ्गवाहिनः पवनस्य, यथा वा तरुणतरणिकरप्रसङ्गावरुद्धाशेषदिम्बिभागे वहतो निदाघसमये समीरणस्य, तथा शीतेतरविरहितकालवर्त्तिनो मातरिध्नः स्पृष्टव्यस्य शीतादेः संविद्भवति, तथेहापि स्यात् ॥ २५३५ ॥

अथापीत्यादिना परस्योत्तरमाशङ्कते ।

अथापि कर्णशङ्कुल्या तस्यायोगान्न चेन्मतिः ।

कर्णव्योमनि संप्राप्त इत्येतन्न कथं ग(म?)तम् ॥ २५३६ ॥

तस्माच्छ्रोत्रियदृष्टेयं कल्पना निर्निबन्धना ।

विदुषां प्रीतये नेति श्रोत्रियेष्वेव राजते ॥ २५३७ ॥

तस्येति । वायोः । अयोग इति । असंसर्गः । कर्णशङ्कुल्येति सम्बन्धः । शेषं सुबोधम् ॥ २५३६ ॥ २५३७ ॥

यदुक्तम्—यद्वा वेदानुमारेणेत्यादि, तत्र समानत्वाद्दूषणस्येत्यत्रैवातिदेशं कुर्वन्नाह—ये निरंशमित्यादि ।

ये निरंशं नभः प्राहुस्तान्प्रति प्रागुदीरिताः ।

दोषा ज्ञेया निरंशैकदिक्छ्रोत्रत्वेऽपि ते समाः ॥ २५३८ ॥

निरंशाकाशात्मकश्रोत्रपक्षे ये प्रागुक्ता दोषाः संस्कारवैयर्थ्यं संस्कारानुपपत्ति-  
श्चेत्वादयस्ते दिक्छ्रोत्रपक्षेऽपि समाना इति न पृथक् दूषणं वाच्यम् ॥ २५३८ ॥

यदुक्तम्—यद्यपि व्यापि चैकं चेत्यादि, तत्राह—एकव्यापिनभःपक्ष इत्यादि ।

एकव्यापिनभःपक्षे विभागो न प्रकल्प्यते ।

संस्कृताश्रयमन्यचेत्येकमेव हि तन्नभः ॥ २५३९ ॥

एकव्योमात्मकं श्रोत्रं नास्त्यसंस्कृतशङ्कुलि ।

अतोऽधिष्ठानभेदेन संस्कारनियमोऽस्थितः ॥ २५४० ॥

तेनैकस्मिन्नधिष्ठाने लब्धसंस्कारमिन्द्रियम् ।

बोधकं सर्वदेहेषु स्यादेकेन्द्रियवादिनः ॥ २५४१ ॥

पुंसां देहप्रदेशेषु विज्ञानोत्पत्तिरिष्यताम् ।

किन्तु प्रधानवैदेश्यमेकत्वान्नभसो न ते ॥ २५४२ ॥

निष्प्रदेशोऽपि चात्मा नः कात्स्नर्येण च विदुषाम्पि ।

शरीर एव गृह्णातीत्येवमुक्तेऽपि दुष्यति ॥ २५४३ ॥

बाधिर्याद्यव्यवस्थानभेतेनैव च हेतुना ।

तदेवाभोग्यमन्यस्य नाविशेषाद्धि युज्यते ॥ २५४४ ॥

अन्यचेति । असंस्कृताश्रयम् । नष्टव्यवस्थायां विभागो युक्तः, सावयवत्वप्र-



सङ्गात् । कार्त्तनिके तु विभागेऽर्थक्रियावृत्त्या(त्त्य?)वृत्तिविरोधः, नद्यारोपितार्थानुविधायिन्योऽर्थक्रिया भवन्ति, तासां वस्तुप्रतिबद्धत्वात् । ततश्चैकस्मिन्नधिष्ठाने यदि संस्कृतमिन्द्रियं तच्च बोधकस्वभावं तदाऽधिष्ठानान्तरे तदेव तत्परमार्थत इति सर्वत्रैव तत्संस्कृतं बोधकं च प्राप्नोति । तेन यदुक्तं पुंसां देहप्रदेशेष्वित्यादि तत्सर्वं प्रत्युक्तम्, एकस्य पारमार्थिकविभागायोगादिति दर्शयन्नाह—पुंसामित्यादि । प्रधानवैदेश्यमिति । प्रधानस्य शरीरस्य वैदेश्यं भिन्नाकाशदेशवर्षित्वम् । एवमुक्तेऽपि दुष्यतीति । एकस्य विभागायोगात् । अव्यवस्थानमिति । व्यवस्थानाभावः ॥ २५३९ ॥ २५४० ॥ २५४१ ॥ २५४२ ॥ २५४३ ॥ २५४४ ॥

अविशेषमेव दर्शयति—अत्यक्तपूर्वरूपं हीत्यादि ।

अत्यक्तपूर्वरूपं हि विशेषानुदये सति ।

कथं नाम भवेच्छ्रोत्रमभोग्यमपरस्य ते ॥ २५४५ ॥

अथापि म्याद्धर्माधर्माभ्यां वशीकृतत्वाद्विशेषोऽस्त्येवेत्याह—नित्यत्वादित्यादि ।

नित्यत्वादनपेक्षत्वाद्धर्माधर्मावशीकृतम् ।

सदैव च नभःश्रोत्रं सर्वाभोग्यं प्रसज्यते ॥ २५४६ ॥

नित्यत्वमनपेक्षत्वे हेतुः, तथाऽवशीकरणस्य ॥ २५४६ ॥

अथानपेक्षस्यापि वशीकरणं कस्मान्न भवतीत्याह—धर्माधर्मोत्यादि ।

धर्माधर्मोपकार्यं हि नभो नैव कदाचन ।

नित्यत्वात्कार्यताभावे चास्य केयं वशीक्रिया ॥ २५४७ ॥

अनपेक्षत्वेन कार्यत्वमुच्यते, यच्चाकार्यं न तत्केनचिद्वशीक्रियते, यथा शशविषाणम्, अप्रतिसङ्ख्या निरोधादिर्वा, अकार्यं च श्रोत्रमिति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः । नित्यत्वादित्यनेन हेतोरसिद्धतां परिहरति, कार्यताया अभावे केयं वशीक्रियेत्यनेनानैकान्तिकताम् ॥ २५४७ ॥

ननु चाकार्यस्यापि वशीक्रिया दृश्यते, यथा—प्रागभोग्यस्य श्रोत्रस्य पश्चान्मन्त्रौषधादिशक्त्या भोग्यत्वं भवति, ततश्च हेतोरनैकान्तिकतेति तत्र परिहारमाह—मन्त्रौषधादीत्यादि ।

मन्त्रौषधादिशक्त्या च पुनर्भोग्यं कथं भवेत् ।

नित्यत्वान्न हि तत्तेभ्यो विशेषं प्रतिपद्यते ॥ २५४८ ॥

आदिशब्देनोलेखनादिपरिमहः । कथं भवेदिति । यदि तत्रापि न कार्यता भवे-  
दित्यध्याहारः । ननु चाकार्यस्यापि सतो विशेषोत्पत्तिमात्रेण वशीक्रिया भविष्यती-  
त्याह—नित्यत्वादित्यादि ॥ २५४८ ॥

एवं तर्षाधिष्ठानस्यानित्यत्वात्तत्संस्कारद्वारेण नित्यस्यामपि श्रोत्रस्य वशीक्रिया  
भविष्यतीत्याह—अधिष्ठाने त्वित्यादि ।

अधिष्ठाने त्वनित्येऽपि क्षणिकानित्यता न चेत् ।

तदात्मातिशयायोगाद्वाधिर्यादि न युज्यते ॥ २५४९ ॥

अनित्येऽपीति । कालान्तरविनाशात्तस्यापि द्वा(द्वा ?)विनाशमेकरूपत्वात्नित्य-  
स्येव नातिशयोत्पत्तिः सम्भवतीति कुतः संस्कारः ॥ २५४९ ॥

अभ्युपगम्यातिशयं दोषमाह—अस्तु वेति ।

अस्तु वाऽतिशयस्तस्मिन् व्योम्नि त्वेष न विद्यते ।

न चाधिष्ठानसम्बन्धान्नित्यत्वादनपेक्षणात् ॥ २५५० ॥

अतस्तद्द्वारकोऽप्यत्र बाधिर्यादि न युज्यते ।

नभसो भागवत्त्वेऽपि नित्यतायामिदं समम् ॥ २५५१ ॥

एष इति । अतिशयः । यद्यपि न विद्यते तथाप्यधिष्ठानसम्बन्धात्तस्यापि भवि-  
ष्यतीत्याह—न चाधिष्ठानेत्यादि । यदुक्तम्—न चानवयवं व्योमेत्यादि, तत्रापि  
सावयवस्य नभसो यदि नित्यत्वमभ्युपगम्यते तदा यदनवयवनित्यनभःपक्षे दूषणं  
नत्सर्वं समानमित्यतिदिशति—नभस इत्यादि ॥ २५५० ॥ २५५१ ॥

यदुक्तम्—यथा तत्र भवन्नेवेत्यादि, तत्राह—तत्रैव भवत इत्यादि ।

तत्रैव भवतोऽप्येवं स्वामित्वादपकर्षणम् ।

न युक्तं यदि तस्यापि क्षणिकत्वं समस्ति न ॥ २५५२ ॥

को हि तस्याः समुत्पन्नः पश्चादतिशयो यतः ।

स्वामित्वादपकृष्टोऽसौ न भोगं पुनराप्नुयात् ॥ २५५३ ॥

सुबोधम् ॥ २५५२ ॥ २५५३ ॥

यदुक्तम्—व्यञ्जकानां हि वायूनमित्यादि, तत्राह—यदा चेत्यादि ।

यदा च संस्कृतिर्नैवं श्रोत्रे शब्दे च युज्यते ।

भेदाभेदविकल्पेन संस्कारानुपपत्तितः ॥ २५५४ ॥

व्यतिरेके हि संस्कारे श्रोत्रशब्दौ न संस्कृतौ ।  
 स्यातां ताभ्यां च सम्बन्धः संस्कारस्य न कश्चन ॥ २५५५ ॥  
 विभिन्नस्य हि सम्बन्धः कार्यकारणता भवेत् ।  
 तस्यां च सर्वदैवायं भवेद्धेतोः सदा स्थितेः ॥ २५५६ ॥  
 अनर्थान्तरपक्षेऽपि तद्वन्नित्यो भवेदसौ ।  
 तन्न शक्यक्रियस्तस्मान्नित्यं ज्ञानं प्रसज्यते ॥ २५५७ ॥  
 तन्न सामर्थ्यनियमो वाग्वादेरुपपद्यते ।  
 कर्त्तव्यविषयायोगे सामर्थ्यस्याप्ययोगतः ॥ २५५८ ॥

यदेति । यतः कारणादित्यर्थः । एवम्—अनन्तरोक्तेन प्रकारेण । नित्यस्या-  
 तिशयाभावान्नैव संस्कृतिर्युज्यते । तन्न सामर्थ्यनियमो वाग्वादेरुपपद्यते इति  
 वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः । यथा चासौ संस्कृतिर्नोपपद्यते तथा तावद्विस्तरेण  
 दर्शयन्नाह—भेदाभेदेत्यादि । संस्कृतिर्भवन्ती व्यतिरिक्ता वा भवेदव्यतिरिक्ता  
 वेति पक्षद्वयं, वस्तुनः प्रकारान्तरासम्भवात् । प्रथमे पक्षे श्रोत्रशब्दयोः संस्कारा-  
 सिद्धिप्रसङ्गः, अर्थान्तरकरणात्, नहि घटकरणे पटः संस्कृतो नाम । नापि तस्य  
 संस्कारस्य ताभ्यां सह सम्बन्धः सिद्धयति, येन तत्सम्बन्धिसंस्कारकरणद्वारेण तौ  
 संस्कृतौ स्याताम् । तथाहि—भेदाभ्युपगमान्न तादात्म्यलक्षणः सम्बन्धः । भिन्नस्य  
 च सम्बन्धो भवन्कार्यकारणतालक्षण एव भवेदन्यत्रोपकाराभावात् । तस्यां च  
 कार्यकारणतायां सत्यां सर्वदैवायं संस्कारो भवेत्, हेतोः श्रोत्रशब्दात्मकस्य सर्व-  
 दाऽवस्थितत्वात् । द्वितीयेऽपि पक्षे दोषमाह—अनर्थान्तरेत्यादि । तद्वदिति ।  
 श्रोत्रशब्दस्वरूपवत् । असाविति । संस्कारः । ततश्च नित्यत्वादसौ संस्कारो न  
 केनचित्क्रियते । तस्माच्च संस्कारादिज्ञानोत्पत्ताविष्यमाणायां नित्यं ज्ञानं प्रसज्येतेति  
 नित्यत्वे दोषः । तन्नेत्यादिनोपसंहरति ॥ २५५४ ॥ २५५५ ॥ २५५६ ॥  
 ॥ २५५७ ॥ २५५८ ॥

अत इत्यादिना शब्दानित्यत्वसाधने प्रमाणयति ।

अतोऽभिव्यक्त्ययोगेन शब्दज्ञानमिदं फलम् ।  
 ग्राह्योत्पादाविनाभाविघटादिव्यक्तिबुद्धिषत् ॥ २५५९ ॥  
 तस्माद्बुत्पत्यभिव्यक्तयोः कार्यार्थापत्तितः समः ।  
 सामर्थ्यभेदः सर्वत्र स्यात्प्रयत्नविषययोः ॥ २५६० ॥

प्रयोगः—यत्कादाचित्कं तदुत्पत्तिमत्कारणजन्यम्, यथा घटव्यक्तिविषयं ज्ञानम्, कादाचित्कं च शब्दज्ञानमिति स्वभावहेतुः । नित्यं तज्ज्ञानासंविचेर्नासिद्धो हेतुः । अभिव्यक्तेरपास्तत्वान्नाप्यनैकान्तिकः । सपक्षे भावान्न विरुद्धः । इदं फलमिति । इदं प्राहोत्पादाविनाभाविलक्षणं फलमस्येति विग्रहः । शेषं सुबोधम् ॥ २५५९ ॥ २५६० ॥

दिकश्चोत्रपक्षे पूर्वमेव दूषणस्योक्तत्वान्न पुनरुच्यते । अत एव पूर्वोक्तं तदेव दूषणं सारयन्नाह—यावांश्चेत्यादि ।

**यावांश्च कणभुरुन्यायो नमोभागत्वदूषणे ।**

**दिग्भागेऽपि समस्तोऽसौ विज्ञेयो मतिशालिभिः ॥ २५६१ ॥**

यदुक्तम्—“विषयस्यापि संस्कारे तेनैकस्यैव संस्कृतिः ।” इत्यादि, तत्राह—विषयस्येत्यादि ।

**विषयस्यापि संस्कारे तेनैकस्यैव संस्कृतिः ।**

**नास्तत्वाच्छक्तिनियतेर्नातो विषयसंस्कृतिः । २५६२ ॥**

नेति । विषयस्यापि संस्कारे तेनैकस्यैव संस्कृतिरित्येतन्न । कुतः, अस्तत्वात्—प्रतिक्षिप्तत्वात् । संस्कारस्येति शेषः । तथाहि व्यतिरिक्तोऽव्यतिरिक्तश्च संस्कारः पूर्वं निरस्तः, इतोऽपि न विषयस्य संस्कारः । कुतः, शक्तिनियतेर्वक्ष्यमाणायाः । शक्तिनियतेश्चेति चकारो लुप्तनिर्दिष्टो द्रष्टव्यः । तेनायमर्थो भवति । शक्तिनियमाच्चातो वक्ष्यमाणान्न विषयसंस्कारो युक्तः ॥ २५६२ ॥

तमेव शक्तिनियमं दर्शयति—ज्ञानोत्पत्तावित्यादि ।

**ज्ञानोत्पत्तावयोग्यत्वे गम्येत न कदाचन ।**

**सर्वैः सर्वत्र शब्दोऽयं तज्ज्ञानेऽनुपयोगतः ॥ २५६३ ॥**

**ज्ञानोत्पत्तौ तु सामर्थ्ये सर्वैः सर्वत्र सर्वदा ।**

**अवगम्येत शब्दोऽयं ज्ञानहेतुतया स्थितेः ॥ २५६४ ॥**

कदाचिदसौ शब्दः प्रकृत्या ज्ञानोत्पत्तावयोग्यो भवेन्नवेति पक्षद्वयम् । प्रथमे पक्षे न कदाचित्केनचिदवगम्येत । द्वितीयेऽपि सर्वैः सर्वदैवावगम्येत, एकरूपत्वात् । अतो न संस्कारस्य सामर्थ्यम् ॥ २५६३ ॥ २५६४ ॥

स्यादेतत्समर्थोऽपि विरोधिप्रत्ययबलात्कदाचिद्विज्ञानं नोत्पादयेत् । तथा असमर्थोऽपि सहकारिप्रत्ययाहितसामर्थ्यः सन्नुत्पादयिष्यतीति, तत्राह—तं हीत्यादि ।

तं हि शक्तमशक्तं वा प्रकृत्यैवात्मनि स्थितम् ।

विरोधी सहकारी वा क्रोऽर्थं क्षपयितुं क्षमः ॥ २५६५ ॥

नहि स्वभावमखण्डयन्ननुत्पादयन्वा विरोधी सहकारी वा युक्तोऽतिप्रसङ्गात् ।  
खण्डनोत्पादनाभ्युपगमे नित्यत्वहानिप्रसङ्गः ॥ २५६५ ॥

यदुक्तम्—यथैवोत्पद्यमान इत्यादि । तत्राह—ज्ञानोत्पादनेत्यादि ।

ज्ञानोत्पादनयोग्यञ्च कांश्चित्प्रति भवत्ययम् ।

तस्मादुत्पद्यमानोऽयं न सर्वैरवगम्यते ॥ २५६६ ॥

अथवा यत्समीपस्थैर्नादैः स्यादस्य संस्कृतिः ।

तैरेव श्रूयते शब्दो न दूरस्थैस्तु किं पुनः ॥ २५६७ ॥

उत्पत्तिपक्षे नायं दोषः, यतः प्रतिनियतविज्ञानोत्पत्तिसमर्थ एव स्वहेतोरूप-  
जायते, तेन न सर्वैः सर्वदा गम्यते । यस्य तु संस्क्रियते शब्दस्तस्यैवायं दोषो यदि  
नाम संस्कारः संभवतीति दर्शयन्नाह—अथवेत्यादि । न केवलं प्रकृत्या ज्ञानोत्पा-  
दनसामर्थ्याभ्युपगमे दूरस्थस्यापि ग्रहणं प्राप्नोतीति दोषः, संस्कारपक्षेऽपि दोष एवे-  
त्यतः पक्षान्तरमुक्तम् । न दूरस्थैस्तु किं पुनरिति । श्रूयत इति सम्बन्धः । अपि  
तु श्रुत ए(श्रूयेतै ?)वेति साक्षाद्दर्शयति ॥ २५६६ ॥ २५६७ ॥

एतदेव व्यक्तीकरोति—सामीप्ये इत्यादि ।

सामीप्येऽपि हि संस्कारः कारणं परिकल्प्यते ।

संस्कारः स समानश्च तेषु दूरस्थितेष्वपि ॥ २५६८ ॥

शब्दोत्पत्तौ निषिद्धत्वादित्यादावाह—विशिष्टसंस्कृतेरित्यादि ।

विशिष्टसंस्कृतेर्जन्म ध्वनिभ्यो यदि गम्यते ।

शब्दोत्पत्तिः प्रतिक्षेप्तुं न शक्या केनचित्तदा ॥ २५६९ ॥

विशिष्टसंस्कृतिः शब्दात्सा हि न व्यतिरेकिणी ।

शब्दस्याज्ञेयताप्राप्तेस्ततः शब्दोऽपि जायते ॥ २५७० ॥

यदि संस्कृतिरूपधते तदा शब्दस्याप्युत्पत्तिप्रसङ्गः, तस्य संस्कृतेरव्यतिरेकात् ।  
अथ व्यतिरेकस्तदा संस्कारादेव ज्ञानोत्पत्तेः शब्दस्याकारकत्वादज्ञेयत्वप्रसङ्गः ।  
(ततः) शब्दोऽपि जायत इत्यङ्गीकर्तव्यम् ॥ २५६९ ॥ २५७० ॥

अथापि स्याद्यथा प्रतिनियतज्ञानोत्पादनसमर्थः शब्द उत्पद्यते भवतां तथाऽ-

स्वाकमपि संस्कारप्रतिनियमो भविष्यति, तेन दूरस्थैर्न गम्यत इति । अत्राह —  
संस्कृतश्चेत्यादि ।

**संस्कृतश्चैकदा शब्दस्तमात्मानं न जातुचित् ।**

**जहात्यनित्यतासङ्गादुपलभ्येत चेत्सदा ॥ २५७१ ॥**

यदि नाम प्रतिनियतपुरुषसन्तानवर्त्तिज्ञानोत्पादनसमर्थः संस्क्रियते तथापि  
दोष एव । तथाहि—यदि ज्ञानोत्पादनयोग्यं संस्कृतस्वभावं न जहाति तदा सर्व-  
दैव तज्ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गः । अथ जहाति तदाऽनित्यत्वप्रसङ्गः । तस्मादुत्पद्यत एवे-  
त्यङ्गीकर्त्तव्यम् ॥ २५७१ ॥

यदुक्तम्—संस्कारद्वयपक्षे त्वित्यादि तत्राह—द्वयेत्यादि ।

**द्वयसंस्कारपक्षेऽपि सत्यं दोषद्वये (व)चः ।**

**यन्नान्यतरवैकल्यं प्राक्तनस्यानुवृत्तितः ॥ २५७२ ॥**

येषामुत्पत्तिपक्षस्तेषां मतेनान्यतरवैकल्यं युज्यते । न तु संस्कारवादिनां पक्षे  
तेषां सदैव प्राक्तनस्य संस्कृतस्य स्वभावस्यानुवृत्तेः ॥ २५७२ ॥

तथा हीत्यादिना तामेवानुवृत्तिं दर्शयति ।

**तथाहि संस्कृताः श्रोत्रवर्णा यद्वयञ्जकैः पुरा ।**

**न नष्टास्ते च्युतिप्राप्तेः सर्वैः सर्वश्रुतिस्ततः ॥ २५७३ ॥**

च्युतिप्राप्तेरिति । अनित्यत्वप्रसङ्गादित्यर्थः । अन्यथा प्रतिज्ञाविशिष्टेः (सृष्टिः ?)  
स्यात् । सर्वश्रुतिरिति । सर्वस्मिन्काले श्रुतिः सर्वश्रुतिः । न तु सर्वस्य श्रुतिरिति  
विग्रहः । “कर्मणि चे”ति समासप्रतिषेधात् ॥ २५७३ ॥

अथापि स्यात्प्रतिनियता(ना)मेव पुंसां श्रुतियोग्यौ संस्कृतौ श्रोत्रवर्णौ तेन सर्वैर्न  
श्रूयत इति । एवं तर्हि ये अन्येषां वर्णानां प्रतिपत्तारस्तेषां शब्दश्रवणं न प्राप्नोति ।  
एतदेव दर्शयति—नियतेत्यादि ।

**नियतश्रुतियोग्यौ चेच्छ्रोत्रवर्णौ च संस्कृतौ ।**

**नान्यवर्णप्रपत्तृणां पुनः स्याच्छ्रवणं तदा ॥ २५७४ ॥**

नियतानां पुंसां श्रुतियोग्याविति समासः । अन्ये च ते वर्णप्रपत्तारोऽन्येषां वा  
वर्णानां प्रपत्तार इति विग्रहः ॥ २५७४ ॥

अथापि स्याद्ये तेऽन्यवर्णप्रतिपत्तारस्तज्ज्ञानोत्पत्तियोग्यं पुनरपि संस्कारान्तरं  
शब्दश्रोत्रयोर्भवेदित्येतदाशङ्क्य परिहरति—तद्वर्णेत्यादि ।

तद्द्वर्णनरविज्ञानयोग्यौ चेत्संस्कृतौ पुनः ।

तयोरेवानुवृत्तौ स्यात्तयोरपि ननु श्रुतिः ॥ २५७५ ॥

ते च ते वर्णनराश्चेति समासः । के पुनस्ते ! वर्णा येऽन्यैः प्रतिपत्तृभिर्गृह्यन्ते, नराश्च तेषामेव ये प्रपत्तारः, तेषां विज्ञानं तत्र योग्याविति समासः । तयोरेवेति । पूर्वसंस्कृतयोः श्रोत्रशब्दयोः । तयोरपीति । पूर्वकयोर्वर्णनरयोः । एतदुक्तं भवति । पश्चाद्यदाऽन्यैः श्रूयते ककारादिवर्णस्तदापि यैः पूर्वश्रुतस्तद्वृत्तैरपि श्रूयते । प्राक्तनस्वभावानुवृत्तेरिति ॥ २५७५ ॥

अथ नानुवृत्तिस्तदाऽनित्यत्वप्रसङ्ग इत्यादर्शयन्नाह—व्यावृत्तावित्यादि ।

व्यावृत्तावन्य एवामी श्रोत्रवर्णाः कथं न ते ।

प्राप्नुवन्ति ततस्तेषु नित्यताशाऽनिबन्धना ॥ २५७६ ॥

सुबोधम् ॥ २६७६ ॥

यदुक्तम्—जलादिषु यथैकोऽपीत्यादि, तत्राह—जलादिष्वित्यादि ।

जलादिषु न चैकोऽयं नानात्मा सधितेक्ष्यते ।

प्रतिबिम्बधियः सर्वा यन्निरालम्बनाः स्थिताः ॥ २५७७ ॥

सर्वमेव हि भ्रान्तं ज्ञानं निर्विषयमिति पूर्वमविशेषेण प्रतिपादितम् । तथापि पुनः प्रतिबिम्बधियां विशेषणा(षेण ?)द्वयोरपि साकारनिराकारपक्षयोः प्रतिपादयति । यत्र प्रथमं पक्षमधिकृत्याह—निराकारा इत्यादि ।

निराकारः धियः सर्वास्त्वत्पक्षेऽपि व्यवस्थिताः ।

आकारवान्पुनर्बाह्यः पदार्थोऽभ्युपगम्यते ॥ २५७८ ॥

जलाद्यन्तर्गतं चेदं प्रतिबिम्बं समीक्ष्यते ।

नभस्तलादिवर्ती च सूर्यादिर्न तथा स्थितः ॥ २५७९ ॥

तत्कस्माद्भ्रात्यसावेवं भ्रान्त्या चेदत् एव तत् ।

न तु स्पष्टमनालम्बं तद्रूपार्थधियोगतः ॥ २५८० ॥

तस्यैव प्रतिपत्तिश्चेदन्यथेदं सुभाषितम् ।

तच्चान्यथेति किंत्वेवं सर्वं स्यात्सर्ववेदकम् ॥ २५८१ ॥

तस्यैव प्रतिपत्तिः स्याद्यदीक्ष्येत तथास्थितम् ।

अन्याकारोपलब्धौ तु तस्य दृष्टिः कथं भवेत् ॥ २५८२ ॥

साकारेऽपि हि विज्ञाने न ज्ञातार्थाविलक्षणे ।

आकारे सति विज्ञानं ग्राहकं तस्य युज्यते ॥ २५८३ ॥

भवतो हि मीमांसाकस्य निराकारं विज्ञानमाकारवान्बाह्योऽर्थस्ततश्च यत्तज्जलान्तर्गतं रूपं दृश्यते न तावदसौ ज्ञानाकारः, बाह्यस्यैवाकारवत्त्वाभ्युपगमात् । नापि तत्प्रतिबिम्बमर्थान्तरभूतमभ्युपगतं सूर्यस्याग्रहणप्रसङ्गात् । नापि सूर्यो जलान्तर्गतो येन तथा भासेत, तस्याकाशदेशवर्त्तित्वात् । भ्रान्त्या तथा भासत इति चेदेवं तर्हि न सूर्यालम्बनं ज्ञानं, तस्य सूर्यस्य जलान्तर्गतरूपाभावात् । ततश्च यद्रूपोऽर्थो यज्ज्ञानेनावभासते तद्रूपार्थवियुक्तत्वात्तद्विज्ञानमनालम्बनमिति सिद्धम् । प्रयोगः—यो यद्विज्ञानप्रतिभासिस्वरूपो न भवति न स तद्विज्ञानविषयः यथा रूपं श्रोत्रज्ञानस्य, न भवति प्रतिबिम्बविज्ञानप्रतिभासिस्वभावश्च सूर्य इति व्यापकानुपलब्धिः । नासिद्धो हेतुः, सूर्यस्य जलान्तर्गतरूपाभावात् । नाप्यनैकान्तिकोऽतिप्रसङ्गात् । एवं हि यत्किञ्चिदस्य कस्यचिदालम्बनं प्राप्नोति । सपक्षे सद्भावात् न विरुद्धः । अथापि स्यात्स एव सूर्यो देशभेदेन केवलमन्यथा प्रतीयत इत्यतो हेतुरसिद्ध एवेति । तदेतद्भवतः प्रौढतार्किकादृते कोऽन्यो वक्तुमर्हति तदेव चान्यथेति । तथाहि तदेवेत्यनेन तत्स्वरूपं विधीयते, अन्यथेत्यनेन तन्निषेधः, तत्कथमेकत्रैकदा परस्परविरुद्धौ विधिप्रतिषेधौ युक्तौ । यदि पुनरन्यथा प्रतीयमानोऽपि स एव स्यात्तदा सर्वविश्वमेकं भवेत् । ततश्च सहोत्पत्तिनाशौ स्याताम्, सर्वं च विज्ञानमेकविषयं स्यात् । तस्माद्यथा देशकालादिभेदवानभावर्थस्तथैव यदि प्रतीयेत, एवं स एव प्रतीतः स्यादिति कुतोऽसिद्धता । द्वितीयेऽपि साकारपक्षे निरालम्बनतां प्रतिबिम्बधियां प्रतिपादयति—साकारेऽपीत्यादि । साकारविज्ञानपक्षे हि साकारसंवेदनेऽपि बाह्यार्थाविलक्षणाकारानुभवाद्बाह्यो विदित उच्यते, न तु विलक्षणानुभवात् । अन्यथाऽतिप्रसङ्गः स्यात् । न चात्र प्रतिबिम्बधियां सूर्याकारविलक्षणाकारानुभवोऽस्ति, अन्यथा ह्यभ्रान्तसूर्यज्ञानविशेषः प्रतिबिम्बधियां स्यात् ॥ २५७८ ॥ २५७९ ॥ २५८० ॥ २५८१ ॥ २५८२ ॥ २५८३ ॥

यदुक्तमप्सूर्यदर्शिनामित्यादि, तत्राह—पारम्पर्येत्यादि ।

पारम्पर्यार्पितं सन्तमवागृह्यावबुद्धयताम् ।

किन्तूर्ध्ववृत्तिमेकत्वेऽप्यवागेवानुमन्यते ॥ २५८४ ॥



यथैवावस्थितो ह्यर्कस्तथैवेक्ष्येत यद्यसौ ।

अवबुद्धः प्रकल्प्येत नान्यथेत्युपपादितम् ॥ २५८५ ॥

अवबुद्धयतामिति । आत्मा । ऊर्द्धवृत्तिमिति । आदित्यम्—परिस्थितमित्यर्थः । मन्यत इति । आत्मा । एतदुक्तं भवति । यदि नामात्मा पारम्पर्यार्पितमुपरिस्थित-मादित्यमवागृह्यत्वाऽवबुध्यते, किमित्यवागेव मन्यते नोर्द्धम् । एवं हि स एवावबुद्धो भवति, यदि यथास्थितो गृह्येत । अन्यथाऽतिप्रसङ्गः स्यात् ॥ २५८४ ॥ २५८५ ॥

यदुक्तम्—एवं प्राङ्गतया वृत्त्या प्रत्यग्वृत्तिसमर्पितमित्यादि, तत्राह—नैवं तद्ग(प्राप्त ?)तयेत्यादि ।

नैवं तद्ग(प्राप्त?)तया वृत्त्या प्रत्यग्वृत्ति समर्पितम् ।

बुध्यमानो मुखं भ्रान्त्या प्रत्यगित्यवगच्छति ॥ २५८६ ॥

अत्र कारणमाह—प्रतिबिम्बकविज्ञानमित्यादि ।

प्रतिबिम्बकविज्ञानं स्वास्याद्यालम्बनं न तत् ।

तद्विलक्षणनिर्भासाद्रसशब्दादिवित्तिवत् ॥ २५८७ ॥

तद्विलक्षणनिर्भासादिति । भावलक्षणो निर्देशः । तद्विलक्षणनिर्भासत्वादित्यर्थः । बहुव्रीहेश्चायम् । प्रयोगः—यद्यद्विलक्षणनिर्भासं ज्ञानं न तत्तदालम्बनम्, यथा रसादिविज्ञानं न शब्दालम्बनं शब्दविज्ञानं वा रसालम्बनम्, मुखादिविलक्षणनिर्भासाश्च प्रतिबिम्बधिय इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः ॥ २५८७ ॥

(अ)सिद्धतामस्य परिहरन्नाह—अल्पीयसीत्यादि ।

अल्पीयस्यास्यमल्पीयो दर्पणे प्रतिभाति हि ।

विपर्यस्तश्च वृक्षादिर्जलमग्नः प्रतीयते ॥ २५८८ ॥

दर्पणाभिमुखं बिम्बं नैवं तु प्रतिबिम्बकम् ।

जलाद्यन्तर्गतं चेदं बिम्बं त्वारादवस्थितम् ॥ २५८९ ॥

आश्रयानुविधानेन स्थूलसूक्ष्मादिभेदि च ।

प्रतिबिम्बं न बिम्बं तु नातो हेतोरसिद्धता ॥ २५९० ॥

अल्पीयसि दर्पणे महदप्यास्यं—मुखम् अल्पीयः—अल्पतरं प्रतिभाति । अधो-गतमु(शा?)खादिश्च जलमग्नो वृक्षादिः प्रतीयते, तथा प्रत्यङ्मुखं मुखमुपलभ्यते जलादिषु दूरप्रतिष्ठं च, न च तथा मुखादिविध(बिम्ब?)कमवस्थितम् । तथा सङ्गा-

आश्रयभेदादीर्घादिभेदाकारेण प्रतिबिम्बकमाभाति, न च तथा दीर्घादिभेदवद्विम्ब-  
कमिति तद्विलक्षणनिर्भासित्वं ज्ञानस्य नासिद्धम् ॥ २५८८ ॥ २५८९ ॥ २५९० ॥

अनैकान्तिकतां परिहरन्नाह—विलक्षणावभासेनेत्यादि ।

विलक्षणावभासेनाप्यर्थसंवेदने सति ।

रूपशब्दादिचित्तं स्यात्सर्वं सर्वार्थगोचरम् ॥ २५९१ ॥

ईषत्संमीलितेऽङ्गुल्या यच्च चक्षुषि दृश्यते ।

पृथगेकोऽपि साऽप्येवं भ्रान्तिर्निर्विषया मता ॥ २५९२ ॥

सर्वस्य ज्ञानस्य सर्वविषयत्वप्रसङ्गो बाधकं प्रमाणम् । यदुक्तम्—ईषत्संमीलित  
इत्यादि, तदप्यनेनैव प्रत्युक्तम्, तस्यापि निर्विषयत्वात् ॥ २५९१ ॥ २५९२ ॥

यथोक्तमनेकदेशवृत्तौ चेत्यादि, तत्राह—प्रतिबिम्बोदय इत्यादि ।

प्रतिबिम्बोदयस्त्वत्र प्रागेव विनिवारितः ।

सहैकत्र द्वयायोगान्मूर्त्तानां प्रतिघाततः ॥ २५९३ ॥

प्रतिबिम्बस्य हि वस्तुत्वं पूर्वं निषिद्धं मूर्त्तस्याभिन्नदेशत्वानुपपत्तेरित्यादिना  
॥ २५९३ ॥

भवतु नाम प्रतिबिम्बं वस्तुसत्तथापि तस्य समानबुद्धिगम्यत्वमसिद्धमिति दर्श-  
यन्नाह—अनेकदेशेत्यादि ।

अनेकदेशवृत्तौ वा सत्यपि प्रतिबिम्बके ।

स्थूलसूक्ष्मादिवद्भेदादेकत्वं नैव विद्यते ॥ २५९४ ॥

आदिशब्देन दीर्घत्वादिभेदपरिग्रहः । अथापि स्यात्सत्यपि स्थूलादिभेदे केनचि-  
न्नीलादिसाधर्म्येण समानबुद्धिगम्यत्वमस्त्येवेति । एवमपि न पारमार्थिकमैक्यं सि-  
द्धयति । कल्पितं तु स्यात्तत्र च सिद्धसाध्यता । अथापि पारमार्थिकमैक्यं स्याद्दे-  
शादिभेदेन वेद्यमानेऽपि तदा विप्रचाण्डालयोरपि मनुष्यत्वसाम्यादेकत्वमस्तु ।  
तथा स्त्रीत्वसामान्येन मातुस्ते स्वभार्यायाः स्वमुखापानयोश्च पार्थिवत्वादेकत्वमाप-  
न्नते । सर्वस्य विश्वस्य वस्तुत्वादेकत्वे सहोत्पत्तिविनाशादिप्रसङ्गश्चानिवार्य एव  
॥ २५९४ ॥

यदपीदमुक्तं भाष्ये—“अथापि स्यादेकस्य सतो नानादेशेषु युगपद्दर्शनमनुपपन्नमि-  
त्यादित्यं पश्यतु देवानां प्रियो य एकः सन्ननेकदेशावस्थ इव लक्ष्यते, .....

दूरत्वादस्य देशो नावधार्यते, अतो व्यामोहः, एवं शब्देऽपि व्यामोहादनवधारणं देशस्ये"ति । अत्राह—पुंसामित्यादि ।

पुंसामध्यवसायश्च योऽयमेवं प्रवर्त्तते ।  
 ममोपरि स्थितो भानुरिति भ्रान्तः स निश्चितः ॥ २५९५ ॥  
 सर्वे प्राणभृतो यस्मादेकमेव दिवाकरम् ।  
 पश्यन्ति यौगपद्येन न द्वितीयं कदाचन ॥ २५९६ ॥  
 रावं न मण्डलं यस्माद्धितीयादीह विद्यते ।  
 दृश्यादृष्टेरतश्चार्क एक एव विनिश्चितः ॥ २५९७ ॥  
 न त्वेवं निश्चिनः शब्द एकत्वेन कथञ्चन ।  
 क्रमेण युगपच्चापि तन्नानात्वोपलक्षणात् ॥ २५९८ ॥  
 यदा हि गादिवर्णं च वक्तारो बहवः सकृत् ।  
 प्रयुञ्जते तदा भेदो विस्पष्टमुपलभ्यते ॥ २५९९ ॥

द्वितीयस्य रविमण्डलस्योपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलम्भादभावनिश्चयादेकत्वसिद्धे-  
 र्ममोपरि स्थितो भानुरित्येष भ्रान्तः प्रत्ययोऽवधार्यते । नत्वेवं शब्दस्यैकत्वं सिद्धम्,  
 येन देशादिभेदेन विद्यमानत्वं भ्रान्तं स्यात् । सिद्धे ह्येकत्वे तथाविद्यमानत्वं भ्रान्तं  
 सिद्धयेत्, तदेव तु न सिद्धमिति यत्किञ्चिदेतत् । रावमिति । रवेरिदमित्यणन्तमे-  
 तत् । ननु च प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययेन शब्दस्याप्येकत्वं सिद्धमेवेत्याह—न त्वेवमित्यादि ।  
 प्रत्यभिज्ञायाः पूर्वमप्रामाण्यस्य प्रतिपादितत्वादिति भावः । यौगपद्येन नानात्व-  
 सिद्धिं प्रतिपादयति—यदा हीत्यादि । विस्पष्टमिति । द्रुतमध्यविलम्बितादिभेदेन  
 प्रतिभासनात् ॥ २५९५ ॥ २५९६ ॥ २५९७ ॥ २५९८ ॥ २५९९ ॥

क्रमेणापि प्रतिपादयन्नाह—क्रमेण त्वित्यादि ।

क्रमेण तु प्रयोगेऽस्य प्रत्यक्षेण न केवलम् ।  
 भेदोऽवगम्यते किन्तु लिङ्गादपि धियां क्रमात् । २६०० ॥

प्रत्यक्षेण न केवलमिति । तदाऽपि पञ्जा(षड्जा ?)दिभेदेन स्पष्टप्रतिभासिभेदानु-  
 भवात्, न चायं व्यञ्जकभेदस्तस्य पूर्वं निरस्तत्वात् । लिङ्गादपीति । अनुमानतो-  
 ऽपीत्यर्थः । प्रयोगः—यद्यदा न भवति न तदा तदविकलकारणं भवति यथा  
 रूपालोकमनस्कारादिप्रत्ययकलापेऽपि सति चक्षुर्विकलस्याभवच्चक्षुर्विज्ञानम्, न

भवन्ति चैकगकारादिविज्ञानोत्पत्तिकाले पश्चात्कालभावीनि तद्भावित्वेनाभिमतानि विज्ञानानीति व्यापकानुपलब्धिः । अविकलकारणत्वस्य भवनेन व्यासत्वात्तस्य चे-  
हाभावः । ननु च सामान्येनाविकलकारणत्वमात्रस्य प्रतिषेधे साध्ये सिद्धसाध्यता ।  
तथाहि नित्यस्य शब्दस्य कारणत्वेऽपि सहकारिकारणवैकल्यादनुत्पत्तिः पश्चात्का-  
लभाविनां प्रत्ययानामिष्यत एव परेण । अथ विशिष्टेन शब्दाख्येन कारणेन यद-  
विकलकारणत्वं तत्प्रतिषेधः साध्यते, तदाऽनैकान्तिकता हेतोः । दृष्टान्तश्च साध्य-  
विकलः । न हि चक्षुर्विज्ञानं शब्दकारणवैकल्यान्न भवति । किं तर्हि ? । चक्षुर्वैक-  
ल्यात् । नैतदस्ति । सामान्येनैव साध्यम्, न च सिद्धसाध्यता, तथाहि—यदि  
नित्यस्य कारणान्तरापेक्षिता सम्भवेत्तदा सिद्धसाध्यता भवेत् । यावता सैव न  
सम्भवति तस्य तेनानुपकार्यत्वात् । उपकारी ह्यपेक्ष्यः स्यादन्यथाऽतिप्रसङ्गः ।  
तस्मादनपेक्ष्यस्य शब्दस्य कारणत्वाभ्युपगमे सर्वमेव तद्भाविविज्ञानमविकलकारण-  
मेवेति सदैव मवेत् । अभावे तु तदभवद्विज्ञानं तस्यैव शब्दस्य वैकल्यं सूचयेदिति  
कथं सिद्धसाध्यता । विशेषेणापि कारणवैकल्ये साध्ये नानैकान्तिकता, नापि दृष्टा-  
न्तस्य साध्यविकलता । तथाह्ययमत्रार्थो विवक्षितः—यस्मिन्सत्यपि यन्न भवति  
तत्कारणं भवतो न भवति, यथा चक्षुर्विज्ञानं शब्दे सत्यप्यभवत्, सत्यपि च गका-  
रादिशब्दस्वरूपविशेषे तद्भावित्वेनाभिमतानि ज्ञानानि न भवन्तीति व्यापकानुप-  
लम्भः । अत्रापि नित्यस्यापेशानुपपत्तिर्विपर्यये बाधकप्रमाणवृत्तिः । न च कुशूल-  
स्थेन बीजादिना व्यमि वारस्तस्याङ्कुरं प्रति मुख्यकारणत्वानुपपत्तेरित्यलं प्रपञ्चेन  
॥ २६०० ॥

यदुक्तं पूर्वम्—व्यञ्जकध्वन्यधीनत्वादित्यादिना, तद्वस्तुतो दूषितमपि पुनरपि  
निवर्त्य सत्यपि नित्यानां व्यञ्जके दुष्ट एवायं पक्ष इति विख्यापयिष्या दूषयन्नाह  
—व्यञ्जकेत्यादि ।

व्यञ्जकध्वन्यधीनं च भवत्वस्योपलम्भनम् ।

यथाऽवस्थितमरूपस्य किन्तु तस्य ग्रहो भवेत् ॥ २६०१ ॥

नान्यथा तद्ग्रहोऽयं स्यात्तद्रूपाप्रतिभासनात् ।

व्याप्ताशेषनभोभागो नहि शब्दः प्रकाशते ॥ २६०२ ॥

तद्धनेर्भिन्नदेशत्वं श्रुतिः किमनुरुध्यते ।

व्यक्तस्तु प्रतिभासेत स्वात्मनैव घटादिषत् ॥ २६०३ ॥

सर्वं च प्रक्रियामात्रमिदमुक्तं च कारणम् ।

व्यञ्जकानामसामर्थ्यं व्यक्त्ययोगाच्च साधितम् ॥ २६०४ ॥

प्रत्यक्षस्तु स एवेति प्रत्ययः प्राग् निराकृतः ।

देशभेदेन भिन्नत्वमित्येतत्तदबाधितम् ॥ २६०५ ॥

यदि हि शब्दस्य व्यञ्जकाधीनं ग्रहणं तत्किमिति यथाऽसौ यावद्योम स्थितस्तदा न गृह्येत । एवं तस्य तद्ग्रहणं भवेदन्यथाऽतिप्रसज्यत इत्यावेदितं पूर्वम् । न च यावद्योम शब्दो गृह्यते । तस्माद्धन्यनुरोधेन (न)शब्दश्रुते(तिः)र्युक्ता । किं तर्हि ? , यस्यासौ श्रुतिस्तमेव शब्द तस्या अनुरोद्धं युक्तम् । एवं (च) तस्यासौ सिद्धयेनान्यथा, ततश्च घटादिवत्सर्वात्मनैव प्रतिभासेतेति सङ्केपार्थः । तदिति । तस्मात् ॥ २६०१ ॥ २६०२ ॥ २६०३ ॥ २६०४ ॥ २६०५ ॥

पर्यायेण यथा चैक इत्यादावाह—पर्यायेणेत्यादि ।

पर्यायेण च यः कश्चिद्भिन्नदेशाद्(न्त्र ?)जत्य(न्न?)सौ ।

सिद्धयति क्षणभङ्गित्वाच्चान्यथा(स्य गति)र्भवेत् ॥ २६०६ ॥

पूर्वदेशावियुक्तस्य स्वभावस्यानुवर्त्तनात् ।

न हि देशान्तरप्राप्तिः स्वैर्ये तस्योपपद्यते ॥ २६०७ ॥

अनित्यस्य हि देशान्तरोत्पत्तिरेव गतिः, न तु नित्यस्य, एकदेशवर्त्तिस्वभावमविजहतो देशान्तरगमनायोगात् । त्यागे वा नित्यत्वहानिप्रसङ्गात् । एतदेव दर्शयति—पूर्वदेशावियुक्तस्येत्यादि ॥ २६०६ ॥ २६०७ ॥

यथा महत्यां खातायामित्यादावाह—नभस इत्यादि ।

नभसो निरुपाख्यत्वान्नाभिव्यक्तिः प्रकल्पते ।

अत्यक्षत्वाच्च खे नायमालोकः स तथेक्ष्यते ॥ २६०८ ॥

नभसो वस्तुत्वासिद्धेर्नाभिव्यक्तिर्युक्ता, स्पष्टव्याभावमात्र एव तत्प्रज्ञप्तेः, तथा अन्धकारे प्रतिघातमविदन्त आकाशमेव नात्र किञ्चिदिति वक्तारो भवन्ति । येषामपि वस्तुसदाकाशं तेषां तदतीन्द्रियमेवेति कथं व्योम्नि धीर्भवेत् । अत एवाह—अत्यक्षत्वाच्चेति । यथेवं मृदि खातायां किं तदुपलभ्यत इत्याह—आलोकः स तथेति ॥ २६०८ ॥

सत्यप्याकाशस्य वस्तुत्वेऽभिव्यक्तिर्नैव युज्यते इति दर्शयन्नाह—किञ्चेत्यादि ।

किञ्च शब्दवदाकाशोऽप्यभिव्यक्तिर्न युज्यते ।

ज्ञानं हि व्यक्तिरेषां च नित्यं स्याद्धेतुसन्निधेः ॥ २६०९ ॥

यथा च व्यञ्जकः शब्दे न कथञ्चित्प्रकल्पते ।

तन्नात्रैवं परोपाधिः शब्दबुद्धौ सति भ्रमः ॥ २६१० ॥

नानो दीर्घादयः सर्वे ध्वनिधर्मा इति स्थितम् ।

ध्वनीनां व्यञ्जकत्वे हि तस्स्यात्तच्च निराकृतम् ॥ २६११ ॥

तत्स्यादिति । दीर्घादीनां ध्वनिधर्मत्वम् । तच्चेति । ध्वनीनां व्यञ्जकत्वम्  
॥ २६०९ ॥ २६१० ॥ २६११ ॥

यदुक्तम्—न चादृष्टार्थसम्बन्ध इत्यादि, तत्राह—अत्यन्तभेदिनोऽपीत्यादि ।

अत्यन्तभेदिनोऽप्येते तुल्यप्रत्ययमर्शने ।

शक्ताः शब्दास्तदर्थश्चेत्यसकृच्चर्चितं पुरा ॥ २६१२ ॥

नानो दृष्टार्थसम्बन्धः शब्दो भवति वाचकः ।

संबृत्त्या वस्तुतस्त्वेष वाचको नेति साधितम् ॥ २६१३ ॥

अयमत्र संबृत्त्यर्थः । यदि पारमार्थिकस्यार्थशब्दयोर्वाच्यवाचकभावस्याभावप्र-  
सङ्गः क्रियते भवता तदा सिद्धसाध्यता । तथाहि—विस्तरेण जातिस्वलक्षणादीनां  
वाच्यवाचकत्वं शब्दपरीक्षायां निराकृतम् । अथ संबृत्तस्यापि तदाऽनैकान्तिकता,  
तथाऽअत्यन्तभेदिनोऽपि केचिदार्थाः प्रकृत्यैकाकारप्रत्ययमर्शज्ञानस्य हेतुतां प्रतिपद्य-  
मानाः संबृत्तं शब्दार्थयोर्वाच्यवाचकभावं सम्पादयिष्यन्तीति प्रागेवापोहचिन्तायां  
प्रतिपादितम् । तस्मादपोहशब्दार्थवादिनो बौद्धान्प्रति सर्वमिदमुच्यमानमत्यन्त-  
परिलघुतया परिप्लवत एव केवलमिति ॥ २६१२ ॥ २६१३ ॥

संबृत्त्या वाचकत्वस्योपपत्तिमाह—मिथ्याऽवभासिन इत्यादि ।

मिथ्याऽवभासिनो ह्येते प्रत्यया शब्दनिर्मिताः ।

जातिस्वलक्षणादीनां वाच्यवाचकतास्थितेः ॥ २६१४ ॥

तद्भ्रान्त्या व्यवहर्तारो वैलक्षण्येऽपि वस्तुतः ।

गोशब्द एक एवेति मन्यन्ते समबुद्धयः ॥ २६१५ ॥

तस्माद्भिजातिना प्रोक्तं बहसम्बद्धभाषिणा ।

शब्दभेदं पुरस्कृत्य यत्तत्सर्वमनास्पदम् ॥ २६१६ ॥

पररूपं हि स्वप्रतिभासेन यया संवृतये बुद्ध्या यथार्थमप्रकाशनात्साकल्पिका बुद्धिः संवृतिः, तथा यद्व्यवस्थापितं तात्सांशृतमुच्यते । संवृतिसत्त्वं तदेव न पारमार्थिकं, तस्मासत्त्वात् । आन्तस्य ज्ञानस्य सर्वस्यैव निर्विपयत्वात् ॥ २६१४ ॥  
॥ २६१५ ॥ २६१६ ॥

अथापि स्याद्विना पारमार्थिकेनैकत्वेन कथं विधिप्रतिषेधलक्षणं व्यवहारमारो-  
पवशेन शब्दाः सम्पादयन्तीत्याह — तथाहीत्यादि ।

तथाहि हस्तकम्पादेनैकत्वं बुद्धिभेदतः ।

शीघ्रमन्दादिभेदेन तद्व्यक्तिश्च निराकृता ॥ २६१७ ॥

सामान्यं न च तत्रैकमनुगाम्युपलक्ष्यते ।

मङ्केनात्प्रतिषेधादिगत्यङ्गं च भवत्यसौ ॥ २६१८ ॥

हस्तकम्पादेरित्यादिशब्देनाक्षिनिकोचादिपरिग्रहः । शीघ्रमन्दादिभेदेनेति । बुद्धिभेदत इति सम्बन्धः । न चायं शीघ्रादिभेदो व्यञ्जककृतो व्यक्तेर्निषिद्धत्वात् — तद्व्यक्तिरिति । नित्यव्यक्तिः । न च सामान्यवशाद्व्यवहाराङ्गता, तस्याप्रसिद्ध-  
त्वात् । अप्रतीतस्य सामान्यस्य न युक्तं व्यवहाराङ्गत्वं, सर्वदा व्यवहारप्रसङ्गात् । प्रतिषेधादिगत्यङ्गमिति । आदिशब्देन विधानाभ्यनुज्ञानाभ्यर्थनादीनां ग्रहणम् । तेषां गतिः—प्रतीतिः तस्या अङ्ग—कारणम्, असौ—हस्तकम्पादिर्भवति । तद्व-  
च्छब्दोऽपि भविष्यतीति शेषः ॥ २६१७ ॥ २६१८ ॥

यदुक्तम्—“तस्माच्छब्दार्थसम्बन्धो नित्य एवाभिधीयते” इति तत्राह—  
साक्षादित्यादि ।

भाक्षाच्छब्दा न बाह्यार्थप्रतिबन्धविवेकतः ।

गमयन्तीति च प्रोक्तं विवक्षासूचकास्त्वमी ॥ २६१९ ॥

नहि कश्चिच्छब्दार्थयोर्वास्तवः सम्बन्धोऽस्ति । यस्य नित्यत्वमनित्यत्वं वा स्यात् । तथाहि—न बाह्यमर्थं शब्दाः प्रतिपादयन्ति तेन सह प्रतिबन्धाभावादिति पूर्वं शब्दपरीक्षायां निवेदितम् । प्रतिबन्धमन्तरेण च प्रतिपादयतामतिप्रसङ्गः स्यात् । यद्येवं किं तर्हि प्रतिपादयन्तीत्याह - विवक्षासूचकास्त्वमीति । विव-  
क्षामपि न वाच्यतया प्रतिपादयन्ति, किं तर्हि !, लिङ्गतया सूचयन्ति । अत एव सूचका इत्युक्तम् । तथाहि—शब्दादुच्चरितादर्थार्थवसायी विकल्पो जायते, न विवक्षार्थवसायी, यश्च न शब्देन ज्ञातेनाध्यवसायी स कथं शब्दार्थः ॥ २६१९ ॥

यद्येवं विवक्षयाऽपि सह कम्तेषां सम्बन्धो येन तां लिङ्गत्वेन सूचयेदित्याह—  
तस्या इत्यादि ।

**तस्याः कार्यतया ते हि प्रत्यक्षानुपलम्भतः ।**

**निश्चिता इति तेनात्र कार्यकारणता स्फुटा ॥ २६२० ॥**

तस्या विवक्षायाः कार्यत्वेनात्मनि प्रत्यक्षानुपलम्भाभ्यां शब्दा निश्चिता इति  
कार्यकारणलक्षण एव सम्बन्धः ॥ २६२० ॥

यद्येवं समयस्तर्हि व्यर्थः, प्रत्यक्षानुपलम्भाभ्यामेव कार्यकारणभावस्य निश्चित-  
त्वादित्याह—कार्यकारणभावश्चेत्यादि

**कार्यकारणभावश्च समयाद्येन निश्चितः ।**

**स विवक्षां प्रपद्येत शब्देभ्यो हस्तकम्पवत् ॥ २६२१ ॥**

एवं मन्यते यद्यपि विवक्षामात्रेण मह कार्यकारणभावो निश्चितो विवक्षाविशे-  
षेण तु परसन्ताने समयादृते न निश्चेतुं शक्यत इत्यतस्तन्निश्चयाय समयः क्रियते ।  
ननु च समयादपि कथमसौ निश्चेतुं शक्यते । तथाहि—यदि समयकाले परवि-  
वक्षाविशेषः प्रतीत्युपायः सम्भवेत्तदाऽसौ समयस्तत्र कृतः पश्चाद्भवहारकाले  
विवक्षाविशेषप्रतीतिहेतुर्भवेत् । यावता स एवाभ्युपायो नास्ति । तथाहि—नानु-  
च्चार्य शब्दं समयः क्रियते, ततश्च तत एव शब्दाद्विवक्षाविशेषप्रतिपत्तावितरेतराश्र-  
यदोषः स्यात् । तथाहि—समयवशाच्छब्दो विशेषद्योतकः समयश्च विशेषाविशे-  
षप्रतिपत्तिमन्तरेण न शक्यत इति स्पष्टमितरेतराश्रयत्वम् । नैष दोषः । यदा सर्व  
एवायं शाब्दो व्यवहारः स्वप्रतिभासानुरोधेनैवेष्यते भ्रान्तत्वात्तैमिरिकद्वयद्विचन्द्रव्य-  
वहारवत्तदा का रो(चो!)द्यच्चञ्चुता । न च सर्वत्र शब्द एव विवक्षाविशेषप्रतीति-  
हेतुरन्यथाऽपि कश्चिच्छृङ्ग्राहिकया प्रकरणादिना चार्थविशेषोपदर्शनेन च विवक्षा-  
विशेषमावेद्य समयं कुर्यादिति नेतरेतराश्रयत्वम् । किञ्च—भवतो विधिवादिन-  
स्तुल्यं चोद्यम्, परप्रतिपत्तेरप्रत्यकृ(तिकार्य)त्वात्कथं वक्तृश्रोत्रोरेकार्थप्रतिपत्तिनिश्चय इति ।  
न चैकार्थप्रतिपत्तिनिश्चयमन्तरेण समयो युक्तस्तस्य योऽत्र भवतः परिहारः स म-  
मापि भविष्यति । स्यादेतच्छब्दस्य विवक्षायामसमितत्वात्कथं तथा सह सम्बन्धः  
समयान्निश्चीयते । न ह्यत्र समयः कृतोऽन्यार्थद्योतको भवत्यतिप्रसङ्गात् । नैष दोषः ।  
विवक्षाशब्देनातत्परिवर्त्ती अर्थाकारो वा स्वरूपतया व्यस्तो यः स इहामिप्रेतः ।



परमार्थतस्तस्य विवक्षास्वभावत्वात् । स एवेह विवक्षाविशेषोऽमिप्रेतः । तत्रैव च समयो न स्वलक्षणे, स एव शब्देनाभिधीयते । ततस्तदाकारविकल्पोत्पत्तेः । केवलं तु विवक्षा न शब्देनाभिधीयत इत्युक्तम् ॥ २६२१ ॥

यद्येवं यदि विवक्षापरिवर्तिनाऽर्थाकारेण कार्यकारणलक्षण एव सम्बन्धः शब्दस्य तत्कथं तत्र तत्राचार्याः सामयिकं समयं वा शब्दार्थसम्बन्धमाहुरित्याह—विवक्षावर्तिनेत्यादि ।

**विवक्षावर्तिनाऽर्थेन कार्यकारणतात्मकः ।**

**शब्दानामेष सम्बन्धः समये सति जायते ॥ २६२२ ॥**

**तेन सामयिकः प्रोक्तस्तेन च द्योतनादतः ।**

**समयोऽप्युच्यते तेषां सम्बन्धो न तु मुख्यतः ॥ २६२३ ॥**

श्रोतृचेतसि समये सति जायते भवतीति सामयिकः आध्यात्मवादित्वात् ठन् । यद्यपि तत्र भवतिः सत्तावचनो गृहीतस्तथापि परमार्थतः सत्ताजन्मनोरभेदात्तदेव भावत्वेन विवक्ष्यते । वक्तृसन्ताने च समयो न(येन ?) द्योतनादुपचारात्समय उच्यते । तस्य प्रतिनियतकालवर्तिनेन तत्कालसम्भवात् ॥ २६२२ ॥ २६२३ ॥

ननु यदि परमार्थतो वस्तुनः सम्बन्धो नास्तीत्युक्तम्, कार्यकारणतालक्षणस्तर्हि कथं भवतीत्याह—कार्यकारणभूताभ्यामित्यादि । ते एवेति ।

**कार्यकारणभूताभ्यां वस्तुभ्यामन्य एव न ।**

**कार्यकारणतायोगस्ते एव तु तथोदिते ॥ २६२४ ॥**

कार्यकारणभूते वस्तुनी । तथोदिते इति । कार्यकारणतेत्यादिना लाघवार्थम् ॥ २६२४ ॥

यद्येवं प्रतिपुरुषप्रयोगं तयोर्भेदात्कथमभिन्नसम्बन्धप्रतीतिर्वक्तृश्रोत्रोर्भवति । तथाहि—वक्तुरेवं भवति, य एव समयकाले मया गृहीतोऽर्थः शब्दो वा तेनैव तमेवार्थं प्रतिपादयामीति, तथा श्रोतुरप्येवं भवति—तेनैव तमेवायमर्थं प्रतिपादयतीति । अन्यथा भिन्नारोधावस्थितयोः कथं व्यवहारः स्यादित्याह—ते चेत्यादि ।

**ते च प्रत्येकमेकात्मरूपत्वेन जडैर्गते ।**

**सङ्केतव्यवहारामकालव्याप्तिरतो मता ॥ २६२५ ॥**

जडैरिति । भ्रान्तैः । गते इति । गृहीते । सङ्केतव्यवहाराभ्यामाप्तौ व्याप्तश्चासौ कालश्चेति तथोक्तः । तस्य व्याप्तिः । कार्यकारणाभ्यासैकरूपाभ्यामिति शेषः ॥ २६२५ ॥

अथैक एव पारमार्थिकः सम्बन्धः कस्मान्नेष्यते, येन कारुणिक एवेष्ट इत्याह  
—एकस्त्वित्यादि ।

एकस्तु वास्तवो नैव सम्बन्ध इह युज्यते ।

असङ्कीर्णतयाऽर्थानां भेदेऽसम्बन्धता भवेत् ॥ २६२६ ॥

सम्बन्धो भवन्भिन्नानां वा भवेदभिन्नानां वा । न तावद्विज्ञानाम्, सर्वेषां स्वा-  
त्मनि स्थितत्वेनासङ्कारात् । अमेदेऽप्येकमेव तद्वस्त्विति कस्य केन सह श्लेषो भवेद-  
तोऽसम्बन्धता भवेत् ॥ २६२६ ॥

यत्तु समयलक्षणसम्बन्धदूषणं समयः प्रतिमर्त्यं चेत्यादिना तत्र सिद्धसाध्यतां  
प्रतिपादयन्नाह—समय इत्यादि ।

समयः प्रतिमर्त्यं च प्रत्युच्चारणमेव च ।

इत्याद्यतः परेणोक्तं परनीतिमजानता ॥ २६२७ ॥

समयो हि न सम्बन्धो नरधर्मतया तयोः ।

द्योतकः स तु तस्येति सम्बन्धः स्यान्न मुख्यतः ॥ २६२८ ॥

प्रत्युच्चारणमेनं च न परे प्रतिजानते ।

ईशादेः प्रतिषिद्धत्वात्सर्गादौ न च तत्कृतम् ॥ २६२९ ॥

अनिष्टापत्तिर्हि दूषणमुच्यते, न च बौद्धेन समयः शब्दार्थयोर्मुख्यः सम्बन्ध  
इष्टस्तस्य पुरुषधर्मत्वात् । तस्य च दूषणे सति नेष्टशक्तिः काचित् । न चान्यधर्मो-  
ऽन्यस्य सम्बन्धो भवत्यतिप्रसङ्गात् । यच्चोक्तम्—प्रत्युच्चारणमेव वा क्रियते जग-  
दाथैवेति पक्षद्वयं तस्यानभ्युपगमादेवादूषणम् । तदाह—प्रत्युच्चारणमित्यादि ।  
एनमिति । समयम् । पर इति । बौद्धाः । ईशादेरिति । ईश्वरब्रह्मादेः ॥ २६२७ ॥  
॥ २६२८ ॥ २६२९ ॥

यदुक्तं प्रत्येकं वापि सम्बन्ध इत्यादि, तत्राह—प्रत्येकमित्यादि ।

प्रत्येकं यच्च सम्बन्धः सन्निसः (भिन्नः ?) क्षणभङ्गतः ।

तुर्यप्रत्ययमर्शाच्च भेदेऽपि न विरुध्यते ॥ २६३० ॥

द्वितीय एवात्र पक्षः । न च भेदधीप्रसङ्गो भेदेऽपि तुर्यप्रत्ययमर्शाहेतुत्वाविरो-  
धात् । अतोऽनैकान्तिकमेतदुक्तम्—भिन्नश्चेद्भेदधीर्भवेदिति ॥ २६३० ॥

स्यादेतत्—क्षणभङ्गोऽयमस्माकमसिद्धस्तत्कथमुच्यते ? क्षणभङ्गतो भिन्न इत्याह  
—क्रमेणेत्यादि ।

क्रमेण जायमानाश्च धियस्तद्विषयाः स्फुटम् ।

तस्याप्याहुः क्रमं तासामक्रमो ह्यन्यथा भवेत् ॥ २६३१ ॥

तस्यापीति । सम्बन्धस्य क्रममाहुः—प्रतिपादयन्तीत्यर्थः । अक्रमो ह्यन्यथा भवेदिति । धियामिति सम्बन्धः । एतच्च विपर्यये बाधकं प्रमाणम् । प्रयोगश्च पूर्व-बहोध्यः ॥ २६३१ ॥

वक्तृश्रोतृषियोर्भेदाद्व्यवहारश्च दुष्यतीत्यादावाह—सकृदेवेत्यादि ।

सकृदेव बहूनां तु सङ्केतकरणे सति ।

समयो नेष्यते भिक्षो नीलाद्येकक्षणो यथा ॥ २६३२ ॥

वक्तुरन्यो न सम्बन्धो बुद्धौ श्रोतुर्न चापरः ।

एकरूपा च सा यस्य(स्मात् ?)द्वयोरप्यनुवर्त्तनात् ॥ २६३३ ॥

श्रोतुः कर्तुं च सम्बन्धं वक्ता पूर्वं प्रपद्यते ।

पूर्वोपलब्धो यस्तेन तमेव हि करोत्यसौ ॥ २६३४ ॥

एकाकारा यतस्तस्य वृत्ता प्रत्यवमर्शधीः ।

तस्माद्भिन्नेऽपि शब्दादावेकत्वं सोऽध्यवस्यति ॥ २६३५ ॥

यथा नीलादिक्षणो बहुभिर्दृश्यमानोऽपि न भिद्यते, एवं बहूनां सङ्केतकरणेऽपि सति न सम्बन्धो भवेत्यति, किं पुनर्द्वयोः । सर्वेषां तुल्यप्रत्यवमर्शस्थितत्वादिति भावः । अतो न वक्तृश्रोत्रोरन्यः सम्बन्धो भवति ॥ २६३२ ॥ २६३३ ॥ २६३४ ॥ २६३५ ॥

यदुक्तम्—‘घटादावपि तुल्यं चेन्न सामान्यप्रसिद्धितः’ इत्यादि तत्राह—  
घटादावपीति ।

घटादावपि सामान्यं प्रागेव विनिवारितम् ।

नहि भूतगुणप्रख्या काचिदाकृतिरिष्यते ॥ २६३६ ॥

न चास्याकृतितः सिद्धा शक्तिरब्धारणादिषु ।

तेषामपि हि नित्यत्वमाकृतेर्यद्यमेदिनः ॥ २६३७ ॥

मेदे सम्बन्धदोषस्तु तदुत्पत्तौ त्वनित्यता ।

अतो नाकृतिनो युक्ता शक्तिरब्धारणादिषु ॥ २६३८ ॥

घटादेर्व्यतिरेकेऽपि शक्तेर्दीषा इमे भ्रुवम् ।

अब्धारणादि तत्कार्यं नित्यमेवं प्रसज्यते ॥ २६३९ ॥

प्रागेवेति । सामान्यपरीक्षायाम् । पुनरत्रैव सङ्क्षेपेण निराकरणमाह—नही-  
त्यादि । मृतानाम्—आदित्यजहादीनां (क्षितिजलादीनां ?) कण्ठे (काष्ण्यादि ?)  
गुण(वत्)व्यतिरिक्ता भवता मीमांसकेन जातिरिष्यते । नापि दृश्यत्वेनेष्टा सती  
सा दृश्यते, अव्यतिरिक्ताऽपि न युज्यते, तेषामपि घटादीनामाकृतिस्वरूपवन्नित्य-  
त्वप्रसङ्गात् । अथापि भिन्नाऽभ्युपगम्यते तदा सम्बन्धाभावदोषः, भिन्नानां हि  
तदुत्पत्तिलक्षण एव सम्बन्धो भवेत्, ततश्च तदुत्पत्तौ मत्यां जातेरनित्यता प्रा-  
प्नोति, उत्पत्तिधर्मकत्वाद् घटवत् । क्वचित्तु नित्यतेति पाठः । तत्रायमर्थः—यदि  
घटादीनां ततो जातेः सकाशादुत्पत्तिरङ्गीक्रियते तदा घटादीनां नित्यता प्राप्नोति,  
नित्यं कारणस्य सन्निधानान्नित्यमुत्पत्तिः प्राप्नोतीत्यर्थः । उभयस्वभावपक्षे उभयप-  
क्षभावी दोषः, एकत्वहानिप्रसङ्गश्च । वस्तुनः स्वभावद्वयानुपपत्तेः । एवं हि द्वे  
एव ते वस्तुनी कथिते स्यातां नैकमुभयात्मकम् । अनुभयपक्षे वस्तुत्वहानिप्रसङ्गः ।  
एकस्य विधिप्रतिषेधायोगश्चेति वाच्यम् । इमे दोषा इति । सम्बन्धासिद्धिनित्य-  
तादिप्रसङ्गलक्षणाः । नित्यमन्वधारणादिकार्यप्रसङ्गाच्चौघो दोषः ॥ २६३६ ॥  
॥ २६३७ ॥ २६३८ ॥ २६३९ ॥

यदुक्तम्—शक्तिरेव हि सम्बन्ध इत्यादि । तत्राह—शक्तिरेव चेत्यादि ।

शक्तिरेव च सम्बन्धो भेदश्चास्या न चेन्मतः ।

शब्दार्थानां भवेदेका शक्तिरव्यतिरेकतः ॥ २६४० ॥

व्यतिरेकेऽपि सम्बन्धस्तस्यास्ताभ्यां न कश्चन ।

तदुत्पत्तौ न नित्यत्वं न चान्या वस्तुनो गतिः ॥ २६४१ ॥

न चान्येति । उभयानुभयस्वभावलक्षणे पूर्ववद्दोषप्रसङ्गात् ॥ २६४० ॥ २६४१ ॥

यदुक्तम्—सम्बन्धाख्यानकाल इत्यादि, तत्राह—सम्बन्धेत्यादि ।

सम्बन्धाख्यानकाले तु गोशब्दादावुदीरिते ।

केचित्सम्बन्धबुद्धयार्थं बुध्यन्ते न परे तथा ॥ २६४२ ॥

यस्मात्सम्बन्धसद्भावाद्याहशः स प्रकाशिनः ।

तावकीने तु सम्बन्धे सर्वोऽर्थमवधारयेत् ॥ २६४३ ॥

शक्तिरेव हि सम्बन्धो नित्या युष्माभिरिष्यते ।

सा चार्थबोधजनने नियताऽनवधिर्न वा ॥ २६४४ ॥

नियताऽनवधौ सर्वः किमर्थं नावधारयेत् ।

सावधावपि क्रो हेतुः प्रकृतिश्चेत्स्वतस्तथा ॥ २६४५ ॥

सङ्केतग्रहणात्पूर्वं तस्य चास्मरणे पुनः ।

एकस्यैव प्रवृत्तं किं विज्ञानं तत्र वृत्तिमत् ॥ २६४६ ॥

तज्ज्ञानजन्मनियता सा हि शक्तिरवस्थिता ।

अथ ज्ञातैव सा शक्तिर्नियता परिकल्प्यते ॥ २६४७ ॥

ज्ञाताऽज्ञाता च भिन्ना चेन्नित्यवमवहीयते ।

एक्ये तु किंनिमित्तोऽयं विभाग उपवर्ण्यते ॥ २६४८ ॥

यादृश एतत्कार्यकारणभावलक्षणस्तादृशो यस्मात्सम्बन्धोऽस्ति तस्मात्केचिद्बुध्यन्त इति युक्तं स्यात्, तस्य नियतज्ञानोत्पादकत्वेन स्थितत्वात् । भवदीये तु सम्बन्धे सर्वमयुक्तमिति दर्शयति—तावकीन इत्यादि । तथाहि—शक्तिर्लक्षणसम्बन्ध इष्यते, जनकं च रूपं शक्तिरुच्यते, सा च नित्यैकस्वभावत्वेनेष्टार्थबोधजनने च नियता, ततश्चार्थबोधनियता सती किमनवधिरिष्टा—कतिपयपुरुषावधिरहिता, आहोस्विन्नेति पक्षद्वयम् । प्रथमे पक्षे सर्वेषां युगपत्सर्वथा चार्थावधारणप्रसङ्गः । द्वितीयेऽपि पक्षे प्रतिनियतविज्ञानजनकस्वभावनियामको हेतुर्वाच्यः, कृतकानां हि भावानां प्रतिनियतकार्यजनकस्वभावस्य नियामकाः स्वहेतुप्रत्यया युक्ताः, न तु नित्यानामिति भावः । स्यादेतन्नित्यानामपि प्रकृतिरेव सा तादृशी, येन प्रतिनियतं कार्यं जनयन्ति, न सर्वं, नहि स्वभावाः पर्यनुयोगमर्हन्तीति, एवं तर्हि यदि स्वत एव तस्यायं स्वभावः परनिरपेक्षस्तदा सङ्केतग्रहणात्पूर्वं तथा विस्मृतसङ्केतस्य तस्यैव प्रतिनियतस्य प्रतिपत्तुः सर्वदा ज्ञानप्रवृत्तिः प्राप्नोति तज्ज्ञानजनने नियतायाः शक्तेः सदाऽवस्थितत्वात् । अथापि स्यात् ज्ञापकत्वात्सम्बन्धलक्षणा शक्तिर्ज्ञाता सती ज्ञानं जनयति, नाज्ञाता, तेन न भवति यथोक्तदोषप्रसङ्ग इति । तदसम्भक् । यदि हि ज्ञाताज्ञातावस्थयोः परस्परं भेद इष्यते तदा नित्यत्वहानिः । अथाभेदस्तदा ज्ञाताज्ञातस्वभावद्वयविभागानुपपत्तिः, नद्येकस्य वस्तुन एकपुरुषापेक्षया ज्ञातत्वमज्ञातत्वं च परस्परं विरुद्धं स्वभावद्वयं युज्यत इति ॥ २६४२ ॥ २६४३ ॥ २६४४ ॥ २६४५ ॥ २६४६ ॥ २६४७ ॥ २६४८ ॥

किञ्च—सति हि प्रतिपत्त्युपाये शक्तेर्जातत्वं स्याद्यावता स एव न सम्भवतीति मन्यमानः पृच्छति—किञ्चेत्यादि ।

किञ्च केनाभ्युपायेन विज्ञाना शक्तिरिष्यते ।

अर्थापत्तेरिति चैव्यस्मादयं न्याय इह स्थितः ॥ २६४९ ॥

शब्दवृद्धाभिधेयानि प्रत्यक्षेणात्र पश्यति ।

श्रोतुश्च प्रतिपन्नत्वमनुमानेन चेष्टया ॥ २६५० ॥

अन्यथानुपपत्त्या च वेत्ति शक्तिं द्वयाश्रिताम् ।

अर्थापत्त्याऽवबुध्यन्ते सम्बन्धं त्रिप्रमाणकम् ॥ २६५१ ॥

अर्थापत्तेरित्यादिना परस्योत्तरं विस्तरेण तावदाशङ्कते । तथाहि— सम्बन्धप्रतिपत्तेरर्थं न्यायः कुमारिलेन वर्णितः— यस्मात्प्रथमं तावत्प्रत्यक्षेण शब्दं वृद्धं च शब्दस्याख्यातारमभिधेयं च वाच्यं वस्तु पश्यति, ततः पश्चादनुमानेन चेष्टालक्षणेन लिङ्गेन श्रोतुः प्रतिपन्नत्वं पश्यति— अवधारयतीत्यर्थः । करणं कारकं कृत्वा चेष्टाया अनुमानत्वमुक्तम् । ततश्च पश्चादार्थापत्त्या द्वयाश्रिताम्— शब्दार्थाश्रितां शक्तिं वेत्ति । अर्थापत्त्या तु साक्षादवबुध्यन्त इत्यतोऽर्थापत्त्याऽवबुध्यन्त इत्युक्तम् । त्रिप्रमाणकमिति । प्रत्यक्षानुमार्थापत्तिलक्षणानि त्रीणि प्रमाणानि यस्याधिगमाय भवन्ति स तथोक्तः ॥ २६४९ ॥ २६५० ॥ २६५१ ॥

अन्यथैवेत्यादिना दूषणमाह ।

अन्यथैवोपपन्नत्वाच्छक्तिर्बोद्धुं न शक्यते ।

शब्दात्सामयिकाद्यस्मात्प्रतिपत्तिरनाकुला ॥ २६५२ ॥

अनेनार्थापत्तेरनैकान्तिकतामाह— विनापि नित्यसम्बन्धं प्रतिपत्तिसम्भवस्य प्रतिपादितत्वात् ॥ २६५२ ॥

न केवलसाधकप्रमाणाभावात्तत्करूपना न युक्ता, प्रमाणबाधितत्वादपि न युक्तेति दर्शयन्नाह— शक्तिनित्यत्वेत्यादि ।

शक्तिनित्यत्वपक्षे तु सङ्केतादि व्यपेक्षते ।

न किञ्चिदिति शब्दार्थप्रतिपत्तिः सदा भवेत् ॥ २६५३ ॥

समर्थान्तरभावे च कलिमार्यादिशब्दवत् ।

नान्यार्थबोधकत्वं स्याद्धनेर्नियतशक्तिः ॥ २६५४ ॥

नानार्थद्योतनायैव शक्तिरेका यदीष्यते ।

भिन्ना वा शब्द एकस्मिन्सकृन्नानार्थविद्भवेत् ॥ २६५५ ॥

प्रयोगः—ये सङ्केतापेक्षार्थप्रकाशना न ते नित्यसम्बन्धयोगिनः, यथा गाव्या-  
दिशब्दाः, सङ्केतापेक्षार्थप्रकाशनाश्च गवादयो लौकिकवैदिकाः शब्दा इति विरुद्ध-  
व्याप्तोपलब्धिः । सापेक्षत्वस्य नित्यसम्बन्धयोगित्वविरुद्धेनानित्यसम्बन्धयोगित्वेन  
व्याप्तत्वात् । एतच्च प्रमाणं पश्चात्करिष्यते । अत्र तु व्याप्तिमात्रस्य प्रसाध्यते ।  
तथाहि—शक्तिलक्षणेनार्थप्रतिपत्तिहेतुना सम्बन्धेन नित्यसम्बन्धयोगिनः शब्दा  
इष्टाः । सा च शक्तिर्नित्यत्वादनूपकार्येति न किञ्चित्सङ्केतादि व्यपेक्षते । ततश्च  
तद्भाविनी शब्दार्थप्रतिपत्तिः सर्वदा भवेत् । किञ्च—सा शक्तिरेकार्थनियता वा  
भवेन्नानार्थनियता वा, तत्रापि नानार्थनियमपक्षे किमेकस्य शब्दस्य नानार्थद्योतिका  
शक्तिरेकैव, आहोस्विदनेकेति विकल्पाः । तत्राप्ये पक्षे यदेतद्देशकालादिभेदेन सङ्के-  
तान्तरे क्रियमाणे सति ध्वनेः शब्दस्यापा(न्या ?)र्थबोधकत्वं दृष्टम्—यथा कलिमा-  
र्यादिशब्दानां द्रविदा(डा ?)र्थदेशयोर्यथाक्रममन्तकालवर्षोपसर्गाद्यभिधायिनां(?) तत्र  
प्राप्नोति, नियतशक्तिकत्वात् । चक्षुरादिवत् । नहि चक्षुः सङ्केतवशाद्रसाद्युपल-  
म्भाय नियोगमर्हति । द्वितीयेऽपि पक्षे एकस्माच्छब्दाद्युगपत्सर्वेषां पुंसां शब्दार्थ-  
प्रतिपत्तिप्रसङ्गः । तद्दर्शयति—शब्द एकस्मिन्नित्यादि ॥ २६५३ ॥ २६५४ ॥  
॥ २६५५ ॥

अत्रैव दोषान्तरमाह—अर्थद्योतनशक्तेश्चेत्यादि ।

अर्थद्योतनशक्तेश्च सर्वदैव व्यवस्थितेः ।

तद्देतुरर्थबोधोऽपि सर्वेषां सर्वदा भवेत् ॥ २६५६ ॥

तस्मिन्सङ्केतसापेक्षा शक्तिश्चेत्परिकल्प्यते ।

ननूपकार्यपेक्षेत नोपकार्या च साऽचला ॥ २६५७ ॥

तस्मिन्निति । अर्थबोधे । सेति । शक्तिः । अचलेति । नित्या । अयं चानुप-  
कार्यत्वे हेतुः ॥ २६५६ ॥ २६५७ ॥

अभ्युपगम्यापि सङ्केतसापेक्षत्वं दोषान्तरमाह—अर्थद्योतनहेतोश्चेत्यादि ।

अर्थद्योतनहेतोश्च सङ्केतस्य नराश्रयात् ।

शक्ताधितरजन्यायामपि मिथ्यात्वसम्भवः ॥ २६५८ ॥

अपि नामासङ्कीर्णमर्थं जानीयामिति सङ्करहेतुः पुरुषोऽपाकीर्णो भवता, तत्र  
यथा क्वचित्तैः प्रयुक्ताः सङ्कीर्यन्ते शब्दास्तथा सर्वार्थसाधारणाः सन्तो वैदिकाः

कच्चित्छिच्छावशात्संमिताः किं न सङ्कीर्येरन् । तेषां पुंसां तत्त्वापरिज्ञानात् । तथा-  
हीच्छावशात्समयः सा च तेषामतत्त्वविदां स्वातन्त्र्येण प्रवर्त्तमाना केन नियम्येत ।  
ततश्च स्वातन्त्र्येच्छाभावी समयोऽपि स्वैरी वैरी च किमिति विरुद्धमर्थं परिहरेत्  
॥ २६५८ ॥

नानार्थद्योतनशक्तिपक्षमभ्युपगम्य दोषान्तरमाह— नानार्थद्योतने शक्ति-  
रित्यादि ।

नानार्थद्योतने शक्तिर्भवत्वेकस्य हि ध्वनेः ।  
नाग्निहोत्रादयस्त्वर्थाः सर्वे सर्वोपयोगिनः ॥ २६५९ ॥  
तदिष्टविपरीतार्थद्योतनस्यापि सम्भवात् ।  
नित्यशब्दार्थसम्बन्धकल्पना वो निरर्थका ॥ २६६० ॥

यद्यपि शब्दानां नानार्थप्रतिपादनसामर्थ्यमस्ति, नत्वर्थानां सर्वार्थक्रियाका-  
रित्वं, प्रतिनियतत्वात्कार्यकारणभावस्य । अन्यथा हि न कश्चिद्विधाती स्यादवि-  
धाती वा । ततश्च प्रतिनियतार्थक्रियासाधनेऽर्थे प्रतिपिपादयिषिते सति सर्वार्थ-  
साधारणस्य शब्दस्येष्टार्थविषयमेव समयं समयकृत्करोतीति कुत एतल्लभ्यम् ।  
तस्मान्मिथ्यात्वसम्भवान्नित्यसम्बन्धकल्पना व्यर्थैव ॥ २६५९ ॥ २६६० ॥

पुनरप्यानर्थक्यमस्य दर्शयन्नाह—सङ्केते चेत्यादि ।

सङ्केते च व्यपेक्षायां नित्यसामर्थ्यलक्षणः ।  
किमकारण एवायं सम्बन्धः परिपोष्यते ॥ २६६१ ॥  
सिद्धोपस्थायिस्तस्य नहि कश्चित्समीक्ष्यते ।  
सङ्केतव्यतिरेकेण व्यापारोऽर्थावबोधने ॥ २६६२ ॥

यदि सत्तामात्रेण सम्बन्धोऽर्थप्रतीतिहेतुः स्यात्तदा सङ्केतानभिज्ञस्यापि स्यादि-  
त्यवश्यं समयापेक्षिता तस्येष्टव्या । ततश्च समयस्याप्यर्थप्रतीतिहेतुत्वेऽङ्गीक्रियमाणे  
स किमकारणं सिद्धोपस्थायी नित्यसम्बन्धोऽपरः पोष्यते । तथाहीयानेव सम्ब-  
न्धस्य व्यापारो यदर्थप्रतीतिजननं, तच्चेत्समयेन क्रियते तदा किमपरनित्यसम्बन्ध-  
कल्पनया । न चापि तस्यानाघेवातिशयस्य काचिदपेक्षेति शतशशर्चितम् । अदृष्टसा-  
मर्थ्यस्य च हेतुत्वकल्पने हन्त हरीतकीं प्राप्य देवता विरेचयन्तीति किं न कल्प्येत  
॥ २६६१ ॥ २६६२ ॥



तथाहीत्यादिना सम्बन्धस्य तामेव व्यापारासिद्धिं दर्शयति ।

तथाहि व्यवहारोऽयं न दृष्टः समयं विना ।

तस्मात्सम्बन्धसिद्धिश्चेत्यनर्थेयं परम्परा ॥ २६६३ ॥

तस्मादिति । सङ्केतात् । अनर्थेयं परम्परेति । अदृष्टसामर्थ्यस्य हेतुत्वकल्पने-  
ऽनवस्थादोषात् । तथाहि—सम्बन्धेऽपि कल्पिते पुनरपि कस्मादपरमदृष्टसामर्थ्यं  
हेत्वन्तरं न कल्पयेत्, अदृष्टमामर्थ्येनाविशेषान्, एवं पुनरपीति महत्यनर्थपरम्परां  
जायेत ॥ २६६३ ॥

एयं बाधकस्य प्रमाणस्य व्याप्तिं प्रमाध्य नरेच्छेत्यादिनाऽर्थापत्तेरनैकान्तिकत्वं  
पूर्वं प्रतिपादितमुपसंहरति ।

नरेच्छामात्रसम्भूतसङ्केतादपि केवलात् ।

युज्यते व्यवहारश्च ततो योगो न सिद्ध्यति ॥ २६६४ ॥

योगो न सिद्ध्यतीति । नित्य इति शेषः ॥ २६६४ ॥

एवं च कृत्वा यच्चेदमुक्तं—‘सर्वेषामनभिज्ञानां पूर्वपूर्वप्रसिद्धित’, इत्यादि, तत्प-  
रम्परपराहतमुक्तमिति अन्यथाऽनुपपत्तिरित्यादि ।

अन्यथाऽनुपपत्तिस्तद्व्यवहारस्य शङ्क्यते ।

अतीन्द्रियश्च योगोऽतो न नरैरवगम्यते ॥ २६६५ ॥

सर्वेषामनभिज्ञत्वात्पूर्वपूर्वाप्रसिद्धितः ।

न सिद्धो योग इत्येवं किमसौ परिकल्प्यते ॥ २६६६ ॥

यदि हि सर्वेषामनभिज्ञत्वं कथं तर्हि पूर्वपूर्वतोऽनभिज्ञत्वात्सम्बन्धप्रसिद्धिर्भवेत्,  
न ह्यन्धपरम्परा परेषां रूपविशेषोपदेशाय प्रभवति । यथोक्तं शाबरे भाष्ये—नैव-  
ज्ञातीयकेष्वर्थेषु पुरुषवचनं प्रामाण्यमुपैति, अन्धानामिव वचनं रूपविशेषेष्विति ।  
स्यादेतदप्रत्यक्षदर्शित्वात्सर्वेऽनभिज्ञा उच्यन्ते, न तु सर्वथा परिज्ञानाभावात्, शाब्द-  
व्यवहारान्यथानुपपत्त्या तु प्रमाणेन पूर्वपूर्वेषां वृद्धानामभिज्ञत्वमस्त्येवेति । नैतदेवं  
यतोऽन्यथाऽपि सङ्केताच्छाब्दो व्यवहारः प्रवर्तेत । एतन्न नाम दर्शि (निश्चि?) तं,  
तथापि संदिग्धमेतत्—किमसौ नित्य आहोस्विदनित्य इति । अत एवाह—  
शङ्क्यत इत्यादि । तथाहि—अर्थापत्त्या सम्बन्धमात्रास्तित्वं प्रतिपाद्यते, न तु  
विशेषः, तेन सह प्रतिबन्धासिद्धेरित्यभिप्रायः । अत एवानुमानान्मार्थापत्तेर्मेवः ।

स्यादेतत्—नानित्यस्यार्थप्रतिपादनहेतुत्वं दृष्टम्, न च युक्तमिति पूर्वं प्रतिपादित-  
मत्तोऽसामर्थ्यामित्यं सिध्यतीति । तदेतन्नित्येऽपि समानमसिद्धं च ॥ तथाहि । नित्य-  
स्यापि सम्बन्धस्यार्थप्रतिपत्तिहेतुत्वं न दृष्टमिति समानम्, हस्तकम्पादीनामनित्य-  
त्वेऽपि प्रतिपादकत्वं दृष्टमित्यदृष्टमसिद्धम् । अन एवायुक्तत्वमसिद्धम् । नित्यस्य  
च क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधादिति, तस्यैवायुक्तत्वमिति यत्किञ्चिदिति  
(देतत् ?) ॥ २६६५ ॥ २६६६ ॥

एवमर्थापत्तेरनैकान्तिकत्वमुपसंहृत्य बाधकं प्रमाणमुपसंहरति—तद्गवाश्वाद्य  
इत्यादि ।

**तद्गवाश्वाद्यः शब्दा नित्यसम्बन्धयोगिनः ।**

**सङ्केतसव्यपेक्षत्वात्तैव गाव्यादिशब्दवत् ॥ २६६७ ॥**

तदिति । तस्मात् .। नित्यसम्बन्धयोगिन इति । नेति सम्बन्धः । प्रयोगरचना  
तु पूर्वमेव दर्शिता ॥ २६६७ ॥

ननु च गाव्यादिशब्दानामसाधुत्वान्नैव वाचकत्वमिष्टं परेणेत्यसिद्धो दृष्टान्तः ।  
तथा चोक्तं कुमारिलेन—‘गोशब्देऽवस्थितेऽस्माकं तदशक्तिजकारिता । गाव्यादेरपि  
गोबुद्धिर्मूलशब्दानुसारिणी’ति । अयमस्यार्थः—गोशब्दे साधौ वाचके सति या  
गाव्यादेरसाधोः प्रयोगात् गोबुद्धिर्भवतीत्युच्यते, न सा तत एव भवति, किं  
तर्हि मूलम् ?, प्रधानं साधु गोशब्दमनुसृत्य । तदशक्तिजकारितादिति । गाव्यादेरिति  
सामानाधिकरण्येन सम्बन्धः, तस्मिन् गोशब्दे साधौ पुरुषस्योच्चारयितुमशक्तिस्त-  
दशक्तिस्ततो जातो यस्तारुहादिव्यापारः स तथोक्तमतेन कारितो गाव्यादिशब्दः ।  
तथा भर्तृहरिणोक्तम्—“अ(ग?)भ्वाभ्वेति यथा बालः शिक्ष्यमाणः प्रभाषते । अव्यक्तं  
तद्विदां तेन व्यक्तेर्भवति निश्चयः ॥ एवं साधौ प्रयोक्तव्ये योऽपभ्रंशः प्रयुज्यते । तेन  
साधुव्यवहिनः कश्चिदर्थोऽनुमीयते ॥” इति । अत इदमाह—गोशब्देऽवेत्यादि ।

**गोशब्देऽवस्थिते योग्ये तदशक्तिजकारिता ।**

**गाव्यादेरपि गोबुद्धिर्मूलशब्दानुसारिणी ॥ २६६८ ॥**

तन्नैवमित्यादिना प्रतिविधे ।

**तन्नैवं शनकादीनां(?) संस्कृतानवबोधनात् ।**

**मूलशब्दानुसारेण कथमर्थगतिर्भवेत् ॥ २६६९ ॥**

तस्माच्छब्दार्थसम्बन्धो नित्यो नाभ्युपगम्यते ।

स तु सामयिको युक्तः सर्वथा तस्य सम्भवात् ॥ २६७० ॥

शनकादीनामिति । कैवर्त्तकादीनाम् । आदिशब्देन म्लेच्छादीनां ग्रहणम् । तथाहि तेषां प्रत्युत संस्कृतेनैव शब्देनार्थे प्रतिपाद्यमाने व्यामोह एव भवत्यतो न मूलशब्दानुमारिणी युक्ताऽर्थगतिः ॥ २६६९ ॥ २६७० ॥

यदुक्तम्—‘देशोत्सादकुलोत्सादरूपो वा प्रलयो भवेत्’ । इत्यादि तत्राह—  
देशोत्सादेत्यादि ।

देशोत्सादकुलोत्सादरूपो यः प्रलयो भवेत् ।

यो वाऽव्याहृतबौद्धेष्टो ब्रह्मादेरपि शङ्कयते ॥ २६७१ ॥

तस्मिन्सम्भाव्यते वेदे ध्वस्तमूला मतिः परा ।

मिथ्यामोहमदादिभ्यो विपरीता च कल्पना ॥ २६७२ ॥

अन्य एव भवेद्वेदः प्रतिकञ्चुकतां गतः ।

इत्यप्याशङ्कयते यावद्बाधकं न प्रकाश्यते २६७३ ॥

एवं मन्यते । नैवास्माभिरपि शब्दोच्छेदात्मकः प्रलयो वर्ण्यते । नाप्यनादिपुरुषः सृष्टिसंहारकारकः । किं तर्हि ? सर्वमेव जगदनादि । व्यवहारोऽप्यनादिवासनोद्भूतविकल्पपरिनिष्ठितः शाब्दः प्रवर्त्तत इति । किन्तु योऽयं भवता देशोत्सादादिरूपप्रलयो वर्णितो यश्च बौद्धैरन्यम्बुवायुसंवर्त्तनीयस्वभावः पर्यन्ततस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुमर्यादोऽधस्ताद्वायुमण्डलावधिरुप(रि)ष्टाधशाक्रमं प्रथमद्वितीयतृतीयध्यानपर्यन्तः सोऽयं प्रमाणेनाबाधितत्वादेव्याहृतोऽशक्यनिषेधत्वाद्ब्रह्मादेरपि शङ्कयते, अतोऽस्मिन्द्विविधेऽपि प्रलये वेदस्य ध्वंसः सम्भाव्यते, विपरीतार्थकल्पनं च । तथा चान्य एवायं वेदः प्रतिकञ्चुकताम्—तत्प्रतिभासतां गतः, इत्याशङ्का न निवर्त्तते यावद्बाधकं प्रमाणं नोच्यते भवतेति ॥ २६७१ ॥ २६७२ ॥ २६७३ ॥

स्यादेतदस्येव बाधकं प्रमाणम् । तथाहीदानीं तावत्सर्वत्र देशे पुरुषैर्न वेदस्य पाठादेरन्यथात्वं शक्यते कर्तुम् । अतः कालान्तरेऽपि तथाभूद्भविष्यति चेत्यध्यवस्याम इत्यत एतदाशङ्क्याह—अन्यथा करणेच्छायामित्यादि ।

अन्यथा करणेच्छायामपि वर्त्तत न ध्वनिः ।

तथैव यदि वाञ्छा सा नृणां जायेत नान्यथा ॥ २६७४ ॥

शङ्कयेतायं तथा वेदो न ग्रन्थार्थान्यथात्मकः ।

अन्यथेच्छाप्रवृत्तौ तु नाशङ्का विनिवर्तते ॥ २६७५ ॥

यदि हि सत्यामन्यथाकरणेच्छायां वेदध्वनिरन्यथा न प्रवर्तते, अन्यथा करणेच्छा चोत्पादयितुं न शक्यते, तदा वेदपाठादेरन्यथात्वकरणाशक्तिः पुंसः सिद्धयेत् । तत्रापि न सर्वपुंसां सिद्धयति, अदर्शनमात्रस्याप्रमाणत्वात् । पुरुषाणामतिशयदर्शनाच्च । यावता शक्यते शं नो देवीरभिष्टय इत्यादेर्वेदवाक्यस्य पाठोऽन्यथापि कर्तुं, अर्थो वा न्याख्यातुम् । तथाहि मीमांसकरुक्तकारादयो बहुधा वेदार्थं विशंसन्तो दृश्यन्ते । तस्मान्न शङ्कानिवृत्तिः ॥ २६७४ ॥ २६७५ ॥

यदुक्तम्—‘न च क्रमस्य कार्यत्वमित्यादि परिहारोपवर्णनम्, तत्राह—न च सर्वैरित्यादि ।

न च सर्वैः क्रमः पुंभिः सर्वसिद्धः प्रगृह्यते ।

स्वातन्त्र्येणापि कुर्वन्ति पदवाक्याक्षरक्रमम् ॥ २६७६ ॥

अन्यथा कृतकः कश्चित्स्याद्ग्रन्थो वेदवन्न ते ।

अनर्थग्रन्थमात्रेऽपि ध्वस्ता कृतिरतस्तथा ॥ २६७७ ॥

यथैवास्य परैरुक्तस्तथैवैनं विवक्षति ।

इत्येषाऽनियतिस्तन्न सम्बन्धवदनादिता ॥ २६७८ ॥

पदानि च वाक्यानि चाक्षराणि चेति तथोक्तानि, तेषां क्रम इति विग्रहीतव्यम् । अनर्थग्रन्थमात्रेऽपीति । कृतिर्ध्वस्तेति सम्बन्धः, अविद्यमानोऽर्थो यस्य ग्रन्थस्यासौ, दश दाडिमादिवाक्यवदनर्थः, वेदविरुद्धार्थो वाऽनर्थो बौद्धादिसिद्धान्तवत्, अनर्थश्चासौ ग्रन्थश्चेति तथोक्तः । मात्रशब्देन व्याप्तिं दर्शयति । कृतिः—करणम् । तथेति । वेदवत् । अनियतिरिति । अनियमः । एष नियमो न स्यादिति यावत् । तदिति । तस्मात् ॥ २६७६ ॥ २६७७ ॥ २६७८ ॥

यदुक्तम्—‘परेणोक्तान्ब्रवीमी’त्यादि तत्राह—परेणोक्तानित्यादि ।

परेणोक्तान्ब्रवीमीति विवक्षा चेदृशी भवेत् ।

तुल्यप्रत्ययमर्शाद्धि विभ्रमात्कर्मभेदवत् ॥ २६७९ ॥

कर्मभेदवदिति । सप्तम्यनाद्धतिः । अनेनैकप्रत्ययमर्शस्य विपक्षसम्भवोपदर्शनादनैकान्तिकतोक्ता भवति ॥ २६७९ ॥

स्यादेतद्विभ्रमत्वमस्य कथं सिद्धमित्याह—परेणोक्तास्त्वित्यादि ।

परेणोक्तास्तु नोच्यन्ते वैलक्षण्यात्स्वरादिभिः ।

न च व्यञ्जकधर्मोऽयं वर्णात्मत्वेन दर्शनात् ॥ २६८० ॥

ततः प्रतिनरं वर्णा भिन्ना दृष्टा घटादिवत् ।

अतो भेदे सुविस्पष्टे तच्चिह्नं किं निषिध्यते ॥ २६८१ ॥

स्वरादिभिरिति । उदात्तादिभिः । आदिशब्देन द्रुतमध्यविलम्बितादिपरिग्रहः ।

न च व्यञ्जकधर्मोऽयमिति । स्वरादिः । कुतः ? । वर्णात्मत्वेन तस्य स्वरादेर्व-  
र्शनात् । सिद्धत्वादित्यर्थः । तच्चिह्नमिति । तस्य वर्णभेदस्य चिह्नं तच्चिह्नम्, तत्कि-  
मिति निषिध्यते 'न चान्यच्चिह्नमस्ति चे' त्यनेन ॥ २६८० ॥ २६८१ ॥

जात्या यथा घटादीनामित्यादावाह—प्राक्चेत्यादि ।

प्राक्च जात्या घटादीनां व्यवहारोपलक्षणम् ।

निषिद्धं तदसत्त्वेन व्यक्त्या च तदयोगतः ॥ २६८२ ॥

प्रागिति । सामान्यपरीक्षायाम् । तदसत्त्वेनेति । तस्या जातेरसत्त्वेन । सत्यपि  
सत्त्वे व्यक्त्या घटादिलक्षणायाः सह तस्या जातेरनुपकार्याया अयोगतोऽसम्बन्धा-  
दयुक्तं तया व्यवहारोपलक्षणम् ॥ २६८२ ॥

तेन जातिद्वारेण यदेतत्समुपकल्पितं तत्सर्वमसङ्गतमिति दर्शयति—ताल्वा-  
दिजातयस्तस्मादित्यादि ।

ताल्वादिजातयस्तस्मात्सर्वपुंस्वव्यवस्थिताः ।

नातो वक्ता ध्वनीस्ताभिरुप(ल)क्ष्य निरस्यति ॥ २६८३ ॥

यदुक्तम्—“तेषां च जातयो भिन्नाः शब्दाभिव्यक्तिहेतवः” इत्यादि तत्राह—  
तन्नेत्यादि ।

तन्न तज्जातयो भिन्नाः शब्दाभिव्यक्तिहेतवः ।

यावद्दूर्णं प्रवर्तन्ते व्यक्तयो वा तदन्विताः ॥ २६८४ ॥

तदिति । तस्मात् ॥ २६८४ ॥

यदप्युक्तं तत्र ताल्वादिसंयोगेत्यादि, तत्राह—तन्न ताल्वादीत्यादि ।

तन्न ताल्वादिसंयोगविभागक्रमपूर्वकम् ।

ध्वनीनामानुपूर्व्यं ते जात्या चोभयनित्यता ॥ २६८५ ॥

यदप्युक्तं यथैव भ्रमणादीनामित्यादि, तत्र यथा न भ्रमणादीनामित्यादिना दृष्टान्तासिद्धिमाह ।

यथा न भ्रमणादीनां भागा जात्युपलक्षिताः ।

ऋमानुवृत्तिरेवं नो ताल्वादिध्वनिवर्णमाक् ॥ २६८६ ॥

जातेर्निरस्तत्वादिति । ( भावः ) ॥ २६८६ ॥

यदुक्तम्—व्यक्तीनामेव वेत्यादि, तत्राह—व्यक्तिनामपीत्यादि ।

व्यक्तीनामपि नो सौक्ष्म्याज्जातिधर्मावधारणम् ।

तद्वशेन न वर्णानां व्यापित्वेऽपि क्रमग्रहः ॥ २६८७ ॥

यदुक्तम्—तद्वशेनेति । तत्राह—तद्वशेनेत्यादि ॥ २६८७ ॥

यदप्युक्तं ध्वनिगुणानित्यादि, तत्रोच्यते—तस्मैत्यादि ।

तन्न ध्वनिगुणान्सर्वाभित्यत्वेन व्यवस्थितान् ।

वर्णा अनुपतन्तः स्युरर्थमेदावबोधिनः ॥ २६८८ ॥

यदुक्तम्—‘तेषां च जातयो भिन्नाः शब्दाभिव्यक्तिहेतवः’ इत्यादि, तत्राभ्युपगम्य जातिदूषणमाह—अन्यत्वेत्यादि ।

अन्यच्च जानयो भिन्नाः शब्दाभिव्यक्तिहेतवः ।

यावदूर्णं प्रवर्तन्ते व्यक्तयो वा तदन्विताः ॥ २६८९ ॥

इति व्यञ्जकसद्भावाश्रित्यं शब्दोपलम्भनम् ।

अतो व्यक्तिक्रमात्माऽपि युक्तो वर्णक्रमो न ते ॥ २६९० ॥

अयं च निपातसमुदायो वाक्योपन्यासे द्रष्टव्यः । इतिशब्दो हेतौ । तेनायमर्थो भवति, त(य ?)स्माज्जातयो...शब्दाभिव्यक्तिहेतवः स्थितास्तेन...शब्दोपलम्भो...नित्यं प्राप्नोति । व्यक्तेः क्रमाभावात्तदात्मा...न युक्तः...व्यक्तमेवा...इति ॥ २६८९ ॥ २६९० ॥

तत्र जातिव्यक्त्योः सम्बन्धमभ्युपगम्य दोषमाह—व्यक्तिसम्बन्धरूपाणामित्यादि ।

१ इत आरभ्य २७०६ श्लोकवाक्यान् यावत्, आदर्शपुस्तके तत्र तत्र बहूनि वाक्यान्व-काभाषोद्धितानि । वाक्यपूरणावकाशमात्रं प्रदत्तमस्ति । आदर्शान्तरं च नोपलभ्यते । तेन पूर्येत् । नाप्यवसरोऽत्र पौर्वापर्यपर्यालोचनया वाक्यपूरणाय । यत् पदे पदे वाक्यभि-भ्रंशः । तत्प्रज्ञाबलमात्रेण पूर्णं दुर्घटमिति कश्चित्कश्चिद्यथाऽऽदर्शं प्रकाशयते ।

व्यक्तिसम्बद्धरूपाणां जातीनां च व्यवस्थितौ ।  
 व्यक्तीनामपि नित्यत्वं दुर्वारमनुषज्यते ॥ २६९१ ॥  
 जातिसम्बन्धरूपाणां व्यक्तीनां वा व्यवस्थितौ ।  
 जातीनामप्यनित्यत्वमकामस्यापि ते भवेत् ॥ २६९२ ॥

द्विष्टत्वात्सम्बन्धस्य, जातीनां नित्यत्वाभ्युपगमाच्च तत्सम्बन्धस्वभावानां व्यक्ती-  
 नामपि नित्यत्वं प्राप्नोति । अन्यथा हि जातीनां तत्सम्बन्धस्वरूपता न स्यात् ।  
 तथा व्यक्तीनामनित्यत्वाभ्युपगमात्तत्सम्बन्धस्वरूपाणां जातीनामप्यनित्यत्वं प्राप्नोति ।  
 बहिः...स्व च स्वरूपेण व्यक्तीनामनित्यता सेऽस्यति यदि तत्सम्बन्धादीनां जातीना-  
 मप्यनित्यता भवेत् । अन्यथा हि द्वितीयसम्बन्धिन्यविकले सति न युक्तमपरस्य  
 वैकल्यं सम्बन्धस्वभावहानिप्रसङ्गात् ॥ २६९१ ॥ २६९२ ॥

दूषणान्तरं पूर्वोक्तं वारयन्नाह—अभिव्यक्तेरयोग इत्यादि ।

अभिव्यक्तेरयोगे च पुरस्तादुपपादिते ।

इत्थं प्रतायमानाः स्युर्वर्णास्ते नावबोधकाः ॥ २६९३ ॥

त इति व्यक्त्यन्तस्य (?) ॥ २६९३ ॥

यदुक्तं 'कालश्चैको विभुर्नित्य' इत्यादि, तत्राह - कालोऽपीत्यादि ।

कालोऽप्येको विभुर्नित्यः पूर्वमेव निराकृतः ।

वर्णवत्सर्वभावेषु व्यज्यते न च केनचित् । २६९४ ॥

वर्णेषु व्यज्यमानस्य नास्य प्रत्यायनाङ्गता ।

अन्याविशेषान्नान्यत्र सद्भावाच्चास्य नित्यता ॥ २६९५ ॥

तदानुपूर्वी वर्णानां ह्रस्वदीर्घप्लुताश्च ये ।

कालस्य प्रविभागास्ते न युक्ता ध्वन्युपाधयः ॥ २६९६ ॥

तस्मान्न पदधर्मोऽस्ति नित्यस्ते कश्चिदीदृशः ।

तेनानित्यं पदं सिद्धं वर्णानित्यत्ववादिनाम् ॥ २६९७ ॥

परधर्मोऽपि चा(ना?)ङ्गत्वं भवेदश्वजवाद्रिवत् ।

यदि व्यक्तिः प्रकल्पेत व्यञ्जकैः प्रत्ययैरिह ॥ २६९८ ॥

पूर्वमेवेति । षट्पदार्थपरीक्षायाम् । व्यज्यते न च केनचिदिति । असत्त्वादेव,  
 सत्त्वेऽपि नित्यस्य व्यक्तेर्नि( य )तत्वात् । अन्याविशेषादिति । अन्यस्माद-

विशेषो अन्याविशेषः । तथाहि—बीजाङ्कुरलतादिषु यो व्यज्यते कालस्यात्मा ततस्तस्य वर्णेषु व्यज्यमानस्य कालात्मनो न कश्चिद्विषयोऽ(शेषोऽ?)स्ति । एकस्य .....अन्यत्र सद्भावात्तस्य नित्यात्.....योगादिति.....( त ) दिति । तस्मात् । न युक्ता इति । कालस्यासत्त्वात्, सत्त्वेऽप्यभ्युपगतमविभागत्वमिति । परधर्मेऽपीत्यादावाह—परधर्मेऽपीत्यादि । शेषं सुबोधम् ॥ २६९४ ॥ २६९५ ॥ २६९६ ॥ २६९७ ॥ २६९८ ॥

नित्यतायां तु सर्वेषामर्थापत्तिरपाकृता ।  
 अर्थप्रतीतिरूपत्वमनित्येषु हि साधितम् ॥ २६९९ ॥  
 यो यद्विवक्षासम्भूतविवक्षान्तरतस्थि(स्त)तः ।  
 वर्ण उत्पद्यते तस्य श्रुतिस्तत्समनन्तरम् ॥ २७०० ॥  
 पूर्ववर्णविदुद्भूतसंविन्नातिद्रुतश्रुतिः ।  
 सोऽपेक्ष्य तत् स्मृतिं पश्चात्कुरुते स्मृतिमात्मनि ॥ २७०१ ॥  
 तत्समुत्थापकग्राहिज्ञानानि प्रति जन्यता ।  
 हेतुता वाऽनुपूर्वीयं वर्णेषु पुरुषाश्रया ॥ २७०२ ॥  
 अतः प्रतिपदं भिन्ना वर्णा इति परिस्फुटम् ।  
 दमो मदो लता ताल इत्यादिक्रमभेदतः ॥ २७०३ ॥  
 ईदृशेन क्रमेणैते त्वर्थभेदोपपादकाः ।  
 अत एव निरर्थेह स्फोटस्यापि प्रकल्पना ॥ २७०४ ॥

अर्थापत्तिरपाकृतेति । तथाहि हस्तकम्पादेरित्यादिना व्यभिचारस्य बाधकस्य च प्रमाणस्य वर्णनात् । अनित्येषु.....अत्यन्तत्वेऽपि न मन्यते तुल्यप्रत्ययश्च .....प्रतिपदं भिन्नत्वा(?)निमित्तमुपद्रोक ( अनित्या ) वर्णाः शब्दो(सरो?) रस इत्यादौ प्रतीतिभेदनिबन्धनं युक्ताः । न तु दि(नि?)त्याः, तेषां सर्वत्रैकरूपत्वात् । न चानुपूर्वं तेभ्यो व्य(क्त्य)न्तरमित्येतत्सर्वं प्रतिपादयन्नाह—यो यद्विवक्षेत्यादि । अयमत्र तावत्समुदायार्थः । वक्तृमन्ताने प्रतिवर्णं तत्समुत्थापकानि ज्ञाना(ना?)नि पूर्वपूर्वसमनन्तरप्रत्ययजन्या(नि विवक्षातो भवन्ति, ततश्च वर्णाः,) ते च श्रोतृसन्तानि पूर्वपूर्ववर्णग्राहिविज्ञानसहकारिणः स्वविषयाभिज्ञानानि क्रमवत्तति(तीनि?) जनयन्ति साक्षान्, ततश्च पश्चादावा(स्त्वम्ब?)विषया ( स्मृति ) क्रमभाविनी जनयन्ति



पारम्पर्येण । ततश्च वक्तृसन्तानभावीनि स्वसमुत्थापकानि ज्ञाना न (न्य ?) पेक्षया (क्ष्य ?) तेषां जन्मता, श्रोतृसन्तानभा(वीनि) वान्य (तान्य ?) (पेक्ष्य) हेतुता, सैव तेषामानुपूर्वी, ता (ना ?)न्या । कारणकार्यमेदाच्च प्रतिपदं वर्णानां भिन्न-स्वभावत्वात्सरो रस इत्यादौ प्रतीतिमेदो युज्यते, न तु नित्यानाम्, तेषां सर्वदा सर्व-त्रैकरूपत्वात् । नाप्यानुपूर्वी तेभ्योऽर्थान्तरभूतेष्टा । अर्थान्तरत्वेऽपि सम्बन्धासि-द्धेरित्यभिप्रायः । अवयवार्थस्तू(च्यते) वर्ण उत्प(द्य)त इति सम्बन्ध्यते । सदा सम य (इ ?)त्यादौ सकारादेः परोऽकारादिः, (सकारविवक्षा)सम्भूत वितथा (वक्षा ?)न्तरतस्ततः (उत्पद्यते ।) यस्य सकारादेर्विवक्षा यद्विवक्षा, ततः सम्भूतं यद्विवक्षान्तरं तत्तथोक्तम् । एतदुक्तं भवति । वक्तृसन्ताने पूर्वपूर्ववर्णस-मुत्थापकविवक्षासम्भूतं यदुत्तरोत्तरं विवक्षान्तरम्, तत उत्तरोत्तरो यो वर्ण उत्प-द्यते स स्मृति कुरुत इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः । एवं तावद्वक्तृसन्तानवर्त्तिव(र्णस-)मुत्थापक (विवक्षाव) गा(शा ?)द्वर्णानां (जन्यत्वं प्रतिपाद्य श्रोतृ)सन्तान-वर्त्तिज्ञानं इ(प्र ?)ति कारणत्वं प्रतिपादयति—तस्ये(ति ।) ग(य ?) इति यो निर्दिष्टः स सम्बन्ध्यते । तस्य श्रुतिः—उत्पद्यत इति सम्बन्धः । समनन्तर-मिति । अव्यवधानेन । एवं श्रोतृज्ञानहेतुत्वं प्रतिपाद्य साम्प्रतं स्मृतिहेतुत्वं प्रति-पादयति । पूर्वैति । पूर्ववर्णानां वित्—ज्ञानम्, तेन उद्भूता सन्तिरनुगम (संबित् — अनुभवो ?) यस्य स तथोक्तः । नातिद्वुतश्रुतिरिति । द्वुतश्रुतेः स्मृतिजनता समर्थत्वात् । स इति । उत्तरोत्तरो वर्णः । तु स्मृति(तस्मृतिम्—?) पूर्वपूर्वस्मृतिम् । (अपेक्ष्य—तत्सहकारेणेत्येतत्, स्मृतिम्—स्वस्वविषयाम्) समुत्थापकानि च ग्राहीणि चेति द्वन्द्वः । तेषां वर्णानां, तानि वा समुत्थापकग्राहीणि, तत्स(मुत्था-)पकग्राहीणि (इति) पश्चात् (तत्पुरुषः कर्मधारयो वा । समुत्थापकान्यपेक्ष्य-जन्यतेति ।) ग्राहीण्यनुभवस्मृतिज्ञात्यन(रूपाण्य ?)पेक्ष्य हेतुतेति । एवमानु-पूर्वीमर्थान्तरभूतां निराकृत्य वैबाकरणाद्युपकल्पितं ध्वनिभ्योऽर्थान्तरभूतं वाचकं शब्दात्मानं स्फोटमन्येति(द्य नि ?)राषिकीर्षजा(ह)—अत एवेत्यादि ॥ २६९९ ॥ ॥ २७०० ॥ २७०१ ॥ २७०२ ॥ २७०३ ॥ २७०४ ॥

स अर्थप्रतिपत्त्यर्थं शान्दिकैः परिकल्पितः ।

वर्णा एव च तच्छक्ता इत्यनर्थाऽस्य कल्पना ॥ २७०५ ॥

दृश्यस्यादृष्टिनभ्वास्य नास्तिताऽध्यवसीयते ।

अदृश्यत्वे तु नैवायं लिङ्गवज्ज्ञापको भवेत् ॥ २७०६ ॥

( ..... )

.....) नित्यो यथा कश्चिद्वैभावि(षि?)कै.....इति दर्शयति—दृश्य-  
स्येत्यादि । नहि वर्णेभ्यो व्यतिरिक्तो (नित्यः) स(अ?)कलः शब्दात्मा श्रो( श्रौ ? )त्रे  
चे( त )सि प्रतिभासमानः समालक्ष्यते । यत उपलब्धिभल.....भावी ( भवेत् ? ) ।  
प्रत्युत तभ्य नास्ति( ता ) सिद्धयेत् । अथ द्वितीयः पक्षस्तथापि भावधर्मो वा हेतुर्भवे-  
दभावधर्मो वा उभयधर्मो वेति विकल्पाः । आद्ये पक्षे स्फोटाख्यधर्मिधर्मो वा हेतु-  
र्भवेत्, अन्यधर्मिधर्मो वा । तत्र तस्यैव स्फोटाख्यस्य धर्मिणोऽसिद्धत्वान्न.....तद्ध-  
र्मस्तावद्धेतुः । अन्यधर्मोऽपि न हेतु( र )पक्षधर्मत्वात् । यथा आहुपदं चय(घट ?)-  
स्यानित्यत्वादौ साध्ये । अभावधर्मोऽपि न भवति । तस्य विपरीतराशक्तत्वात् ।  
उभयधर्मोऽपि न भवति । तस्य व्यभिचारित्वात् । स्वभावहेतोर्वा तस्य सिद्धिर्भवे-  
त्कार्यहेतोर्वा । न तावदाद्यः पक्षः, तस्यातीन्द्रियत्वात्तत्स्वभावासिद्धेः । सिद्धौ वा  
व्यर्थो हेतुः पर्येषणे, यत्तत्स्वभावस्य सिद्धत्वान् । तदर्थत्वाच्च प्रयामस्य । नापि  
द्वितीयः पक्षोऽतीन्द्रियेण सह कार्यकारणभावासिद्धेः । अथापि स्यात्—यथा श्रोत्रादि-  
ज्ञानस्य कादाचित्कत्वेन कारणान्तरसापेक्षत्वसिद्धौ सामर्थ्याच्छ्रोत्रादेरिन्द्रियस्य  
सिद्धिर्भवति, तथाऽत्राप्यर्थप्रतीतिं धर्मिणीं कृत्वा, वर्णाविशेषेऽपि मरो रस इत्या-  
दावर्थप्रतीतिभेदात्स्फोटाख्यं कारणान्तरं कल्पयिष्याम इति । एतदप्यमग्न्यक् । वर्णा-  
विशेषस्यासिद्धत्वात् । तथाहि साम्प्रतमेव प्रतिपादितम्—वर्णा एव प्रतिपदं भिन्नाः  
कार्यकारणभेदादर्थप्रतीतौ समर्था इत्यनर्थाकल्पनेति । एवमनुमेयत्वं दोषा वाच्या  
इत्यभिप्रायः । अथापि स्यान्नासावनुमेयः, किं नहि ?, अत्यन्तादृश्य इत्याह—  
अदृश्यत्वे तु नैवायमिति । यथा लिङ्गमज्ञातं ज्ञापकं न भवति तद्वदयमपि  
स्वादज्ञातत्वात् ॥ २७०५ ॥ २७०६ ॥

सत्तामात्रेण तज्ज्ञानं हेतुभावव्यवस्थितेः ।

तस्य ज्ञापकतेष्टा चेन्नेत्रवत्सर्वदा भवेत् ॥ २७०७ ॥

स(ङ्केता)नवबोधेऽपि वर्णानामश्रुतावपि ।

तद्भाव्यर्थेषु विज्ञानं शक्तकारणसन्निधेः ॥ २७०८ ॥

तथाहि नित्यसम्बोऽयं न चापेक्षाऽस्य काचन ।  
 ध्वनिसंकेतवर्णैश्च तद्बुधक्तिर्नाप्यदर्शनात् ॥ २७०९ ॥  
 ज्ञानं हि व्यक्तिरित्याहुस्तज्ज्ञानं न च विद्यते ।  
 ततो निरर्थकैवास्य व्यञ्जकस्यापि कल्पना ॥ २७१० ॥

अथ सत्तामात्रेण चक्षुरादीन्द्रियवदज्ञातोऽप्यर्थप्रतीतिहेतुर्भवेत् । एवं तर्हि तद्भावि ज्ञानं सर्वदा भवेत् । तथा सङ्केतग्रहणादिकमन्तरेण तद्भावि ज्ञानं स्यात् । एतदेव सङ्केतेत्यादिना प्रदर्शयति । तत्रोपपत्तिमाह—तथाहीति । अथापि स्यात्—सङ्केताभिव्यक्त एवासावर्थप्रतीतिहेतुरिष्टो न सत्तामात्रेण, तेन न भवति यथोक्तदोषप्रसङ्ग इत्याह—ध्वनिसङ्केतवर्णैरित्यादि । अदर्शनादिति । अनुपलब्धेः । अदृश्यत्वेनाभिमतत्वाच्च । एतदेव ज्ञानं हीत्यादिना दर्शयति ॥ २७०७ ॥ २७०८ ॥ ॥ २७०९ ॥ २७१० ॥

स्यादेतत्—भासमानो न लक्ष्यत इत्येतदसिद्धम् । तथाहि पूर्वपूर्ववर्णाहित-संस्कारायामावृत्तसंस्कारपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽकलः प्रतिभासत एवेत्याह—नादेनेत्यादि ।

नादेनाहितबीजायामन्येन ध्वनिना सह ।  
 आवृत्तपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवभासते ॥ २७११ ॥  
 इत्येतदपि तेनात्र निर्निमित्तं प्रकल्पितम् ।  
 तस्यामपि न शब्दोऽन्यो भासमानो हि लक्ष्यते ॥ २७१२ ॥

आवृत्तः—सञ्जातः सर्वबुद्ध्याहितः संस्कारपरिपाको यस्यां बुद्धौ सा तथोक्ता । निर्निमित्तमिति । वर्णा एव हि यथानुभवं पश्चात्सङ्कलनाप्रत्ययेन स्मार्त्तेनावसीयन्त इत्यभिप्रायः । तथाहि—नैवान्त्यवर्णप्रतिपत्तेरूर्ध्वमन्यमकलं शब्दात्मानमुपलक्षयामो नापि स्वयमयं वक्ता विभावयति । केवलमेवं यदि स्यात्साधु मे स्यादिति कल्याणकामतामूढमतिरत्या( न्त्या ? )यां बुद्धौ समाप्तकालः शब्दो भातीति स्वप्नायते ॥ २७११ ॥ २७१२ ॥

एवं तावन्नित्यपक्षे दूषणमुक्तम् । इदानीं नित्यानित्यपक्षयोरपि साधारणं दूषण-मनवयवपक्षे प्राह—जन्यतामित्यादि ।

जन्यतां व्यङ्ग्यतां वाऽपि ध्वनिभिः क्रमभाविभिः ।  
 येऽपि स्फोटस्य मन्यन्ते क्रमस्तेषां विरुध्यते ॥ २७१३ ॥

नहि क्रमेण युज्येते व्यक्तिजाती निरंशके ।

एकरूपावहिर्भावात्ते स्यातां सर्वथैव हि ॥ २७१४ ॥

वैभाषिका हि केचित्पदकार्याभिधानेन वाक्यस्फोटमनित्यत्वाज्जन्यं प्रतिपन्नाः । निरंशक इति । निरवयवे वस्तुनि । एकरूपावहिर्भावादिति । एकस्माद्रूपाज्जाता-द्वयक्ताद्वाऽजाताव्यक्ताभिमतस्यापि रूपस्यावहिर्भावात् । ते—जातिव्यक्ती सर्वस्यैव स्याताम् । ततश्च शेषवर्णादिप्रयोगवैयर्थ्यं स्यात् ॥ २७१३ ॥ २७१४ ॥

सावयवपक्षेऽपि दूषणमाह—सांशत्वेऽपीति ।

सांशत्वेऽपि यथा वर्णाः क्रमेण प्रतिपादकाः ।

स्फोटांशा अपि किं नैवं किमदृष्टाः प्रकल्पिताः ॥ २७१५ ॥

ते हि स्फोटांशाः प्रत्येकमनर्थका वा स्युः सार्थका वा । प्रथमे पक्षे क्रमभा-वित्वाद्दर्णात्स ( त्म ? )वदप्रतिपादकत्वप्रसङ्गः । कल्पितं च वाचकत्वं स्यात्, अता-द्रूप्ये ताद्रूप्यात् । तथाहि—अर्थवानेकात्मा वाक्यमुच्यते, वा( ना ? )वयवाः स्वय-मनर्थकाः, तेषु स आत्मा कल्पनारोपितः स्यात्, माणवकादिषु सिंहतादिवत् । सति च कल्पिते वाचकत्वे वरं वर्णभागा एव सन्तु वाचकाः किमदृष्टाः स्फोटांशाः कल्प्यन्त इति । अथ सार्थकत्वं तदाऽनेककल्पना निरर्थिका, तथाहि—परिसमाप्तार्थ शब्दरूपं वाक्यमुच्यते, प्रत्येकं चेदर्थवन्तोऽवयवाः स्युस्तदा तावन्त्येव तानि वाक्यानि ज्ञा( जा ? )तानीति नैका( कोऽ ? ) नै( ने ? )कावयवात्मा सिद्धयति । एकावयवप्रतिपत्तौ च सत्यां वाक्यार्थप्रतिपत्तिप्रसङ्गः । यथोक्तम्—“प्रत्येकं सार्थकत्वेऽपि मिथ्याऽने-कत्वकल्पना । एकावयवगत्या च वाक्यार्थप्रतिपद्भवेत् ॥” इति ॥ २७१५ ॥

यदुक्तम्—‘नहि क्रमेण युज्येते जातिव्यक्ती निरंशक’इति अत्र परस्य परिहार-माशङ्कते—जातावित्यादि ।

जातौ व्यक्तौ कृतायां चेदेकेन ध्वनिना सकृत् ।

नितरां व्यक्तिसिद्धयर्थं वर्णानन्यान्प्रयुञ्जते ॥ २७१६ ॥

यतो दुरवधाराऽस्य प्रकृतिः सा तथा कृता ।

समानव्यक्तिकैर्बर्णैर्भूयोऽपि व्यज्यते परैः ॥ २७१७ ॥

यद्यप्येकेन ध्वनिना जातिर्व्यक्तिर्वा सर्वात्मना स्फोटस्य कृता, तथापि नोत्त-रध्वनिप्रयोगवैयर्थ्यं, तस्य स्पष्टव्यक्त्यर्थत्वात्, यथाहि श्लोक एव पुनः पुनराव-

र्च्यमानो व्यक्तीभवति न च सकृदुच्चारणात्, न तु पुनः पुनरावृत्त्या तस्य विशेषान्तरमाधीयते, अथ च न पुनरावृत्तेर्वैयर्थ्यमेवमिहापि नोत्तरध्वनिवैयर्थ्यं भविष्यति । एतदेव दर्शयति—यत् इत्यादि । दुरवधारेति । अवधारयितुमशक्या ॥ २७१६ ॥ २७१७ ॥

तस्यैवेत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

**तस्यैवान्यस्य वैकस्य किं नावृत्तौ पुनः पुनः ।**

**व्यक्तिरावर्त्तते तस्य नन्वेवमविशेषतः ॥ २७१८ ॥**

नन्वित्यामन्त्रणे । तस्यैव—प्रथमोच्चरितस्य वर्णस्य, अन्यस्य वा—तदन्तर्गतस्य कस्यचिदेकस्य, पुनः पुनरावृत्त्या किं नाभिव्यक्तिः क्रियते । नहि तेनापादिता सती व्यक्तिर्नापादिता भवेत् । तथाहि तद्व्यक्त्यावर्त्तनमात्रफलान्युत्तरोत्तरवर्णोच्चारणानि, समानशक्तिकत्वात्सर्वेषां, तच्चावर्त्तनमेकेनैव पुनः पुनरावर्त्त्यमानेन कर्तुं शक्यत इति शेषवर्णोच्चारणवैयर्थ्यम् । नाप्युत्तरोत्तरवर्णानां भिन्नशक्तिकत्वमभ्युपगन्तव्यम् । निरंशके विशेषान्तरस्याधातुमशक्यत्वाद्विशेषान्तरकरणासम्भवेन (च ?) भिन्नशक्तिकल्पनावैयर्थ्यप्रसङ्गात् ॥ २७१८ ॥

एतच्च सता(त्या ?)मभिव्यक्तौ सर्वं सम्भवेत्सैव तु न सम्भवतीति दर्शयन्नाह—विषयेन्द्रियेत्यादि ।

**विषयेन्द्रियसंस्काररूपा व्यक्तिश्च वर्णवत् ।**

**अस्यापि प्रतिषेद्धव्या तदाभासेऽपि चेतसि ॥ २७१९ ॥**

वर्णवदिति । तथा वर्णेषु विज्ञानजननयोग्यायोग्यस्वभावविकल्पेन विषयेन्द्रियसंस्काररूपाऽभिव्यक्तिर्दूषिता तथेहापि दूषणीयेत्यर्थः । तदाभासेऽपीति । स्फोटोभासेऽपि । अयं चाभ्युपगमवादः । एतदुक्तं भवति—यदि हि वर्णव्यतिरेकेणापरः स्फोटोऽस्यः शब्दात्माऽवभासेत ततोऽस्याभिव्यक्तिः सम्भवेद्व्यक्तेरूपलब्धिरूपत्वात् । यावता नावभासत इति पूर्वमावेदितम्—अवभासतां नाम, तथाऽपि प्रकृत्योपलभ्यानुपलभ्यस्वभावस्योभयथाऽप्यभिव्यक्तिर्न युक्तेति ॥ २७१९ ॥

तस्मादित्यादिनोपसंहृत्य विनाऽपि स्फोटोनाथप्रतिपत्तेरुपपत्तिक्रमं दर्शयति ।

**तस्मात्प्रत्यक्षतः पूर्वं क्रमज्ञानेषु यत्पदम् ।**

**समस्तवर्णविज्ञानं तदर्थज्ञानकारणम् ॥ २७२० ॥**

ननु च क्रमवर्तिनो हि वर्णाः क्रमेणैव चानुभूताः, यथाऽनुभवं च स्मरणं, तत्कथं समस्तवर्णनिर्भासि स्मार्त्तज्ञानमेकं युज्यते स्फोटमन्तरेण, न चाकमे ज्ञाते क्रमिणां वर्णानां प्रतिभासो युक्त इत्याशङ्क्याह—अन्त्यवर्णे हीत्यादि ।

**अन्त्यवर्णे हि विज्ञाते सर्वसंस्कारकारितम् ।**

**स्मरणं यौगपद्येन सर्ववर्णेषु जायते ॥ २७२१ ॥**

अनेनैव ( न चै ? ) आह—प्रथममनुभवस्ततस्तत्समनन्तरभावीनि स्मरणानि यथानुभव क्रमेणैव जायन्ते, ततः स्मरणेभ्यः उत्तरकालं युगपत्समस्तवर्णाध्यवसायि समुच्चयज्ञानमपरं स्मार्त्तमुत्पद्यते, यथा परिदृष्टार्थाध्यवसायित्वात् ॥ २७२१ ॥

एतच्च सर्ववादिनां प्रसिद्धम्, न भवैव कल्पितमिति दर्शयति—सर्वेषु चेति ।

**सर्वेषु चैनदर्थेषु मानसं सर्ववादिनाम् ।**

**इष्टं समुच्चयज्ञानं क्रमज्ञातेषु सत्स्वपि ॥ २७२२ ॥**

एतदिति । समुच्चयज्ञानम् ॥ २७२२ ॥

एतच्च युक्त्युपेतत्वादवश्याभ्युपेयमिति दर्शयति—न चेदित्यादि ।

**न चेत्तदभ्युपेयेन क्रमदृष्टेषु नैव हि ।**

**शनादिरूपं जायेत तत्समुच्चयदर्शनम् ॥ २७२३ ॥**

यदि हि सर्वमेव स्मरणं यथानुभवं क्रमेणैवं जायते, तदा क्रमानुभूतेषु शतादिषु युगपच्छतादिविकल्पो न स्यात् । शतकोट्यादिविकल्पानां चोत्पत्तिकाले भेदो न भवेत् ॥ २७२३ ॥

तेनेत्युपसंहरति ।

**तेन श्रोत्रमनोभ्यां स्यात्क्रमाद्वर्णेषु यद्यपि ।**

**पूर्वज्ञानं परस्तात्तु युगपत्स्मरणं भवेत् ॥ २७२४ ॥**

यद्येवं समुच्चयज्ञानमेवार्थप्रतीतिहेतुः स्यात्, न ते वर्णाः, तेषां चिरनिरुद्धत्वात्, न चैनद्युक्तम्, यस्माच्छब्दादनन्तरमर्थप्रतीतिर्भवतीत्याकुमारमेतत्प्रतीतिमित्याशङ्क्याह—तदारूढा इत्यादि ।

**तदारूढास्तनो वर्णा न दूरार्थावबोधनात् ।**

**शब्दादथ मतिस्नेन लौकिकैरभिधीयते ॥ २७२५ ॥**

तस्मिन्समुच्चयज्ञाने आरूढास्तदारूढाः । लौकिकैरिति । स्वार्थतद्वितविधानम् ॥ २७२५ ॥

नन्वेवमपि तेषां चिरनिरुद्धत्वादत्यन्तासत्त्वमेवेति कथं तदारोहणं भवेदित्याशङ्क्याह—आकारवतीत्यादि ।

**आकारवति विज्ञाने सर्वमेतच्च युज्यते ।**

**अन्यथा हि विनष्टास्ते भासेरन्स्मरणे कथम् ॥ २७२६ ॥**

निराकारे कस्मान्न युज्यत इत्याह—अन्यथा हीत्यादि । ततश्च यदेतत्—अन्यत्रणं हि विज्ञाते इत्यादिना कुमारिलेन स्फोटवादिनं प्रति समुच्चयज्ञानं वर्णितम्, तदस्मन्मत एव युज्यते न तु भवतां मीसांसकानां निराकारवादिनां मत इत्युक्तं भवति ॥ २७२६ ॥

ननु च मीमांसकानामपि युज्यत एव, नहि तेषां मतेन वर्णा विनष्टाः, येन न भासेरन् । किं तर्हि ? । तिरोभूताभिव्यक्तयः सन्त्येवेत्येतदथेत्यादिनाऽऽशङ्क्यनेत्यादिना परिहरति ।

**अथ वर्णास्तिरोभूतव्यक्तयो विदिताः पुरा ।**

**स्मर्यन्तेऽवस्थिता एव न स्पष्टाभप्रसङ्गतः ॥ २७२७ ॥**

यदि हि त एव वर्णाः पूर्वमनुभूताः सन्तः पश्चात्तिरोभूतव्यक्तयः समुच्चयज्ञानेन गृह्येरंस्तदाऽऽत्मानुभवज्ञानवत्तत्समुच्चयज्ञानं स्पष्टाभं प्राप्नोति । आकारस्य बाह्यगतत्वात्तस्य चैकरूपत्वात् । किञ्च—यदि तिरोभूतव्यक्तयः, कथं भासेरन्, व्यक्तेरुपलब्धिस्वभावत्वात् ॥ २७२७ ॥

अपि च—यद्यतीतस्यावस्थितिः सम्भवेत्तदैतस्याद्यावताऽतीतस्यावस्थित्यभावादेव न युक्तं तस्य प्रतिभासनमिति दर्शयति—अपास्ता चेत्यादि ।

**अपास्ता च स्थितिः पूर्वं तत्स्थितौ स्मरणं भवेत् ।**

**वर्णानुभवविज्ञानकाल एवैकहेतुतः ॥ २७२८ ॥**

पूर्वमिति । त्रैकाल्यपरीक्षायाम् । अत्रैव बाधकं प्रमाणमाह—तत्स्थितावित्यादि । वर्णानुभवज्ञानकाले स्मरणोत्पत्तिप्रसङ्गो बाधकं प्रमाणम् । एकहेतुत इति । अभिन्नकारणत्वात् ॥ २७२८ ॥

अत्र शाब्दिकाश्चोदयन्ति—यद्येको नास्ति स्फोटाख्यः शब्दात्मा तत्कथं गौरित्येकाकारा गोशब्दे बुद्धिर्भवतीति, अत आह—गौरित्यादि ।

गौरित्येकमतित्वं तु नैवास्माभिर्निवार्यते ।

तद्वाच्यैकार्थताभ्यां च शब्दे स्यादेकतामतिः ॥ २७२९ ॥

एका मतिरस्येत्येकमतिः, तद्भावस्तत्त्वम् । तद्वाच्यैकार्थताभ्यां चेति । तथा एकया बुद्ध्या, ग्राह्यस्तद्वाच्यः, एकोऽर्थः प्रयोजनं यस्य स तथोक्तः, तद्वाच्यैकार्थ-  
र्यश्चेति द्वन्द्वः, तयोर्भावौ तद्वाच्यैकार्थते, ताभ्याम् । एतदुक्तं भवति—एकबुद्धि-  
ग्राह्यत्वादेकसाक्षादिमदर्थद्योतकत्वाच्चैको गोशब्द उच्यते इति ॥ २७२९ ॥

एकमतित्वं च न सर्वत्र सिद्धमिति दर्शयति—शैश्यादित्यादि ।

शैश्यादल्पान्तरत्वाच्च गोशब्दे सा भवेदपि ।

देवदत्तादिशब्देषु स्पष्टो भेदः प्रतीयते ॥ २७३० ॥

शैश्यात्—द्रुतोच्चारणात् । अल्पान्तरत्वम्—स्वरूपविच्छेदत्वम् । सेति । एका  
मतिः । देवदत्तादिपरे तु प्रतिवर्णं शाकनया ( ध्वनयः ? ) स्फुटतरं विच्छेदेन  
प्रतीयन्त इति पक्षैकदेशसिद्धमेकमतित्वम् ॥ २७३० ॥

वर्णोत्थेत्यादिना प्रमाणयति ।

वर्णोत्था चार्थधीरेषा तज्ज्ञानानन्तरोद्भवात् ।

येदृशी सा तदुत्था हि धूमादेरेष बहिधीः ॥ २७३१ ॥

प्रयोगः—या बुद्धिर्यद्विज्ञानान्तरमुद्भविता सा तत्समुत्थिता पारम्पर्येण, यथा  
धूमादिलिङ्गज्ञानाद्बुद्ध्यादिलिङ्गिधीः । वर्णविज्ञानानन्तरभाविनी चार्थधीरिति  
स्वभावहेतुः । कार्यताव्यवहारश्चात्र साध्यते । तेन साध्यसाधनयोर्भेदः ॥ २७३१ ॥

असिद्धत्वमस्य परिहरन्नाह—न वर्णोत्थादि ।

न वर्णभिन्नशब्दाभज्ञानानन्तरभाविनी ।

अर्थधीर्विद्यते तेन नान्यः शब्दोऽस्ति वाचकः ॥ २७३२ ॥

वर्णोभ्यो भिन्नो यः शब्दात्मा तदाभं यज्ज्ञानं तदनन्तरभाविनी न विद्यते, किं  
तर्हि ?, वर्णविज्ञानानन्तरभाविनी, अतो नासिद्धो हेतुः । अनेन चोपलब्धिलक्ष-  
णप्राप्तस्यानुपलम्भादभावव्यवहारोऽपि दर्शितः ॥ २७३२ ॥

नाप्यनैकान्तिक इति दर्शयन्नाह—कार्यतेत्यादि ।

कार्यताव्यवहाराङ्गं सर्वत्रैव विनिश्चितौ ।

अन्वयव्यतिरेकौ हि व्याप्तिस्तेनेह निश्चिता ॥ २७३३ ॥



कार्यताव्यवहारस्याङ्गम्—कारणम्, किं तत् ? अन्वयव्यतिरेकाविति । सामानाधिकरण्येन सम्बन्धः । तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वमात्रमेव तत्कार्यताव्यवहारेण नान्यत्, अतः कार्यताव्यवहारस्य निमित्तान्तरासम्भवो बाधकं प्रमाणमिति सिद्धाव्याप्तिः ॥ २७३३ ॥

स्थादेतत्—माभूत्स्फोटस्य वाचकत्वं, वर्णा एव नित्याः सन्तो वाचका भविष्यन्ति, ते च नित्याः प्रत्यक्षादिप्रमाणतः सिद्धा इत्याह—अनित्येष्वित्यादि ।

अनित्येष्वेव वर्णेषु वाचकत्वे प्रसाधिते ।

प्रत्यभिज्ञानुमाने च निरस्ते नित्यसाधने ॥ २७३४ ॥

प्रत्यभिज्ञा चानुमानं चेति प्रत्यभिज्ञानुमाने । क्वचित्प्रत्यभिज्ञानुमानमिति पाठः, तत्र समाहारद्वन्द्वोऽपि विधेयः । सहितशब्दलोपाद्विशेषणसमासो वा ॥ २७३४ ॥

स्ववाक्यादिविरोधश्चेत्यादावाह—स्ववाक्यादिविरोधानामित्यादि ।

स्ववाक्यादिविरोधानामज्ञानाच्चोदना कृता ।

नित्यपक्षे तु सर्वे ते भवन्ति भवतां यतः ॥ २७३५ ॥

नित्या सती न वाग्युक्ताद्योतिकेत्युपपादितम् ।

आनुपूर्व्याद्ययोगेन नित्यं चानुपलम्भनात् ॥ २७३६ ॥

सर्वे त इति । स्ववाक्यादिविरोधाः । आनुपूर्व्यादीति । आदिशब्देन क्रमेण श्रुतिस्मृती गृह्यते । तथाहि नित्यत्वान्न कालकृतानुपूर्वी, नापि देशकृता व्यापित्वात्, नाप्यभिव्यक्तिकृता अभिव्यक्तेरपाकृतत्वात् । तथा ज्ञानजननेऽपि न नित्यानामुपयोगोऽस्तीति बहुधा निवेदितम् ॥ २७३५ ॥ २७३६ ॥

यदुक्तम्—‘वक्तव्यं कतरः (चैषकः ?) शब्दः इत्यादि । तत्राह—धर्मिभेदविकल्पेनेत्यादि ।

धर्मिभेदविकल्पेन याऽऽश्रयासिद्धिरुच्यते ।

सोऽनुमालक्षणाज्ञानाद्धर्मित्वं भासिनो यतः ॥ २७३७ ॥

अविचारप्रसिद्धोऽर्थो योऽयं ज्ञानेऽवभासते ।

शनकादेरपि प्रोक्ता तावन्मात्रस्य धर्मिता ॥ २७३८ ॥

तत्रैव हि विवादोऽयं संप्रवृत्तः प्रवादिनाम् ।

इच्छारचिनभेदे तु न विवादोऽस्ति कस्यचित् ॥ २७३९ ॥

य एव वादिप्रतिवादिनोः प्रतिभासवशाद्धर्मो सिद्धः स एव विशेषविवादाश्रयः, न तु स्वेच्छोपकल्पितः, तत्र विवादाभावात्, नहि स्वेच्छोपरचितधर्मिणि धर्मविशेषं कल्पयन्कश्चिन्निवार्यत इति । भासिन इति । भासमानस्य । एतदेव दर्शयति अविचारप्रसिद्धोऽर्थ इत्यादि । सुगमम् ॥ २७३७ ॥ २७३८ ॥ २७३९ ॥

अविशेषेण धर्मिणि निर्दिष्टे यद्विशेषेण (वि)कल्पनं तदेतज्जात्युत्तरमिति दर्शयन्नाह—अत इत्यादि ।

अतोऽविशेषनिर्दिष्टे विशेषेण विकल्पनम् ।

सर्वस्यैवानुमानस्य प्रवृत्तिं प्रतिषाधते ॥ २७४० ॥

चोदनाजनिता बुद्धिः प्रमाणं दोषवर्जितैः ।

कारणैर्जन्यमानत्वादित्याद्यपि विकल्प्यते ॥ २७४१ ॥

नित्यनित्यार्थसम्बद्धचोदनाजनिता मतिः ।

पक्षश्चेदाश्रयासिद्धिः परं प्रत्यनुषज्यते ॥ २७४२ ॥

नित्या चासौ स्वयं, नित्यमेवार्थेनाकृतिलक्षणेन सम्बद्धेति तथोक्ता, तथा जनिता या बुद्धिः, सा यदि पक्षः, तदा परं—प्रति, असिद्धो हेतुः ॥ २७४० ॥ २७४१ ॥ ॥ २७४२ ॥

यदुक्तम्—अनित्यत्वं ( च ) नाशित्वमित्यादि । तत्राह—तादवस्थमित्यादि ।

तादवस्थं च नित्यत्वं तदन्यत्वमनित्यता ।

तादवस्थनिवृत्तौ हि किमवस्थितमिष्यते ॥ २७४३ ॥

किमवस्थितमिष्यत इति । अवस्थाया अवस्थानुरव्यतिरेकात्, तन्निवृत्तौ सामर्थ्यात्तस्यापि निवृत्तिः । अन्यथा यदेकयोगक्षेमं न भवति तत्कथं तत्स्वभावं युक्तमिति भावः ॥ २७४३ ॥

यदुक्तम्—‘केवलैन्द्रियकत्वे चे’त्यादि, तत्राह—केवलैन्द्रियकत्वे चेत्यादि ।

केवलैन्द्रियकत्वे च हेतावन्न प्रकल्पिते ।

जात्या बाधितया पूर्वं व्यभिचारो न गम्यते ॥ २७४४ ॥

पूर्वमिति । सामान्यपरीक्षायाम् ॥ २७४४ ॥

यदि नाम जात्या व्यभिचारो नास्ति, तथापि संदिग्धव्यतिरेकोऽप्यनैकान्तिक एवेत्याशङ्क्य हेतोरैन्द्रियकत्वस्य प्रतिबन्धमादर्शयन्नाह—स्वनिर्भासीत्यादि ।

स्वनिर्भासीन्द्रियज्ञानहेतुरैन्द्रियको भवेत् ।

न च नित्येऽस्ति हेतुत्वमिति तद्धि प्रसाधितम् ॥ २७४५ ॥

स्वनिर्भासिन इन्द्रियज्ञानस्य हेतुरर्थं ऐन्द्रियक उच्यते, नित्यस्य च क्रमयौगप-  
द्याभ्यां नार्थक्रिया युक्तेति सिद्धः प्रतिबन्धः ॥ २७४५ ॥

‘कार्या चैन्द्रियकत्वादावि’त्यादावाह—सर्वेषामित्यादि ।

सर्वेषां च प्रसिद्धेयमीहगर्थस्य हेतुता ।

धूमादावपि सर्वत्र विकल्पोऽयं समोऽन्यथा ॥ २७४६ ॥

ईदक् चासावर्थश्चेति तथोक्तः, ईदृगिति । अविचाररमणीयः । अन्यथा धूमादावपि  
विकल्पः शक्यते कर्तुम्—किमैन्द्रियको धूमो लिङ्गत्वेनोपात्त, आहोस्विद्विज्ञानप्रकृति-  
कालादिपरिणामः, किंवाऽवयवी परमाणुभिरारब्धोऽनारब्धो वेत्यादि(ः) विकल्पो-  
(ल्पे ?)ऽन्यतरसिद्धतादिदोषः स्यात् ॥ २७४६ ॥

‘प्रयत्नान्तरज्ञानं कृतकानित्यसाधन’मित्यत्राह—प्रयत्नेत्यादि ।

प्रयत्नान्तरज्ञानकार्यारम्भकता न च ।

प्रतिसङ्ख्याननिरोधादेः प्रसिद्धा सांवृतत्वतः ॥ २७४७ ॥

प्रयत्नान्तरज्ञानमेव कार्यं तस्यारम्भकता प्रतिसङ्ख्यादिनिरोधादेर्न सिद्धेति  
सम्बन्धः । यदि हि सौत्रान्तिकनयेन प्रतिसङ्ख्याननिरोधादिना व्यभिचार उद्भाव्यते ।  
तदा न सिद्धो न व्यभिचारस्तेषां मतेन प्रतिसङ्ख्याननिरोधादेः संवृतिसत्त्वात् । न च  
सांवृतं कस्यचित्कार्यस्यारम्भकं युक्तं तल्लक्षणहानिप्रसङ्गात् । तथाहि—यदर्थक्रियाकारि  
तदेव परमार्थस्तदन्यत्तु संवृतिसदिति परमार्थसंवृतिसतोर्लक्षणम् ॥ २७४७ ॥

अथ वैभाषिकमतेन व्यभिचारः, तत्रापि यादृशो भवता नाशाद्यात्मको वर्णितः  
प्रतिसङ्ख्याननिरोधादिस्तादृग्वैभाषिकैर्नेष्ट इत्यादर्शयति—न चेत्यादि ।

न च नाशात्मकाविष्टौ निरोधौ साश्रवैर्यतः ।

प्रतिसङ्ख्याननिरोधो यो विसंयोगः पृथक् पृथक् ॥ २७४८ ॥

उत्पादात्यन्तविघ्नोऽन्यो निरोधोऽप्रतिसङ्ख्यया ।

तस्मादज्ञातसिद्धान्ताः प्लवन्तेऽस्लीकमानिनः ॥ २७४९ ॥

निरोधाविति । प्रतिसङ्ख्याऽप्रतिसङ्ख्याननिरोधौ । कीदृशौ नामेष्टावित्याह—साश्र-  
वैर्यत इति । सङ्केशैर्वस्तुभिर्यो विभागः स प्रतिमङ्ख्यया प्रज्ञया प्राप्यत इति कृत्वा

प्रतिसङ्ख्याननिरोध उच्यते, स च प्रतिसंयोगिद्रव्यं भिन्नः, अत एवाह—पृथक् पृथ-  
गिति । यावन्ति हि संयोगिद्रव्याणि तावन्ति विसंयोगद्रव्याणीति सिद्धान्तात् ।  
अप्रतिसङ्ख्याननिरोधस्तु—अनागतानां धर्माणामुत्पादस्यात्यन्तविघ्नमृतो धर्मो विसंयो-  
गादन्यो यः स उच्यते । स च न प्रतिसङ्ख्यया लभ्यते । किं तर्हि ? । प्रत्ययवै-  
कल्यादतोऽप्रतिसङ्ख्याननिरोध उच्यते । यथोक्तम्—“प्रतिसङ्ख्याननिरोधो यो विसंयोगः  
पृथक् पृथक् । उत्पादात्यन्तविघ्नोऽन्यो निरोधोऽप्रतिसङ्ख्यया ॥” इति ॥ २७४८ ॥  
॥ २७४९ ॥

भवेन्नाम नाशस्वभावौ, तथापि न व्यभिचार इत्यादर्शयन्नाह— नास्वभावादि-  
त्यादि ।

नास्वभावात्स्वनाशौ च प्रयत्नानन्तरीयकौ ।

कपालालोकराश्यादि तथाज्ञाननिबन्धनम् ॥ २७५० ॥

प्रयत्नानन्तरीयकाविति । नेति सम्बन्धः । कुतः ? । अस्वभावात् । तथाहि—  
वस्तुसत्ताप्रतिषेधमात्रं नाशः, आकाशं च स्पष्टव्याभावमात्रम्, ततश्चेतौ स्वनाशौ  
द्वावपि निःस्वभावौ, तत्कथमनयोः प्रयत्नानन्तरीयकता भवेत्, स्वभावस्यैवार्थक्रिया-  
कारित्वात् । किमिदानीं तर्हि विनाशादिविज्ञाननिबन्धनमित्याह—कपालेत्यादि ।  
आलोकराशिः—आलोकसङ्घातः । आदिशब्देन तमोराशिग्रहणम् ॥ २७५० ॥

यदुक्तम्—‘अविशेषेऽपि नानित्यं न नित्यं वस्तु तन्ममे’त्यादि । तत्राह—एकस्येत्यादि

एकस्यार्थस्वभावस्य परिक्षिप्ताद्विरूपता ।

अंशस्तस्मान्न जाल्याख्यो नित्योऽत्र घटते घटे ॥ २७५१ ॥

अनित्यताविकल्प्यैवमित्यादावाह—तादवस्थेत्यादि ।

तादवस्थप्रतिक्षेपमात्रं चानित्यतेप्सिता ।

साध्यत्वेन प्रदीपादिस्तत्रोदाहरणं स्फुटम् ॥ २७५२ ॥

तादवस्थप्रतिषेधमात्रमेवानित्यता साध्यत्वेनेष्टा, तत्रापि प्रदीप उदाहरणं  
साध्यान्वितमस्त्येवेति कुतः साध्यहीनता दृष्टान्तस्य ॥ २७५२ ॥

ज्वालादेरित्यादिना परमतेन प्रदीपादेरपि दृष्टान्तस्य साध्यहीनतामाशङ्कते ।

ज्वालादेरपि नाशित्वं नन्वसिद्धं प्रतिक्षणम् ।

लघवोऽवयवास्तत्र यान्ति देशान्तरं लघु ॥ २७५३ ॥

प्रभूतं वर्तिदेशो हि तेजस्तिष्ठति पिण्डितम् ।

तत्र यावद्भ्रजत्पूर्वं (त्यूर्ध्वं?) तावज्ज्वालेति गम्यते ॥ २७५४ ॥

ततोऽपि यदपक्रम्य याति तस्स्यात्प्रभात्मकम् ।

ततः परं तु ययाति तत्सौक्ष्म्यान्नावधार्यते ॥ २७५५ ॥

तत्र हि ज्वालादेरवयवाः शीघ्रं शीघ्रं देशान्तरं व्रजन्ति न तु प्रतिक्षणविशरारवः  
( विशरणाः ? ) ॥ २७५३ ॥ २७५४ ॥ २७५५ ॥

अथ युगपत्कस्मात्सर्वे न विसर्पन्तीत्याह—उत्तरावयवैरित्यादि ।

उत्तरावयवै रुद्धे मार्गे पूर्वे न यान्ति च ।

यथोत्तरे विमुञ्चन्ति पूर्वे यान्ति तथा तथा ॥ २७५६ ॥

ननु यदि प्रसर्पणधर्माणस्ते तत्समीपवर्तिं तृणतूलादि किं न दहन्तीत्याह—  
संक्रान्तावपीत्यादि ।

संक्रान्तावपि नैतेषां तृणादौ वृत्तिसम्भवः ।

तदेतत्कल्पनामात्रं प्रमाणानभिधानतः ॥ २७५७ ॥

संहतावस्थायामेव लब्धवृत्तयो भवन्ति । न तु विप्रकीर्णावस्थायामिति भावः । तदे-  
तदित्यादिना प्रतिविधत्ते । सत्यामपि चास्यां कल्पनायां न साध्यविकलता दृष्टान्तस्य ।  
तथाहि तादवस्थ्यप्रतिषेधमात्रमनित्यतासाध्यत्वेनेष्टेत्युक्तम् । तच्च तादवस्थ्यं प्रदीपादौ  
नास्त्येवेति कुतः साध्यविकलता ॥ २७५७ ॥

तथाऽप्यभ्युपगम्य दोषमाह—किञ्चेत्यादि ।

किञ्चाव्याहृतशक्तीनां तृणतूलादिसङ्गतौ ।

दाहवृत्तिप्रसङ्गोऽयं पूर्ववन्न निवर्त्तते ॥ २७५८ ॥

अव्याहृतशक्तीनामिति । ज्वालावयवानाम् । पूर्ववदिति । संहतावस्थाद-  
विशेषात् ॥ २७५८ ॥

अथ विशेषोऽभ्युपगम्यते तदा नित्यत्वहानिप्रसङ्गोः दुर्निवार इति दर्शयति—  
अन्यथेत्यादि ।

अन्यथा नित्यरूपा सा तेषु स्यात्कीदृशी तव ।

शक्ताशक्तस्वभावस्य यदा मेदो व्यवस्थितः ॥ २७५९ ॥

सुबोधम् ॥ २७५९ ॥

यदुक्तम्—“सम्बन्धाकरणन्यायाद्वक्तव्या वाक्यनित्यता” इति, तत्राह—सम्बन्धस्य चेत्यादि ।

सम्बन्धस्य च नित्यत्वं प्रतिषिद्धं पुरा ततः ।

सम्बन्धाकरणन्यायात्तु युक्ता वाक्यनित्यता ॥ २७६० ॥

भवन्मतेन वाक्यमेव न सम्भवति, यस्य त्वया नित्यत्वं प्रसाध्यत इति मन्यमानो वाक्यं विचारयन्नाह—कृतमस्येत्यादि ।

कृतमस्य च वाक्यस्य नित्यत्वमुपगम्यते ।

वर्णमात्रात्मनो वर्णक्रमस्याथ विभेदिनः ॥ २७६१ ॥

(किं)कदाचिद्वर्णमात्रमेवाविशिष्टं वाक्यं स्यात् । यद्वा—वर्णा एव विशिष्टाः क्रमवर्तिनो वाक्यम् । अथवा वर्णेभ्यो भेदिनः स्फोटाख्यस्य वाक्यत्वमिति पक्षत्रयम् ॥ २७६१ ॥

तत्राद्ये पक्षे दोषमाह—वर्णानामित्यादि ।

वर्णानां क्रमशून्यनां वाचकत्वं न विद्यते ।

नातस्ते तादृशा वाक्यं क्रमोऽप्येषां न विद्यते ॥ २७६२ ॥

व्याप्तेर्नित्यतया चैषां देशकालक्रमो न हि ।

लिपिवत्फलपुष्पादिभेदवच्चोपपद्यते ॥ २७६३ ॥

स्वाभाविके क्रमे चैषां सर इत्येव सम्भवेत् ।

न तु स्याद्रस इत्यादिः स्थितक्रमविरोधतः ॥ २७६४ ॥

स्थिता रेफादयश्चान्ये नैवान्यक्रमयोगिनः ।

जायन्ते वायुतो वर्णा नित्यैकत्वेन वर्णिताः ॥ २७६५ ॥

अन्यथा प्रत्यभिज्ञानं नित्यत्वैकत्वसाधनम् ।

व्यभिचारि त्वयैवोक्तं भवेत्त्रेदेऽपि वर्तनात् ॥ २७६६ ॥

द्वितीयेऽपि पक्षे प्राह—क्रमोऽप्येषां न विद्यत इति । तथाहि—द्विविध एव भावानां क्रमः, देशकृतो वा पिपीलिकालिप्यक्षरादिवत्, कालकृतो वा यथा बीजाङ्कुरकाण्डपुष्पफलादीनाम्, न तावदाद्यः क्रमो वर्णानां सम्भवति, व्याप्तेः, सर्वगतत्वाद्वर्णानाम्, नञ्काशाशवत्सकलदेशावष्टम्भेनावस्थितस्य देशविच्छेदकृतः क्रमो

युक्तः, सर्वेषामेकनभोदेशावस्थानात् । नापि कालकृतः, नित्यत्वेन सर्वेषां समकाल-  
त्वात् । किञ्च—पुरुषकृतो वा क्रमो भवेत् स्वभाविको वा । न तावत्पुरुषकृत  
इष्टः, वेदस्य पौरुषेयत्वप्रसङ्गात् । अथ स्वभाविकः, तदा सर इत्येव नित्यं भवेत्,  
न कदाचिद्द्रस इति । न चापि प्रतिपदं भिन्ना वर्णा इत्यभ्युपेयम्, प्रत्यभिज्ञया वर्णानां  
नित्यत्वस्य सिद्धत्वात् । तत्प्रतिषेधस्यैव च साधयितुमिष्टत्वात्, अन्यथा प्रत्यभिज्ञानं  
व्यभिचारि स्यात् ॥ २७६२ ॥ २७६३ ॥ २७६४ ॥ २७६५ ॥ २७६६ ॥

अथापि स्यादभिव्यक्तिक्रमस्तर्हि वाक्यं भविष्यतीत्याह—न चेत्यादि ।

**न च व्यक्तिक्रमो वाक्यं नित्ये व्यक्तिनिषेधनात् ।**

**वाक्यतायोगतस्तस्मान्नित्यत्वं नोपपद्यते ॥ २७६७ ॥**

चशब्दान्नापि वर्णेश्चो भिन्नं स्फोटारूपं वाक्यमिति सूचयति । तस्य मीमांस-  
कैरेव निरस्तत्वादिति भावः । नित्ये व्यक्तिनिषेधनादिति । नित्यस्य व्यक्तेर्नि-  
षिद्धत्वादित्यर्थः ॥ २७६७ ॥

यदुक्तम्—दृष्टार्थव्यवहारत्वादित्यादि, तत्राह—यथा वृद्धयादय इत्यादि ।

यथा वृद्धयादयः शब्दा इच्छाविरचितार्थकाः ।

स्वर्गयागादयः शब्दाः सम्भाव्यन्ते तथैव च ॥ २७६८ ॥

न चोत्पाद्यकथारूपनाटकाख्यायिकादिषु ।

नित्यः शब्दार्थसम्बन्धो वास्तवोऽस्ति विवक्षितः ॥ २७६९ ॥

इच्छया रचितोऽर्थो येषां ते तथोक्ताः । उत्पाद्या—स्वयमपूर्वैव पुरुषेण या कथा  
महाश्वेतादिका, सैव रूपं स्वभावो येषां नाटकाख्यायिकादीनां ते तथोक्ताः । न च  
तेषु नित्यः शब्दार्थसम्बन्धोऽस्ति विवक्षितः शक्तिक्षणस्तद्वद्वेदेऽपि सम्भाव्यत इति  
भावः ॥ २७६८ ॥ २७६९ ॥

तत्रापीत्यादिना परमतेन दृष्टान्तासिद्धिमाशङ्कते ।

तत्रापि शक्तिनित्यत्वं नियोगस्य त्वनित्यता ।

तद्वशादेव नित्यायां शक्तौ भ्रान्तिः प्रवर्तते ॥ २७७० ॥

तत्राप्युत्पाद्यकथादिषु नित्या शक्तिरिष्टैव, किन्त्वसत्येवार्थे यो नियोगः पुरुषैः  
क्रियते, सोऽनित्यस्तद्वशादेव नित्यायां शक्तौ प्रतीतिविभ्रमो भवति तस्मादसिद्धो  
दृष्टान्त इति ॥ २७७० ॥

नन्वित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

ननु बाह्यो न तत्रास्ति व्यक्तिः कार्ये प्रकल्प्यते ।  
विकल्पप्रतिबिम्बे चेत्तद्वद्वेदेऽपि शङ्कयते ॥ २७७१ ॥

बाह्य इति । महाश्वेतादि(रि)त्यर्थः ॥ २७७१ ॥

यदुक्तम्—“स्वर्भयागादिसम्बन्धः केन दृष्टो अतीन्द्रियः” इत्यादि, तत्राह—  
अतीन्द्रियार्थसम्बन्धामित्यादि ।

अतीन्द्रियार्थसम्बन्धां को वा शक्तिं प्रपद्यते ।  
नातो वेदे नियोगोऽपि नरायत्तः प्रकल्प्यते ॥ २७७२ ॥  
वृद्धेभ्यो न च तद्वोधस्नेऽपि सज्जाः स्वतः स्थिताः ।  
सम्भाव्या प्रतिपत्तिस्तु व्याख्यानात्पुरुषाश्रयात् ॥ २७७३ ॥

अनेनैतदाह—स्वयमेव भवता सामर्थ्याद्दर्शितम्, यथा योऽयं वेदार्थप्रत्ययो  
भवति स पुरुषाश्रयाद्वाख्यानादेवेति । तथाहि—प्रकृत्यैव तावत्पूर्वा(दपूर्वे ?)  
शक्तिरतीन्द्रियार्थाश्रिता, ततश्चातीन्द्रियायां शक्तौ न पुरुषकृतो नियोगः शब्दस्य  
सम्भवति, नापि वृद्धेभ्यस्तस्याः प्रतीतिः संभवति, तेषां सर्वेषामेवानभिज्ञत्वात्,  
अन्धानामिव वचनाद्रूपविशेषप्रतीतिः । तस्मात्सामर्थ्यादियमर्थप्रतीतिः पुरुषव्या-  
ख्यानादेवावतिष्ठते गत्यन्तराभावादिति ॥ २७७२ ॥ २७७३ ॥

नन्वित्यादिना परश्चोदयति ।

ननु पर्यनुयोगोऽयं कृतकेप्यागमे समः ।  
न तत्र श्रद्धया वृत्तेरर्थसंशयतोऽपि वा ॥ २७७४ ॥

नन्वयं सामान्यः पौरुषेयेष्वप्यागमेषु प्रसङ्गः । तथाहि—किमिदानीन्तनाः  
परोक्षदेशिकानां बुद्धादिवधनानामर्थं यथामिप्रायं प्रतियन्ति आहोस्विद्विपर्ययमिति ।  
न तत्रेत्यादिना प्रतिविधत्ते । तत्रेति । पुरुषो यदिष्टे(पौरुषेये, अदृष्टे,—)हेयादितत्त्वे  
सोपाये पुरुषार्थोपयोगिनि । तथाहि—तत्र न्यायमेवानुपालयन्तः सौगताः सुधियः  
प्रवर्चन्ते न प्रवादमात्रेण । श्रद्धयेति । अमिसंप्रत्ययेन युक्तिनिध्यानजेन निश्चयेनेति  
यावत् । प्रमाणसिद्ध एवार्थेऽमिसंप्रत्ययस्य युज्यमानत्वात् । नान्यत्र । तत्र संशयान-  
तिवृत्तेः । अर्थसंशयतोऽपि वेति । अत्यन्तपरोक्षेऽर्थे स्वर्गदेवतापूर्वादौ । तथाहि—तत्र  
पौरुषेये वाक्ये पुरुषस्य स्वाभिप्रायकथनेनाविपरीतसम्प्रदायसंभवाच्छ्रोतृपरम्परया  
चाविच्छिन्नः सम्प्रदायः सम्यक् संभाव्यते । नत्वेवमपौरुषेये, तत्रोपदेष्टुरभावात् ।



किञ्चोपदेष्टा क्रिय(कूप ?)या लोकप्रत्ययेनय(प्रत्यायनाय ?)कुर्वा(ब्रुवा ?)णो लोकसङ्केतमेवानुसृत्य कृ(ब्रू)त इति ततो लोकप्रसिद्धेरपि तदर्थसिद्धिः संभवेत् । नत्वपौरुषेयाणां तत्र कस्यचित्समीहाभावात् ॥ २७७४ ॥

यद्येवं येन केनचिदागमेन किं न भवान्प्रवर्त्तते । सन्देहस्य सर्वत्र तुल्यत्वादित्ये-  
तच्चोद्यनिराकरणायेदमाह—प्रत्यक्षेणेत्यादि ।

**प्रत्यक्षेणानुमानेन विशुद्धे विषये सति ।**

**नह्येवं वैदिके शब्दे स स्वयम्प्रत्ययो यतः ॥ २७७५ ॥**

यत्र प्रत्यक्षानुमानाभ्यामभिमतस्यार्थस्य तथाभावो न विरुध्यते, तेन प्रवर्त्तमानः शोभेत सत्यपि संशये, न तु यत्रान्यथाभावस्तत्र, दृष्टप्रमाणोपरोधितानर्थसंशयस्यो-  
द्भूतत्वात् । यद्येवं वेदेऽप्यनेनैव न्यायेन प्रवृत्तिर्भविष्यतीत्याह—नह्येवमित्यादि ।  
स्वयम्प्रत्यय इति । स्वत एव प्रमाणभूत इत्यर्थः । अतो न प्रमाणेन परीक्ष्य ततः  
प्रवृत्तिर्युक्ता, परतः प्रामाण्यप्रसङ्गात् । न चापि तस्य विषयविशुद्धिः सम्भवति ।  
तथाहि—अप्रच्युतानुत्पन्नपूर्वापररूपः पुमा(न)नुक्रमेण कर्त्रा कर्मफलानां च भोक्ता  
वेदे पठ्यते । स चायुक्त इत्यावेदितमात्मपरीक्षायाम् । तथा नित्यत्वं केषांचिद्भ्रावानां  
पठ्यते । तदपि स्थिरभावपरीक्षायायुक्तमुपपादितम् । तथा सामान्यादीन्यप्रत्यक्षा-  
ण्यपि प्रत्यक्षत्वेनेष्टानि, तथा क्रमेण जन्मस्थितिनिवृत्तयोऽसम्भविन्योऽपि भावानां  
निर्दिष्टाः । तथाऽनाद्येयविशेषस्य प्रागकर्तुः परापेक्षया जनकत्वं, तथा निष्पन्नस्य  
पराश्रयेण स्थितिरकार्यस्याप्युपदिष्टा । तथा कारणाद्विनाश इत्यादिकं बहुविधं प्रमा-  
णविरुद्धमुपलभ्यते । तत्कथं प्रेक्षावतस्तथाभूतेनागमनेन प्रवृत्तिः स्यात् ॥ २७७५ ॥

यदप्यपरं कुमारिलेन सम्बन्धनित्यत्वसाधनाय साधनमुक्तम् । तस्योत्पाद्यकथारू-  
पनाटकदिनाऽनैकान्तिकत्वमिति दर्शयति—उत्पाद्येत्यादि ।

**उत्पाद्यार्थकथाधर्ममनालोच्य समं श्रुतौ ।**

**एवं चेदमसत्बद्धं परैरत्रोपवर्णितम् ॥ २७७६ ॥**

उत्पाद्योऽर्थो यस्याः कथायाः सा तथोक्ता, उत्पाद्यार्था चासौ कथा चेति विग्रहः ।  
तस्या धर्म इच्छाविरचितार्थत्वम् ॥ २७७६ ॥

किं तदुपवर्णितमित्याह—शब्दार्थानादितामित्यादि ।

**शब्दार्थानादितां मुक्त्वा सम्बन्धानादिकारणम् ।**

**न स्यादन्यदतो वेदे सम्बन्धादि न विद्यते ॥ २७७७ ॥**

उपायरहितत्वेन सम्बन्धाकरणानुमा ।

अनाख्यानानुमानं तु दृष्टेनैव विरुध्यताम् ॥ २७७८ ॥

शब्दो वर्णस्वभावः, नस्यार्थः सामान्यं, तयोरनादित्वात्सम्बन्धोऽपि शक्तिलक्ष-  
णोऽनादिरेव, शक्तेर्भावाव्यतिरेकादिति भावः । तथा सम्बन्धकरणस्योपायाभावेन  
सम्बन्धाकरणमनुमीयते । प्रयोगः—यो यत्करणोपायरहितः स न तं करोति,  
यथाऽविद्यमानमृत्पिण्डदण्डचक्रसलिलसूत्रादिकारणकलापः कुलालो घटम्, सम्ब-  
न्धकरणोपायरहिताश्च सर्वपुरुषा इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः । न चासिद्धो हेतुः,  
'श्रोतुः कर्तुं च सम्बन्धं यत्का कं प्रतिपद्यता' मित्यादिना सर्वपुरुषाणामुपायरहितत्वस्य  
प्रतिपादितत्वात् । यद्येवं कारणवत्सम्बन्धाख्यानाभावानुमानप्रसङ्ग इत्याशङ्क्याह—  
अनाख्यानानुमानं त्विन्यादि । अनाख्यानानुमाने हेतोरुपायरहितत्वादित्यस्या-  
सिद्धिः ॥ २७७७ ॥ २७७८ ॥

वृद्धानामित्यादिना नामेवासिद्धिं दर्शयति ।

वृद्धानां दृश्यमाना च प्रतिपत्तिः पुनः पुनः ।

उपाय इति तद्धानिरसिद्धाऽवगमं प्रति ॥ २७७९ ॥

येयं वृद्धानां सम्बन्धप्रतीतिः पुनःपुनर्दृश्यते, स एव सम्बन्धकथनोपायः,  
नह्यप्रतिपद्य परस्मै कथयितुमीश(ते ।) तद्धानिरिति । उपायहानिः । अवगमं  
प्रतीतिः । सम्बन्धावबोधं प्रति ॥ २७७९ ॥

इत्येतद्धीत्यादिना दूषणमाह ।

इत्येतद्धि भवेत्सर्वं यदि वेदार्थनिश्चयः ।

वृद्धेभ्योऽप्यत्रिसंवादी सिद्धः स्यादन्यथा क्षतिः ॥ २७८० ॥

( यदुक्तम्— ) 'शब्दार्थानादिता'मित्यादि, तत्र यदि नित्यत्वं शब्दार्थयोरना-  
दित्वमभिप्रेतं तदसिद्धम्, व्यापिनः क्षणभङ्गस्य प्रतिपादितत्वात् । अथ कार्यकार-  
णपरम्परायास्तदाऽनैकान्तिकत्वं विरुद्धत्वं च, सम्बन्धिभ्यः सम्बन्धम्याव्यतिरेका-  
त्तद्द्वदनित्यत्वप्रसङ्गात् । यच्चोक्त'मुपायरहितत्वेने'ति, तदप्यसिद्धम्, यतो भेदेऽपि  
प्रकृत्या चक्षुरादिवदेकाकारप्रत्ययवमर्शजनने समर्थाः केचिदर्था इति प्रतिपादितम् ।  
ततश्च वक्तुश्रोत्रोरेकार्थाध्यवसायी प्रत्ययः स स्वकरणेऽभ्युपाय इत्यभिप्रायः । यद-  
प्युच्यते 'वृद्धानां दृश्यमाना च प्रतिपत्ति'रिति, तत्राप्युक्तम्—“वृद्धेभ्यो न च

तद्बोधस्तेऽपि ब्रह्माः स्वतःस्थिताः” इति । अन्यथा क्षतिरिति । यदि वृद्धाः स्वयमज्ञा अपि सन्तः सम्बन्धं प्रतिपद्यन्त इतीष्यते, तदा दृष्टविरोधोऽन्वस्येव रूपदर्शनप्रतिज्ञाया इत्यर्थः ॥ २७८० ॥

यदुक्तम्—“सङ्घातत्वस्य वक्तव्यमीदृशं प्रति साधनम्” इत्यत्राह—सिद्धेत्यादि ।

**सिद्धसर्वोपसंहारव्याप्तिकत्वात् सम्भवि ।**

**सङ्घातत्वादिलिङ्गस्य किञ्चन प्रतिसाधनम् ॥ २७८१ ॥**

सिद्धा सर्वोपसंहारव्याप्तिर्यस्य तत्तथोक्तम्, तद्भावस्तत्त्वम्, अनेन वस्तुबल-प्रवृत्तत्वमस्य प्रतिपादयति—अन्यस्य सर्वोपसंहारेण व्याप्त्यसिद्धेः । न च वस्तुबल-प्रवृत्तेऽनुमाने प्रतिसाधनसम्भवः, वस्तुना स्वभावान्यथात्वस्य कर्तुमशक्यत्वात् । नापि परम्परविरुद्धस्वभावद्वयस्यैकत्र सम्भवः, एकत्वहानिप्रसङ्गात् ॥ २७८१ ॥

तामेव सर्वोपसंहारेण व्याप्तिसिद्धिं दर्शयन्नाह—सार्थका इत्यादि ।

**सार्थकाः प्रविभक्तार्था विशिष्टक्रमयोगिनः ।**

**पदवाक्यसमूहाख्या वर्णा एव तथोदिताः ॥ २७८२ ॥**

**सार्थकप्रविभक्तार्थविशिष्टक्रमयोगिता ।**

**निषिद्धा पौरुषेयत्वे व्याप्तिरव्याहता ततः ॥ २७८३ ॥**

तथेति । संहतत्वेनोदिताः । अपौरुषेयत्वे तु वर्णानां सर्वमेतदनुपपन्नमिति पूर्वं प्रतिपादितमतो व्याप्तिसिद्धिः ॥ २७८२ ॥ २७८३ ॥

ननु च ‘वेदाध्ययनवाच्यत्वादि’त्यस्यापि हेतोर्व्याप्तिः सर्वोपसंहारेण सिद्धैव, तथाहि वेदानां कर्ता न कदाचिदप्युलभ्यत इत्याशङ्क्याह—वेदाध्ययनेत्यादि ।

**वेदाध्ययनवाच्यत्वे नत्वेवं व्याप्तिनिश्चयः ।**

**संदिग्धव्यतिरेकित्वं व्यक्तं तेनात्र साधने ॥ २७८४ ॥**

नत्वेवमिति । यथा सङ्घातत्वस्य । यतो न सङ्घातत्वस्य साध्यविपर्यये व्यतिरेकित्वं संदिग्धम्, अस्य तु संदिग्धम् ॥ २७८४ ॥

एतदेव प्रतिपादयति—तथाविध इत्यादि ।

**तथाविधे क्रमे कार्ये नराशक्तौ च निश्चये ।**

**सिद्धे व्याप्तिरिहेयं च निश्चेतुं नैव शक्यते ॥ २७८५ ॥**

**समस्तनरधर्माणां प्रत्यक्षीकरणे सति ।**

**स्यादेव निश्चयोऽयं च सर्वज्ञस्योपपद्यते ॥ २७८६ ॥**

तथाविध इति । स्वर्गकामोऽग्निष्टोमेन यजेनेत्यादिके । एवंभूतं वर्णक्रमं यदि कर्तुं सर्वनराणामशक्तिर्निश्चिता भवेत्तदा व्याप्तिनिश्चयो भवेत्, यावता सेव निश्चे-  
तुमसर्वविदा न शक्यत इति दर्शयति—समस्तनरधर्माणामित्यादि । अयं  
चेति । निश्चयः ॥ २७८५ ॥ २७८६ ॥

ननु च धर्माद्युपदेशदुर्भणत्वादीनां वेदधर्माणां पौरुषेषु वाक्येष्वदर्शनाद्वेदस्य  
पौरुषेयत्वमसम्भाव्यमेव, तत्कथं संदिग्धासिद्धता स्यादित्याशङ्क्याह—सम्भा-  
व्यत इत्यादि ।

सम्भाव्यते च वेदस्य विस्पष्टं पौरुषेयता ।

काममिथ्याक्रियाप्राणिर्हि साऽसत्याभिधा तथा ॥ २७८७ ॥

दुर्भणत्वानुदात्तत्वक्लिष्टत्वाश्रव्यतादयः ।

वेदधर्मा हि दृश्यन्ते नास्तिकादिवचस्वपि ॥ २७८८ ॥

विषापगमभूत्यादि यच्च किञ्चित्समीक्ष्यते ।

सत्यं तद्वैनतेयादिमश्रवादेऽपि दृश्यते ॥ २७८९ ॥

एवं मन्यते—यदि नामादर्शनम्, तथाप्यदर्शनमात्रस्याप्रमाणत्वात्संदिग्धासि-  
द्धतैव, कदाचित्कचित्पुरुषास्तथाविधानां वेदधर्माणां कर्तारो भवेयुरिति । न चाद-  
र्शनमात्रं सिद्धम् । काममिथ्याचाराद्युपदेशादेर्वेदधर्मस्य नास्तिकादिवचनेष्वपि दर्श-  
नात् । काममिथ्याक्रिया—काममिथ्याचारः । मात्राद्यभिगमनमिति यावत् । तस्यो-  
पदेशो गौसवादौ । यथोक्तम्—उपहा उदकं चूषति तृणानि छिनत्ति उपैति मात-  
रमुतस्वगोत्रामित्यादि । उपहेति यजमानः । अश्वमेधादौ प्राणिवधोपदेशः । यथो-  
क्तम्—“षट्शतानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि । अश्वमेधस्य वचनादूनानि पशु-  
भिस्त्रिभिः” (!) ॥ इति । असत्यं मृषावादस्तदप्युपदिष्टम् । यथोक्तम्—“ग नर्मयुक्तं  
घनृतं हिनस्ति न स्त्रीषु गजन् न विवाहकाले । प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृता-  
न्याहुरपातकानि” ॥ इति । एषां काममिथ्याचारादीनां, अभिधा—अभिधानम् । वेद-  
धर्मा नास्तिकादिवचस्वपि दृश्यन्त इति सम्बन्धः । तथेति समुच्चये । दुर्भणत्वं—दुर्ग-  
भिधानम्, अनुदात्तत्वं मनोज्ञत्वं, क्लिष्टं—व्यवहितम् । आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि  
मयूररोमभिरित्यादिवत् । अत्र हि—आ मन्द्रैरित्ययं (आङ्) याहीत्यनेन व्यवहितेन  
सम्बध्यते । आयाहीत्यर्थः । अश्रव्यता—श्रुतिदुर्भगता । आदिशब्देन पदत्रिच्छेदप्रु-  
तोदात्तादिपरिग्रहः । विषापगमभूत्यादीति । विषापगमे भूतिः—सामर्थ्यं, प्रभाव

इति यावत् । अथवा—विषापगमश्च भूतिश्चेति समासः । भूतिर्विभूतिरैश्वर्यमिति यावत् । आदिशब्देन भूतग्रहाद्यावेशवशीकरणाभिचारादयो गृह्यन्ते । सत्यमिति । अविशंवादि । नैनतेयादीत्यादिशब्देन बौद्धादिमन्त्रवादपरिग्रहः ॥ २७८७ ॥  
॥ २७८८ ॥ २७८९ ॥

‘भारतेऽपि भवेदेव’मित्यादावाह—किं चाम्बुनेत्यादि ।

किं चाऽमुना प्रकारेण पौरुषेयं न किञ्चन ।

शक्यं सौगतमप्येवमनुमातुं वचो यतः ॥ २७९० ॥

एवमनुमातुमिति । सौगतप्रवचनाध्यायनं प्रथमाभिहि(म ?)तं सजातीयाध्ययन-पूर्वकं सौगताध्ययनवाच्यत्वात् ; अधुनाध्ययनं यथेति ॥ २७९० ॥

यद्येवं कथं तर्हि तत्सौगतं सेत्स्यतीत्याह—तदभिव्यक्त्यादि ।

तदभिव्यक्तरूपत्वात्तदीयं च तदुच्यते ।

कर्तृस्मृतिश्च तत्रापि भवत्वथेनिबन्धना ॥ २७९१ ॥

परैरेवं न चेष्टं चेत्तुल्ये न्याये न किं मतम् ।

माभूद्वैवं परस्येष्टिर्न्यायात्त्राशंक्यते तथा ॥ २७९२ ॥

तेन सुगतेनाभिव्यक्तं रूपं स्वभावो यस्य तत्तथा । तद्भावस्तत्त्वम् । तत्रापि सौग-तेया कर्तृस्मृतिस्त्वर्थवादनिबन्धना शक्यते व्याख्यातुम् । तथाह्यत्रापि करोतिः स्मर-णार्थः किं न व्याख्यायते । स्यादेतत्—नहि बौद्धैरेवमिष्टम् , येनैवं साध्येतेत्याह— तुल्ये न्याये न किं मतमिति । यद्ययमर्थो युक्त्युपेतः स्यात्तदा किमिति बौद्धौ नाभ्युपगच्छेत , नहि न्यायोपपत्तेऽर्थे प्रेक्षावतोऽनभ्युपगमो युक्तः । माभूद्वैद्वस्य प्रे-क्षावतोऽभ्युपगमस्तथाऽपि न्यायादेवमापाद्यते भवत इति ब्रूमहे ॥ २७९१ ॥ २७९२ ॥

एतदेव तद्वचनेन दृढीकुर्वन्नाह—सर्वदा चेत्यादि ।

सर्वदा चैव पुरुषाः प्रायेणानृतवादिनः ।

यथाऽद्यत्वे न विस्मम्भस्तथाऽतीतार्थकीर्त्तने ॥ २७९३ ॥

इत्येतेन त्वदुक्तेन न्यायेन च न सिद्धयति ।

कर्त्ता कश्चित्कचिद्ब्रुवन्ते स्वां कृतिं कथयन्नपि ॥ २७९४ ॥

ततश्चापौरुषेयेषु सत्याशा त्यज्यतामियम् ।

वेदार्थविपरीता हि तेऽवर्थाः प्रतिपादिताः ॥ २७९५ ॥

इत्येतेनेति । सर्वदा चेत्यादिनाऽनन्तरोक्तेन । स्यादेतद्भवतु सर्वेषामपौरुषेयते-

त्याह—ततश्चेत्यादि । ततश्चापौरुषेयत्वं सत्यार्थं न सिद्धयेत । सौगतादिवचनेना-  
नैकान्तिकत्वादिति भावः । तथाहि—वेदार्थविपरिणा नैरात्म्यादयो भवन्मतेनाप्र-  
माणोपपन्नास्तेषु सौगतादिषु वचनेषु निर्दिष्टाः, तथा वैदिका अपि सम्भाव्येरन्  
॥ २७९३ ॥ २७९४ ॥ २७९५ ॥

एवं तावदनैकान्तिकत्वं प्रतिपादितम्, इदानीमिष्टविघातकादित्वाद्गिरुद्धत्वमस्य  
प्रतिपादयन्नाह—अपि चेत्यादि ।

**अपि चानादिना सिद्धयेदेवं नानरसंश्रयः ।**

**तस्मादकृतकत्वे वा स्यादन्योऽप्यागमोऽकृतः ॥ २७९६ ॥**

तथाप्यपौरुषेयत्वमस्य साधयितुमिष्टम्, तच्च न सिद्धम्, किं नहि ? अनादि-  
त्वमात्रमनिष्टमेव सिद्धयति । स्यादेतत्—अनादित्वे सिद्धे सामर्थ्यादकृतकत्वं  
सिद्धयत्येव, नहि कृतकम्यानादित्वं युज्यते तदित्यत्राह—तस्मादित्यादि । तस्मा-  
दनादित्वाद्यद्यत्कृतकत्वं स्यात्तदा पारसीकादिव्यवहारस्यापि स्यात् ॥ २७९६ ॥

एतदेव दर्शयति—तथाहीत्यादि ।

**तथाहि पारसीकादिव्यवहाराः पराश्रयाः ।**

**नास्तिकानां च सिद्धान्तः परसंस्कारभाविकः ॥ २७९७ ॥**

पराश्रया इति । परपुरुषसंस्कारेण प्रवृत्ता इत्यर्थः । परसंस्कारभाविक इति ।  
परसंस्कारेण भावः स यस्यास्ति स तथोक्तः । परसंस्कारेण वा भवितुं शीलमस्येति  
परसंस्कारभावी, ततः स्वार्थे को विधेयः । तथाहि—येऽपि तावत्स्वप्रतिभारचि-  
तसङ्केताः सिद्धान्ताः, तेषामपि यथाश्रुतार्थविकल्पभङ्गेनैव प्रवृत्तेः परसंस्कारबलेनैव-  
प्रवृत्तिः प्रागे(स्यादे ?)व प्रायेण, यथा दर्शनवृत्तीनां लोकव्यवहाराणाम् ॥ २७९७ ॥

भवतु सर्वेषामपौरुषेयत्वमिति चेदित्याह—ईदृशीत्यादि ।

**ईदृश्यकृतकत्वे च कः सिद्धेऽपि गुणस्तव ।**

**अवैतद्यनिमित्तं हि यन्नोऽयं भवतोऽखिलः ॥ २७९८ ॥**

ईदृशि—सम्भवद्वितथार्थे ॥ २७९८ ॥

अतीतानांगतौ कालवित्यादावाह—कालत्वेत्यादि ।

**कालत्वपुरुषत्वाद्दौ संदिग्धव्यतिरेकिता ।**

**पूर्ववत्करणाशक्तेर्नराणामप्रसाधनात् ॥ २७९९ ॥**

व्यक्तेश्च प्रतिषिद्धत्वाद्भक्ता कर्त्तव्यं गम्यताम् ।

तत्प्रयोगद्वयेऽप्युक्तं साध्यशून्यं निदर्शनम् ॥ २८०० ॥

सर्वेषां हि नराणां करणाशक्तिप्रसाधनं विपर्यये हेतोर्बाधकं प्रमाणम्, तस्य चानुपदर्शनात्सर्वहेतूनां साध्यविपर्यये व्यतिरेकः संदिग्ध इत्यनैकान्तिकता । पूर्ववदिति । वेदाध्ययनवाच्यत्वसाधनवत् । साध्यशून्यं निदर्शनमिति । वर्त्तमानकालवत्प्राकृतनरवदित्येतत् ॥ २७९९ ॥ २८०० ॥

‘ततश्च गम्यता’मित्यादावाह—नरेत्यादि ।

नरोपदेशापेक्षत्वात्कृतकस्य च साधनात् ।

स्वार्थं वक्रनपेक्षत्वं धर्मिदृष्टान्तयोर्न च ॥ २८०१ ॥

धर्मिदृष्टान्तयोरिति । साध्यधर्मिणि दृष्टान्तधर्मिणि चेत्यर्थः ॥ २८०१ ॥

‘तत्कृतः प्रत्यय’ इत्यादावाह—नित्यत्वेऽस्त इत्यादि ।

नित्यत्वेऽस्ते च वाक्यस्य धर्मिदृष्टान्तयोरपि ।

नित्यवाक्योद्भवत्वस्य स्पष्टाऽसिद्धिः प्रतीयते ॥ २८०२ ॥

इत्थं चापौरुषेयत्वे चोदनाया अनिश्रिते ।

सन्दिग्धासिद्धता दोषः पश्चिमेष्वपि हेतुषु ॥ २८०३ ॥

अत्रापि हेतोरसिद्धता दृष्टान्तस्य च साध्यविकलता पूर्ववत् । धर्मिदृष्टान्तयोरिति सप्तमी नित्यवाक्योद्भवत्वस्येत्येतदपेक्षा । वाक्यस्येति नित्यत्व इत्येतदपेक्षा सम्बन्धषष्ठी । नित्यवाक्योद्भवत्वस्येत्यसिद्धापेक्षा षष्ठी । पश्चिमेष्विति । दोषवर्जितैः कारणैर्जन्यमानत्वादित्यादिषु च ॥ २८०२ ॥ २८०३ ॥

अनासाप्रणीतोक्तिजन्यत्वाद्बाधवर्जनादित्यनयोस्तु हेत्वोर्निश्चितैवासिद्धतेति दर्शयन्नाह—बाध्यते चेत्यादि ।

बाध्यते च श्रुतिः स्पष्टं क्षणभङ्गे प्रसाधिते ।

नित्या तावत्स्वरूपेण तत्कृतातो मतिः कुतः ॥ २८०४ ॥

नहि शीर्यत इत्युक्तः पुरुषश्च श्रुताबलम् ।

पुरस्तस्योदिता बाधा सुव्यक्ता तदसिद्धता ॥ २८०५ ॥

करामलकवद्यस्य देशकालनरान्तरम् ।

प्रत्यक्षं तत्र तेनायं बाधाभावोऽवसीयते ॥ २८०६ ॥

नित्या तावत्स्वरूपेणेति बाध्यत इति सम्बन्धः । एतदुक्तं भवति । स्पष्टं हि

हेतुबलप्रवृत्तानुमानतः सर्वपदार्थव्यापिनि क्षणभङ्गे प्रसाधिते सति येऽयं नित्यत्वे-  
नाभ्युपगता श्रुतिः सा तावद्बाध्यत इति स्वरूपग्रहणमभिधेयव्युदासार्थम् । तत्कृ-  
ताऽतो मतिः कुत इति । नैवेत्यर्थः । एतेनानासाप्रणीतोक्तिजन्यत्वादित्येतस्याश्र-  
यासिद्धतोक्ता । बाधवर्जनादित्येतस्य च स्वरूपतोऽसिद्धतां निश्चितां दर्शयन्नाह—  
नहि शीर्यत इत्यादि । ‘अशीर्योऽयं नहि शीर्यते’ ‘अविनाशी (वा) अरे अयमात्मे’ति  
वेदे पठ्यते । तस्य—पुरुषस्य—आत्मनः पुरः—पूर्वं नैरात्म्यसिद्धौ, बाधोक्ता ।  
अतो निश्चितमसिद्धत्वमस्य । ननु च—‘चोदनेति क्रियायाः प्रवर्त्तकं वचनमाहु’रिति  
वचनाद्वैदिकैकदेशविशेष एव चोदनोच्यते, न तु सर्वो वेदः, चोदनाजनिता(तु)बुद्धिः  
पक्षीकृता । तस्मादन्यार्थस्य वेदस्य बाधायामपि न चोदनाया बाधेति हेतोः सिद्धि-  
रेव । नैष दोषः—चोदनाग्रहणेन क्वचित्सर्वमेव वैदिकं वाक्यमुच्यते, न तु सर्वदा प्रव-  
र्त्तकमेव । अन्यथा न हिंस्याद्भूतानीत्येतद्वाक्यं चोदना न स्यात्, अप्रवर्त्तकत्वात् ।  
यच्चोक्तं भाष्ये—‘उभयमिह चोदनया लक्ष्यतेऽर्थोऽनर्थश्च’इति, तदपि विरुद्धयेत, नहि  
चोदनाऽनर्थे प्रवर्त्तयति, येन तथाऽनर्थो लक्ष्यत इति स्यात् । किंच—यदेतदपरमुक्तं  
भाष्ये “विप्लवते खल्वपि कश्चित्पुरुषकृताद्वचनात्प्रत्ययो न तु वेदवचनस्य मिथ्यावसाये  
किञ्चन प्रमाणमस्ती”ति । अस्य (नित्यस्य ?) तावद्बाधनाच्चोदनायामपि बाधा सम्भाव्य-  
माना दुर्वरैव । तथाहि कुमारिलेनोक्तम्—“अकर्तृकत्वसिद्धया च हेतुत्वं साधयि-  
ष्यते” इति । यथा चाकर्तृकस्यापि नित्यपुरुषादिविषयस्य वेदवचसो बाधा परिस्फुटा  
समीक्ष्यते ! तथामिहोत्रात्स्वर्गो भवतीत्यादावपि वा(सा ?)शङ्का दुर्वरैवेति स्फुटा ताव-  
त्सन्दिग्धासिद्धता पूर्वोक्तैव । अत एव पुनर्निर्वर्त्ये सन्दिग्धासिद्धतामेव द्रढयन्नाह—  
करामलकवदित्यादि । तत्रेति । देशकालनरान्तरे । तत्र यदुक्तम्—“न चैष देशान्तरे  
कालान्तरे पुरुषान्तरे वा विपर्येति तस्मादवितथ” इति, तदनेन दूषितं भवति  
॥ २८०४ ॥ २८०५ ॥ २८०६ ॥

यदुक्तम् —तस्मादालोकवदित्यत्राह—नराविज्ञानरूपार्थं इत्यादि ।

नराविज्ञानरूपार्थं तमोभूते ततः स्थिते ।

वेदेऽनुरागो मन्दानां स्वाचारे पारसीकवत् ॥ २८०७ ॥

अविज्ञानतदर्थश्च पापनिष्यन्दयोगतः ।

तथैवामी प्रवर्त्तन्ते प्राणिहिंसादिकल्मषे ॥ २८०८ ॥

रूपम्—स्वरूपम्, अर्थः—अभिधेयः, नराविज्ञातौ रूपार्थावस्येति विग्रहः ।



तत्र रूपमविज्ञातम् , किमयमेव वर्णोऽथान्यो विशेष एव वर्णक्रम उत नेति स्वतः परतश्च निश्चयायोगात् । एवमर्थेऽप्यनिश्चयो द्रष्टव्यः । ततश्च तमोभूते—निश्चयाभावे-  
नानालोकभूतत्वात् । (पापं) पूर्वपापाभ्यासवासना, तन्निष्पन्दः । तथैवेति ।  
पारसीकवत् ॥ २८०७ ॥ २८०८ ॥

यदुक्तमादौ - अवश्यं धर्माधर्मार्थिभिः पुरुषैः प्रेक्षावद्विश्वोदनैव प्रमाणत्वेनाश्र-  
यणीयेति, तत्राह—धर्मं प्रतीत्यादि ।

**धर्मं प्रति न सिद्धाऽनश्चोदनानां प्रमाणात् ।**

**स्वतोऽन्येभ्यश्च मन्देभ्यस्तदर्थानवधारणात् ॥ २८०९ ॥**

धर्मग्रहणमुपलक्षणम् , अधर्मोऽपि ग्रहीतव्यः ॥ २८०९ ॥

यद्येवं कस्तर्हि धर्मादिव्यवस्थाश्रय इत्याह—ज्ञानेत्यादि ।

**ज्ञानालोकव्यपास्तान्तस्तमोराशिः पुमानतः ।**

**श्रुत्यर्थानां विविक्तानामुपदेशकृदिष्यताम् ॥ २८१० ॥**

**इति श्रुतिपरीक्षा ।**

अन्तस्तमः—क्लिष्टाक्लिष्टमज्ञानम् , ज्ञानालोकेन व्यपास्तो ध्वस्तोऽन्तस्तमोरा-  
शिर्येन स तथोक्तः । विविक्तानामिति । अनवधानाम्—सुधीनाम् , (शुद्धानाम् ?)  
पशुव्रधकाममिथ्याचागदिकलङ्कानङ्कितानामित्यर्थः । उपदेशकृदिष्यतामिति । एवं  
हि तदपौरुषेयत्वं प्रकल्पितं सार्थकं भवतीति भावः । अन्यथा हि तस्मिन्नविज्ञातार्थे  
तदपार्थक्यमेव स्यात् । अनेनैतदुक्तं भवति—योऽयं स्वतःप्रामाण्याभ्युपगमो भवतां, स  
न विना सर्वज्ञेन युक्त इत्यतोऽवश्यं सोऽभ्युपगन्तव्यः, अन्यथा तत्र प्रामाण्या-  
सिद्धिरिति प्रतिपादितत्वात् । ततश्च तदुक्तमेव वरं वचनं धर्मादिसमाश्रयोऽस्तु,  
किमपरमप्रमाणोपपन्नापौरुषेयत्वकल्पनया । यच्चोक्तम्—योगिप्रत्यक्षसमाधिगम्योऽपि  
धर्मादिर्न भवतीति, तदपि शे(दो ?)षवत् , अनुमानेन योगिनः पश्चात्साधयिष्यमा-  
णत्वादिति भावः ॥ २८१० ॥

**इति श्रुतिपरीक्षा ।**

एवमित्यादिना—भूयः स्वतन्त्रश्रुतिनिःसङ्गत्वमेव प्रकारान्तरेण समर्थयते ।

**एवं च पौरुषेयत्वे वेदानामुपपादिते ।**

**स्वतःप्रामाण्यमप्येषां प्रतिक्षिप्तमयत्नतः ॥ २८११ ॥**

तथाहि श्रुतेः प्रामाण्यं यथा स्यादिति मन्यमानाः सामान्येन सर्वप्रमाणानां स्वतःप्रामाण्यमप्रामाण्यं तु परत इत्याहुर्जैमिनीयाः । परतः किल प्रामाण्येऽनवस्था-दिदोषप्रसङ्गात्प्रमाणेतरव्यवस्थोच्छेदः स्यात् । तथाहि चत्वारः पक्षाः सम्भवन्ति — कदाचिदुभेऽपि प्रामाण्याप्रामाण्ये स्वत एवेति प्रथमः, कदाचिदपरत एवेति द्वितीयः, प्रामाण्यं परतोऽप्रामाण्यं तु स्वत एवेति तृतीयः, एतद्विपर्ययश्चतुर्थः । तत्र न तावदाद्यः पक्षः, तथाहि—एकव्यक्त्याधारं वा तदुभयं स्वाद्व्यक्तिभेदेन वा । न तावदेकस्यां व्यक्तौ परस्परपरिहारस्थितलक्षणयोः प्रामाण्येतरधर्मयोः सम्भवः, विरोधात् । नापि व्यक्तिभेदेन, नियमकारणाभावाच्चिश्चयहेत्वसम्भवाच्चाऽस-ङ्कीर्णप्रमाणाप्रमाणव्यवस्थानाभावप्रसङ्गात् । तथाहि द्वयोरपि स्वातन्त्र्यादिदं प्रमाण-मेवेति नियमो न स्यात् । बाधसामान्येन च द्वयोरपि तिरोहितभेदत्वादन्यस्य चाव-धारणकारणस्यानभ्युपगमाद्विभागेनापरिज्ञानादिदं प्रमाणमप्रमाणमिति व्यवस्था न स्यात् । नापि द्वितीयः पक्षः, प्रागुभयम्बभावरहितस्य ज्ञानस्य निःस्वभावत्वप्रसङ्गात् । नहि परस्परपरिहारस्थितलक्षणयोः प्रामाण्येतरयोरभावे रूपांतरमस्य शक्यमवधार-यितुमित्यसंशयमस्यानुपाख्यत्वमापद्यते । आह च—“स्वतस्तावद्वयं नास्ति विरोधा-त्परतो न च । निःस्वभावत्वमेवं हि ज्ञानरूपे प्रसज्यते ॥ विज्ञानव्यक्तिभेदेन भवेच्चेदवि-रुद्धता । तथाऽप्यन्यानपेक्षत्वे किं केति न निरूप्यते ॥” इति । नापि तृतीयः पक्षो-ऽनवस्थादोषात् । तथाहि—न तावत्परतोऽप्रमाणभूतात्प्रामाण्यमाशंसनीयम्, तस्य स्वयमेवाप्रमाणत्वात् । नापि प्रमाणभूतात्, तस्यापि तुल्यपर्यनुयोगेन परतःप्रामा-ण्याशंसायामनवस्थाप्रसङ्गात् । ततश्चैकप्रमाणव्यक्तिव्यवस्थापनाय प्रमाणपरम्परा-मनुसरतः सकलमेव पुरुषायुषमुपयुज्यते । तस्माद्गत्यन्तरासम्भवात्स्वतःसर्वप्रमा-णानां प्रामाण्यम्, परतोऽप्रामाण्यमिति गृह्यताम् । तत्र प्रयोगः—ये यद्भावनि-यतास्ते तं प्रति न परमपेक्षन्ते, यथाऽऽकाशममूर्त्तत्वाय, प्रमाणभावनियताश्च वि-वादास्पदीभूता विज्ञानादय इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः । न चास्याऽनैकान्तिकत्वम्, स्वतोऽसम्भविनो धर्मस्य परेणाघातुमशक्यत्वादाकाशस्येव मूर्त्तत्वं यदाह—“नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यत” इति ॥ २८११ ॥

अत्र स्वत इत्यादिना तुच्छं प्रतिज्ञार्थं सम्भावयंस्तद्विचारद्वारेण दूषणमारभते ।

स्वतःसर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गृह्यताम् ।

इत्येतस्य च वाक्यस्य भवद्भिः कोऽर्थ इष्यते ॥ २८१२ ॥

कोऽर्थ इष्यत इति प्रश्ने पर आह—मेयबोधादिक इत्यादि ।

**मेयबोधादिके शक्तिस्तेषां स्वाभाविकी स्थिता ।**

**नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन शक्यते ॥ २८१३ ॥**

यदि ज्ञानं प्रमाणं तदा तस्य मेयबोधे—प्रमेयपरिच्छेदे स्वाभाविकी शक्तिः, अर्थपरिच्छेदकत्वाज्ज्ञानस्य । अथ चक्षुरादीनि तदा तेषां यथार्थज्ञानजनने, चोदनाया अतीन्द्रियार्थाधिगमे स्वत एव शक्तिरित्येतदादिशब्देन संगृहीतम् । अत्रैव तावत्पर उपपत्तिमाह—नहीत्यादि ॥ २८१३ ॥

एतदेव दर्शयन्नाह—अनपेक्षत्वमेवैकमित्यादि ।

**अनपेक्षत्वमेवैकं प्रामाण्यस्य निबन्धनम् ।**

**तदेव हि विनाश्येत सापेक्षत्वे समाश्रिते ॥ २८१४ ॥**

प्रामाण्यस्येति । प्रामाण्यव्यवस्थानस्य । तदेव हीति । प्रामाण्यम् । व्यापक-निवृत्तौ व्याप्यस्यानवस्थानात् ॥ २८१४ ॥

स्यादेतत्—विनाश्यतां नाम को दोष इत्याह—को हीत्यादि ।

**को हि मूलहरं पक्षं न्यायवाच्यध्यवस्यति ।**

**येन तत्सिद्धयुपायोऽपि स्वोक्त्यैवास्य विनश्यति ॥ २८१५ ॥**

मूलम्—प्रामाण्यम्, तच्च सापेक्षत्वेनापह्नियते, तस्य तद्व्यापकविरुद्धत्वात् । तथाहि—निर्गपेक्षत्वेन प्रामाण्यं व्याप्तम्, तच्च कथं स्वव्यापकविरुद्धे सापेक्षत्वे सत्यवस्थां लभेत । येनेत्यादिना प्रामाण्यस्यानपेक्षत्वेन व्याप्तिं दर्शयति—येनेति । यन्मादित्यर्थः ॥ २८१५ ॥

कथं विनश्यतीत्याह—सापेक्षं हीति ।

**सापेक्षं हि प्रमाणत्वं न व्यवस्थाप्यत क्वचित् ।**

**अनवस्थितहेतुश्च कः साध्यं साधयिष्यति ॥ २८१६ ॥**

न व्यवस्थाप्यत इति । अनवस्था स्यात् । भवत्वनवस्थादोष इत्याह—अनवस्थित इत्यादि । अनवस्थितोऽपरिनिश्चितो हेतुर्यस्य वादिनः स तथोक्तः । एतदुक्तं भवति—ज्ञातो हि ज्ञापको व्याप्यमर्थं ज्ञापयति, न सत्तामात्रेण, ततश्च वादी स्वयमेव तावदप्रतिपन्नः कथं परप्रतिपादनाय साधनमुपादास्यते ॥ २८१६ ॥

इत्येवमित्यादिना दूषणमारभते ।

इत्येवमिष्यतेऽर्थश्रेष्ठेन चान्यतिरेकिणी ।

शक्तिः सर्वपदार्थानां पुरस्तादुपपादिता ॥ २८१७ ॥

इष्टकार्यसमर्थं हि स्वरूपं शक्तिरुच्यते ।

तस्य भावात्मताभावे भावो न स्यात्सकारकः ॥ २८१८ ॥

तत्र स्वाभाविकीति कोऽर्थोभिप्रेतः, किं नित्यत्वेन निर्हेतुकत्वात्स्वाभाविकी, आहोस्विदन्वित्याऽपि सती स्वहेतुभ्यो ज्ञानानां स्वभावनिष्पत्तिकाल एव भवति न तूत्तरकालं हेत्वन्तरेणाधीयत इति कृत्वा स्वाभाविकीति विकल्पद्वयम् । तत्र न तावदाद्यो विकल्पः, तथाहि—सा व्यतिरिक्ता वा भवेदव्यतिरिक्ता वा यद्वोभयानुभयस्वभावेति चत्वारः पक्षाः । तत्र न तावदाद्यः, सम्बन्धासिद्धेः पदार्थस्याकारकत्वप्रसङ्गाच्चेत्यादिना सर्वपदार्थानामव्यतिरिक्तैव शक्तिरिति बहुशः प्रतिपादितत्वात् । एतदेव सूचयन्नाह—इष्टेत्यादि । कार्यकरणसमर्थो हि स्वभावशक्तिस्तस्य च स्वभावस्य भावात्मताया अभावे सति स भावः कारको न स्यात् । ततश्चास्यावस्तुत्वप्रसङ्ग इति भावः ॥ २८१७ ॥ २८१८ ॥

अथाव्यतिरिक्तेति पक्षस्तदा स्वाभाविकी न स्यात्, अर्थस्य हेतुबलभावित्वेनानित्यत्वात्तदव्यतिरिक्ताया अपि शक्तेर्हेतुबलभावित्वेनानित्यताप्रसङ्गात् । अन्यथा हि भिन्नयोगक्षेमत्वादमेदो न स्यात् । एतदेवाह—सा चानित्येदृशीत्यादि ।

सा चानित्येदृशी शक्तिः स्वहेतुबलभाविनी ।

स्वाभाविकी प्रमाणानां युष्माभिः कथमिष्यते ॥ २८१९ ॥

किञ्च प्रमाणानां शक्त्यव्यतिरेकाच्छक्तिस्वरूपवन्नित्यत्वाहेतुत्वप्रसङ्ग इति दर्शयन्नाह—स्वाभाविक्यां हीत्यादि ।

स्वाभाविक्यां हि शक्तौ स्यान्नित्यता हेतुताऽथवा ।

प्रमाणानां च तादात्म्यान्नित्यताहेतुते ध्रुवम् ॥ २८२० ॥

ततश्च को दोष इत्याह—सदाभाव इत्यादि ।

सदाभावोऽथवाऽभावोऽहेतुत्वेऽप्यनपेक्षणात् ।

अतः कार्यं तदाद्यत्तं कादाचित्कं न युज्यते ॥ २८२१ ॥

इह्यते च प्रमाणानां स्वरूपं कार्यमेव च ।

कादाचित्कमनः शक्तिर्व्यक्ता स्वाभाविकी न वः ॥ २८२२ ॥

अहेतुत्वे सदाभावोऽभावो वा । नित्यत्वे तु सदाभावोऽनु(क्तोऽपि) सिद्ध एवेति नोक्तः । अपरमपि प्रसङ्गमाह—अत इत्यादि । तदायत्तमिति । प्रमाणायत्तम् । एतेन यथायोगं प्रत्यक्षानुमानविरोधौ प्रतिज्ञाया दर्शितौ । तथाहि प्रमाणानां स्वरूपं कादाचित्कं प्रत्यक्षत एव सिद्धम् । अनुमानतोऽपि कार्यक्रमतोऽनुमितम्, ततश्च तस्य नित्यत्वाभ्युपगमः स्फुटतरमेव प्रमाणाभ्यां बाध्यत इति ॥ २८२१ ॥ २८२२ ॥

प्रमाणानामित्यादिना परस्य यथोक्तप्रसङ्गद्वयसमर्थ(समाधा ?)नोपायमाशङ्कते ।

प्रमाणानां स्वरूपं चेद्व्यञ्जकैर्व्यक्तिमश्रुते ।

प्रत्ययान्तरसापेक्षं कार्यमारभते च तत् ॥ २८२३ ॥

यदा हि व्यञ्जकैः प्रमाणस्वरूपं व्यज्यते तदा तदुपलभ्यते नान्यदेति । तेन सत्यपि नित्यत्वे न सर्वदोषलब्धिप्रसङ्गः । नापि कार्यस्य सदा सद्भावप्रसङ्गः, कारणान्तरापेक्षस्य कार्यारम्भकत्वाभ्युपगमात्, न केवलमस्य । तेन कारणान्तरसन्निधानासन्निधानाभ्यां कार्यस्य कादाचित्कता भवतीति भावः ॥ २८२३ ॥

व्यक्तीत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

व्यक्तिहेत्वन्तरापेक्षे व्यस्ते नित्यस्य वस्तुनः ।

तस्मात्तद्रूपकार्याणां नित्यं स्यादुपलम्भनम् ॥ २८२४ ॥

व्यक्तिश्च हेत्वन्तरापेक्षा चेति व्यक्तिहेत्वन्तरापेक्षे । पूर्वं हि श्रुतिपरीक्षायां विस्तरेण व्यक्तिर्नित्यस्य निरस्ता । हेत्वन्तरापेक्षा चानुपकार्यस्यायुक्तेति प्रतिपादितम् । तद्रूपकार्याणामिति । तेषाम्—प्रमाणानाम । रूपकार्याणि—रूपं—स्वभावः । उभयपक्षस्तु विरोधाद्यथोक्तपक्षद्वयभाविदोषप्रसङ्गान्न युक्तः । नाप्यनुभयपक्षः, परस्परव्यवच्छेदरूपाणामेकनिषेधस्यापरविधिनान्तरीयकत्वान्न तदानीमेव विहितस्य निषेधो युक्तः, एकत्र विधिप्रतिषेधयोर्विरोधादिति भावः । स्फुटतरत्वाद्दूषणस्यैतन्नोक्तम् ॥ २८२४ ॥

इदानीमन्तिमं पक्षत्रयमभ्युपगम्य दूषणमाह—पृथक्त्वमित्यादि ।

पृथक्त्वमुभयात्मत्वं चाऽस्तु शक्तेस्तथाऽपि तत् ।

ज्ञानं नित्यं भवेदेव नित्यशक्त्या हि सङ्गतम् ॥ २८२५ ॥

पृथक्त्वं—व्यतिरेकपक्षः । उभयात्मकग्रहणमुपलक्षणम् । अनुभयात्मकपक्षाङ्गीकारोऽपि द्रष्टव्यः । यद्वा—तस्याप्युभयरूपप्रतिषेधस्वभावतयोभयात्मकत्वमस्यैव । अस्मिन्पक्षत्रयेऽपि नित्यया शक्त्या ज्ञानस्य सम्बन्धान्नित्यत्वं स्यात् ॥ २८२५ ॥

कथमित्याह—अन्यथा हीत्यादि ।

अन्यथा हि न नित्या स्यादेकरूपासमन्वयात् ।

कदाचित्मा हि सम्बद्धा तज्ज्ञानेन न चान्यदा ॥ २८२६ ॥

अन्यथा हि यदि शक्तिसम्बद्धं ज्ञानमनित्यं भवेत्तदा शक्तेर्नित्यत्वं न प्राप्नोति । कुतः ? । एकरूपासमन्वयात् । एकस्वभावानुगमाभावादित्यर्थः । तमेवैकरूपासमन्वयं दर्शयति—कदाचिदित्यादि । अनित्ये हि विज्ञाने सति शक्तेस्तज्ज्ञानसम्बन्धासम्बद्धस्वभावद्वयं स्यात्, न चैकस्य परस्परविरुद्धस्वभावद्वयसम्भवो युक्तः, एकत्वहानिप्रसङ्गात् । भेदव्यवहारोच्छेदापत्तेश्च ॥ २८२६ ॥

द्वितीयं विकल्पमधिकृत्याह—अथेत्यादि ।

अथ शक्तिः स्वहेतुभ्यः प्रमाणानां प्रजायते ।

जातानां तु स्वहेतुभ्यो नान्यैराधीयते पुनः ॥ २८२७ ॥

तदत्रेत्यादिना सिद्धसाध्यतां पक्षदोषमाह ।

तदत्र न विवादो नः को ह्यनंशस्य वस्तुनः ।

स्वहेतोरुपजातस्य शक्तिं पश्चात्प्रकल्पयेत् ॥ २८२८ ॥

यन्नामोत्तरकालं हि रूपमाधीयते परैः ।

तद्भावान्तरमेवेति न तस्यात्मोपदिश्यते ॥ २८२९ ॥

तथाहि स्थिरास्थिरस्वभावभेदेन द्विप्रकारम्यापि पदार्थस्य निरंशत्वात्सर्वात्मना परिनिष्पत्तेर्नोत्तरकालं प्रत्ययान्तरेणात्मभूता शक्तिराधातुं पार्यते, आधानेवाऽर्थान्तरकरणमेव स्यात्, न तु स्वभावभूतशक्त्याधानम् । भावस्वभावानभ्युपगमे वा शक्तेरकारकत्वप्रसङ्ग इत्युक्तम् ॥ २८२८ ॥ २८२९ ॥

स्यादेतत्—माभूदनंशस्य वस्तुन उत्तरकालं शक्त्याधानम्, सांशस्य कस्मान् भवतीत्याह—विरुद्धधर्मसङ्गो हीत्यादि ।

विरुद्धधर्मसङ्गो हि वस्तूनां भिन्नतोदिता ।

तन्निष्पत्तावनिष्पत्तेः शक्तावपि स विद्यते ॥ २८३० ॥

स विद्यत इति । विरुद्धधर्मप्रसङ्गः ॥ २८३० ॥

अस्थिरे तु भावे विशेषेण दूषणमाह—साधितेत्यादि ।

साधितक्षणभङ्गाश्च सर्वेऽर्था इति तेषु न ।

प्रत्ययान्तरमाधातुं शक्तं किञ्चन शक्तिमत् ॥ २८३१ ॥

नहि तेषामवस्थानं परस्तादस्ति येन ते ।

प्रत्ययान्तरतः शक्तिं लभेरन्कुत्रचित्फले ॥ २८३२ ॥

कुत्रचित्फल इति । अर्थनिश्चयादौ । शेषं सुबोधम् ॥ २८३१ ॥ २८३२ ॥

स्यादेतत्—यदि भवतां न विवादः कथं तर्हि परतःप्रामाण्यमभ्युपगतमित्यत आह—एतावच्चित्यादि ।

एतावत्तु वदन्त्यत्र सुधियः सौगता इमे ।

ज्ञाने क्वचित्स्थिताऽप्येषा न बोद्धुं शक्यते स्वतः ॥ २८३३ ॥

बोद्धुमिति । निश्चेतुम् । स्वत इति । विज्ञानस्वरूपादनुभवमात्रादनपेक्षितोत्तर-  
कालभाविकार्यसंवादात् ॥ २८३३ ॥

स्यादेतत्—विज्ञानान्यतिरेकाच्छक्तेर्विज्ञानग्रहणे साऽपि गृहीतैव । तत्कथं बोद्धुं  
न शक्यत इत्याह—यथाऽवस्थितेत्यादि ।

यथाऽवस्थितविज्ञेयवस्तुबोधाप्तिशक्तताम् ।

को नामानुभवात्मत्वाग्निश्चेतुं केवलात्प्रभुः ॥ २८३४ ॥

बोधश्चाप्तिश्च बोधाप्ती, यथावस्थितस्य विज्ञेयस्य वस्तुनो ये बोधाप्ती, तत्र—त-  
द्विषये, शक्तेति विग्रहः । केवलादिति । सम्बन्धादिकारणगुणपरिज्ञानानपे-  
क्षात् ॥ २८३४ ॥

कस्मान्न प्रभुरित्याह—अप्रमाणे इत्यादि ।

अप्रमाणेऽपि येनैतत्केशपाशादिदर्शने ।

विद्यतेऽनुभवात्मत्वं विस्पष्टाकारभासिनि ॥ २८३५ ॥

केशपाशादिदर्शन इति । केशोङ्कादिदर्शने । अनेनैतदाह—यद्यप्यनुभूता  
शक्तिस्तथाप्यप्रमाणसारूप्याद्भ्रान्तेर्निश्चेतुं न शक्यते विषादिशक्तिवत् । न षडनुभव  
एव केवलो निश्चयहेतुरन्यस्याप्यभ्यासादेरपेक्षणात् । यत्र ब्रह्मो भ्रान्तिनिमित्तेन न  
गुणान्तरमारोप्यते तत्रैव निश्चयः ॥ २८३५ ॥

कुतस्तर्हि सा निश्चितव्येत्याह—तस्मादित्यादि ।

तस्मादर्थक्रियाज्ञानमन्यद्वा समपेक्ष्यते ।

निश्चयायैव न त्वस्या आधानाय विषादिवत् ॥ २८३६ ॥

अन्यद्वेति । हेतुशुद्धिज्ञानम् । न त्वस्या आधानायेति । अन्यदपेक्षत इति  
सम्बन्धः । अस्या इति । शक्तेः । निश्चयस्य पुरुषाधारत्वात्तदुत्पत्तये युक्ता कारणा-

न्तरापेक्षा, नत्वाधानाय, तस्य शक्त्याधारत्वात्, शक्तेश्च सहभावनिष्पत्तौ निष्पन्नत्वादिति भावः ॥ २८३६ ॥

यथाहीत्यादिना विषादिवदिति दृष्टान्तं व्याचष्टे ।

यथाहि विषमद्यादेस्तदन्यसमतेक्षणात् ।

फलानन्तरताभावाच्चैतदात्माविनिश्चये(यः ?) ॥ २८३७ ॥

मूर्च्छास्वेदप्रलापादितत्फलोत्पत्तिनिश्चये ।

तादात्म्यं गम्यतेऽप्येवं ज्ञाने तच्छक्तिनिश्चयः ॥ २८३८ ॥

तदन्यसमतेक्षणादिति । तस्माद्विषादेभ्यन्नागरपानकादि, तेन समता—सारूप्यम्, तस्या ईक्षणमिति विग्रहः । फलानन्तरताभावादिति । फलं मूर्च्छादि, तस्यानन्तरताया अभावादिति विग्रहः । अनन्तरं फलाभावादिति यावत् । एतदात्माविनिश्चय इति । विषादाद्याऽत्माविनिश्चये (यः ?) । तादात्म्यमिति । विषादस्वभावत्वम् । तच्छक्तिनिश्चय इति । यथावस्थितज्ञेयवस्तुबोधासिनिश्चयः ॥ २८३७ ॥ २८३८ ॥

स्ववचनविरोधं प्रतिज्ञायाः प्रतिपादयन्नाह—किञ्चेत्यादि ।

किञ्चाविवादमेवेदं प्रामाण्यं शक्तिलक्षणम् ।

प्रमाणान्तरनिश्चयमित्येवं हि त्वयोदितम् ॥ २८३९ ॥

शक्तयः सर्वभावानां कार्यार्थापत्तिमाधनाः ।

इत्यर्थापत्तितः सिद्धं न सिद्धं परतः कथम् ॥ २८४० ॥

न सिद्धं परतः कथमिति । सिद्धमेव । अर्थापत्तेः प्रमाणान्तरत्वादिति भावः ॥ २८३९ ॥ २८४० ॥

यदुक्तम्—तदेव हि विनाश्येतेति, तस्यनैकान्तिकत्वं प्रतिपादयन्नाह—निष्पन्नेत्यादि ।

निष्पन्नानंशरूपस्य प्रामाण्यस्य स्वहेतुतः ।

तदेवं न विनाशासिनिश्चयेऽन्यव्यपेक्षणात् ॥ २८४१ ॥

एतदेव स्पष्टयन्नाह—न तत्स्वभावेत्यादि ।

न तत्स्वभावनिष्पत्तये प्रमान्तरमपेक्षयते ।

तद्रूपनिश्चयार्थं तु प्रतिपत्तावपेक्षयते ॥ २८४२ ॥



स्यादेतत्—यदि भवतां ज्ञानापेक्षया परतःप्रामाण्यं साध्यते, तदाऽस्माकमपि सिद्धसाध्यता । तथाहि—ज्ञानमप्यर्थापत्तितस्तावत्सिद्धमिष्यते, किमङ्ग पुनः तच्छक्तिरूपं प्रामाण्यम् । अर्थनिश्चयलक्षणे स्वकार्ये तु कर्त्तव्ये ज्ञानं नापेक्षत इति स्वतस्तदुच्यत इति । तदेतदसभ्यक् । प्रामाण्यनिश्चयमन्तरेण स्वार्थनिश्चयस्यैवासम्भवात् । संशयादिविषयीकृतस्य च कथं कार्ये निरपेक्षता, प्रमाणान्तरग्रहणापेक्षायां वा कथं स्वपक्षे अनवस्था न स्यादिति यत्किञ्चिदेतत् ॥ २८४२ ॥

किञ्चेत्यादिना हेतोस्तद्भावनियतत्वादित्येतस्यानैकान्तिकतामुद्भावयति ।

किञ्चाप्रामाण्यमप्येवं स्वत एव प्रसज्यते ।

नहि स्वतोऽस्तस्तस्य कुतश्चिदपि सम्भवः ॥ २८४३ ॥

अनपेक्षत्वमेवैकमप्रामाण्यनिबन्धनम् ।

इत्याद्यं वाऽप्यनिःशेषमभिधातुं हि शक्यते ॥ २८४४ ॥

विसंवादनसामर्थ्यं निश्चयं तु यथाऽन्यतः ।

तथा संवादसामर्थ्यं सर्वथाऽतो द्वयं समम् ॥ २८४५ ॥

ततः कोऽतिशयो दृष्टः प्रामाण्यस्य विपर्ययात् ।

येन स्वतस्तदेवेष्टं परतस्त्वप्रमाणता ॥ २८४६ ॥

तथा संवादसामर्थ्यम्—निश्चयमन्यत इति वर्त्तते । समं द्वयमिति । प्रमाणमप्रमाणं च । विपर्ययादिति । अप्रामाण्यात् । योऽपि मन्यते । न नित्यत्वाच्छक्तीनां स्वाभाविकत्वं नापि स्वहेतुभ्य एवोत्पत्तेरुत्तरकालं कारणान्तरानपेक्षणात् । किं तर्हि ? । स्वभावत एव भावानां प्रतिनियतरूपाः शक्तयः समुद्भवन्तीति स्वाभाविकत्वमासाम् । तथाहि—यदेव स्वात्मनि रूपमस्ति कारणानां तदेव तैः कार्ये समाधीयते, यथा कापालैरुपजन्यमाने घटे रूपादयः स्वगुणद्वारेणैव प्रारभ्यन्ते, उदकाद्याहरणशक्तिस्तु तैरात्मन्यविद्यमानत्वान्नाधीयते घटे, स्वत एव तु सा तस्य प्रादुर्भवति, तथा ज्ञानेऽपि तत्कारणैरिन्द्रियादिभिरर्थपरिच्छेदशक्तिरात्मन्यविद्यमानत्वान्नाधीयते, स्वत एव सा तस्य भवतीति । अतः स्वाभाविकी शक्तिरिति तस्याप्येतत्प्रलापमात्रम् । अनेन न्यायेनाप्रामाण्यस्यापि स्वत एव प्रसज्जात् । तथाहि—तदपि विपरीतार्थपरिच्छेदादिशक्तिलक्षणम्, न च नयनादीनां तथाविधशक्तियोगोऽस्तीति । किञ्च—यद्यात्मन्यविद्यमानं रूपं कारणैर्नाधीयते कार्ये, तदा कथमिन्द्रियादयो ज्ञाने(न ?) रूपतामात्मन्यसतीमादधति विज्ञाने । त(य ?)थाऽविद्यमानापि

सा तैराधीयते, (तथा) अर्थपरिच्छेदशक्तिं किं नादधीरन् । नहि तदाधाने तेषां कश्चित्प्रतिरोद्धा । किञ्च—यदि तावदव्यतिरेकिण्यः शक्तयो भावादभ्युपगम्यन्ते, तदा भावस्वरूपवत्तासामपि हेतुप्रतिबद्धैरात्मस्थितिरिति कुतः स्वाभाविकत्वमासाम् । अथ व्यतिरेकिण्यस्तदा स्वयमेव भावान्न स्वाश्रयैस्तासां सम्बन्धः सिद्धयति, तेषां तदनुपकारकत्वात् । न चानुपकारक आश्रयो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । किञ्चानिमित्ताः स्वातन्त्र्येणैता भवन्त्यो न देशकालनियममपेक्षेरन् । तथाहि—यस्य यत्किञ्चित्क-चिदायत्तमनायत्तं वा भूत्वोपलीयते । न वा यत्पुनरनायत्तं स्वातन्त्र्येण प्रवृत्तम्, तत्किमिति कदाचित्कचिद्विरमेत । ततश्च प्रतिनियतशक्तियोगिता भावानां न स्यात् । अन्यथा सर्वस्य सर्वत्रोपयोगः स्यादिति । अन्ये तु मन्यन्ते—तत्कार्य-दर्शनमाश्रित्येदमुच्यते—स्वतः सर्वप्रमाणानामित्यादि । यतः सर्व एव भावाः सन्त एव कारणैः क्रियन्ते कार्योत्पादनियमात् । न ह्यसन्तो व्योमकुसुमादयः क्वचिदपि शक्यन्ते कर्तुम्, सिकतासु वा तैलम् । असत् उत्पत्तौ सर्वस्यासत्त्वेऽतिशयाभावात् सर्वदा सर्वत्र चोत्पत्तिः स्यादिति । तदेतदयुक्तम् । कारणवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । अस्त्वावद्भवन्मते न किञ्चित्क्रियते । सतोऽपि सर्वनिराशंसत्वान्न किञ्चित्कर्तव्यमस्तीति किं हि कुर्वस्तस्य तत्कारकं भवेत् । अतः कार्यकारणत्वाभावप्रसङ्गः । अभिव्यक्तिः सतः क्रियत इति चेन्न । तस्या अपि सदसत्त्वेन करणविरोधात् । यतस्तत्रापीदं विकल्पद्वयभवतरति—किं सा सती क्रियते, आहोस्त्रिदसतीति । प्रथमे पक्षेऽतिशयाभावात्करणानुपपत्तिरित्युक्तम् । तत्राप्यभिव्यक्त्याश्रयणेऽनवस्थाप्रसङ्गः । नापि द्वितीयः पक्षोऽसत्तः क्रियानभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा भावस्याप्यसतः करणप्रसङ्गात् । किञ्चार्थान्तरभूता वा भावादभिव्यक्तिः क्रियेत अनर्थान्तरभूता वा । यद्यर्थान्तरभूता क्रियेत तदा भावस्य न किञ्चित्कृतं स्यात् । न ह्यन्यस्य करणेऽन्यत्कृतं नाम, अतिप्रसङ्गात् । तत्सम्बन्धिन्यभिव्यक्तिः क्रियत इति चेन्न । अनुपकार्यतया तत्सम्बन्धित्वासिद्धेः । उपकारे वाऽभ्युपगम्यमाने तस्याप्यर्थान्तरत्वेऽनवस्थाप्रसङ्गात्सम्बन्धासिद्धिः । अनर्थान्तरत्वेऽपि कारणानां वैयर्थ्यप्रसङ्गः । भावादेवाश्रयभूतादुपकारस्वभावाया अभिव्यक्तेरुत्पादान्नित्याभिव्यक्तिप्रसङ्गः, स्वभावस्याभिव्यक्तिकारणस्य सर्वदा विद्यमानत्वात् । नाप्यनुपकार्यस्य परापेक्षा युक्तेति प्रतिपादितं बहुधा । अथानर्थान्तरभूताऽभिव्यक्तिः क्रियत इति पक्षः, सोऽप्ययुक्तोऽतिशयाभावात् । तथाह्यनर्थान्तरभूता क्रियत इति भावस्वभावः क्रियत इत्युक्तं भवति । तस्य च सत्त्वेन सर्वनिराशंसत्वात्करणम-

युक्तमित्येतदेव चिन्त्यते । किञ्च — अभिव्यक्तिवद्भावस्याप्यसतः करणं स्यादव्यतिरेकात् । भावस्वभाववद्भावाऽभिव्यक्तेरपि सत्या एव करणप्रसङ्गः, न चैतदपि युक्तम्, अतिशयाभावात् । अनवस्थाप्रसङ्गादित्युक्तम् । सदर्थविषये च कारणव्यापार इष्यमाणे कारणानां कार्यक्रियानुपरमप्रसङ्गः । किं हि तदोपलभ्य कारणानि निवर्त्तेरन् । कार्यसत्तामिति चेन्न । भवन्मत्या तस्याः प्रागपि भावात् । तस्मादसदेवोत्पद्यते, यस्य कारणमस्ति । न व्योमकुसुमादि । तदुत्पादनसमर्थकारणाभावादिति । अतः कारणशक्तिप्रतिनियमात्कार्यकारणभावनियमो भविष्यति । नहि सर्वो भावः सर्वोत्पादनसमर्थोऽङ्गीक्रियते । अनादिस्वहेतुपरम्परया सर्वभावानां शक्तेर्नियमितत्वात् । यदि चासत्प्रामाण्यमन्येन कर्तुं न शक्यत इति स्वतस्तदुच्यते, अप्रामाण्यमपि तर्क्षनेनैव न्यायेन स्वत एव प्राप्नोतीति यत्किञ्चिदेतत् । योऽपि मन्यते प्रामाण्यं नाम विज्ञानस्यार्थपरिच्छेदोत्पादिका शक्तिः, शक्तिश्च क्षणिकविज्ञानाश्रितत्वात्स्वतोऽसती न शक्यते कर्तुम् । कालत्रयेऽपि तस्याः क्रियानुपपत्तेः । तथाहि न तावत्प्राग्विज्ञानोत्पत्तेः क्रियते, आश्रितत्वात् । न ह्याश्रितस्याश्रयाभावे करणं युक्तम्, यथा कुड्याभावे चित्रस्य, अनाश्रितत्वप्रसङ्गात् । अत एव सहकरणमप्ययुक्तमाश्रितत्वात् । नहि कुड्यालेख्ययोराश्रयाश्रितयोर्युगपदारम्भः संभवति । नाप्युत्पन्नस्य सतो विज्ञानस्य पश्चात्क्रियते क्षणिकत्वात् । तावत्कालं स्थितेरभावात् । “अतः सर्वप्रमाणानां स्वतःप्रामाण्यमुच्यते” इति तदेतदसम्यक्—तथाहि—यत्चावदुक्तमर्थपरिच्छेदोत्पादिकाशक्तिः प्रामाण्यमिति तदसम्बद्धम् । अर्थपरिच्छेदस्य ज्ञानपर्यायत्वात् । न च तदेव ज्ञानमाश्रिता सती शक्तिस्तस्यैवोत्पादिका युज्यते, अनाश्रितत्वप्रसङ्गात्समानकालं च कार्यकारणभावादुपपत्तेः । यच्चोक्तमाश्रितत्वात्सहप्राक् न क्रियत इति । तदप्ययुक्तम्, अव्यतिरेकादाश्रितत्वासिद्धेः । भावस्वभाव एव हि विशिष्टार्थक्रियाकारी तद्भावमात्रजिज्ञासायां शक्तिरिति व्यपदिश्यते । नार्थान्तरम् । अर्थान्तरत्वे भावस्याकारकत्वप्रसङ्गः सम्बन्धासिद्धिश्चेति निर्लोडितमेतद्बहुधा । तस्मात्स्वभावभूता विज्ञानस्य शक्तिरभिन्नयोगक्षेमत्वाद्विज्ञानस्वभाववत्प्राग्विज्ञानोत्पत्तेरसत्येव क्रियत इत्यविरुद्धम् । सहैव च विज्ञानेनोत्पद्यत इत्यपि युक्तमेव । स्वभावभूतस्य धर्मस्य भावेन सहैकयोगक्षेमत्वात् । भवतु नाम शक्तेर्व्यतिरेकः पदार्थात्, तथाऽपि सदसत्ताराश्रितत्वानुपपत्तेराश्रितत्वमसिद्धम् । तथाहि—सत्तावन्नाश्रयते तस्य सर्वात्मना निष्पत्तेर्निरपेक्षत्वात् । नापि सत आश्रयो युक्तस्तस्याकिञ्चित्करत्वात् ।

यथा विन्ध्यो हिमवतः । स्थितिस्तेन क्रियत इति चेत् । न । स्थितेः स्थातुरव्यतिरेकात् । स्थातुरेव हि स्वभावस्तथा मेदान्तरप्रतिक्षेपेणोच्यते । न च तेनाश्रयेणावस्थानुरात्मा क्रियत इत्यकिञ्चित्कर एव । व्यतिरेकेऽपि स्थितेः स्थातुः स्थापकोऽकिञ्चित्कर एव । अर्थान्तरभूतायाः स्थितेः करणात् । न चान्यस्य करणेनान्यस्य किञ्चित्कृतमित्युभयथापि स्थापकस्याकिञ्चित्करत्वम् । तत्सम्बन्धिनीं स्थितिं करोतीति चेत् । न, स्थाप्यस्थापकयोरिव स्थितिमतः स्थित्या सह सम्बन्धासिद्धेः, अनवस्थाप्रसङ्गश्चेति निर्लोडितप्रायमेतत् । किञ्च—यदि पदार्थस्य स्थापिका स्थितिरर्थान्तरभूताऽङ्गीक्रियते, तदा न कस्यचित्पदार्थस्य विनाशः प्राप्नोति । स्थापिकायाः स्थितेर्विद्यमानत्वात् । नापि विनाशहेतुवशात्सत्यामपि स्थितौ विनाशो भविष्यतीति शक्यं वक्तुम् । तस्याप्यकिञ्चित्करत्वादयुक्तं विनाशकत्वम् । तथाहि तत्राप्ययं विकल्पोऽवतरत्येव—किं भावादर्थान्तरभूतं विनाशं नाशहेतुः करोत्याहोस्विद्भावमेव । न तावद्भावमेव करोति, तस्य निष्पन्नत्वात् । अन्यस्य च करणे भावस्य न किञ्चित्कृतमिति तदवस्थत्वात् । भावस्य विनाशाभावादकिञ्चित्करो विनाशहेतुरिति चर्चितमेतत्स्थिरभावपरीक्षायां विस्तरेण । किञ्च—प्रकृत्या भावोऽस्थिरस्वभावो वा स्यात्, स्थिरस्वभावो वा । तत्र यदि प्रकृत्यैवास्थिरात्मा भावः स्वहेतोरूपन्नः, तदा तेन स्वभावनिष्पत्तेरूर्ध्वं स्वयं न स्थातव्यमेवेति तस्याकिञ्चित्करौ द्वावपि स्थितिनाशहेतू । अथ प्रकृत्या स्थिरात्मा भावः, तथापि तस्य स्वभावान्यथान्वासम्भवान्न कश्चिद्विनाशकः, स्वयमेव स्थावरत्वान्नापि कश्चित्स्थापकः, इत्युभयथा स्थितिनाशहेतू अकिञ्चित्करौ । नाप्यसद्वाश्रयत इति पक्षः । तस्य सर्वस्वभावरहितत्वेनाधेयत्वान्यापारयोरसम्भवाच्छशविषाणवदित्यसिद्धमाश्रितत्वं शक्तेः । सिद्धौ वाऽनैकान्तिकत्वमाश्रितानामपि रूपादीनां घटे सहोत्पत्तिदर्शनात् । अप्रामाण्येऽपि प्रसङ्गाच्च । तथाह्यप्रामाण्यमपि विपरीतार्थपरिच्छेदोत्पादिका शक्तिः । शक्तेश्च विज्ञानाश्रितायाः कालत्रयेऽप्यकरणात्प्रामाण्यवदप्रामाण्यात्मिका शक्तिः स्वत एव प्रसज्येत । किञ्च—यदि कालत्रयेऽपि ज्ञानस्य शक्तिर्न प्रादुर्भवति, तदा सर्वसामर्थ्यशून्यं विज्ञानं प्राप्नोति । यस्य हि यो धर्मः कालत्रयेऽपि न संजायते, स कथं तस्य सम्भवेत्, यथाऽऽकाशस्य मूर्त्तत्वम् । कुतो वा शक्तिभिरिदमत्यद्भुतमिन्द्रजालं शिक्षितम्, येनैता विज्ञानस्य कालत्रयेऽप्यसमासादितसम्भवा अपि सत्यस्तेन सह सङ्गतिमनुभवन्तीति । किमप्येतन्महद्भूतं नित्यत्वादानुभवन्तीति चेत् । न । सर्वस्य शक्तियोगिताप्रसङ्गान् । नियामकाभावात् । नष्टनायतस्य प्रतिनिधतपदार्थ-

योगितायां किञ्चित्कारणं नियामकं पश्यामो येनैता विज्ञानस्य भवेयुर्नान्यस्येति । ततश्च प्रत्यासन्ननिबन्धनाभावात्सर्वस्यैवैताः प्राप्नुवन्तीत्युक्तमेतत् । न चापि तासामकिञ्चित्करः कश्चिदाश्रयो युक्तो नित्यत्वेन कस्यचित्स्वभावविशेषस्य कर्तव्यस्याभावादित्यलं बहुना ॥ २८४३ ॥ २८४४ ॥ २८४५ ॥ २८४६ ॥

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रतिज्ञार्थं विकल्पयन्नाह— स्वत इत्यादि ।

**स्वतस्त्वस्य प्रमाणानां प्रामाण्यस्योपवर्णनात् ।**

**स्वकार्ये वृत्तिर्जानानामथाप्यभिमता स्वतः ॥ २८४७ ॥**

एतदुक्तं भवति । अथ—स्वतःप्रामाण्यमित्यनेनायमर्थोऽभिप्रेतः, जातानामुत्तरकालं स्वत एव कारणान्तरानपेक्षाणां (स्वकार्ये) वृत्तिः—हेतुभाव इति यावत् । तेन यथोक्तदोषानवमर इत्यभिप्रायः परस्य । तत्र प्रमाणानां स्वकार्ये स्वगतप्रामाण्यनिश्चयोऽर्थनिश्चयो वा । एतस्मिन्स्वकार्ये कर्तव्ये न हेतुमपेक्षन्ते ॥ २८४७ ॥

कुतस्तर्हेषां व्यपेक्षेत्याह—आत्मलाभे हीत्यादि ।

**आत्मलाभे हि भावानां कारणापेक्षितेष्यते ।**

**लब्धात्मानः स्वकार्येषु वर्तन्ते स्वयमेव तु ॥ २८४८ ॥**

सामान्येन भावानामात्मलाभं प्रति कारणान्तरापेक्षितां प्रतिपाद्य ज्ञानेऽपि योजयन्नाह—उत्पादमात्र इत्यादि ।

**उत्पादमात्र एवातो व्यपेक्षास्ति स्वहेतुषु ।**

**ज्ञानानां स्वगुणेष्वेषा न तु निश्चयजन्मनि ॥ २८४९ ॥**

स्वगुणेष्विति । निश्चयजन्मापेक्षयाऽऽधारसप्तमी । एतदुक्तं भवति—ज्ञानानां ये स्वगता गुणा अविपरीतबोधात्मकत्वं विशुद्धकारणजनितत्वमित्येवमादयस्तेषु निश्चयोत्पादे कर्तव्ये न त्वेषां हेतुषु व्यपेक्षाऽस्तीति ॥ २८४९ ॥

यद्येवं कथं तर्हि तेषां तत्र हेतुभावो भवतीत्याह—जनने हीत्यादि ।

**जनने हि स्वतन्त्राणां प्रामाण्यार्थविनिश्चितेः ।**

**स्वहेतुनिरपेक्षाणां तेषां वृत्तिर्घटादिषु ॥ २८५० ॥**

प्रामाण्यं चार्थश्च—प्रमेय इति प्रामाण्यार्थो अनयोर्विनिश्चितिः । तस्या जनन इति सम्बन्धः । अर्थनिश्चितिरालोचनापेक्षयोच्यते । अन्येषां स्वयमेव निश्चयात्मकत्वात् । वृत्तिरिति । हेतुभाव इत्यर्थः ॥ २८५० ॥

मृत्पिण्ड इत्यादिना घटादिवदिति दृष्टान्तं व्याचष्टे ।

मृत्पिण्डदण्डचक्रादि घटो जन्मन्यपेक्षते ।

उदकाहरणे त्वस्य तदपेक्षा न विद्यते ॥ २८५१ ॥

एवं स्वतःप्रमाणत्वमन्ते चावश्यमेव तत् ।

पराधीने प्रमाणत्वे ह्यनवस्था प्रसज्यते ॥ २८५२ ॥

एवं प्रतिज्ञार्थाविरोधं समर्थं हेतोस्तद्वावनियतत्वादित्यस्य स्वाप्तिं प्रसाधय-  
न्नाह—अन्ते चावश्यमेव तदित्यादि । अन्त इति । सर्वपश्चिमे ज्ञान इत्यर्थः ।  
तदिति । प्रामाण्यम् । कस्मादवश्यमन्तेऽङ्गीकर्षणमित्याह—पराधीन इत्यादि  
॥ २८५१ ॥ २८५२ ॥

एतदेव दर्शयति—मौलिके चेदित्यादि ।

मौलिके चेत्प्रमाणत्वे प्रमाणान्तरसाध्यता ।

तत्र तत्रैवमिच्छन्तो न व्यवस्थां लभेमहि ॥ २८५३ ॥

यथैव प्रथमं ज्ञानं तत्संवादमपेक्षते ।

संवादेनापि संवादः पुनर्मृग्यस्तथैव हि ॥ २८५४ ॥

मूलम्—प्रथमं ज्ञानम्, तत्र भवं मौलिकम् । तस्ममवायीति यावत् । तथाहि  
परतःप्रामाण्यं कदाचिदर्थक्रियासंवादज्ञानाद्वा भवेत्, कारणगुणपरिज्ञानाद्वा, तत्र  
न तावदाद्यः पक्ष इति दर्शयन्नाह—यथैवेत्यादि ॥ २८५३ ॥ २८५४ ॥

अथापि स्यादर्थक्रियासंवादिज्ञानम्य स्वत एव प्रामाण्यमिष्टं तेनानवस्था न भवि-  
ष्यतीत्याह—कस्यचिदित्यादि ।

कस्यचित्तु यदीष्येत स्वत एव प्रमाणता ।

प्रथमस्य तथाभावे प्रद्वेषः केन हेतुना ॥ २८५५ ॥

द्वितीयेऽपि पक्षेऽनवस्थादोषं प्रतिपादयन्नाह—एवं यदि गुणाधीनेत्यादि ।

एवं यदि गुणाधीना प्रत्यक्षादिप्रमाणता ।

गुणाश्च न प्रमाणेन विना सन्ति कदाचन ॥ २८५६ ॥

ततो गुणपरिच्छेदिप्रमाणान्तरमिच्छतः ।

तस्याप्यन्यपरिच्छिन्नगुणायत्ता प्रमाणता ॥ २८५७ ॥

गुणाधीनेति । कारणगुणपरिज्ञानायत्ता । प्रमाणतेति । प्रमाणतानिश्चयः । न  
सन्तीति । मद्भवद्वारा(रः)योग्या न सन्तीत्यर्थः । तस्यापीति । गुणपरिच्छेदिनः

प्रमाणस्य । अन्यपरिच्छन्नगुणायत्तेति । अन्येन प्रमाणेन परिच्छिन्नो यो गुणस्त-  
न्निश्चयायत्तं प्रामाण्यमित्यर्थः ॥ २८५६ ॥ २८५७ ॥

अत्र दृष्टान्तमाह—यथाऽऽद्य इति ।

यथाऽऽद्ये च तथाऽन्यत्रेत्यनवस्थैव पूर्ववत् ।

तत्र तत्रैवमिच्छन्तो न व्यवस्थां लभेमहि ॥ २८५८ ॥

गुणज्ञानं गुणायत्तप्रामाण्यमथ नेह्यते ।

आद्यमप्यर्थविज्ञानं नापेक्षेत गुणप्रमाम् ॥ २८५९ ॥

अतो दूरमपि ध्यात्वा प्रामाण्यं यत्स्वतः क्वचित् ।

अवश्याभ्युपगतन्तव्यं तत्रैवादौ वरं स्थितम् ॥ २८६० ॥

यथा प्रथमे ज्ञाने प्रमाणान्तरपरिच्छिन्नगुणायत्ता प्रमाणता तथाऽन्यत्रापीत्यर्थः ।  
पूर्ववदिति । संवादतः प्रामाण्यनिश्चयवत् । तत्र तत्रेति । पूर्वपूर्वस्मिन्गुणज्ञाने ।  
अथ गुणज्ञानस्य स्वत एव प्रामाण्यमनवस्थाभयादङ्गीक्रियते, तदाऽर्थविज्ञानेऽपि कः  
प्रद्वेषः, येन तस्य परतःप्रामाण्यमिष्यते न तु स्वत इति नहि किञ्चित्कारणमुत्प-  
श्यामः । तस्मात्तीरादर्शने च शकुनिना सुदूरमपि गत्वा तत्रैव पुनरागन्तव्यमित्य-  
लमप्रतिष्ठादि(छित ?)कुप्रतिपत्त्या । एतदेव दर्शयति—गुणज्ञानमित्यादि । गुणा-  
यत्तम्—गुणनिश्चयायत्तं प्रामाण्यं यस्य तत्तथोक्तम् ॥ २८५८ ॥ २८५९ ॥ २८६० ॥

स्यादेतत्संवादगुणज्ञानयोर्मूलज्ञानाद्विशेषोऽस्ति, तेन तयोः स्वत एव प्रामाण्यं  
नाद्यस्येत्यत आह—संवादेत्यादि ।

संवादगुणविज्ञाने केन वाऽभ्यधिके मते ।

आद्यस्य तदधीनत्वं यद्दूलेन भविष्यति ॥ २८६१ ॥

तस्मात्स्वतःप्रमाणत्वं सर्वत्रौत्सर्गिकं स्थितम् ।

बाधकारणदुष्टत्वज्ञानाभ्यां तदपोह्यते ॥ २८६२ ॥

परायत्तेऽपि चैतस्मिन्नानवस्था प्रसज्यते ।

प्रामणाधीनमेतद्धि स्वतस्तच्च प्रतिष्ठितम् ॥ २८६३ ॥

ननु यदि विज्ञानं स्वतःप्रमाणमेवं सति सर्वज्ञानप्रामाण्यप्रसङ्ग इत्यत आह—  
तस्मादित्यादि । उत्सर्गः—सामान्येन विधानम्, तत्र भवमौत्सर्गिकम् । बाधाः—  
अर्थान्यथात्वावधारणं कारणदुष्टत्वज्ञानं चेति बाधकारणदुष्टत्वज्ञाने । ननु च  
(तथा च ?) प्रामाण्यमौत्सर्गिकं स्थितं सत्कथम(त्कचिद ?)पोह्यते (ननु च) यद्यप्रामाण्यं

बाधकारणदुष्टत्वज्ञानाभ्यां प्रतिपाद्येन, तच्च ताभ्यां प्रतिपाद्यमानं परतो भवेत्, तथेष्यत एवेति चेदेवं सति प्रामाण्यवदत्राप्यनवस्था भवेदित्यत आह—परायत्त इत्यादि । भवेदनवस्था, यद्यप्रामाण्यमप्रमाणतो भवेत्, यावताप्रमाणाद्विजातीयप्रामाण्यमिष्यते । तच्च स्वत एव प्रतिष्ठितमिति कुतोऽनवस्था ॥ २८६१ ॥ ॥ २८६२ ॥ २८६३ ॥

एतदेव दर्शयति—प्रमाणं हीत्यादि ।

प्रमाणं हि प्रमाणेन यथा नान्येन साध्यते ।

न सिध्यत्यप्रमाणत्वमप्रमाणात्तथैव हि ॥ २८६४ ॥

तुल्यजाताश्रयत्वे हि प्रतिष्ठा नोपपद्यते ।

विजातेस्त्वन्यहेतुत्वाद्बहुमूलप्रतिष्ठिता ॥ २८६५ ॥

विजातेरिति । अप्रमाणस्य । अस्य च दृढमूलप्रतिष्ठितेत्यनेन सम्बन्धः । अन्यहेतुत्वादिति हेतुनिर्देशः । अन्यो हेतुः प्रमाणलक्षणो यस्येति विग्रहः । दृढमूलप्रतिष्ठितेऽति । दृढा-अनवस्थादिदोषैरकम्प्या मूलप्रतिष्ठा यस्य स तथा, तद्भावस्तत्त्वम् ॥ २८६४ ॥ २८६५ ॥

स्यादेतद्यद्यनपेक्ष्यप्रामाण्यो बाधकः प्रत्ययः, तथाप्यबाध्यमानतया प्रतीत एवान्यस्याप्रामाण्यमाधातुं समर्थो नान्यथेत्यत आह—बाधकप्रत्ययस्तावदित्यादि ।

बाधकप्रत्ययस्तावदर्थान्यत्वावधारणम् ।

सोऽनपेक्षप्रमाणत्वात्पूर्वज्ञानमपोहते ॥ २८६६ ॥

अपोहत इति । प्रतिक्षिपति (अ) प्रमाणत्वेन निरस्यतीत्यर्थः ॥ २८६६ ॥

स्यादेतद्बाधकेऽपि प्रत्यये प्रथमज्ञानस्यैव बाधकानन्तरं सम्भाव्यत एव, तत्कथं तत्र बाधकान्तरापेक्षा निवृत्ता, येनास्या बाध्यमानतानिश्चयो भवेदित्यत आह—तत्रापीत्यादि ।

तत्रापि त्वपवादस्य स्यादपेक्षा पुनः क्वचित् ।

जाताशङ्कस्य पूर्वेण साऽप्यल्पेन निवर्त्तते ॥ २८६७ ॥

तत्रापि क्वचिदिति । अर्थान्यत्वावधारणलक्षणे बाधके प्रत्यये । जाताशङ्कस्येति । पुंमः । पूर्वेणेति । प्रथमेन ज्ञानेन । साऽपीति । अपवादापेक्षा । अल्पेनेति । यत्नेनेति शेषः ॥ २८६७ ॥

कथं निवर्त्तत इत्याह— बाधकान्तरमित्यादि ।



बाधकान्तरमुत्पन्नं यद्यस्यान्विष्यतोऽपरम् ।  
 ततो मध्यमबाधेन पूर्वस्यैव प्रमाणात् ॥ २८६८ ॥  
 अथानुरूपयत्नेन सम्यगन्वेषणे कृते ।  
 मूलाभावात् विज्ञातं भवेद्बाधकबाधकम् ॥ २८६९ ॥  
 ततो निरपवादत्वात्तेनैवाद्यं बलीयसा ।  
 बाध्यते तेन तस्यैव प्रमाणत्वमपोद्यते ॥ २८७० ॥  
 एवं परीक्षकज्ञानत्रितयं नातिवर्त्तते ।  
 नतश्चाजानबाधेन नाशङ्क्यं बाधकं पुनः ॥ २८७१ ॥

यदि निरूपयतस्तस्यापि बाधकस्य बाधकान्तरमुत्पद्यते, तदा मध्यमस्य तृती-  
 येन बाधितत्वात्प्रथममेव प्रमाणं भवेत् । अथ नोत्पद्यते मूलस्य कारणस्याभावात् ।  
 तदा तेनैव द्वितीयेन बलीयसाद्यं बाध्यत इति कृत्वा तस्य तेन प्रामाण्यमपोहितं  
 भवति । नातिवर्त्तत इति : नातिक्रामति । कोऽसौ ? । पुमानिति शेषः । अथ  
 तृतीयेऽपि ज्ञाने द्वितीयज्ञानवद्बाधकापेक्षा कस्मान्न भवति येन परीक्षकज्ञानत्रयं  
 नित्यं यतः स्यादित्यत आह—ततश्चेत्यादि । अजातोऽनुत्पन्नो बाधो यस्य प्रमातुः  
 ॥ २८६८ ॥ २८६९ ॥ २८७० ॥ २८७१ ॥

कस्मान्नाशङ्क्यमित्याह—उत्प्रेक्षते हीत्यादि ।

उत्प्रेक्ष्यते हि यो मोहादजातमपि बाधकम् ।  
 स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ॥ २८७२ ॥

क्षयम् —नाशम् । तत्त्वभ्रंशात् ॥ २८७२ ॥

तथाचेत्यादिना प्रवचनेनैतदेव समर्थयते ।

तथा च वासुदेवेन निन्दिता संशयात्मता ।

नायं लोकेऽस्ति कौन्तेय न परः संशयात्मनः ॥ २८७३ ॥

वासुदेवेनेति । विष्णुना । कुन्तेरपत्यं कौन्तेयोऽर्जुनः ॥ २८७३ ॥

यद्येवं प्रथमेऽपि ज्ञाने बाधाशङ्का न प्राप्नोति, ततश्च सर्वज्ञानेऽपि प्रामाण्यप्रसङ्ग  
 इत्याशङ्क्याह—यावानेवेत्यादि ।

यावानेवापवादोऽनो यत्र सम्भाव्यते मतौ ।

अन्विष्टेऽनुपजाते च तावत्येव तदात्मनि ॥ २८७४ ॥

कदाचित्स्यादपीत्येवं न भूयस्तत्र वस्तुनि ।

उत्प्रेक्षमाणैः स्थातव्यं नात्म(स ?)कामैः प्रमातृभिः ॥ २८७५ ॥

यत्र—यस्यां मतौ यावानेवापवादः सम्भाव्यते, तावत्येवापवादेऽन्विष्टेऽनुपजाते च, तदात्मनि—तत्र मतौ, स नास्तीत्येव गम्यत इत्यध्याहार्यम् ॥ २८७४ ॥ २८७५ ॥

कुत्र कियानपवादः सम्भान्यत इत्येतद्दर्शयन्नाह—देशेत्यादि ।

देशकालनरावस्थाभेदाः संव्यवहारतः ।

सिद्धा एव हि ये यस्मिंस्तेऽपेक्षया बाधकार्थिना ॥ २८७६ ॥

देशश्च कालश्च नरावस्था चेति तथोक्ताः, तासां भेदा इति समासः ॥ २८७६ ॥

एते च देशादिभेदाः कस्यचिदेव केचिद्बाधका न तु सर्वे सर्वस्य तेन न सर्वत्र सर्वेषामाशङ्का कार्येत्येतद्दर्शयन्नाह—दूरदेशेत्यादि ।

दूरदेशव्यवस्थानादसम्यग्दर्शने भवेत् ।

अन्याशङ्का क्वचित्तत्र समीपगतिमात्रकम् ॥ २८७७ ॥

अपवादावधिः कालनरावस्थान्तरे न तु ।

व्यपेक्षा विद्यते तस्मिन्मृगतृष्णादिबुद्धिवत् ॥ २८७८ ॥

अन्याशङ्केति । अन्यस्य जलादेराशङ्का अन्याशङ्का । क्वचिदिति । मरीचिकादौ । समीपगतिमात्रकमिति । अपवादावधिरिति सम्बन्धः । एतदुक्तं भवति । यत्र दूरदेशत्वमेव भ्रान्तिनिमित्तं सम्भवति तत्र समीपगमनमात्रमेवापेक्षणीयं बाधकस्य भावाभावनिश्चयाय, न तु कालादौ व्यपेक्षा कार्या । तत्र तस्याभ्रान्तिनिमित्तत्वात् । अत्रोदाहरणमाह—मृगतृष्णादिबुद्धिवदिति । मृगतृष्णादिबुद्धिः—मरीचिकादौ जलादिभ्रान्तिः । आदिशब्देनाल्पीयसि महत्त्वबुद्धिः, य(त ?)था दूरे महति चाल्पबुद्धिरित्येवमादि गृहीतव्यम् । नहि तत्र समीपगतानां कालाद्यपेक्षा सम्भवति । एवं कालादिष्वपि । यत्र यस्यैव भ्रान्तिनिमित्तत्वं सम्भवति तस्यैवापेक्षा कार्या नान्यन्येत्येतदुदाहरणेन दर्शयति ॥ २८७७ ॥ २८७८ ॥

तत्र कालविशेषमधिकृत्याह—एवं सन्तमस इत्यादि ।

एवं सन्तमसे काले यो गवाश्वादिसंशयः ।

भ्रान्तेर्वा निर्णयस्तत्र प्रकाशी भवनावधिः ॥ २८७९ ॥

सङ्गतं तमो यस्मिन्काले स तथोक्तः ॥ २८७९ ॥

नरविशेषमधिकृत्याह—तथेत्यादि ।

तथाहि चन्द्रदिग्मोहवेदवर्णस्वरादिषु ।

पुरुषान्तरसंप्रश्नादन्यथात्वावधारणम् ॥ २८८०

तैमिरिकादीनां द्विचन्द्रादिज्ञानेषु पुरुषान्तरपरिप्रश्नादेवान्यथात्वनिश्चयो भवति,  
न तत्र कालाद्यपेक्षा ॥ २८८० ॥

अवस्थाभेदमधिकृत्याह—रागद्वेषेत्यादि ।

रागद्वेषमदोन्मादक्षुत्तृष्णादिक्षतेन्द्रियैः ।

दुर्ज्ञाने ज्ञायमानेऽर्थे तदभावाद्विपर्ययः ॥ २८८१ ॥

तदभावादिति । रागाद्यवस्थाया अभावात् ॥ २८८१ ॥

ऋणादीत्यादिना लोकव्यवहारेणापि परीक्षकज्ञाने तृतीयस्यैवापेक्षेति प्रतिपादयति—

ऋणादिद्वयवहारेऽपि द्वयोर्विबदमानयोः ।

एकं प्रत्यर्थिनो वाक्यं द्वे वाक्ये पूर्ववादिनः ॥ २८८२ ॥

अनवस्थाभयादेव न वाक्यं लिख्यतेऽधिकम् ।

ततस्तु निर्णयं ब्रूयुः स्वामिसाक्षिसभासदः ॥ २८८३ ॥

एवं ज्ञानत्रयस्यैव सर्वत्र विक्रियेष्यते ।

त्रिसत्यताऽपि देवानामत एवाभिधीयते ॥ २८८४ ॥

तेन स्वतःप्रमाणत्वे नानवस्थोभयोरपि ।

प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे यथायोगमतः स्थिते ॥ २८८५ ॥

किञ्च—यदि नाम प्रत्यक्षादेः परतःप्रामाण्यं सिद्धयति—न शाब्दस्य, तथा-  
ऽप्यस्मत्पक्षसिद्धिरेव । तथा (हि) सर्वोऽयमारम्भश्चोदनायाः प्रामाण्यप्रतिपादनफलः,  
शाब्दस्य च प्रमाणस्य स्वतःप्रामाण्ये सिद्धे सिद्धमेव चोदनायाः प्रामाण्यमिति  
किमस्माकमन्येषां स्वतःप्रामाण्यप्रसिद्धये प्रयासेनेति मन्यमानः शाब्दस्य प्रमाणस्य  
स्वतःप्रामाण्यं प्रतिपादयन्नाह—नित्यमित्यादि ।

नित्यमाप्तप्रणीतं वा वाक्यं यच्चावधार्यते ।

श्रोत्रुच्चारयितृभ्यां तन्न मनागपि दृश्यते ॥ २८८६ ॥

ये विद्यागुरवस्तत्र सहाध्यायिन एव च ।

विनाशं वारयन्तस्ते तादृशां पालनक्षमाः ॥ २८८७ ॥

अतो गुणनिषिद्धैर्वा दोषैर्वाक्यं न दृश्यते ।

यद्वा कर्तुरभावे ते न स्युर्दोषा निराश्रयाः ॥ २८८८ ॥

द्विविधं हि 'शाब्दं ज्ञानं प्रमाणम्, नित्यवाक्यजनितं आप्तप्रणीतवाक्यहेतुकं च । तत्रैतस्मिन्द्विविधेऽपि कारणस्यादुष्टत्वं प्रतिपादयति । तथाहि—यत्तावन्नित्यं वाक्यं तस्य श्रोतृवक्तृकृतो न दोषः सम्भवति । नित्यं विद्यागुरुमिरध्यापकैरध्ये-  
तृभिश्च पाल्यमानत्वात् । यदप्याप्तोक्तम्, तत्र गुणैः कृपादिभिर्दोषाणां निषिद्ध-  
त्वात् । प्रकारान्तरेण नित्यस्य वाक्यस्यादुष्टत्वं प्रतिपादयन्नाह—यद्वेत्यादि । दोषा हि  
रागादयः पुरुषधर्मत्वात्कर्तारमेवाश्रिताः । ते कथमाश्रय(स्य)कर्तुर्निवृत्तावपौरुषेयेषु  
वाक्येष्ववतिष्ठेरन् । तदाऽनाश्रितत्वप्रसङ्गात् । एष आश्रितधर्मो यदाश्रयानुविधा-  
यित्वम् ॥ २८८६ ॥ २८८७ ॥ २८८८ ॥

ननु चाप्तवाक्यस्य गुणैर्दोषाणां निराकरणात्प्रामाण्याभ्युपगमे गुणेभ्यः प्रामा-  
ण्यमभ्युपगतं स्यात्, ततश्चानवस्थादोषोऽत्रापि सम्भवेदित्याशङ्क्याह—तत्रेत्यादि ।

तत्राप्तोक्तेर्द्वयं दृष्टं दोषाभावगुणात्मकम् ।

गुणेभ्यश्च प्रमाणत्वं यथा नास्ति तथोदितम् ॥ २८८९ ॥

गुणवत्त्वादतो वक्तुर्न दोषास्तन्निराकृताः ।

स्वतो वाक्यं प्रमाणं च दोषाभावोपलक्षितम् ॥ २८९० ॥

दोषाभावगुणावात्मा स्वभावो यस्य द्वयस्य तत्तथोक्तम् । तथोदितमिति । 'एवं  
यदि गुणाधीना प्रत्यक्षादिप्रमाणते'त्यादिना । तन्निराकृता इति । गुणनिराकृताः ।  
दोषाभावोपलक्षितमिति । दोषरहितगुणानां दोषनिषेधमात्र एव व्यापारो न  
प्रामाण्याधान इत्यभिप्रायः ॥ २८८९ ॥ २८९० ॥

ननु च दोषाभावनिश्चयात्प्रामाण्येऽभ्युपगम्यमानेऽप्यनवस्थैवेति परमतमाशङ्क्य-  
न्नाह—दोषभाव इत्यादि ।

दोषाभावो गुणेभ्यश्चेदाप्तवाक्येषु गम्यते ।

अनवस्था भवेत्सैव गुणवत्त्वानुगामिनः ॥ २८९१ ॥

तथाहि—दोषाभावो गुणपरिज्ञानान्निश्चयः, गुणपरिज्ञानस्य च पुनरपि दोषाभावा-  
त्प्रामाण्यमवसेयम्, तत्रापि दोषाभावो गुणेभ्यः परिज्ञेयः, पुनस्तत्राप्येवमित्येवं सैव  
सर्वव्यवस्थालोपिन्यनवस्था तदवस्था ॥ २८९१ ॥

नैव दोष इत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

नैव दोषो गुणज्ञानं तदा नैव ह्यपेक्षयते ।

ज्ञायमानतया नैव गुणास्तत्रोपकारिणः ॥ २८९२ ॥

सत्तामात्रेण ते सर्वे दोषव्यावर्त्तनक्षमाः ।

नृदोषविषयं ज्ञानं तेषु मत्सु न जायते ॥ २८९३ ॥

तेषु सत्स्विति । गुणेषु ॥ २८९२ ॥ २८९३ ॥

यदि नाम न जायते ततः किमित्यत आह—दोषैश्चेति ।

दोषैश्चाज्ञायमानत्वान्न प्रामाण्यमपोद्यते ।

अनपोदितसिद्धं च तदिहापि स्वतः स्थितम् ॥ २८९४ ॥

न प्रामाण्यमपोद्यत इति सम्बन्धः । कस्मात् ? । अज्ञायमानत्वात्— गुणनिषिद्धत्वाद्दोषाणामभावादेवाज्ञायमानत्वम् । अनपोदितसिद्धं चेति । अनपोदितत्वात्सिद्धम्, उत्सर्गस्यापवादविग्रहे निसर्गसिद्धत्वात् । इहापीति । आसवाक्ये न केवलमपौरुषेय इत्यपिशब्दः ॥ २८९४ ॥

ननु च यदि नाम क्वचित्पौरुषेये वाक्ये दोषा न ज्ञायन्ते तथापि सम्भाव्यन्ते एव, तेषां तदाश्रितत्वात् । ततश्च यथा गुणाः सत्तामात्रेण दोषव्यावर्त्तनक्षमास्तथा दोषा अपि गुणव्यावर्त्तनसमर्था इति तत्किमुच्यते—दोषैश्चाज्ञायमानत्वान्न प्रामाण्यमपोद्यत इति, एतदाशङ्क्याह—दोषाः सन्तीत्यादि ।

दोषाः सन्ति न सन्तीति पौरुषेये तु शङ्कयते ।

वेदे कर्तुरभावाच्च दोषाशङ्कैव नास्ति नः ॥ २८९५ ॥

अतो यदनपेक्षत्वाद्दे प्रामाण्यमुच्यते ।

तदाप्तेन प्रणीतेऽपि सुतरां सिद्धयति स्वतः ॥ २८९६ ॥

एवं मन्यते । न ह्यस्माभिरवश्यं पौरुषेयवचनस्य प्रामाण्यं समर्थनीयम्, किन्तु सर्वत्र एवायमारम्भो वेदस्य प्रामाण्यसिद्धये, तत्र यदि नाम पौरुषेयस्य वचनस्या-प्रामाण्यं जातं तथापि न काचित्क्षतिर्वेदस्य, दोषाशङ्काया अभावादेव प्रामाण्यसिद्धेरित्यनपेक्षत्वादुच्यत इति । यथोक्तं भाष्ये—“तस्मात्प्रमाणमनपेक्षत्वात् । नैवं सति प्रत्ययान्तरमपेक्षितव्यं पुरुषान्तरं वा स्वयम्प्रत्ययो ह्यसौ”विति ॥ २८९५ ॥ २८९६ ॥

अपि च—किं प्रमाणान्तरपरिच्छिन्नेऽर्थे प्रवृत्तिरिष्टा, आहोस्वित्तेति पक्षद्वयम्,

तत्र यदि तावन्नेष्टेति द्वितीयः पक्षस्तदा वेदस्य स्वत एव प्रामाण्यं सिद्धमिति दर्शयति—वेदार्थ इत्यादि ।

**वेदार्थेऽन्यप्रमाणैर्या सर्वकालमसङ्गतिः ।**

**तथैवास्य प्रमाणत्वमनुवादत्वमन्यथा ॥ २८७ ॥**

वेदार्थः—अग्निहोत्रात्स्वर्गो भवतीत्यादिः । अन्यप्रमाणैरिति । वेदादन्यैः प्रत्यक्षादिभिः सङ्गतिरेकविषयतया सम्बन्धः, तत्प्रतिषेधोऽसङ्गतिः । तथैवेति । अमङ्गत्या अस्येति । वेदस्य । अथ प्रवृत्तिरिष्टेति पक्षस्तदा गृहीतग्राहित्वादुत्तरकालभाविनो ज्ञानस्य न प्रामाण्यं प्राप्नोतीति दर्शयन्नाह—अनुवादत्वमन्यथेति । अन्यथा—यद्यन्यैरपि प्रमाणैरवागतेऽर्थे प्रमाणस्य प्रवृत्तिरिष्यते तदा नन्यान्यप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वादनुवादत्वमिति स्मृत्यादिवदप्रामाण्यप्रसङ्गः । तस्माद्यत्प्रमाणं न तत्प्रमाणान्तरसङ्गतिमपेक्षत इति सर्वस्यैव प्रमाणस्य स्वतःप्रामाण्यं प्रसिद्धमिति भावः ॥ २८७ ॥

एतदेव दर्शयति—अन्यस्यापीत्यादि ।

**अन्यस्यापि प्रमाणत्वे सङ्गतिर्नैव कारणम् ।**

**तुल्यार्थानां विकल्पेन ह्येकस्यैव प्रमाणता ॥ २८८ ॥**

वेदादन्यस्यापि प्रत्यक्षादेः । तुल्यार्थानामिति । एकविषयप्रवृत्तानाम् । एकस्यैवेति । प्रथमस्य । अन्येषामनुवादत्वात् । न च तेभ्य उत्तरकालभाविभ्यः प्रत्ययेभ्यः प्रथमस्य प्रामाण्यं युक्तं तेषां गृहीतविषयत्वेन स्वयमेवाप्रमाणत्वात् ॥ २८८ ॥

ननु च दृश्यत एव सन्तमसादिप्रदेशे प्रथमज्ञानगृहीतस्याप्यर्थस्योत्तरोत्तरतः प्रमाणात्परिच्छेदः स्पष्टालोकावस्थायामित्याशङ्क्याह—यत्रापीत्यादि ।

**यत्रापि स्यात्परिच्छेदः प्रमाणैरुत्तरैः पुनः ।**

**नूनं तत्रापि पूर्वेण नार्थः सोऽवधृतः स्फुटम् ॥ २८९ ॥**

पूर्वस्य ज्ञानस्यानवधृतार्थत्वात्प्रामाण्यमेवेति भावः ॥ २८९ ॥

अपि च—यदि प्रमाणान्तरसङ्गत्या प्रामाण्यमेवं सति सकृज्जातविनष्टार्थविषयस्य ज्ञानस्य श्रोत्रधियश्च प्रामाण्यं न प्राप्नोति तद्विषये प्रमाणान्तगप्रवृत्तेरिति दर्शयति सकृदित्यादि ।

**सकृज्जातविनष्टे च भवेन्नार्थे प्रमाणता ।**

**श्रोत्रा धीश्चाप्रमाणं स्यान्नेत्रादिभिरसङ्गता ॥ २९० ॥**

नेत्रादिभिरसङ्गतेति । एकविषयत्वेनासम्बन्धात् । प्रयोगः—यत्प्रमाणान्तर-  
सङ्गतिनिरपेक्षं तत्स्वत एव प्रमाणम्, यथा श्रोत्रज्ञानं सकृतज्ञातं विनष्टविषयं च  
विज्ञानम्, प्रमाणान्तरसङ्गतिनिरपेक्षं च वेदार्थविषयं ज्ञानमिति स्वभावहेतुः ॥२९००॥

श्रोत्रेत्यादिना दृष्टान्तस्य साधनविकल्पात्माशङ्कते ।

श्रोत्रज्ञानान्तरेणास्याः सम्बन्धाच्चेत्प्रमाणात् ।

सिद्धा वेदेऽपि तज्जन्यविज्ञानान्तरसङ्गतेः ॥ २९०१ ॥

साधनान्तरजन्या तु बुद्धिर्नास्ति द्वयोरपि ।

हेत्वन्तरकृतज्ञानसंवादोऽतो न बाञ्छयते ॥ २९०२ ॥

तथा ह्येकस्मिन्नपि शब्दे बहुभिः श्रूयमाणे श्रोत्रज्ञानान्तरप्रवृत्तेरस्याः श्रोत्रधियः  
प्रमाणान्तरसङ्गत्यपेक्षया सम्यक्त्वमवसीयते । सिद्धा वेदेऽपीत्यादिना प्रतिवि-  
धत्ते—तज्जन्यविज्ञानान्तरसङ्गतेरिति । वेदजन्यविज्ञानान्तरसम्बन्धात् ।  
द्वयोरपीति । श्रोत्रबुद्धिर्वेदार्थबुद्ध्योः । एतदुक्तं भवति—प्रमाणान्तरसङ्गतिनिर-  
पेक्षत्वादित्यत्र साधनान्तरजन्यं प्रमाणान्तरं विवक्षितम्, नत्वेकसाधनसाध्यम्, तेन  
हेतोः सविशेषणत्वान्न साधनविकल्पात् दृष्टान्तस्येति भावः । हेत्वन्तरकृतज्ञान-  
संवाद इति । हेत्वन्तरेण कृतं च तत् ज्ञानं चेति तथोक्तम्—तस्य संवाद इति वि-  
ग्रहः ॥ २९०१ ॥ २९०२ ॥

अथैकसाधनसाध्यप्रमाणान्तरप्रवृत्तिमात्रेणापि परतः प्रामाण्यमिष्टम्, तदा  
सिद्धसाध्यतेति मन्यमान आह—यथेत्यादि ।

यथा त्वेकेन्द्रियाधीनविज्ञानान्तरसङ्गतिः ।

प्रत्यक्षे कारणं क्लृप्ता तथा वेदेऽपि कथयताम् ॥ २९०३ ॥

कारणं क्लृप्तेति । श्रोत्रज्ञानान्तरेणास्याः सम्बन्धाच्चेत्प्रमाणतेति वचनात्  
॥ २९०३ ॥

कथं वेदे कथनीयमित्यत आह—एकेनैव हीत्यादि ।

एकेनैव हि वाक्येन देशकालन(लान्त ?)रादिषु ।

लभ्यमानेऽर्थसंवादे न सृष्ट्यं कारणान्तरम् ॥ २९०४ ॥

तस्माद्दृढं यदुत्पन्नं विज्ञानं न विसंभवेत् ।

देशान्तरादिविज्ञानैः प्रमाणं तदसंशयम् ॥ २९०५ ॥

दृढमिति । संशयविपर्यासरहितत्वात् । देशान्तरादिविज्ञानैरिति । आदि-  
शब्देन नरान्तरादिविज्ञानपरिग्रहः ॥ २९०४ ॥ २९०५ ॥

न चासिद्धताऽस्य हेतोरिति दर्शयन्नाह—साध्येत्यादि ।

साध्या न चानुमानेन शब्दादीनां प्रमाणता ।

प्रत्यक्षस्यापि सा माभूत्तत्साध्यैवाविशेषतः ॥ २९०६ ॥

न तावत्प्रत्यक्षेण साध्या वेदार्थस्यातीन्द्रियत्वादिति भावः । नाप्यनुमानेनाति-  
प्रसङ्गात् । शब्दानामिति । वैदिकानामिति शेषः । प्रकरणाद्वा विशेषगतिः ॥ २९०६ ॥

स्यादेतदिष्यत एव प्रत्यक्षस्याप्यनुमानसाध्या प्रमाणतेत्याह—प्रमाणानामित्यादि ।

प्रमाणानां प्रमाणत्वं येन चान्येन साध्यते ।

तस्याप्यन्येन साध्यत्वादनवस्था प्रसज्यते ॥ २९०७ ॥

अन्येनासाधिता चेत्स्यात्साधकस्य प्रमाणता ।

साध्यानामपि सा सिद्धा तद्बुद्धेः भवेत्ततः ॥ २९०८ ॥

प्रत्यक्षवत्तस्याप्यनुमानस्यापरेणानुमानेन प्रमाणतायां साध्यायामनवस्था स्यात् ।  
अथानुमानाख्यस्य साधनस्य प्रामाण्यं नान्येन साध्यते तदा साध्यस्यापि प्रत्यक्षादेः  
सा साध्या माभूदविशेषात् ॥ २९०७ ॥ २९०८ ॥

नन्वित्यादिना चोद्धो हेत्वसिद्धिमेव समर्थयते ।

ननु प्रमाणमित्येवं प्रत्यक्षादि न गृह्यते ।

न चेत्थमगृहीतेन व्यवहारोऽधकल्पते ॥ २९०९ ॥

यदि प्रमाणानां प्रमाणान्तरापेक्षा न स्यात्तदा प्रमाणमित्येषु प्रत्यक्षादिषु निश्चयो  
न स्यात् । ततश्च सर्वव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गः ॥ २९०९ ॥

प्रमाणं ग्रहणादित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

प्रमाणं ग्रहणात्पूर्वं स्वरूपेण प्रतिष्ठितम् ।

निरपेक्षं च तत्स्वार्थं प्रमिते मीयते परैः ॥ २९१० ॥

एतदुक्तं भवति—यद्यपि प्रमाणं स्वरूपनिश्चयं प्रति प्रमाणान्तरमपेक्षते तथापि  
न व्यवहारोच्छेदः, अर्थपरिच्छेदं प्रति प्रमाणान्तरनिरपेक्षत्वात्, अर्थश्चेत्परि-  
च्छिन्नस्तदा तावतैव सर्वव्यवहारपरिसमाप्तिरिति किं स्वरूपं प्रति निश्चयानिश्चय-  
निरूपणया, अर्थनिश्चयार्थत्वादस्या इति सङ्गेपार्थः । अथमवार्थस्तूच्यते—ग्रहणा-



त्पूर्वमिति । प्रमाणमेतदित्यतो निश्चयात्पूर्वमित्यर्थः । स्वरूपेणेति । अर्थपरिच्छेदात्मना । निरपेक्षमिति । स्वार्थपरिच्छेदं प्रति प्रमाणान्तरं नापेक्षत इत्यर्थः । तत्स्वार्थे प्रमिते—निश्चिते तूत्तरकालमनुमानादिभिः प्रमाणैः प्रमीयते । यथोक्तम्—नञ्ज्ञातेऽर्थे कश्चिद्बुद्धिमुपगमते । ज्ञाते त्वनुमानादवगच्छतीति ॥ २९१० ॥

स्यादेतत्—अविदितायां बुद्धौ स्वार्थपरिच्छेद एव न युक्तः, यथोक्तमप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिद्धयतीत्याशङ्क्याह—यथा चेत्यादि ।

यथा चाविदिनैरेव चक्षुरादिभिरिन्द्रियैः ।

गृह्यन्ते विषयाः सर्वे प्रमाणैरपि ते तथा ॥ २९११ ॥

तेनात्र ज्ञायमानत्वं प्रामाण्ये नोपयुज्यते ।

विषयानुभवोऽप्यस्मादज्ञानादेव लभ्यते ॥ २९१२ ॥

सुगमम् ॥ २९११ ॥ २९१२ ॥

यथेवं (अ)प्रमाणमप्यनया नीत्या स्वत एव प्रसज्यत इत्याशङ्क्याह—अप्रमाणमित्यादि ।

अप्रमाणं पुनः स्वार्थे प्रमाणमिव हि स्थितम् ।

मिथ्यात्वं तस्य गृह्येन न प्रमाणान्तराहते ॥ २९१३ ॥

अप्रमाणं हि प्रमाणवदाभातीति न तत्सत्तामात्रेण स्वार्थे परिच्छिनत्ति तस्मान्मिथ्यात्वं—मिथ्यार्थपरिच्छेदित्वमस्य प्रमाणान्तरं विना गृहीतुं न शक्यत इति परतस्तद्भवस्थाप्यते ॥ २९१३ ॥

ननु च प्रमाणेऽपि तुल्यम्—तथाहि तदपि स्वार्थे कचिदप्रमाणमिवाभातीत्यत आह — न ह्यर्थस्येत्यादि ।

न ह्यर्थस्यान्यथाभावः पूर्वेणात्तस्तथात्ववत् ।

तदत्राप्यन्यथाभावे धीर्यद्वा दुष्टकारणे ॥ २९१४ ॥

तावता चैव मिथ्यात्वं गृह्यते नान्यहेतुकम् ।

उत्पत्त्यवस्थमेवेदं प्रमाणमिति मीयते ॥ २९१५ ॥

पूर्वेणेति । अप्रमाणेन । आत्त इति । गृहीतः । तथात्ववदिति वैधर्म्यदृष्टान्तः । एतदुक्तं भवति—यथा प्रमाणेन तथात्वमात्तं न तथा मिथ्यात्व(म)प्रमाणेनेति न समानम् । तथाहि—उत्पत्त्यवस्थमेव प्रमाणं प्रमाणमिति मीयते, नत्वप्र-

माणमप्रमाणमिति, तस्य नित्यं प्रमाणवदवभासनादिति भावः । तदित्यादिना पर-  
तोऽप्रामाण्यमुपसंहरति । यद्वा दुष्टकारणे धीरिति संबन्धः । तावता चैवेति ।  
अन्यथा भावधिया दुष्टकारणधिया च । स्यादेतत् । यद्येतयोर्धियोः सम्यक्त्वं  
गृहीतं भवेत्तदाऽऽभ्यां मिथ्यात्वं गृह्येत, तयोश्च सम्यक्त्वग्रहणाय प्रमाणान्तरापे-  
क्षायामनवस्था स्यादित्यत आह—उत्पत्त्यवस्थमित्यादि । इदमिति । अर्धान्यथा-  
ज्ञानं दुष्टकारणज्ञानं च । तेन नानवस्थेति भावः ॥ २९१४ ॥ २९१५ ॥

यदुक्तं बौद्धादिना मिथ्यार्थं वैदिकं वचो वाक्यत्वादग्निः शीत इत्यादि पुरुषवा-  
क्यवदित्यादि साधनं, तस्यानैकान्तिकनेति दर्शयन्नाह—अतो यत्रापीत्यादि ।

अतो यत्रापि मिथ्यात्वं परेभ्यः प्रतिपाद्यते ।

तत्राप्येतद्व्यं वाच्यं न तु साधर्म्यमात्रकम् ॥ २९१६ ॥

यत्रापीति । चोदनादौ । एतद्व्यमिति । अन्यथात्वज्ञानं दुष्टकारणज्ञानं च ।  
साधर्म्यमात्रकमिति । असत्यार्थेन पुंवाक्येन वाक्यत्वादिना तुल्यत्वम् ॥ २९१६ ॥

कस्मान्न वाच्यमित्यत्रोपपत्तिमाह—तत्रेत्यादि ।

तत्राप्रमाणसाधर्म्यमात्रं यत्किञ्चिदाश्रिताः ।

सर्वं प्रमाणमिथ्यात्वं साधयन्त्यविपश्चितः ॥ २९१७ ॥

तेषामात्मवधायैव तादृक्साधनकल्पनम् ।

उत्पद्यते परस्यापि प्रतिबिम्बेन तादृशम् ॥ २९१८ ॥

तेन च प्रतिषिद्धत्वादयथाभूतसाधनम् ।

नौत्सर्गिकप्रमाणत्वाच्चोदना बाधितुं क्षमम् ॥ २९१९ ॥

यद्यप्रमाणसाधर्म्यमात्रेणाप्रमाणं स्यात्तदा सर्वत्र प्रमाणानामप्रामाण्यप्रसङ्गः,  
शक्यते हि सर्वत्र वस्तुत्वादिना साधर्म्यं वक्तुमिति सङ्केपार्थः । कथमात्मवधाय  
भवतीत्याह—उत्पद्यत इत्यादि । परस्यापीति । मीमांसकस्य । प्रतिबिम्बेनेति ।  
यथा बिम्बादनन्तरं प्रतिबिम्बमुत्पद्यते, तथा बौद्धोपन्यस्तसाधनानन्तरं प्रतिसाधनं  
मीमांसकस्योदेतीत्यर्थः । तथाहि शक्यमिदमभिधातुम्—अमृषा वैदिकं वचः, वच-  
नत्वादिभ्यः, अग्निरुष्णो भास्वर इत्यादिपुरुषवचनवदिति । तेनैवंविधेन प्रतिप्रमा-  
णेन प्रतिषिद्धत्वात्—व्याहृतत्वात्, अयथाभूता चोदनेत्यस्यार्थस्य यत्साधनमुप-  
न्यस्तं बौद्धादिना तन्न चोदनां बाधितुं क्षमम्, कुतः ?, औत्सर्गिकप्रमाणत्वात् ।  
औत्सर्गिकं प्रमाणं प्रामाण्यं यस्य तत्तथोक्तं तद्भावास्तत्वम् ॥ २९१७ ॥ २९१८ ॥ २९१९ ॥

अत्राभिधीयत इत्यादिना—आत्मलाभे च भावानामित्यारभ्य यथाक्रमं दूषणं वक्तुमारभते—

अत्राभिधीयते येषां जातानां स्थितिरिष्यते ।

तेषामेव तु नन्वेषा व्यवस्था सनिबन्धना ॥ २९२० ॥

सनिबन्धनेति । वस्त्वधिष्ठाना । असतो व्यापारायोगादिति भावः ॥ २९२० ॥

का पुनरसौ व्यवस्थेत्याह—आत्मलाभ इत्यादि ।

आत्मलाभे घटादीनां कारणापेक्षितेष्यते ।

लब्धात्मनां स्वकार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु ॥ २९२१ ॥

अथ ज्ञानेऽपि कस्मान्न युज्यत इत्याह—यत्त्वित्यादि ।

यत्तु ज्ञानं त्वयाऽपीष्टं जन्मानन्तरमस्थिरम् ।

लब्धात्मनोऽसतः पश्चाद्ब्रूयापारस्तस्य कीदृशः ॥ २९२२ ॥

असतः कीदृशो व्यापार इति । नैव कश्चित्, सर्वसामर्थ्यशून्यत्वादसत्त्व-  
स्येति भावः । सत्त्वेऽपि वा निरीहत्वात्सर्वभावानां नैव व्यापारः सिद्धयेत् । न च  
ज्ञानस्य किञ्चित्कार्यमस्ति यत्र व्याप्रियेत । स्वार्थपरिच्छेदात्मकमस्तीति चेत् ।  
न । ज्ञानपर्यायत्वादस्यात्मानमेव करोतीति सुव्याहृतमेतत् । प्रमाणमेतदिति निश्चय-  
जननं स्वकार्यमिति चेन्न । कचिदनिश्चयाद्विपर्ययदर्शनाच्च । अनेनात्रापि प्रतिज्ञार्थे  
प्रत्यक्षादिविरोधः प्रतिपादितः । तथाष्टुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलम्भेनान्योपलम्भा-  
त्मना प्रत्यक्षेणासतो व्यापाराभावो निश्चितः । नैरूप्याच्च वियदम्भोजवदनुमानतो-  
ऽपि सिद्धः । त्वयापीष्टमित्यनेन स्ववचनविरोधं चोद्भावयति ॥ २९२२ ॥

तमेव व्यापार इत्यादिना श्लोकद्वयेन दर्शयति ।

व्यापारः कारणानां हि दृष्टो जन्मातिरेकतः ।

प्रमाणेऽपि तथा माभूदिति जन्म विवक्ष्यते ॥ २९२३ ॥

नहि तत्क्षणमप्यास्ते जायते वाऽप्रमात्मकम् ।

येनार्थग्रहणे पश्चाद्ब्रूयाप्रियेतेन्द्रियादिवत् ॥ २९२४ ॥

तथाहि—“सत्संप्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्ष”मित्यत्र सूत्रे  
जन्मग्रहणस्य साफल्यं प्रतिपादयितुं व्यापार इत्याद्युक्तं कुमारिलेन । ज्ञा(जा?)व-  
मानाया एव बुद्धेः प्रामाण्यं यथा स्यादिति प्रतिपादनार्थं जन्मग्रहणं कृतमिति ।  
किं कारणमित्याह—नहीत्यादि । तदिति । ज्ञानम् ॥ २९२३ ॥ २९२४ ॥

अथापीत्यादिना परस्योत्तरमाशङ्कते ।

अथाप्यक्षणिकं ज्ञानं नित्यं चाऽभ्युपगम्यते ।

अभ्युपेतविरोधोऽयमेवं युक्त्याववाधनम् ॥ २९२५ ॥

तथा चान्यत्र कुमारिलेन नित्यत्वमेकत्वं च बुद्धिनां वर्णितम् । यथोक्तम्—  
“बुद्धीनामपि चैतन्यस्वाभाव्यात्पुरुषस्य नः नित्यत्वमेकता चेष्टा मेदस्तु विषया-  
श्रय” इति । अत्रापि पक्षे प्रतिज्ञाया अभ्युपेतविरोधोऽनुमानविरोधोऽपि । तथा  
(हि) क्षणिकत्वं बुद्धीनामभ्युपगतम् । यथोक्तं भाष्ये—“क्षणिका हि सा न बुद्ध्य-  
न्तरकालमवस्थास्यत” इति । तथा—“न हि तत्क्षणमप्यास्ते” इत्यादिवचनात्प्रवचन-  
विरोधोऽपि ॥ २९२५ ॥

युक्तिवाधां दर्शयति— साधितेत्यादि ।

साधितक्षणभङ्गं हि सर्वं वस्तु सविस्तरम् ।

नित्यं च जन्यते नेति कारणापेक्षिताऽस्य का ॥ २९२६ ॥

नित्यत्वाभ्युपगमे कारणापेक्षिता न युक्तेति दर्शयति—नित्यं चेत्यादिना ।  
जन्यस्य हि कारणान्तरापेक्षिता तत आत्मभावलिप्सया, यत्तु नित्यत्वादनुत्पाद्यं  
तस्य काऽपेक्षा ॥ २९२६ ॥

अतश्चेत्यादिना प्रयोगरचनयाऽनुमानवाधामेव दर्शयति ।

अतश्च शक्यते वक्तुं स्वत एव न वर्त्तते ।

पश्चात्प्रमा स्वकार्येषु नैरूप्याद्गगनाब्जवत् ॥ २९२७ ॥

अस्तु वेत्यादिनाऽभ्युपगम्याक्षणिकत्वं प्रत्यक्षादिवाधां दर्शयति ।

अस्तुवाऽक्षणिकं ज्ञानं स्वत एव प्रवर्त्तते ।

स्वप्रामाण्यविनिश्चित्यै चेत्तर्किकं संशयादयः ॥ २९२८ ॥

यदि स्वत एव प्रमाणनिश्चयं जनयति तदा प्रमाणे संशयादयो न प्राप्नुवन्ति ।  
आदिशब्देन विपर्यासस्तत्पूर्वको विरोधो विपरीता प्रवृत्तिः परस्परपराहतलक्षणप्रण-  
यनं विसंवादश्च गृह्यते । ततश्च संशयादेः प्रमाणानन्तरं निश्चयविपरीताकारस्य संवे-  
दनात् प्रत्यक्षत एव निश्चयाभावः सिद्धो घटाभाव इव तद्विविक्तप्रदेशोपलम्भात् ।  
ततश्च तत्सद्भावप्रतिज्ञायाः प्रत्यक्षविरोधः ॥ २९२८ ॥

प्रामाण्येत्यादिना प्रत्यक्षे विरोधमेव समर्थयते ।

प्रामाण्यनिश्चयो यस्मात्तत्र तन्मात्रभाधिकः ।

तस्मिन् जाते च सन्देहविपर्यासाधनास्पदौ ॥ २९२९ ॥

तस्मिन्निति । प्रामाण्यनिश्चये ॥ २९२९ ॥

कस्मादनास्पदावित्याह—निश्चयेत्यादि ।

निश्चयारोपमनसोर्बाध्यबाधकभावतः ।

समारोपविवेके हि निश्चयो वर्ततेऽखिलः ॥ २९३० ॥

एतदेव कुत इत्याह—समारोपेत्यादि । निश्चयो हि समारोपविपरीताकारत्वात्त-  
द्विषयमनिराकृत्य नात्मस्थितिमासादयति, उष्णस्पर्श इव शीतमिति कुतस्तेन विष-  
यीकृते विषये समावेशो विपर्यासस्य ॥ २९३० ॥

ततश्चेत्यादिना स्ववचनविरोधमपि दर्शयति ।

ततश्च चोदनाजन्यमतिप्रामाण्यसिद्धये ।

दोषवर्जितहेतूत्थभावाद्युक्तिरपार्थिका ॥ २९३१ ॥

हेतूत्थभावो—हेतूत्थत्वम् । आदिशब्देनानाप्ताप्रणीतोक्तिजन्यत्वाद्वाधवर्जनादि-  
त्यादि गृह्यते । तथाहि—“चोदनाजनिता बुद्धिः प्रमाणं दोषवर्जितैः । कारणैर्ज-  
न्यमानत्वाच्छिन्नाप्तोक्तयक्षबुद्धिवत् । तथाऽनाप्ताप्रणीतोक्तिजन्यत्वाद्वाधवर्जनात्” इति  
चोदनाजनिताया बुद्धेः प्रामाण्यसिद्धये साधनं ब्रुवता परतः साधनात्प्रामाण्यनि-  
श्चय उक्तो भवति । स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति च वदता तन्निषेधश्चेति पर-  
स्परवचनव्याघातः ॥ २९३१ ॥

सिद्ध इत्यादिना परस्योत्तरमाशङ्कते ।

सिद्धे स्वतःप्रमाणत्वे साऽपवादनिवारिणी ।

यदीष्यते तदप्येवं नाऽऽशङ्काया असम्भवात् ॥ २९३२ ॥

तावदेव हि साऽऽशङ्का यावन्नोदेति निश्चयः ।

निश्चये तूद्गते तस्मिन्नप्रामाण्ये कुतोन्वयम् ॥ २९३३ ॥

येन तद्विनिवृत्त्यर्थं यत्नः सार्थकतां व्रजेत् ।

स्थाणौ निश्चिततादात्म्यो नान्यथात्वं हि(शङ्कते)॥२९३४॥

अथापि स्यान्नास्मामिश्चोदनाजनितायाः धियः प्रामाण्यसिद्धये साधनमभिधी-  
यते । किं तर्हि ? । यत्तत्र परेणाप्रामाण्यमासक्तं तन्निषेधायेत्येतदपि न युक्तम् ।

कुत आशङ्काया असम्भवात् । उक्तं हि—निश्चयारोपमनसोर्बाध्यबाधकभावतः”  
इति तत्कुतो निश्चये समुत्पन्ने सतीयमप्रापाण्याशङ्का । येन तन्निवृत्तये भवतः  
साधनप्रयोगप्रयासः सफलो भवेत् । अत्र दृष्टान्तमाह—स्थाणावित्यादि । निश्चितं  
तादात्म्यं स्थाणुत्वं येन प्रतिपन्ना स तथोक्तः । अन्यथात्वमिति वृक्षत्वपुरुषत्वादि  
॥ २९३२ ॥ २९३३ ॥ २९३४ ॥

यद्येवं कथमप्रामाण्याशङ्का विना साधनप्रयोगं निर्वर्त्तयितुं शक्यत इत्याह—  
यद्रूपेत्यादि ।

यद्रूपनिश्चयो यस्माज्जायते यत्र वस्तुनि ।

तद्विपर्ययशङ्कायास्तत एव निवर्त्तनम् ॥ २९३५ ॥

वस्मिन्रूपे निश्चयो यद्रूपनिश्चयः । तद्विपर्ययशङ्काया इति । तद्रूपविपरिते  
स्वभावे शङ्काया इत्यर्थः । तत एवेति । तद्रूपनिश्चयात् ॥ २९३५ ॥

अत्रैव दृष्टान्तमाह—यथा धूमादीत्यादि ।

यथा धूमादिलिङ्गेभ्यः पावकाद्यस्तितागतौ ।

तन्नास्तित्वव्यवच्छेदस्तत एवोपपद्यते ॥ २९३६ ॥

तन्नास्तित्वव्यवच्छेद इति । पावकादिनास्तित्वव्यवच्छेदः ॥ २९३६ ॥

अप्रमाणेत्यादिनोपसंहरति ।

अप्रामाण्यव्यवच्छेदः स्वत एवैवमिष्यताम् ।

अतो न साधनं युक्तमप्रामाण्यनिवृत्तये ॥ २९३७ ॥

अत्रैवोपचयहेतुमाह—अप्रमाणद्वयेत्यादि ।

अप्रमाणद्वयाशङ्का यदि वर्त्तत तत्र तु ।

प्रामाण्यनिश्चयो न स्याद्भ्रान्त्या तद्विषयीकृतेः ॥ २९३८ ॥

अप्रमाणद्वयं संशयविपर्यासात्मकम् ॥ २९३८ ॥

य इत्यादिना विरुद्धव्याप्तौपलब्धिप्रसङ्गमादर्शयन्स्ववचनविरोधमेव समर्थयते ।

यः सन्देहविपर्यासप्रत्ययैर्विषयीकृतः ।

स्थाणुवन्नहि तन्नास्ति तदा तद्रूपनिश्चयः ॥ २९३९ ॥

निश्चयविरुद्धाभ्यां संशयविपर्यासाभ्यां तद्विषयीकृतस्य वस्तुनो व्यासत्वात् तत्र  
निश्चयावकाशः ॥ २९३९ ॥

बलिभुगित्यादिना—अनुमानविरोधं दर्शयति स्वपक्षसिद्धिं च ।

बलिभुग्धूमहेतूत्थदोषादिप्रत्ययैर्यथा ।

स्थाणुतेजोऽप्रमाणादि परेभ्यो व्यवसीयते ॥ २९४० ॥

प्रयोगः—ये सन्देहविपर्यासविषयीकृतात्मानस्ते परतोऽवसातव्यात्मतत्त्वाः, यथा स्थाण्वादयः, सन्देहविपर्यासविषयीकृतात्मकं च केषांचित्प्रामाण्यमिति स्वभावहेतुः । बलिभुक् च धूमश्च हेतूत्थदोषादयश्चेति तथोक्ताः । तेषु प्रत्यया इति समासः । एभिश्च यथाक्रमं स्थाण्वादीनां सम्बन्धः । एतेन च हेतोर्व्याप्तिर्दर्शिता ॥ २९४० ॥

साम्प्रतं पक्षधर्मोपदेशेनासिद्धिं परिहरन्नाह—यत्सन्देहेत्यादि ।

यत्सन्देहविपर्यासविषयत्वं गतं तथा ।

परतो निश्चयस्तस्य प्रमाणत्वस्य गम्यताम् ॥ २९४१ ॥

यदिति । यस्मात् । गतमिति । निश्चितम् । कस्य, प्रमाणस्येति शेषः । तथाहि चोदनाजनिताया बुद्धेः प्रतिपादितं सन्देहविपर्यासविषयत्वम् ! तथेति । यथा स्थाण्वादेः परतो निश्चयः । तस्येत्यादिना प्रमाणफलोपदर्शनम् ॥ २९४१ ॥

यदुक्तं सिद्धे स्वतःप्रमाणत्वे साऽपवादनिवारणीति तन्न युक्तमाशङ्काया असम्भवादिति प्रतिपादितम्, इदानीं भवतु नामप्रामाण्याशङ्कानिवृत्तये साधनप्रयोगः, तथापि भवन्मतेन सोऽपि न युक्त इति दर्शयन्नाह—अयं चेत्यादि ।

अयं च भवतां पक्षो यत्र वाक्ये नञः श्रुतिः ।

तत्रैवान्यव्यवच्छेदः स्वात्मैवान्यत्र गम्यते ॥ २९४२ ॥

चोदनाजनिताबुद्धिः प्रमाणमिति नेह च ।

प्रयोगोऽस्ति नञस्तेन नाप्रामाण्यनिवर्तनम् ॥ २९४३ ॥

भवतां विधिशब्दार्थवादिनामयं पक्षः—यत्रैव वाक्ये नञः प्रयोगस्तत्रैवान्यव्यवच्छेदः प्रतीयते, अन्यत्र तु विधिरेवेति । न चात्र चोदनाजनितेत्यादौ साधनवाक्ये नञः प्रयोगोऽस्ति । तत्कथमनेनाप्रामाण्यवच्छेदः प्रतिपाद्यताम् ॥ २९४२ ॥ ॥ २९४३ ॥

यदुक्तम्—तत्कथं संशयादय इति, तत्रादिशब्दोपात्तमर्थं दर्शयति—किञ्चेत्यादि ।

किञ्च सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यं निश्चितं यदि ।

स्वत एव तदा कस्मान्मतभेदः प्रवादिनाम् ॥ २९४४ ॥

यदि सर्वप्रमाणानां स्वत एव प्रामाण्यं भवेत्तदा वादिनां प्रामाण्यविषये मतभेदो न स्यात् ॥ २९४४ ॥

स एव कथं सिद्ध इत्याह—येनैकैरित्यादि ।

येनैकैः स्वत एवेति प्रो(प्रा ?)च्यैर्नियम उच्यते ।

किञ्चित्स्वनतोऽन्यतः किञ्चित्परैश्चानियमो मतः ॥ २९४५ ॥

एकैरिति । मीमांसकैः । परैरिति । बौद्धैः । तैः किञ्चित्स्वतःप्रमाणमिष्टम्, यथा—स्वसंवेदनप्रत्यक्षं योगिज्ञानम्, अर्थक्रियाज्ञानम्, अनुमानमभ्यासवच्च प्रत्यक्षम्, तद्धि स्वत एव निश्चीयते । अभ्यासबलेनापहस्तितभ्रान्तिकारणत्वात् । किञ्चिदंन्यतः, यथा—विवादास्पदीभूतं चोदनाजनितं ज्ञानम्, प्रत्यक्षं चानपगतभ्रान्तिनिमित्तम् । अभ्यासार्थक्रियाज्ञानयोरनवासत्वात् । यद्येवम्—अनुमानादौ भ्रान्मतेन विवादो न प्राप्नोति तस्य स्वत एव प्रमाणत्वात् । तथाहि—केचित्रिरूपलिङ्गहेतुकमनुमानमिच्छन्ति, केचिद्विरूपलिङ्गजं, केचिदेकरूपलिङ्गसमुद्भवम् । लक्षणप्रणयनं चानर्थकम् । तथा लोकायतं प्रति तत्प्रामाण्यप्रतिपादनं न कर्तव्यम्, स्वत एव प्रामाण्यनिश्चयादिति समानम् । नैष दोषः । यतोऽनुमानस्य तादात्म्यतदुत्पत्तिप्रतिबद्धलिङ्गनिश्चयादुत्पत्तेरन्तरेणाप्यथेक्रियासंवादं पारम्पर्येण तथाविधवस्तुप्रतिबद्धजन्मतया तदर्थव्यभिचारित्वं निश्चितमिति स्वतःप्रामाण्यमुच्यते । तदुत्पत्तिहेतुलिङ्गस्वरूपापरिज्ञानाद्वादिनोऽत्रानुत्पन्न एवानुमाने परस्परं विप्रवदन्ते, न तूत्पन्ने, तत्स्वरूपादिनिश्चयात् । अत एवाचार्यास्तदुत्पत्तिहेतुलिङ्गस्वरूपव्युत्पादनमेव कुर्वन्ति लक्षणे । कथं हि नाम विपरीतलिङ्गस्वरूपावधारणादनुमानोत्पत्तिर्भविष्यतीति । यदपि लोकायतं प्रत्यनुमानस्य प्रामाण्यप्रतिपादनं न कर्तव्यमिति चोच्यते तदप्ययुक्तम् । नह्यस्माभिरनुमानस्य प्रामाण्यं साध्यते । किं तर्हि ? । व्यवहारः । तथाहि—मिथ्याऽर्थशास्त्रश्रवणाद्व्यामूढो लोकायतः सिद्धेऽप्यनुमानस्य प्रामाण्ये साङ्ख्यवन्न तद्व्यवहारं प्रवर्त्तयति, तस्य विषयोपदर्शनेन विषयी व्यवहारः साध्यते—यद्यत उत्पन्नं तत्तत्प्रापणशक्तियुक्तं, यथा प्रत्यक्षं स्वार्थस्य, अनुमेयादुत्पन्नं चेदं तत्प्रतिबद्धलिङ्गदर्शनद्वारायातं लिङ्गज्ञानमित्येवं सङ्केतविषयकथनेन समये प्रवर्त्तनात् । तथाहि प्रत्यक्षेऽर्थाव्यभिचारनिबन्धन एवानेन प्रामाण्यव्यवहारः कुतः । अव्यभिचारश्चास्य कोऽन्यस्तदुत्पत्तेः । यथोक्तम्—“अर्थस्यासम्भवेऽभावात् प्रत्यक्षे-



ऽपि प्रमाणता । प्रतिबद्धस्वभावस्य तद्धेतुत्वे समं द्वय"मिति । तस्माद्यथा साङ्ख्य-  
स्तृणाग्ने करिसत्ताभावं व्यवस्यन्नपि शाल्मश्रवणव्यामोहादभावव्यवहारमप्रवर्षयन्प्र-  
वर्त्तते । तथाऽयमपि लोकायतः । न च चोदनाजनिताया बुद्धेः प्रामाण्यं सिद्धम्,  
येनात्राप्यनुमानवत्प्रामाण्यव्यवहारः साध्यत इति स्यात्, तत्र प्रतिबन्धासिद्धेः  
प्रामाण्यस्यैव साध्यत्वादिति न समानम् ॥ २९४५ ॥

स्यादेतत्—भवतु नाम मतमेदः, स कस्मात्स्वतःप्रामाण्ये सति न युज्यत  
इत्याह— विवादो भ्रान्तित इत्यादि ।

विवादो भ्रान्तितो यस्मात्सा च निश्चयबाधिता ।

निश्चिन्वन्तस्ततस्तत्त्वं विवदेरन्न वादिनः ॥ २९४६ ॥

अनेन विवादस्य निश्चयविरुद्धभ्रान्तिकार्यस्योपलम्भान्निश्चयाभावसिद्धिमादर्श-  
यन्ननुमानविरुद्धत्वं स्वतःप्रतिज्ञाया दर्शयति ॥ २९४६ ॥

अपरमपि निश्चयविरुद्धकार्योपलम्भमादर्शयति—स्वत इत्यादि ।

स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यस्य विनिश्चये ।

न विसंवादभाक्श्चिद्भवेन्निश्चयवृत्तितः ॥ २९४७ ॥

अप्रमाणे प्रमाणत्वबुद्ध्या वृत्तो हि वञ्चयते ।

स्वतःप्रामाण्यबोधात्तु विपरितो न कश्चन ॥ २९४८ ॥

विसंवादो हि निश्चयविरुद्धाया भ्रान्तेः कार्यत्वेन प्रतीतः, स च स्वतःप्रामा-  
ण्याभ्युपगमे सति न प्राप्नोति । निश्चयेन तत्कारणस्य भ्रान्तेरपनीतत्वात् । विप-  
रीत इति । विसंवादभाक् ॥ २९४७ ॥ २९४८ ॥

नन्वित्यादिना परः प्रत्यवतिष्ठते ।

नन्वप्रमाणतो वृत्तो विदं वा कं(विसंवादं?)समभ्रुते ।

निश्चयः परतस्तस्य बाधकात्प्रत्ययान्मतः ॥ २९४९ ॥

प्रमाणतः प्रवृत्तस्तु न विसंवादमभ्रुते ।

अस्यैव चेष्टयतेऽस्माभिः स्वतःप्रामाण्यनिश्चयः ॥ २९५० ॥

विसंवादो अप्रमाणात्प्रवृत्तस्य भवति । तस्य चाप्रमाणस्य परतो निश्चयोऽभ्युप-  
गत एव । यत्पुनः प्रमाणं न ततः प्रवृत्तस्य विसंवादोऽस्ति । तस्यैव च स्वतः-  
प्रामाण्यमिष्टमिति कथं स्वतःप्रामाण्यप्रतिज्ञाया अनुमानबाधा ॥ २९४९ ॥ २९५० ॥

नाभिप्रायेत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

नाभिप्रायापरिज्ञानादिदं ह्यत्र विवक्षितम् ।

स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यस्य विनिश्चये ॥ २९५१ ॥

नियते(तो ?)यथ(त्र ?) नैवास्ति स्वतःप्रामाण्यनिश्चयः ।

परिशेषबलात्तस्मिन्नप्रामाण्यं प्रतीयते ॥ २९५२ ॥

अर्थान्यथात्वहेतूत्थदोषज्ञानानपेक्षया ।

जन्मानन्तरमेवातस्तदप्रामाण्यनिश्चयात् ॥ २९५३ ॥

अप्रमाणे प्रमाणत्वविपर्यासो न सङ्गतः ।

अतोऽसंवादिनो नैव कश्चिद्वर्त्तत तद्गतेः ॥ २९५४ ॥

इदमत्र विवक्षितम्—यदि भवता सर्वप्रमाणानां स्वतःप्रामाण्यमभ्युपगम्यते तदा प्रामाण्यनिश्चयोत्पादेन प्रमाणं व्याप्तमित्यभ्युपगतं स्यात् । ततश्च यत्रैव प्रमाणव्यापकः प्रामाण्यनिश्चयो नोदेति तत्र सामर्थ्यात्प्रा(दप्रा?)माण्यमवतिष्ठते । प्रामाणाप्रमाणयोः परस्परव्यवच्छेदरूपत्वात् । ततश्चाप्रामाण्यमपि स्वत एव सामर्थ्यादापतितम्, विसंवादकारणदोषपरिज्ञानाद(न ?)पेक्षणात्, प्रामाण्यनिश्चयानुत्पत्तेरेवाप्रामाण्यस्य निश्चिनत्वात् । ततश्च यदुक्तम्—“निश्चयः परतस्तस्य बाधकात्प्रत्ययान्मतः” इति तन्नोपपद्यते । एवं च सति जन्मोत्तरमेव प्रामाण्यनिश्चयोत्पादानुत्पादाभ्यां प्रामाण्येतरयोर्निश्चितत्वादप्रामाणात्परिनिश्चिता नैव कस्यचित्पेक्षावतः प्रवृत्तिरेव सम्भवतीति कुतो विसंवादसम्भव इति । तद्गतेरिति । विसंवादिद्विगतेर्निश्चयादित्यर्थः । एते च प्रतिज्ञादोषोद्भावनमुखेन हेतोरव्याप्तिप्रकाशनाद्देतुदोषा एव द्रष्टव्याः, न तु प्रतिज्ञादोषाः । अन्यथा हि प्रतिज्ञाया असाधनाङ्गत्वात् तद्दोषोद्भावनं प्रतिवादिनो निग्रहस्थानं स्यात् ॥ २९५१ ॥ २९५२ ॥ २९५३ ॥ २९५४ ॥

घटादिवदिति दृष्टान्तस्यासिद्धिं प्रतिपादयन्नाह—जन्मातिरिक्तेत्यादि ।

जन्मातिरिक्तकालश्च क्रियाकालो न विद्यते ।

क्षणिकत्वाद्घटादीनामित्यसिद्धं निदर्शनम् ॥ २९५५ ॥

ननु च जन्मोत्तरकालं घटादयो दृश्यन्ते एव कुलालाद्यनपेक्षा मधूदकाद्यर्थ-क्रियाकारिणः, तत्कथं तेषां जन्मातिरिक्तः कालो न विद्यत इत्याह—तेषामित्यादि ।

तेषामुत्तरकालं हि कुलालाद्यनपेक्षिणाम् ।

स्वोपादानाद्यपेक्षत्वात्स्वतो नास्ति प्रवर्त्तनम् ॥ २९५६ ॥

स्वोपादनम्—पूर्वः पूर्वः सजातीयः क्षणः । आदिशब्देन तद्धारकपुरुषादिपरि-  
ग्रहः । एतदुक्तं भवति—उत्तरकालमन्य एव घटादिक्षणाः स्वोपादानाद्यपेक्षा  
वर्त्तमाना दृश्यन्ते न तु कस्यचिज्जन्मोत्तरकालमवस्थितिः सिद्धा क्षणिकत्वात्सर्व-  
भावानामिति ॥ २९५६ ॥

यथैव प्रथमं ज्ञानमित्यादावाह—न चेत्यादिना ।

न चानवस्थितिप्राप्तिरन्यतो मानसंश्रितौ ।

तस्मादर्थक्रियाज्ञाने स्वतःप्रामाण्यनिश्चयः ॥ २९५७ ॥

परः प्रत्यवतिष्ठते—(नन्वित्यादिना) ।

ननु कोऽतिशयस्तस्य प्राक्तनादस्ति येन तत् ।

परतः पूर्वविज्ञानमिव नाभ्युपगम्यते ॥ २९५८ ॥

उच्यत इत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

उच्यते वस्तुसंबादः प्रामाण्यमभिधीयते ।

तस्य चार्थक्रियाभ्यासज्ञानादन्यन्न लक्षणम् ॥ २९५९ ॥

अर्थक्रियावभासं च ज्ञानं संवेद्यते स्फुटम् ।

निश्चीयते च तन्मात्रभाष्यामर्शनचेतसा ॥ २९६० ॥

अतस्तस्य स्वतः सम्यक्प्रामाण्यस्य विनिश्चयात् ।

नोत्तरार्थक्रियाप्राप्तिप्रत्ययः समपेक्ष्यते ॥ २९६१ ॥

ज्ञानप्रमाणभावे च तस्मिन् कार्यावभासिनि ।

प्रत्यये प्रथमेऽप्यस्माद्धेतोः प्रामाण्यनिश्चयः ॥ २९६२ ॥

अयमत्र सङ्केपार्थः—प्रमाणं हि नामाविसंवादि ज्ञानमुच्यते । प्रमाणमविसंवादि  
ज्ञानमिति वचनात् । न (स ?)चाविसंवादोऽर्थक्रियालक्षण एव, तदर्थत्वात्प्रमाणचि-  
न्तायाः । यतोऽर्थक्रियार्थी प्रमाणमप्रमाणं वाऽन्वेषते प्रेक्षावान्न व्यसन्तिया । सा  
चार्थक्रिया दाहपाकादिनिर्भासज्ञानोदयलक्षणा, तदुत्पादादेवार्थक्रियार्थिनः प्रवृत्तस्या-  
क्काङ्क्षानिष्टेः । तच्चार्थक्रियाज्ञानमात्मसंवेदनप्रत्यक्षतया स्वयमेवाविर्भवति, स्पष्टानुभव-  
त्वाच्चानन्तरं यथानुभवं परामर्शज्ञानोत्पत्त्या निश्चितमिति स्वत एव सिद्धम् । न च तत्सा-  
ध्यं फलान्तरमाकाङ्क्षितं पुरुषेण, येनापरमर्थक्रियानिर्भासि प्रत्ययान्तरोदयमनुसरतो-  
ऽनवस्था स्यात् । तथाहि लोके सद्धि(वृद्धि ?)च्छेदादिकं फलममिवाञ्छितम्, तच्चाह्लाद-

परितापादिरूपज्ञानाविर्भावादेवाभिनिर्वृत्तमित्येतावतैवाहितसन्तोषा निवर्त्तन्ते जना इति स्वत एव तस्य सिद्धिरुच्यते । यत्पुनः पूर्वकं तत्कारणभूतं ज्ञानं तस्य न (च ?) तत्प्रापणशक्तिः प्रामाण्यमुच्यते । सा च शक्तिरनभ्यासादविदितकार्यैरवधारयितुं न शक्यत इत्युत्तरकार्यज्ञानप्रवृत्त्या निश्चीयत इति प्रथमस्य परतःप्रामाण्यमुच्यते ॥ २९५९ ॥ २९६० ॥ २९६१ ॥ २९६२ ॥

पुनरप्यनवस्थां प्रकारान्तरेण परिहरन्नाह—आद्य इत्यादि ।

आद्ये खवस्तुविषये वस्तुसंवादलक्षणम् ।

द्वितीयं न प्रवर्त्तत तस्य हेतोरसम्भवात् ॥ २९६३ ॥

अशोकस्तवकादौ हि पावकाध्यवसायिनः ।

न दाहपाकनिर्भासि विज्ञानं जातु जायते ॥ २९६४ ॥

जातौ वा न विजातीयं ज्वलनात्तत्प्रसज्यते ।

नत्कार्ययोग्यतामात्रलक्षणत्वाद्धिभावसोः ॥ २९६५ ॥

यदि हि—आद्यं—प्रथमं ज्ञानमवस्तुनि प्रवृत्तमभविष्यत्तदा फलज्ञानमुत्तरकाल-भावि नोदपत्स्यत, कारणाभावात्, वस्तुप्रतिबद्धत्वादर्थक्रियाज्ञानस्य । न ह्यनग्नि-प्राहिणो ज्ञानादशोकस्तवकादावग्न्यध्यवसायेन प्रवृत्तस्य दाहपाकादिनिर्भासिनः प्र-त्ययाः प्रसूयन्ते । प्रसवे वाऽग्निरेवासौ, कुतः ?, दाहपाकादिकार्योत्पत्तिहेतुत्वमात्रलक्षणत्वाद्धिभावसोः । वहेरित्यर्थः ॥ २९६३ ॥ २९६४ ॥ २९६५ ॥

तस्मादित्यादिनोपसंहरति ।

तस्मादर्थक्रियाभासं ज्ञानं यावन्न जायते ।

तावदाद्येऽप्रमाशङ्का जायते भ्रान्तिहेतुतः ॥ २९६६ ॥

ननु चार्थक्रियाज्ञानवदाद्यमपि ज्ञानं साक्षादन्यादिपदार्थजनितमेव, तत्किमिति तत्रैवाप्रामाण्याशङ्का, नोत्तरत्रेत्याशङ्क्याह—अनन्तरमित्यादि ।

अनन्तरं फलाहृष्टिः सादृश्यस्योपलम्भनम् ।

मतेरपद्गुतेत्यादि भ्रान्तिकारणमत्र च ॥ २९६७ ॥

कार्यावभासिविज्ञाने जाने त्वेतन्न विद्यते ।

साक्षाद्वस्तुनिबद्धायाः क्रियायाः प्रतिबेदनात् ॥ २९६८ ॥

आद्ये हि ज्ञाने भ्रान्तिकारणमस्ति, तथाहि तदनन्तरं दाहादिलक्षणस्य फलस्या-

नुत्पादो भ्रान्तज्ञानसाधर्म्यं बुद्धेरपाटवम् । आदिशब्देनानादरोऽनभ्यास इत्यादि  
गृह्यते । फलज्ञाने तु न किञ्चिद्भ्रान्तिकारणं विद्यत इति तस्य स्वत एव निश्चयः  
॥ २९६७ ॥ २९६८ ॥

आद्येऽपि ज्ञाने यत्राभ्यासादिना प्रोत्सारितं भ्रान्तिनिमित्तं तस्य स्वत एव  
प्रामाण्यमिति दर्शयन्नाह—वृत्तावित्यादि ।

**वृत्तावभ्यासवत्यां तु वैलक्षण्यं प्रतीयते ।**

**अतद्विषयतो ज्ञानादाद्ये(ऽ)प्राप्तेऽपि तत्फले ॥ २९६९ ॥**

अभ्यासबलेन यथा योगिनां मणिरूप्यादिषु वा तद्विदां दूरीकृतभ्रान्तिनिमित्त-  
मेव स्फुटप्रतिभासं प्रजायते विज्ञानमेवमन्यत्राप्यभ्यासबलात्स्फुटतरप्रतिभासतया  
निरस्तविभ्रमाशङ्कमुपजायमानमध्य ( व्य ? ) वधानेन सजातीयसाधारणाध्यवसायिनं  
न परा( सायिनं परा ? )मर्शप्रत्ययं जनयद्विजातीयतोऽतद्विषयाद्व्यावृत्तमवसीयत  
इति स्वत एव तस्य प्रामाण्यमुच्यते । यस्तु मन्यते—अभ्यासवत्यामपि प्रवृत्तौ  
ताद्रूप्यलक्षणलिङ्गदर्शनादनुमानत एवार्थप्रापणशक्तिलक्षणप्रामाण्यनिश्चय इति सर्वत्र  
परतःप्रामाण्यावसायो न कचिदेव स्वत इति । तन्न बुद्ध्यामहे । तथाहि—  
असङ्कीर्णताद्रूप्यलक्षणलिङ्गनिश्चय एव कुतो भवतीति वक्तव्यम् । अभ्यासादिति  
चेत्, एवं तर्हि यद्यभ्यासबलाद्विजातीयाकारव्यवच्छेदेन सजातीयसाधारणमस-  
ङ्कीर्णं सारूप्यमवसीयते भ्रान्तिकारणाभावात्क्रः प्रामाण्ये प्रद्वेषो येन तदनुभूतं  
( तौ ? ) भ्रान्तिकारणविरहेऽपि नाध्यवसीयत इति स्यात् । अपि च किमिदं सा-  
रूप्यं नाम, यदि बोधरूपता, सा मिथ्याज्ञानेऽप्यस्तीत्यनैकान्तिकता हेतोः । अथ  
लोहिताकारनिर्भासिता, साऽशोकस्तबकादिग्राहिविज्ञाने विद्यत इति व्यभिचार  
एव । अथाग्न्यादिपदार्थकार्यता, सा कथं निश्चितेति वक्तव्यम् । तत्सिद्धयर्थमपर-  
लिङ्गान्तरमनुसरतोऽनवस्था स्यात् । अथापि स्यादभ्यासबलादेव प्रत्यक्षतो लिङ्गानु-  
सरणमन्तरेणापि स्वत एव सा सिद्धेति । एवं तर्हि यद्यभ्यासस्येदृशं सामर्थ्यमभ्यु-  
पगम्यते, तदा मु(श ?)क्तिनिश्चयोऽप्यभ्यासबलादेवान्तरेणापि लिङ्गानुसरणं भव-  
तीति किं नाभ्युपगम्यते । किञ्च—यदि तत्कार्यता सिद्धा ज्ञानस्य तदा व्याप्यनु-  
सरणमनर्थकम्, तत्कार्यतावसायादेव तदर्थप्रापणशक्तिसिद्धेरनुमानज्ञानवत् । यथा-  
ऽनुमानज्ञानस्य वस्तुप्रतिबद्धलिङ्गदर्शनबलेनोत्पत्तेः पारम्पर्येण वस्तुकार्यतावसाया-  
देव स्वतःप्रामाण्यं न सारूप्यबलादन्यथा ह्यनवस्था स्यात्तथेहापि स्वत एव प्रामाण्यं

स्यात् । तथाहि—यत्र पक्षधर्मत्वनिश्चयेऽपि साध्यार्थप्रतीतिर्न जायते तत्र दृष्टान्त-  
धर्मिणि व्याप्तिमनुसरेत्प्रतिपत्ता, यथा कृतकत्वानित्यत्वयोः । इह तु ज्ञानस्य तत्कार्य-  
स्यावसायादेव तदर्थव्यभिचारितया तत्प्रापणशक्तिः सिद्धेति न ताद्रूप्यं लिङ्गम् ।  
यद्येवं कथमुक्तमाचार्येण लोकायतमधिकृत्य— “स खलु प्रत्यक्षं प्रमाणं नानुमान-  
मिति ब्रुवाणः कासांचिद्व्यक्तीनां प्रवृत्तौ संवादं विसंवादं चोपलभ्य तल्लक्षणं  
व्याप्त्या कथयेद्यथोपदेशं प्रवर्त्तमानस्याविप्रलम्भार्थम्, तद्यथादृष्टसाधर्म्यात्तथा प्रसा-  
धितमनुमेयतां नातिपत्ती”ति । नैष दोषः । स्वपरसन्तानवर्त्तिनीरननुभूतविषया  
बुद्धीरधिकृत्यैतदुक्तम् । अन्यत्रानुभूतविषयाभ्य इति वचनान् । अन्यथा हि यदि  
सारूप्यात्सर्वत्र प्रामाण्यं निश्चीयते तदाऽन्यत्रानुभूतविषयाभ्य इति प्रतिषेधोऽन-  
र्थकः स्यात् । तस्मादभ्यासबलात्प्रोत्सारितभ्रान्तिनिमित्तमुपजायते यत्तत्स्वत एव  
प्रमाणमिति स्थितम् ॥ २९६९ ॥

यदुक्तम्—“यथैव प्रथमज्ञानं तत्संवादमपेक्षते” इत्यादि, तत्राह—वैलक्षण्येत्यादि ।

वैलक्षण्यप्रतीतौ तु विजातीयार्थशङ्कया ।

कार्यावभासिविज्ञानादृते मानाविनिश्चयः ॥ २९७० ॥

तस्मिन्सदपि मानत्वं विनिश्चेतुं न शक्यते ।

उत्तराद्यक्रियाज्ञानात्केवलं तत्प्रतीयते ॥ २९७१ ॥

अतश्च प्रथमं ज्ञानं तत्संवादमपेक्षते ।

संवादेनापि संवादः पुनर्मृग्यस्तथैव न ॥ २९७२ ॥

यत्र ह्यनुभूतमपि प्रामाण्यं भ्रान्तिकारणसद्भावाद्द्विनिश्चेतुं न शक्यते तत्र परतो-  
ऽर्थक्रियाज्ञानान्निश्चीयते, तावन्मात्रेणैव च पुरुषस्याभीष्टार्थसंसिद्धेराकाङ्क्षा विनि-  
वृत्तेति न पुनः संवादेनाप्यपरः संवादस्तथैव—आद्यज्ञानवदपेक्षणीयः ॥ २९७० ॥  
॥ २९७१ ॥ २९७२ ॥

कस्यचित्तु यदीष्येन इत्यादावाह—भ्रान्तिहेतोरित्यादि ।

भ्रान्तिहेतोरसद्भावात्स्वतस्तस्य प्रमाणता ।

प्रथमस्य तदाभावे प्रद्वेषो भ्रान्तिसंभवात् ॥ २९७३ ॥

ननु च यत्सन्दिग्धार्थाविनाभावित्वेनानिश्चितार्थप्रापणसामर्थ्यं ज्ञानं तदनुमान-  
वन्न प्रमाणं प्राप्नोति । तथाहि—अनुमानस्यार्थाविनाभावसंशये सति न प्रामाण्य-

मिष्टम्, एवं प्रत्यक्षेऽपि न प्राप्नोति । नैष दोषः । नह्यनुमानवदर्थनान्तरीयकमा-  
 त्मानमुपदर्शयत्प्रत्यक्षं प्रमाणमिष्टम् । किं तर्हि ? । प्रतिभासनार्थावसायं कुर्वतु ।  
 तथाहि— अर्थक्रियार्थिनोऽभिमतमर्थं प्रापयत्प्रमाणमुच्यते । न चार्थदेशं पुरुषमुप-  
 सर्षयदर्थं वा पुरुषदेशमानयत्तन्प्रापकं भवति, अपि तु पुरुषं प्रवर्त्तयत । तं च पुरुषं  
 न हस्तेन गृहीत्वा प्रवर्त्तयति । किं तर्हि ? । प्रवृत्तिविषयमुपदर्शयत् । तच्चोपदर्शनं  
 प्रतिभासमानार्थावसायान्नान्यत । यत्र च संशयस्तत्रावश्यं प्रतिभासमानाकारावसायो-  
 ऽस्ति । तदनवसाये तद्विमर्शायोगात् । ततश्चैतावता प्रत्यक्षव्यापारपरिसमाप्तेः पश्चाद-  
 र्थाविनाभावसंशयो भवन्न प्रत्यक्षव्यापारमुपरुणद्धीति, सत्यपि संशयोदये भवत्येव  
 प्रामाण्यं प्रत्यक्षस्य । यत्तु प्रतिभासमानपदार्थविरुद्धाकारावसायाक्रान्तमुदेति तन्न  
 प्रमाणम्, यथा मरीचिकाग्नाहिज्ञानं जलावसायाक्रान्तम् । तत्र यथोक्तप्रमाणव्यापा-  
 राभावात् । यच्च शङ्खे पीतज्ञानं मणिप्रभायां मणिज्ञानं तदप्यप्रमाणमेव, तत्र यथार्थं  
 प्रतिभासावसाययोरभावात् । प्रतिभासवशाद्धि प्रत्यक्षस्य ग्रहणाग्रहणे नत्वर्थाविसं-  
 वादमात्रात् । न चात्र यथा स्वभावदेशकालावस्थितवस्तुप्रतिभासोऽस्ति, नरा(वा ?)-  
 देशकालः स एव भवति, देशकालयोरपि वस्तुस्वभावभेदकत्वात् । अन्यथा हि  
 भेदव्यवहारोच्छेदः स्यात् । अनुमानस्य तु विकल्पात्मकत्वेन सामान्यविषयत्वान्न  
 प्रतिभासवशाद्धस्तुविषयत्वव्यवस्था, वस्तुनोऽप्रतिभासात् । किं तर्हि ? । निश्चयव-  
 शात् । यथोक्तम्—“निश्चयैः । यन्न निश्चीयते रूपं तत्तेषां विषयः कथ”मिति ।  
 ततश्चानुमानस्य तदाभासशून्यस्यापि नान्तरीयकार्थदर्शनबलेनोत्पत्तेः । पारम्पर्येण  
 वस्तुनि प्रतिबन्धात्प्रामाण्यमित्यवश्यं तत्राविनाभावनिश्चयोऽपेक्षणीयः । अन्यथाऽ-  
 नुमानस्योत्पत्त्यसम्भवादिति नानुमानतुल्यं प्रत्यक्षम् ॥ २९७३ ॥

नन्वित्यादिना परः परतःप्रामाण्ये सतीतरेतराश्रयत्वमुद्भावयति ।

ननु तस्य प्रमाणत्वे विज्ञानस्याविनिश्चिते ।

कथं तत्र प्रवर्त्तत प्रेक्षावानीप्सितागतेः ॥ २९७४ ॥

तथाहि—प्रेक्षापूर्वकारिणः प्रामाण्यनिश्चये सति प्रवृत्त्या भवितव्यम्, प्रवृत्तौ  
 च सत्यां प्रामाण्यनिश्चय इतीतरेतराश्रयात्कथं प्रेक्षावत ईप्सितार्थाविनिश्चये सति  
 प्रवृत्तिः स्यात् ॥ २९७४ ॥

उच्यत इत्यादिना प्रतिविषत्ते ।

उच्यते संशयेनैव वर्त्ततेऽसौ विचक्षणः ।

वैचक्षण्यक्षतिस्तस्य न चैवमनुषज्यते ॥ २९७५ ॥

द्विविधा हि प्रवृत्तिरर्थक्रियार्था प्रामाण्यनिश्चयार्था च, तत्राद्या प्रवृत्तिः सत्यपि संशये यथा भवति तथा प्रतिपादितम्, प्रतिभासमानार्थावसायमात्रेणैव प्रत्यक्षस्य प्रवर्त्तकत्वात्, तेन वैचक्षण्यक्षतिरेवं सति नानुषज्यते, अर्थसंशयेनापि कृषीवलादीनामिव प्रवृत्तिदर्शनादित्यभिप्रायः । न च कृषीवलादिनामुपायनिश्चयेन प्रवृत्तैर्युक्ता प्रेक्षापूर्वकारितेति युक्तं वक्तुम्, उपेयापेक्षत्वादुपायस्य । उपेयानिश्चये तन्निश्चयायोगात् ॥ २९७५ ॥

द्वितीयाऽपि प्रवृत्तिः सत्यपि प्रामाण्यसंशये सुतरां युक्तैवेति दर्शयन्नाह—संशयेनेत्यादि ।

संशयेन यतो वृत्तेस्तत्प्रामाण्यविनिश्चये ।

निश्चितोपायता तेन मानं (सा च ?) सत्यपि संशये ॥ २९७६ ॥

यतो— यस्मात् प्रामाण्यनिश्चयं प्रति संशयेन प्रवृत्तेरेवोपायता तेन पुरुषेण निश्चिता, ततश्चोपायविषये संशयाभावात्प्रवृत्तिर्युक्तैव ॥ २९७६ ॥

कथं सा तेनोपायता निश्चितेत्याह—सन्देहेन प्रवृत्तावित्यादि ।

सन्देहेन प्रवृत्तौ मे फलप्राप्तिर्भवेद्यदि ।

प्रामाण्यनिश्चयस्तत्र ज्ञान एव भविष्यति ॥ २९७७ ॥

नान्यथेति न चाप्येवमनुयोगोऽत्र युक्तिमान् ।

उपाये वर्त्तते कस्मादिति न ह्यन्यथागतिः ॥ २९७८ ॥

न ह्युपायाद्विना कश्चिदुपेयं प्रतिपद्यते ।

इति संदेहवृत्तोऽपि प्रेक्षावत्तां जहानि न ॥ २९७९ ॥

सन्देहवृत्तोऽपीति । प्रामाण्यसन्देहेन प्रवृत्तोऽपीत्यर्थः । शेषं सुबोधत्वात्प्रविभक्तम् ॥ २९७७ ॥ २९७८ ॥ २९७९ ॥

ननु चेत्यादिना परोऽर्थक्रियाज्ञानात्प्रामाण्यनिश्चयस्यानैकान्तिकतां दर्शयन्ननवस्था-मेव समर्थयते ।

ननु चार्थक्रियाभासि ज्ञानं स्वप्नेऽपि विद्यते ।

न च तस्य प्रमाणत्वं तद्धेतोः प्रथमस्य च ॥ २९८० ॥



तद्धेतोः प्रथमस्येति । अर्थक्रियाज्ञानहेतोः । न प्रमाणत्वमिति सम्बन्धः ॥२९८०॥  
नैवमित्यादिना प्रतिविधते ।

नैवं भ्रान्ता हि साऽवस्था सर्वा बाह्यानिबन्धना ।

न बाह्यवस्तुसंवादस्तास्ववस्थासु विद्यते ॥ २९८१ ॥

स्वसंविदितरूपाश्च चित्तचैत्ताविलक्षणाः ।

अवस्थाद्वयभेदोऽपि स्पष्टं तेन प्रतीयते ॥ २९८२ ॥

यदि तावद्बाह्यार्थ(वादिनं)बौद्धं प्रति चोद्यते तदाऽसिद्धमिति प्रथमेन श्लोकेन दर्शितम् । तथाहि तेन बाह्यार्थवादिनाऽर्थसंवादात्प्रामाण्यमिष्टं नार्थक्रियाज्ञानसंवादात्, न च स्वप्नेऽर्थसंवादोऽस्ति सर्वस्या एव स्वप्नावस्थाया भ्रान्तत्वेन सर्वेषामविसंवादात्, तत्र सर्वविज्ञानानामर्थमन्तरेणैवोत्पत्तेर्निर्विषयत्वम्, तेन जाग्रदवस्थायां भाविन एव ज्ञानस्य प्रामाण्यलक्षणावतारान्नानेन व्याभिचारो युक्त इति भावः । किञ्च—अप्रवृत्ति(त्त?)मपूर्वकमस्थिरं व्याकुलं च स्वप्नेऽर्थक्रियाज्ञानम्, तद्विपरीतं जाग्रदवस्थायामिति तथाविधस्य प्रामाण्ये कुतः स्वप्नेनानैकान्तः । अथ योगाचारं प्रति चोद्यते, तत्रापीदं प्रकृतानुयोगि । तथाहि—सांख्यवहारिकस्येदं प्रमाणस्य लक्षणं 'प्रमाणमविसंवादि ज्ञान'मिति । तत्र चार्थक्रियार्निर्भासिज्ञानसंवेदनमेवाविसंवादः, तदाविर्भावे लोकस्य तथा व्यवहारात् । तदर्थत्वाच्चार्यप्रवृत्तेः । तच्च सांख्यवहारिकं ज्ञानं जाग्रदवस्थाभाव्येव । तत्रैव लोके सर्वव्यवहाराणां पारमार्थिकत्वाभिनिवेशात् । न तु स्वप्नावस्थायाम् ततश्च जाग्रत्प्रत्ययत्वे सतीति विशेषणस्याश्रवणात्तेतरेण व्यभिचारः ॥ २९८१ ॥ २९८२ ॥

स्यान्मतं परतस्तस्य प्रामाण्यस्य विनिश्चये ।

प्रसज्यते प्रमेयत्वमिति नन्वविरोध्यदः ॥ २९८३ ॥

स्यादेतत्—तुल्ये सर्वाकारतः ( सर्वस्य परतः ? ) प्रतिभासे कथमयं भेदो निश्चीयते, तदा प्रमाणान्तरेण भीयमानत्वात्तत्प्रमेयं प्राप्नोति, न च प्रमाणमेव प्रमेयं युक्तं विरोधादिति चोद्यम् । नन्वविरोध्यद इति परिहारः । अद इति । एतत् । अपेक्षाभेदात्कार्यकारणपितृपुत्रव्यपदेशवदविरोधि ॥ २९८३ ॥

एतदेव दर्शयति—तद्बाह्येत्यादि ।

तद्बाह्यवस्त्वपेक्षं हि प्रामाण्यं तस्य गीयते ।

परतोऽवगतेस्तस्य प्रमेयत्वव्यवस्थितिः ॥ २९८४ ॥

अपेक्षामेदतश्चैवं कार्यकारणतादिवत् ।

प्रमाणत्वप्रमेयत्वव्यवस्था न विरुध्यते ॥ २९८५ ॥

तेन ज्ञानेन यद्वाच्यं वस्तु तदपेक्षया तत्प्रमाणमेव न प्रमेयम्, व्यवस्थापकप्रमाणान्तरापेक्षया तु प्रमेयमेव न प्रमाणमिति न साङ्कर्यदोषः । यथा कार्य कारणमिति व्यपेक्षामेदान्न सङ्कीर्यते ॥ २९८४ ॥ २९८५ ॥

एवमित्यादिनोपसंहरति—

एवमर्थक्रियाज्ञानात्प्रमाणत्वविनिश्चये ।

नानवस्था पराकाङ्क्षाविनिवृत्तेरिति स्थितम् ॥ २९८६ ॥

पराकाङ्क्षाविनिवृत्तेरिति । परा—अन्या चासावाकाङ्क्षा चेति विग्रहः । परस्मिन्वा—संवादादन्यस्मिन् आकाङ्क्षा पराकाङ्क्षा, तस्या विनिवृत्तेरिति समासः । किञ्च—प्रमाणमविसंवादिज्ञानमित्यनेनार्थक्रियाधिगमलक्षणफलप्रापकहेतोर्ज्ञानस्येदं लक्षणमुच्यते । ततश्च फल(ला ?)ज्ञाने लक्षणानवतारात्, कथं तस्यापि प्रामाण्यमवसीयत इत्यस्य चोद्यस्यावकाशः कथं भवेत् । तथा ब्रह्मरस्य हेतुर्बीजमिति लक्षणे सति अङ्गु-रस्यापि कथं बीजत्वमिति किं विदुषां प्रश्नो जायते । यथा च बीजस्य तद्भावोऽङ्गु-रदर्शनादवगम्यते तथा प्रमाणस्यापि तद्भावोऽर्थक्रियालक्षणफलदर्शनात् । न च तत्र फलमन्येन प्रमाणेनावगम्यते यतोऽनवस्था प्रसज्यते । ज्ञानात्मनः फलस्य स्वत एव संवेदनात्सिद्धेः । न च स्वरूपे ज्ञानस्य भ्रान्तिः संभवति । तदनिश्चये स्वसंवेदन-स्यैवाभावप्रसङ्गादिति यत्किञ्चिदेतत् ॥ २९८६ ॥

इदानीं कारणविशुद्धिद्वारेण प्रामाण्यनिश्चयेऽनवस्थादोषं समुत्पन्नेऽपीत्यादिना श्लोकेन पूर्वपक्षमुत्क्षिप्य अत्रापीत्यादिना परिहरति ।

समुत्पन्नेऽपि विज्ञाने न तावदवधार्यते ;

यावत्कारणशुद्धत्वं न प्रमाणान्तराङ्गतम् ॥ २९८७ ॥

अत्रापि सुधियः प्राहुर्नानवस्थेति येन सा ।

शुद्धिः संवादिनो ज्ञानादनपेक्षात्प्रतीयते ॥ २९८८ ॥

सन्निकृष्टे हि विषये कार्यसंवाददृष्टितः ।

कारणानां विशुद्धत्वमयत्नेनैव गम्यते ॥ २९८९ ॥

विप्रकृष्टे हि विषये तदुद्भूता मतिः प्रमा ।

तज्जन्यत्वाद्यथैवेयं सन्निकृष्टार्थगोचरम् ॥ २९९० ॥

द्विविधं हि ज्ञानं सन्निकृष्टविषयं विप्रकृष्टविषयं च । तत्र यत्तावत्सन्निकृष्टविषयं तस्य न कारणगुणावधारणात्प्रामाण्यनिश्चयः । किं तर्हि ? । अर्थक्रियासंवादविज्ञानात् । तथाहि न तत्र गुणावधारणं सम्भवति यावदर्थक्रियासंवादात्सम्यक्त्वं नावसीयते, ततश्चावस्थिते सम्यक्त्वे पश्चात्कालभावि कारणगुणावधारणमकिञ्चित्करमेव । यत्पुनर्विप्रकृष्टार्थविषयं ज्ञानं तस्य कारणगुणनिश्चयात्प्रामाण्यनिश्चय इति दर्शयन्नाह—विप्रकृष्टे हीत्यादि । यद्विप्रकृष्टविषयं सौवर्णशङ्कुमाहिविज्ञानं तस्य तज्जन्यत्वात्—विशुद्धकारणजन्यत्वात्, सन्निकृष्टविषयशुक्लशङ्कुमाहिविज्ञानवत्प्रामाण्यनिश्चयः । प्रयोगः—यद्विशुद्धकारणजनितं तत्प्रमाणं, यथा सन्निकृष्टार्थविषयं शुक्लशङ्कुमाहिविज्ञानं, विशुद्धकारणजनितं चेदं विप्रकृष्टार्थविषयं पीताकारशङ्कुवभासि विज्ञानमिति स्वभावहेतुः ॥ २२८७ ॥ २९८८ ॥ २९८९ ॥ २९९० ॥

ननु चासिद्धो हेतुः । तथाहि—कारणशुद्धिर्नार्थसंवादमन्तरेणावधारयितुं शक्यते, अतीन्द्रियत्वादिन्द्रियाणाम् । अर्थसंवादापेक्षायां च तदेव प्रामाण्यं निश्चितमिति कारणगुणावधारणमनर्थकमेव स्यात् । तस्य प्रामाण्यनिश्चयोत्तरकालभावित्वात् । अथापि स्यादेकदा सन्निकृष्टविषयाद्विज्ञानादर्थक्रियासंवादतो गुणवत्तां निश्चित्यान्यदा विप्रकृष्टविषयस्यापि ज्ञानस्य संवादमन्तरेणैव कालान्तरेण गुणवत्ताया निश्चितत्वात्ततः प्रामाण्यनिश्चयो भविष्यतीति । तदेतदसम्यक् । नहि क्षणक्षयिणां भावानामेकरूपैव प्रवृत्तिः सम्भवति । अपरापरप्रत्ययोपयोगेन प्रतिक्षणं भिन्नशक्तित्वादित्येतत्सर्वमाशङ्क्याह—सितसाध्यक्रियावाप्त्येत्यादि ।

सितसाध्यक्रियावाप्त्या यथा शङ्के पुरःस्थिते ।

कामलाक्रान्तनेत्रोत्थविज्ञानं नेति गम्यते ॥ २९९१ ॥

इत्थं कारणसंशुद्धौ प्रणीतायां तदैव या ।

शातकुम्भमये शङ्के पीताकारमतिर्भवेत् ॥ २९९२ ॥

विशुद्धकारणोत्पादास्वस्याः प्रामाण्यनिश्चयः ।

निष्पादितक्रिये कम्बौ सिताकारमतेरिव ॥ २९९३ ॥

अनेनैतदाह—न ह्यस्माभिः कालान्तरभाविनो विप्रकृष्टविषयस्य ज्ञानस्य कारणपरिशुद्ध्या प्रामाण्यं निश्चीयते, येनासिद्धता हेतोर्भवेत्, प्रतिक्षणमपरापरप्रत्ययोपयोगेन भिन्नशक्तिसंभवादिति । किं तर्हि ? । यदैव सन्निकृष्टविषयस्य ज्ञानस्य

शुद्धशब्दाग्रहिणः सितसाध्यार्थक्रियाप्राप्त्या कारणशुद्धिनिश्चयस्तदैव या विप्रकृष्टदे-  
शवर्तिनि शातकुम्भमये शङ्के पीताकारा धीरुपजायते तस्याः कारणपरिशुद्धितः  
प्रामाण्यमवसीयते । न वा तस्यामेवावस्थायां कारणान्यथात्वं सम्भवति—माभूत्स-  
न्निकृष्टार्थविषयज्ञानस्यार्थक्रियाविसंवाद इति ॥ २९९१ ॥ २९९२ ॥ २९९३ ॥

एतच्च भवद्भिर्मीमांसकैरिष्टमेवेति दर्शयन्नाह—क्षुदाद्यनुपघातादीत्यादि ।

**क्षुदाद्यनुपघातादिवचनादिदमुक्तवान् ।**

**भाष्यकारोऽप्यतो मोहादनवस्थेह चोच्यते ॥ २९९४ ॥**

अनेन प्रतिज्ञायाः स्ववचनविरोधोऽपि प्रतिपादितः । तथाहि भाष्यकारेणोक्तम्  
—“यदा क्षुदादिभिरुपहतं मनो भवतीन्द्रियं वा, सौक्ष्म्यादिभिर्वा बाह्यो विषयः,  
ततो मिथ्याज्ञानम् अनुपहतेषु सम्यग्ज्ञानम् । इन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षो हि ज्ञानस्य  
हेतुः, असति तस्मिन्नज्ञानात्तद्रतो हि दोषो मिथ्याज्ञानस्य हेतुः, दुष्टेषु हि ज्ञानं  
मिथ्या भवति, दोषापगमे संप्रतिपत्तिदर्शनात् । कथं दुष्टावगम इति चेत्प्रयत्नेना-  
न्विच्छन्तो न चेद्दोषमवगच्छेम प्रमाणाभावाददुष्टमिति मन्येमही”ति । अनेन हि  
ग्रन्थेन भाष्यकृता कारणशुद्धिज्ञानात्प्रामाण्यनिश्चयः स्पष्टमाख्यातः । अन्यथा  
(प्र)यत्नेनान्विच्छन्त इत्यनेन किं दर्शितं भवेत् । ततश्च स्वतःप्रामाण्यप्रतिज्ञाव्या-  
घातः ॥ २९९४ ॥

यदुक्तम्—“संवादगुणविज्ञाने केन वाभ्यधिके मते” इति । तत्र संवादं प्रति  
पूर्वमुक्तम्, गुणज्ञानं प्रत्याह—दुष्टेत्यादि ।

**दुष्टकारणजन्यत्वशङ्कया नाधिगम्यते ।**

**मानताऽऽद्यस्य तच्छुद्धिज्ञानमभ्यधिकं मतम् ॥ २९९५ ॥**

मानतेति । प्रामाण्यम् । आद्यस्येति । अर्थज्ञानस्य । तद्धि कारणशुद्धिज्ञाना-  
त्प्रथमभावित्वादाद्यम् । तदिति । तस्मात् ॥ २९९५ ॥

एवमित्यादिना प्रवृत्तेरह(दु ?)ष्टतां दर्शयति—

**एवं चार्थक्रियाज्ञानाद्धेतुशुद्धिविनिश्चितौ ।**

**अकृतार्थक्रिये वृत्तेरर्थ(रेषाऽ ?)वाच्योपपद्यते ॥ २९९६ ॥**

अकृतार्थक्रिय इति । अकृता अर्थक्रिया येन स तथोक्तः । अवाच्येति । अव-  
चनीया अनिन्धेत्यर्थः । प्रामाण्यनिश्चयपूर्वत्वादस्या इति मन्यते ॥ २९९६ ॥

तस्मात्स्वतःप्रमाणत्वं सर्वत्रौत्सर्गिकं स्थितमित्यादावाह—यदि स्वत इत्यादि ।

यदि स्वतःप्रमाणत्वं सर्वत्रौत्सर्गिकं स्थितम् ।

बाधकारणदुष्टत्वज्ञानाभ्यां तदपोच्यते ॥ २९९७ ॥

बाधकारणदुष्टत्वज्ञानाभावात्प्रमाणता ।

प्राप्तैवं च परस्मात्ते भवेत्प्रामाण्यनिश्चयः ॥ २९९८ ॥

तथाहि तदभावोऽयमभावाख्यं प्रमान्तरम् ।

त्वत्पक्षेऽनुपलम्भाख्यमनुमानं तु मन्मते ॥ २९९९ ॥

अत्र प्रथमेन श्लोकेन परपक्षानुवादः, द्वितीयादिना दूषणम् । यदि हि बाध-  
कादिप्रत्ययेन प्रामाण्यमपोच्यते, एवं सति बाधकादिप्रत्ययाभावात्प्रामाण्यनिश्चयोऽ-  
भ्युपगतः स्यात् । ततश्च परत एव प्रामाण्यमुक्तं भवेत् । अभावस्यापि प्रमाणान्त-  
रत्वेनेष्टत्वात् । अस्मत्पक्षे त्वनुपलब्धिसंज्ञकेऽनुमानेऽन्तर्भावान्न प्रमाणान्तरम्  
॥ २९९७ ॥ २९९८ ॥ २९९९ ॥

किञ्चोत्सर्गापवादयोः कल्पिते(न) शब्दार्थविषयत्वेनानवस्थितत्वाद्ब्रह्मस्तुचिन्ता-  
यामनधिकार एव, सर्ववस्तूनां स्वस्वभावव्ययस्थितत्वेन स्वभावान्तरानुगमाभावात्,  
केवलं तदुपन्यासो भवत उत्सर्गापवादविषयानभिज्ञतामेव प्रकटयति । तथाहि—  
त्वदुपवर्णितयैवोपपत्त्या विपरितोऽप्युत्सर्गापवादः शक्यते कल्पयितुमिति दर्शयति  
अनयैवेत्यादि ।

अनयैवोपपत्त्या स्यादप्रामाण्यमपि स्वतः ।

तत्रापि शक्यते वक्तुं यस्माद्ग्यायोऽयमीदृशः ॥ ३००० ॥

तस्मात्स्वतोऽप्रमाणत्वं सर्वत्रौत्सर्गिकं स्थितम् ।

बाधकारणदुष्टत्वज्ञानाभावादपोच्यते ॥ ३००१ ॥

यदप्युक्तं कुमारिलेन—“तस्माद्बोधात्मकत्वेन प्राप्ता बुद्धेः प्रमाणता । अर्थान्य-  
थात्वहेतूत्थदोषज्ञानादपोच्यते ॥” इति, अनयापि हि दिशा शक्यमपि वक्तुमिति  
दर्शयन्नाह—तथा बोधात्मकत्वेनेत्यादि ।

तथा बोधात्मकत्वेन बुद्धेः प्राप्ताऽप्रमाणता ।

यथार्थज्ञानहेतूत्थगुणज्ञानादपोच्यते ॥ ३००२ ॥

अप्रामाण्ये परायत्ते भवत्येवानवस्थितिः ।

प्रमाणाधीनमेतद्धि स्वतस्तथाप्रतिष्ठितम् ॥ ३००३ ॥

अप्रमाणतेत्यकारप्रश्लेषः । यथार्थज्ञानं च—अर्थसंवादज्ञानं, हेतुत्थगुणज्ञानं च—कारणसमुत्थगुणज्ञानमिति समाहारद्वन्द्वः । परायत्तेऽपि तस्मिन्नित्यादावाह—  
अप्रामाण्य इत्यादि । एतद्धीति । अप्रामाण्यम् । तच्चेति । प्रमाणम् ॥ ३००२ ॥  
॥ ३००३ ॥

कथमप्रतिष्ठितमित्याह— तथाहीत्यादि ।

तथाहि बाधकाभावात्प्रामाण्यं भवतोच्यते ।

बाधाभावोऽप्यभावारूपं प्रमाणान्तरमिष्यते ॥ ३००४ ॥

तस्यापि बाधकाभावात्प्रामाण्यमभिधीयते ।

तत्र तत्रैवमिच्छायां व्यवस्था नोपलभ्यते ॥ ३००५ ॥

यदुक्तम्—बाधकः प्रत्यय इत्यादि तत्राह—अनपेक्षप्रमाणत्वमित्यादि ।

अनपेक्षप्रमाणत्वं बाधकप्रत्यये यतः ।

न सिद्धं तेन नैवायं पूर्वज्ञानमपोहते ॥ ३००६ ॥

अभावाख्यस्य प्रमाणस्यापेक्षितत्वादनपेक्षप्रमाणत्वमस्यासिद्धम् ॥ ३००६ ॥

अथापीत्यादिना । अनवस्थामेव समर्थयते ।

अथापि बाधकाभावं विना प्रामाण्यमिष्यते ।

क्वचिदाद्ये तथाभावे प्रद्वेषः किंनिमित्तकः ॥ ३००७ ॥

यद्यनवस्थाभयात्क्वचिद्विनैव बाधकाभावं प्रामाण्यमिष्यते तदा प्रथमेऽपि ज्ञाने  
बाधकाभावो नापेक्षणीयः स्यात् ततश्च सर्वज्ञानानां प्रामाण्यप्रसङ्गः ॥ ३००७ ॥

यदुक्तम्— तत्रापि त्वपवादस्य स्यादपेक्षेत्यादि । तत्राह—बाधकः प्रत्ययश्चाय-  
मित्यादि ।

बाधकः प्रत्ययश्चायं पूर्वज्ञानमपोहते ।

अनपेक्षप्रमाणत्वाद्यदि शङ्काऽत्र किं भवेत् ॥ ३००८ ॥

अनपेक्ष्यप्रमाणत्वं शङ्कयते चात्र बाधकम् ।

विरुद्धमेतदाशङ्का निश्चिते न हि जायते ॥ ३००९ ॥

यदि बाधकः प्रत्ययोऽनपेक्ष्यप्रमाणभावस्तत्कथं तत्रापवादाशङ्का, येनोच्यते  
तत्रापि त्वपवादस्य स्यादपेक्षेति, ततश्च परस्परव्याहृतमेतदुक्तम्—अनपेक्षप्रमाण-  
त्वम्, तत्र चाशङ्कयते बाधकमिति ! तथा अनपेक्षमित्यनेन निश्चयेन विषयीकृतमु-

च्यते, यत्र च निश्चयस्तत्राशङ्काया असम्भवः, निश्चयारोपमनसोर्बाध्यबाधकभा-  
वात्, आशङ्कायाश्चोभयांशलम्बित्वेनारोपाकारप्रवृत्तत्वात् ॥ ३००८ ॥ ३००९ ॥

अथानुरूपयत्नेनेत्यादावाह—स्वतःप्रामाण्यपक्ष इत्यादि ।

स्वतःप्रामाण्यपक्षेऽपि स्वरसेनैव निश्चयात् ।

कस्माद्बाधकसद्भावसिद्धौ यत्नो विधीयते ॥ ३०१० ॥

तथाहि स्वरसेनैव न यस्मिन्माननिश्चयः ।

निश्चीयतेऽन्न(प्य ?)यत्नेन सामर्थ्यात्तत्र बाधकः ॥ ३०११ ॥

अतः परीक्षकज्ञानत्रयमत्र किमुच्यते ।

नैकस्याप्यवकाशोऽस्ति तस्मिन्निश्चयतः स्वतः ॥ ३०१२ ॥

यदि चोत्पद्यते शङ्काऽनुपलम्भेऽपि संशयात् ।

बाधाभावविनाभूतं यस्मान्नानुपलम्भनम् ॥ ३०१३ ॥

एवं सति त्रये कस्मात्परितोषस्त्वया कृतः ।

अदृष्टावपि शङ्कयेत बाधा पूर्ववदत्र हि ॥ ३०१४ ॥

यावन्न कार्यसंवादस्तावन्न विनिवर्त्तते ।

बाधाशङ्का यतस्तस्मिन्नियमस्त्रितयेऽफलः ॥ ३०१५ ॥

ततश्चाजातबाधेनाप्याशङ्क्यं बाधकं पुनः ।

छलेन वस्तुनस्तत्त्वं नहि जात्ववतिष्ठते ॥ ३०१६ ॥

आजीवितात्ममुत्पन्नं बाधप्रत्ययवर्जितम् ।

शङ्के पीतनिभं ज्ञानं प्रमाणं नहि जायते ॥ ३०१७ ॥

यदि स्वत एव प्रामाण्यनिश्चयस्तदा निश्चयेन प्रामाण्यस्य व्यासत्वाद्यत्रानिश्चय-  
स्तत्र सामर्थ्यादप्रामाण्यस्यावस्थानाद्बाधकसद्भावो यत्नमन्तरेणैव निश्चित इति तद्भा-  
वसिद्धयर्थो व्यर्थो यत्नः, तत्र चैकस्यापि परीक्षकज्ञानस्यापेक्षावकाशो नैव संभवती-  
ति, किं पुनस्त्रयाणामित्यत इदमप्यसङ्गतमुक्तम्—इदं च परीक्षकज्ञानत्रितयं नाती-  
वर्त्तत इति दर्शयति—अत इत्यादि । स्यादेतत्—अनुपलम्भमात्रेण बाधकाभावो  
न शक्यते निश्चेतुम्, सतोऽपि कस्यचिद्दूरसूक्ष्मव्यवहितस्यानुपलब्धेर्बाधकाभा-  
वेनानुपलम्भस्याव्यासत्वात्, तेन बाधकाभावसिद्धये यत्नो विधीयत इति । यथेवं  
परीक्षकज्ञानत्रयनियमं जहीहि, प्रथमज्ञानवदन्यत्रापि बाधकस्याशङ्क्यमानत्वात्,

यावद्वि(द्धि ?) फलज्ञानं नोदेति तावद्वाधाशङ्का केन निवर्त्तताम् , येन त्रयनियमः स्यात् , न बाक्रोशमात्रेणैव विना प्रमाणं प्रेक्षावतामाशङ्कानिवृत्तिर्युक्ता । तथाहि वस्तुस्थित्या प्रमाणचिन्ता, नायं छलव्यवहारः प्रस्तुतो येन कतिपयप्रत्ययमात्रं निरूप्यते । यदि पुनर्ज्ञानत्रयोदयावधिमात्रेण प्रामाण्यमवतिष्ठते हन्त तर्हि येषामाजीवितं कामलोपहतचक्षुषां पीतशङ्काकारमेव ज्ञानमुपजायते तेषां तद्विज्ञानं प्रमाणं स्यात् ॥ ३०१० ॥ ३०११ ॥ ३०१२ ॥ ३०१३ ॥ ३०१४ ॥ ३०१५ ॥ ३०१६ ॥ ३०१७ ॥

स्यादेतद्यद्यप्रमाणं तस्य किमिति ज्ञानत्रयपरीक्षाया ऊर्ध्वं बाधकं नोपजायते, अनुत्पत्तेर्नास्तीत्यवसीयत इत्याशङ्क्याह—विशुद्धीत्यादि ।

**विशुद्धिकारणाभावान्नोपजायेत बाधकम् ।**

**अन्येन वा निमित्तेन नानः शङ्का निवर्त्तते ॥ ३०१८ ॥**

विशुद्धेः कारणं द्रोणकुसुमरसनिषेकादि । तस्याभावान्नोपजायते बाधकम् । अन्येन वा निमित्तेनेति । यथा मरुमरीचिकानिचये समुपजायतसलिलविभ्रमस्य पुंसोऽनुपसर्पणात्सलिलस्वभावविविक्तमरुस्थलीनिर्भासि ज्ञानं नोपजायते ॥ ३०१८ ॥

उत्प्रेक्षेत हीत्यादावाह—सनिमित्तैवेत्यादि ।

**सनिमित्तैव तेनेयमाशङ्का यत्र मोहतः ।**

**शुद्धिसंवाददृष्टौ तु नाशङ्का सुधियो भवेत् ॥ ३०१९ ॥**

**स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा न जायते ।**

**निःसंशया हि धीस्तस्य शुद्धिसंवाददर्शने ॥ ३०२० ॥**

**अत्रापि यः पुनः शङ्कां कश्चित्प्रकुरुते जडः ।**

**संशयात्मकता ये(ऽजे ?)न मन्ये तं प्रति निन्दिता ॥ ३०२१ ॥**

प्रतिपादितमेतद्यथा कारणशुद्धिसंवादज्ञानाभ्यां शङ्का निवर्त्तते । यत्पुनरुक्तं तथा च वासुदेवेनेत्यादि, तत्केवलमात्मनो भक्तिवादावलम्बनं प्रकटितं न वस्तुस्थितिः । नहि वचनमात्रान्निर्युक्तिकात्परस्य प्रेक्षावतो व्युत्थितचेतसस्तत्त्वभावनिर्णयो ज्ञायते । तथाहि वासुदेववचनमन्येनाभिसम्बन्धिना व्यवस्थितत्वादविरोधीति दर्शयन्नाह—अत्रापीत्यादि । अत्र—शुद्धिसंवाददर्शने, यो भवद्विधः शङ्कां कुरुते संवादेनापि संवादः पुनर्मृग्यस्तथैव हीत्येवम् , तं प्रति, अजेन—विष्णुना, संशयात्मकता निन्दितेति संभाव्यते ॥ ३०१९ ॥ ३०२० ॥ ३०२१ ॥



यावानेवापवादोऽतो यत्र सम्भाव्यते मतावित्यादावाह—देशेत्यादि ।

देशकालनरावस्थाभेदापेक्षाप्रकल्पिते ।

प्रामाण्यनिश्चयेऽन्यस्माद्व्यक्तं प्रामाण्यनिश्चितिः ॥ ३०२२ ॥

तथाहि देशकालादौ बाधाभावात्सुनिश्चितौ ।

प्रमाणान्तरतः प्राच्ये ज्ञाने प्रामाण्यनिश्चयः ॥ ३०२३ ॥

अनेन स्ववचनविरोधं प्रतिपादयति । तथाहि—देशकालनरावस्थापेक्षया प्रामा-  
ण्यनिश्चये प्रकल्प्यमाने परत एवेति स्पष्टमुक्तं भवति । यतो देशकालादौ प्रमाणान्त-  
रतो बाधाया अभावे निश्चिते सति प्राच्ये—प्रथमे ज्ञाने प्रामाण्यनिश्चयोऽभ्युपग-  
म्यमानः कथं परतो नाभ्युपगतः स्यात् । अवश्यं हि प्रमाणान्तरतो बाधाया  
अभावो निश्च(श्चे ?)यः, तथाहि—स्वतःप्रामाण्येऽभ्युपगम्यमाने सर्वज्ञानानां प्रामा-  
ण्यप्रसङ्गो माभूदित्यवश्यं त्वया वक्तव्यं यत्र बाधा नास्ति तस्यैव स्वतःप्रामाण्यं  
नान्यस्येति, स च बाधाया अभावोऽनुपलम्भमात्रान्न शक्यते निश्चेतुं व्यभिचारा-  
दिति सामर्थ्यानुपलब्धिलक्षणप्राप्तानुपलम्भतो निश्चयेः, तस्यैव बाधाभावेन व्याप्त-  
त्वात् । स चोपलब्धिलक्षणप्राप्तानुपलम्भः संवादविज्ञानतो नान्यो युक्त इति प्रमा-  
णान्तरत एव प्रामाण्यनिश्चयोऽभ्युपगतः स्यात् ॥ ३०२२ ॥ ३०२३ ॥

ऋणादीत्यादावाह—ऋणादीत्यादि ।

ऋणादिव्यवहारस्तु यो वाक्यत्रययोग्यवान् ।

स तादृशस्थलात्मैव नोदाहार्यः प्रमास्थितौ ॥ ३०२४ ॥

अर्थिप्रत्यर्थिनौ तत्र स्मृत्वा स्मृत्वा परिस्फुटम् ।

नहि सूक्ष्मेक्षिकां कर्तुं लभेते तत्र वस्तुनि ॥ ३०२५ ॥

वस्तुस्थित्या प्रमाणं तु व्यवस्थाप्यं छलासनु ।

प्रकृताप्रतिरूपोऽतो व्यवहार उदाहृतः ॥ ३०२६ ॥

वस्तुस्वभावप्रतिबद्धायां प्रमास्थितौ प्रकृतायां इच्छामात्रविरचितसङ्केतप्रतिबद्धस्य  
छलात्मनो यदृणादिव्यवहारस्योदाहरणं तत्केवलं भवतः प्रकृतानभिज्ञतां प्रकटयति  
॥ ३०२४ ॥ ३०२५ ॥ ३०२६ ॥

त्रिसत्यतापि देवानामित्यादावाह—त्रिसत्येत्यादि ।

त्रिसत्यताऽपि देवानां नैव निश्चितिकारणम् ।

आद्यानिश्चित्य सङ्गावे नैव स्यात्परतोऽप्यसौ ॥ ३०२७ ॥

आद्यादिदि । प्रथमाद्वचनाभिश्चितेरसद्भावे सति परतः—उत्तरकालभाविनो वचनद्वयात् असौ—निश्चितिनैव स्याद्विशेषाभावात् ॥ ३०२७ ॥

एतदेव दर्शयति—तदीयमित्यादि ।

**तदीयमेव येनेदं वचनद्वयमुत्तरम् ।**

**तदाद्ये प्रत्ययाभावे को विशेषस्तदन्ययोः । ३०२८ ॥**

उत्तरमिति । पश्चात्कालभावि । प्रत्ययाभाव इति । निश्चयाभावे । तदन्ययो-  
रिति । तस्मादन्ययोरुत्तरकालभाविनोरित्यर्थः । यो श्लोकं वचनं द्वितीयं च मिथ्या  
वदेत् स तृतीयमपि किं न वदेत्, कस्तदानीं तस्य प्रतिरोद्धा, येन तृतीयात्सप्र-  
त्ययो जायते ॥ ३०२८ ॥

तेन स्वतःप्रमाणत्व इत्यादावाह—अत इत्यादि ।

**अतः पूर्वोक्तया युक्तया त्वत्पक्षेऽप्यनवस्थितिः ।**

**प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे यथायोगमतः स्थिते ॥ ३०२९ ॥**

पूर्वोक्ता युक्तिः—“तथाहि बाधकाभावात्प्रमाणं भवतोच्यते । बाधाभावोऽप्य-  
भावाख्यं प्रमाणान्तरमिष्यत” इत्यादिनोक्ता ॥ ३०२९ ॥

नित्यमाप्तप्राणीतं चेत्यादावाह—वाक्यमित्यादि ।

**वाक्यं नित्यं पुराऽस्माभिर्विस्तरेण निराकृतम् ।**

**क्षीणनिःशेषदोषश्च नाप्तोऽस्ति भवतः स्मृतौ ॥ ३०३० ॥**

**अक्षीणावृत्तिराशिस्तु कीदृगाप्तो भविष्यति ।**

**तस्य सम्भाव्यते दोषादन्यथाऽपि वचो यतः ॥ ३०३१ ॥**

पुरा—श्रुतिपरीक्षायाम् नित्यं वाक्यं विस्तरेण निरस्तमित्यसिद्धत्वात्कुतस्तस्य  
स्वतःप्रामाण्यचिन्तावतारो भवेत् । आप्तस्य स्वयमनभ्युपगमात्प्राणीतमपि वाक्य-  
मसिद्धमेव । तथाहि—यस्यानृतहेतवो रागादयो दोषाः निशेषं प्रहीणाः स एवाप्तो  
युक्तः, अन्यथा रागादिभिर्दोषैरनृतहेतुभिः परीतचेतसः, कथमाप्तत्वं सेत्स्यति । न च  
भवद्भिः प्रहीणाशेषक्लेशजालः ऋश्चित्रोभ्युपगम्यते, येनाप्तवचनं प्रमाणं भवेद्भव-  
ताम् ॥ ३०३० ॥ ३०३१ ॥

किञ्च भवतु नामस्तथापि तस्य वचनमसिद्धमेवेति दर्शयति—जातेऽपीत्यादि ।

**जातेऽप्याप्ते तदीयोऽसौ गुणौघः केन शक्यते ।**

**ज्ञातुमाप्तप्राणीने स्याद्यतो वाक्येऽवधारणम् ॥ ३०३२ ॥**

योऽप्यतीन्द्रियहृक्पश्येत्तदीयगुणसम्पदम् ।

तस्याप्याप्तप्रणीतेन न वक्षसा किं प्रयोजनम् ॥ ३०३३ ॥

स हि वाक्यनिराशंसः स्वयमर्थं प्रपद्यते ।

अन्योऽप्याप्तापरिज्ञानात्ततोऽर्थं नावगच्छति ॥ ३०३४ ॥

नद्याप्तमवधार्य तदीयमेतद्वचनमित्येवमवधारयितुं शक्यम्, न चाप्तावधारणं संभवति, तथाहि— यस्तावत्क्षीणनिःशेषदोषोऽतीन्द्रियार्थदर्शी स यद्यप्याप्तमवधारयति, तथाऽपि तद्वचनमकिञ्चित्करमेव, स्वयं सर्वार्थप्रत्यक्षदर्शित्वेन तद्वचनादप्रवृत्तेरतस्तस्य तदवधारणमनर्थकम् । यश्चान्योऽर्पागूदर्शी स नैवाप्तावधारणपटुरिति नासौ स्वतस्तद्वचनादर्थमवगच्छति, अनिश्चितत्वात् ॥ ३०३२ ॥ ३०३३ ॥ ३०३४ ॥

ये विद्यागुरव इत्यादावाह— स्वतःप्रामाण्येत्यादि ।

स्वतःप्रामाण्यवादे च स्वतो निश्चयजातिनः ।

विनाशसम्भवायोगात्किमर्थं विनिवारणम् ॥ ३०३५ ॥

निश्चयजातिनः— निश्चयोत्पत्तेः । अन्यथा यदि स्वतो निश्चयो नोत्पद्यते तदा स्वतःप्रामाण्यवादो हीयेत् ॥ ३०३५ ॥

अतो गुणनिषिद्धैर्वेत्यादावाह— न नामेत्यादि ।

न नाम दूष्यते वाक्यं दोषैर्गुणानिराकृतैः ।

गुणनिश्चयतस्तत्तु विनिश्चेतुं न शक्यते ॥ ३०३६ ॥

यदि नाम दोषैर्न दूष्यते गुणवद्वाक्यं गुणैर्दोषाणां निराकृतत्वात्, तथाऽपि परसन्तानवर्तिनां गुणानामतीन्द्रियत्वात्तदनिश्चये गुणवद्वाक्यं निश्चेतुं न शक्यते, न चापि (वि ?) निश्चितं स्वतःप्रमाणं भवितुमर्हति । ३०३६ ॥

यद्वा कर्तुरभावेन स्युर्दोषा इत्यात्राह— वाक्यस्येत्यादि ।

वाक्यस्याकर्तृकत्वं च प्रागेव विनिवारितम् ।

नातः कर्तुरभावे ते(न ?) न स्युर्दोषा निराश्रयाः ॥ ३०३७ ॥

प्रागेवेति । श्रुतिपरीक्षायाम् ॥ ३०३७ ॥

तत्राप्तोक्तेर्द्वयं दृष्टमित्यादावाह—

गुणेभ्यश्च प्रमाणत्वं यथा युक्तं तथोदितम् ।

गुणानां चापरिज्ञाने दोषाभावो न लक्ष्यते ॥ ३०३८ ॥

स्वतो वाक्यं प्रमाणं तद्दोषाभावोपलक्षितम् ।

न युक्तमपरिज्ञानाद्दोषाभावो ह्यलक्षणम् ॥ ३०३९ ॥

तथोदितमिति । तत्रापि सुधियः प्राहुरित्यादिना । यच्चोक्तम्—स्वतो वाक्यं प्रमाणं च दोषाभावोपलक्षितमिति, तदप्ययुक्तम्, गुणानामतीन्द्रियत्वात्तदपरिज्ञाने दोषाभावस्य गुणभावात्मकस्य लक्षयितुमशक्यत्वात् । एतदेवाह—दोषाभावो ह्यलक्षणमिति । लक्षयतेऽनेनेति लक्षणम्, न लक्षणमलक्षणम्, उपलक्षणं न भवतीत्यर्थः । अपरिज्ञातत्वादिति भावः ॥ ३०३८ ॥ ३०३९ ॥

न चापरिज्ञातं लक्षणं भवतीति दर्शयति—न हीत्यादि ।

न हि दण्डापरिज्ञाने पुंसां दण्डीति लक्षयते ।

तल्लक्षितं स्वतो मानमित्येतच्च पराहतम् ॥ ३०४० ॥

दोषाभावः प्रमाभावात्प्रमाणान्निश्चितात्मकः ।

वाक्यस्य लक्षणं युक्तं परतोऽतः प्रमास्थितिः ॥ ३०४१ ॥

किञ्च भवतु नाम दोषाभावो लक्षणं तथापि दोष एव, स्ववचनव्याघातप्रसङ्गात् । तथाहि—यदि दोषाभावेन प्रामाण्यमुपलक्षयते तदा स्पष्टमेव परतःप्रामाण्यमुक्तं स्यात्, ततश्च स्वतःप्रामाण्यमित्येतद्वचनं पराहतं स्यात् । एतदेव स्पष्टयति—दोषाभावो यद्यभावाख्येन प्रामाण्येन निश्चितो भवेत्तदाऽसौ लक्षणं भवेत्, अनिश्चितस्य लक्षणत्वायोगात्, अन्यस्य चाभावनिश्चयाकस्य प्रमाणस्याभावात्, ततश्च परतोऽभावाख्यात्प्रामाण्यं स्फुटतरमेवोक्तं स्यात् ॥ ३०४० ॥ ३०४१ ॥

यदुक्तम्—नृदोषविषयं ज्ञानं तेषु सत्सु न जायते । इति तत्राह—नृदोषेत्यादि ।

नृदोषविषयं ज्ञानं तेषु सत्सूपजायते ।

न नाम दोषाभावे तु गुणाज्ञाने कथं मतिः ॥ ३०४२ ॥

यदि नाम गुणेषु सत्सु दोषविषयं ज्ञानं नोत्पद्यते, गुणानां परसन्तानवार्तिनामतीन्द्रियत्वात्तदपरिज्ञाने सति दोषाभावनिश्चयो न प्राप्नोति गुणभावात्मकत्वाद्दोषाभावस्य, नहि घटविक्रप्रदेशापरिज्ञाने घटामावो ज्ञातुं शक्यते ॥ ३०४२ ॥

एतदेव दर्शयति—द्वेषेत्यादि ।

द्वेषमोहादयो दोषाः कृपाप्रज्ञादिबाधिताः ।

दयाणनिश्चये तेषामसत्त्वं हि कथं गतम् ॥ ३०४३ ॥

तेषामिति । दोषाणाम् ॥ ३०४३ ॥

अत्र कुमारिलेनोक्तम्—“तदा न व्याप्रियन्ते तु ज्ञानमानतया गुणाः । दोषाभावे तु विज्ञेये सत्तामात्रोपकारिणः ॥” इति, एतत्तदेत्यादिनाशङ्कते ।

तदा न व्याप्रियन्ते तु ज्ञायमानतया गुणाः ।

दोषाभावे तु विज्ञेये सत्तामात्रोपकारिणः ॥ ३०४४ ॥

उपकारिण इति । दोषाभावनिश्चयं प्रत्युपकारिणः ॥ ३०४४ ॥

यद्येवमित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

यद्येवं संशयो न स्याद्विपर्यस्ता मतिस्तथा ।

दोषाः सन्त्यस्य नो वेति सन्त्येवेत्याप्तसम्भते ॥ ३०४५ ॥

तत्संदेहविपर्यासौ भवतश्चत्र कस्यचित् ।

यावद्गुणगणाधार इत्यसौ नावगम्यते ॥ ३०४६ ॥

यदि सत्तामात्रेण गुणा दोषाभावनिश्चयाय व्याप्रियेरस्तदाऽऽप्तसम्भते पुंसि न कस्यचिद्दोषाभावं प्रति संशयविपर्यासौ प्राप्तुतः, निश्चयेन तयोर्बाधितत्वात्, न चैवं भवति, तत्तस्माद्यावद्गुणवत्तानिश्चयो न जायते तावद्दोषाभावाविषयौ संशयविपर्यासौ भवत एवेति न सत्तामात्रेण व्याप्रियन्ते गुणाः ॥ ३०४५ ॥ ३०४६ ॥

दोषाभावेऽप्यथाज्ञाने स्वतःप्रामाण्यनिश्चयः ।

तथाऽपि विमतिर्न स्यात्पूर्ववत्तत्र वक्तुरि ॥ ३०४७ ॥

अथापि स्यान्माभूद्गुणानां व्यापारो दोषाभावनिश्चयाय, तथाऽप्यनिश्चितादेव दोषाभावात्प्रामाण्यनिश्चयो भविष्यतीति, एयदप्ययुक्तम्, पूर्ववत्तत्राप्तसम्भते वक्तुरि विमत्यभावप्रसङ्गात् । नहि तद्वाक्यस्य स्वतःप्रामाण्यनिश्चये सति तस्मिन्वक्तुरि किमयं सत्यवादी न वा, नैव वेति मतिर्युक्ता । विमतिशब्देनात्र संशयविपर्यासौ विवक्षितौ । विपरीताकारा मतिर्विमतिरिति कृत्वा संशयस्योभयांशावलम्बित्वेन विपरीताकारसंभवात् ॥ ३०४७ ॥

यच्चापरमिदमुक्तं कुमारिलेन—“तस्माद्गुणेभ्यो दोषाणामभावस्तदभावतः । अप्रमाणद्वयासत्त्वं तेनोत्सर्गोऽनपोदितः ॥” इत्यादि, तदपि दोषाभावनिश्चये सत्ययुक्तमेवेति दर्शयति—दोषाभावस्येत्यादि ।

दोषाभावस्य चाज्ञानादप्रमाद्वयनास्तिता ।

कथं प्रतीयते येन भवेत्प्रामाण्यनिश्चयः ॥ ३०४८ ॥

अथाप्रमाद्वयासत्ताऽप्रतीतावपि गम्यते ।

प्रामाण्यं स्वत एवैवं विमतिः स्यान्न पूर्ववत् ॥ ३०४९ ॥

यदि हि संशयविपर्ययाभ्यामपवादभूताभ्यां रहितं ज्ञानं सिद्धयेत्तदा तत्प्रमाणं भवेत् । अन्यथाऽपवादसमाक्रान्ते विषये कथमुत्सर्गो निविशेत् । तयोश्च संशय-विपर्यययोर्दोषहेतुकत्वाद्दोषाभावानिश्चये तयोरभावनिश्चयो च युज्यते । अप्रमाद्व-यनास्तितेति । संशयविपर्ययनास्तिता ॥ ३०४८ ॥ ३०४९ ॥

तामेव विमतिं दर्शयति — किमस्य वचनं मानमित्यादि ।

किमस्य वचनं मानं किंवाऽमानमथाप्यदः ।

अमानमेव सर्वेषां स्वतःप्रामाण्यनिश्चयात् ॥ ३०५० ॥

एवं दोषाभावादीनां सत्तामात्रेण प्रामाण्यनिश्चयं प्रत्यङ्गभावो न युक्त इति प्रति-पादितम्, इदानीं तेषु निश्चयापेक्षणे परतःप्रामाण्यमनवस्था च प्रसज्यत इत्येत-द्भयं विस्तरेण प्रतिपादयन्नाह—दोषाभावेत्यादि ।

दोषाभावाप्रमाभावगुणभावेषु त्रिष्वपि ।

अवश्यमभ्युपगन्तव्या प्रतीतिर्निश्चयमादतः ॥ ३०५१ ॥

दोषाभावे अप्रमाणद्वयाभावे गुणेषु चावश्यं प्रतीतिः—निश्चयारूपाऽभ्युपग-न्तव्या । अन्यथा प्रामाण्यनिश्चयायोगादिति प्रतिपादितत्वात् ॥ ३०५१ ॥

यदि नामाऽभ्युपगता ततः किमित्याह—सेत्यादि ।

साऽप्रमाणं प्रमाणं वेत्येषामेवं विकल्प्यते ।

यथार्थनिश्चयायाङ्गमप्रमाणं कथं भवेत् ॥ ३०५२ ॥

सैषा त्रिष्वपि यथोक्तेषु प्रतीतिः प्रामाण्याङ्गत्वेनेष्टा किमप्रमाणमाहोस्वित्प्रमाण-मिति कल्पनाद्वयम् । यद्याद्यः कल्पस्तदा प्रामाण्यनिश्चयाङ्गं न प्राप्नोति स्वयमप्रमा-णत्वात् । नष्टप्रमाणत्वेन गृहीतः साक्षी व्यवहारे निश्चयाङ्गं भवति ॥ ३०५२ ॥

प्रामाण्ये परतः प्राप्ते तत्प्रामाण्यविनिश्चयः ।

कथं वा गम्यते तस्याः प्रतीतेः सा प्रमात्मता ॥ ३०५३ ॥

बाधकप्रत्ययाभावादिति चेत्सोऽपि किं प्रमा ।

न वेति दोषः सर्वोऽपि पुनरत्रानुवर्त्तते ॥ ३०५४ ॥

अथ द्वितीयः पक्षस्तदा परतस्तस्य विवक्षितस्य ज्ञानस्य प्रामाण्यप्रसङ्गोऽनव-

स्थादोषश्च । तामेवानवस्थां प्रतिपिपादयिषुः सन्पृच्छति—कथं वेत्यादि । सोऽ-  
पीति । बाधकप्रत्ययाभावः ॥ ३०५३ ॥ ३०५४ ॥

कथमसौ दोषोऽत्राप्यनुवर्त्तत इत्याह— प्रामाण्य इत्यादि ।

प्रामाण्ये परतःप्राप्ता प्रस्तुतस्य प्रमाणता ।

यथार्थज्ञानहेतुत्वप्रमाणस्य वा कुतः ॥ ३०५५ ॥

अस्यापि गम्यते केन प्रामाण्यमिति चिन्त्यते ।

बाधकप्रत्ययासत्त्वादित्यनिष्ठा प्रसज्यते ॥ ३०५६ ॥

सुबोधम् । अस्यापीति । बाधकप्रत्ययाभावस्य ॥ ३०५५ ॥ ३०५६ ॥

किञ्च—तस्माद्गुणेभ्यो दोषाणामभाव इत्यादिना प्रदर्शितेन न्यायेन यदि सर्वत्र  
प्रामाण्यं निश्चीयते तदा पूर्वमेव प्रमाणं परतोऽभ्युपगतं स्यादनवस्था च । तद्दर्शयति  
— तस्मादित्यादि ।

तस्माद्गुणेभ्यो दोषाणामभावस्तदभावतः ।

अप्रमाणद्वयासत्त्वं तेनोत्सर्गोऽनपोदितः ॥ ३०५७ ॥

सर्वत्रैवं प्रमाणत्वं निश्चितं चेदिहाप्यसौ ।

पूर्वोदितो दोषगणः प्रसक्ता चानवस्थितिः ॥ ३०५८ ॥

पूर्वोदित इति । गुणादिनां परसन्तानवर्त्तिनामवर्गदर्शनस्यातीन्द्रियत्वात्तदनि-  
श्चये दोषाभावस्याप्यनिश्चयादप्रमाणद्वयासत्त्वमप्यनिश्चितमिति न गुणादिभ्यः प्रा-  
माण्यं सिद्धयेत् । अथ ते सत्तामात्रेणोपकारकास्तदा विमर्तिर्न स्यादित्येवमादिदोष-  
गणः सर्वत्र प्रसज्यते ॥ ३०५७ ॥ ३०५८ ॥

अपि च तस्माद्गुणेभ्यो दोषाणामभाव इत्यादिना यत्प्रामाण्यं निश्चयाङ्गत्वेनो-  
क्तमप्रमाणद्वयासत्त्वं दोषाभावश्चेत्येतद्व्यं तर्त्किं प्रसज्यप्रतिषेधमात्रमिष्टमाहोस्वित्प-  
र्युदात्तात्मकमिति कल्पनाद्वयम् । प्रथमपक्षे दोषमाह—दोषभाव इत्यादि ।

दोषाभावे प्रमासत्त्वमितीदं च निषेधनम् ।

केवलं यदि कल्प्येत तत्सिद्धिर्नैव सम्भवेत् ॥ ३०५९ ॥

अभावानु(दु?)पलम्भेन तत्सिद्धिर्नावकल्पते ।

अनवस्थितिदोषाच्च न युक्तानुपलम्भतः ॥ ३०६० ॥

यदि प्रसज्यप्रतिषेधमात्रमिष्टं तदा तस्य सिद्धिर्नैव सम्भवेत् । तथाहि—तस्य

स्वतो वा सिद्धिर्भवेत्परतो वा । स्वतोऽपि सिद्धिर्भवन्ती स्वयं प्रकाशात्मतया वा भवेन्निश्वयजननाद्वा । परतोऽपि कदाचिदुपलम्भाद्वा भवेदनुपलम्भाद्वेति पक्षाः । न तावत्स्वतःप्रकाशात्मतया सिद्धिर्युक्ता, तस्याऽवस्तुत्वात्प्रकाशात्मतायाश्च वस्तुधर्मत्वात् । ज्ञानमेव हि प्रकाशात्मतया स्वसंविद्या सिद्धयति । न तु वस्तुस्वभावनिषेधमात्रलक्षणोऽभावः । नापि निश्चयजननात्स्वतस्तस्य सिद्धिः । सर्वसामर्थ्यविरहलक्षणत्वादभावस्य जनकत्वानुपपत्तेः । जनकत्वे वा वस्तुरूपत्वप्रसङ्गात् । तस्यानाधेयातिशयत्वेन सहकारिनिरपेक्षत्वात्तन्मात्रभाविनः कार्यस्याविरामप्रसङ्गाच्च । परतोऽप्युलम्भात्तस्य सिद्धिर्नावकल्पते, कुतः, अभावात्—अभावात्मकत्वात्, उपलम्भस्य भावविषयत्वात् । नाप्यनुपलम्भतस्तस्य सिद्धिरनवस्थाप्रसङ्गात् । तथाऽनुपलम्भोऽप्यभावात्मकत्वात्कथं सिद्ध इति तत्रापीयं स्वतः परत इति चिन्ताऽवतरत्येव । न तावत्स्वतो यथोक्तदोषप्रसङ्गात् । नापि परतोऽनवस्थादोषात् ॥ ३०५९ ॥

॥ ३०६० ॥

तामेवानवस्थां दर्शयति—दोषाप्रमाद्वयासत्तेत्यादि ।

दोषाप्रमाद्वयासत्ता गम्यतेऽनुपलम्भतः ।

उपलम्भस्य नास्तित्वमन्येनेत्यनवस्थितिः ॥ ३०६१ ॥

दोषाश्च अप्रमाद्वयं स तयोरसत्तेति समासः ॥ ३०६१ ॥

द्वितीयेऽपि पर्युदासात्मके दोषमाह—पर्युदासात्मकं तच्चेदित्यादि ।

पर्युदासात्मकं तच्चेत्तद्विविक्तान्यदर्शनात् ।

दोषाभावापरिज्ञानं गुणज्ञानात्मकं भवेत् ॥ ३०६२ ॥

विवक्षितप्रमाज्ञानस्वरूपं च प्रसज्यते ।

अप्रमाणद्वयामन्वज्ञानं तद्व्यतिरेकि च ॥ ३०६३ ॥

अप्रमाद्वितयासत्त्वे ज्ञाने स्वातन्त्र्यतोऽथवा

परिशिष्टः प्रमात्मेति भवतो निश्चयः कुतः ॥ ३०६४ ॥

अन्यथानुपपत्त्या चेन्नन्वर्थापत्तितो भवेत् ।

अनुमातोऽन्यतो वापि स्यादेवं निश्चयोऽन्यतः ॥ ३०६५ ॥

दोषाभावो हि पर्युदासवृत्त्या गुणात्मक एव भवेत्, ततश्च तत्परिज्ञानमपि गुणज्ञानात्मकं प्राप्नोति, तच्च नेष्टम्, “तदा न व्याप्रियन्ते च ज्ञायमानतया गुणाः” इति



वचनात् । अप्रमाणद्वयासत्त्वमपि पर्युदासपक्षे प्रमाणात्मकमेवावतिष्ठते, ततश्चाप्रमाणद्वयासत्ताज्ञानमपि विवक्षितप्रमाज्ञानस्वरूपं प्रसज्यते, ततश्च “अप्रमाणद्वयासत्त्वं तेनोत्सर्गोऽनपोदितः” इति न युज्यते, दुःश्लिष्टत्वात् । तथाहि—तस्यैव प्रमाणत्वेन निश्चितत्वात्तस्य प्रमाणत्वं निश्चीयत इति हेतुहेतुमद्भावेन वाक्यार्थो दुःश्लिष्टः स्यादव्यतिरेकात् । किञ्च हेतुहेतुमतोर्भेदात्तद्वयतिरेकि—प्रमाणपरिज्ञानव्यतिरेकि अप्रमाणद्वयासत्ताज्ञानं प्रसज्यते । न च पर्युदासात्मकस्य तद्वयतिरेकिता युक्ता । अप्रमाद्वि-  
तयासत्त्वे ज्ञात इत्यादिनाऽभ्युपगम्याप्रमाद्वयासत्तासिद्धिं परमतेनैव परतःप्रामाण्यं प्रतिपादयति—अन्यथानुपपत्त्येति । संशयविपर्यासाभ्यामन्यस्य ज्ञानस्य स्वतः-  
प्रामाण्यं मुक्त्वा गत्यन्तरासम्भवात् ॥ ३०६२ ॥ ३०६३ ॥ ३०६४ ॥ ३०६५ ॥

तस्माद्गुणेभ्य इत्यादिनोक्तस्य न्यायस्यानैकान्तिकत्वं प्रतिपादयन्नाह—तस्मादेव  
चेत्यादि ।

तस्मादेव च ते न्यायादप्रामाण्यमपि स्वतः ।

प्रसक्तं शक्यते वक्तुं यस्मात्तत्राप्यदः स्फुटम् ॥ ३०६६ ॥

तस्माद्दोषेभ्यो गुणानामभावस्तदभावतः ।

प्रमाणरूपनास्तित्वं तेनोत्सर्गोऽनपोदितः ॥ ३०६७ ॥

यस्मादुत्सर्गभावोऽयं विवक्षामात्रनिर्मितः ।

शक्योऽभिधातुं विस्पष्टमप्रमाणेऽपि मानवत् ॥ ३०६८ ॥

यतो बाधात्मकत्वेन बुद्धेः प्राप्ता प्रमाणाता ।

यथार्थज्ञानहेतूत्थगुणज्ञानादपोद्यते ॥ ३०६९ ॥

गुणैश्चाज्ञायमानत्वान्नाप्रामाण्यमपोद्यते ।

अनपोदितसिद्धं च स्वतस्तदपि संस्थितम् ॥ ३०७० ॥

अद इति । एतत् । किं तच्छक्यते वक्तुमित्याह—तस्मादित्यादि । मानव-  
दिति । ससम्बन्ताद्वतिः । तदपीति । अप्रामाण्यम् । शेषं सुबोधम् ॥ ३०६६ ॥  
॥ ३०६७ ॥ ३०६८ ॥ ३०६९ ॥ ३०७० ॥

दोषाः सन्ति न सन्तीत्यादावाह—दोषा इत्यादि ।

दोषाः सन्ति न सन्तीति पौरुषेयेषु शङ्कयते ।

कर्तुर्वेदेपि सिद्धत्वादोषाशङ्का न नास्ति नः ॥ ३०७१ ॥

श्रुतिपरीक्षायां वेदस्य कर्तुः प्रसाधितत्वात्कर्तुरभावादित्यसिद्धम्, तेन प्रेक्षावता-  
मस्माकं वेदे दोषाशङ्का न नास्ति, अपि त्वस्त्येव ॥ ३०७१ ॥

अतो यदनपेक्षत्वादित्यत्राह—अत इत्यादि ।

अतो यदनपेक्षत्वाद्देवे प्रामाण्यमुच्यते ।

तदसिद्धं यतः सोऽपि कर्त्तारं समपेक्षते ॥ ३०७२ ॥

सोऽपीति । वेदः ॥ ३०७२ ॥

वेदार्थे अन्यप्रमाणैरित्यादावाह—यदि संवादिविज्ञानमित्यादि—

यदि संवादिविज्ञानं न वा हेतुविशुद्धता ।

निश्चिता संशयोत्पत्तेस्तदा वेदे न मानता ॥ ३०७३ ॥

यद्यर्थक्रियासंवादिज्ञानं कारणविशुद्धिज्ञानं च द्वयमप्येतत्प्रामाण्यनिश्चयकारणं  
वेदे नाङ्गीक्रियते तदा निश्चयहेतुवैकल्याद्देवे प्रामाण्यनिश्चयो न प्राप्नोति, कारणम-  
न्तरेण कार्यस्यासम्भवात् ॥ ३०७३ ॥

अन्यस्यापि प्रमाणत्व इत्यत्राह—अन्यस्यापीत्यादि ।

अन्यस्यापि प्रमाणत्वे एवम्भूतैव सङ्गतिः ।

कारणं कल्प्यते यस्मान्निश्चयस्तन्निबन्धनः ॥ ३०७४ ॥

एवम्भूतैवेति । संवादगुणपरिज्ञानलक्षणा । अत्र चानवस्थादोषः पूर्वमेव परि-  
हृतः, तस्माद्यत्प्रमाणं न तत्प्रमाणान्तरसङ्गतिमपेक्षत इत्येतदनैकान्तिकम्, निश्च-  
यार्थं प्रमाणान्तरस्यापेक्षणात् ॥ ३०७४ ॥

एतदेव दर्शयति—स्थिते हीत्यादि ।

स्थिते हि तस्य मानत्वे निश्चयः क्रियतेऽनया ।

न त्वपूर्वं प्रमाणत्वमनया तस्य अन्यते ॥ ३०७५ ॥

एतेनैतदपि प्रत्युक्तं भवति—यत्रापि स्यात्परिच्छेदः प्रमाणैरुत्तरोत्तरैरित्यादि ।  
नष्टान्यतो माननिश्चये तस्य पूर्वस्य ज्ञानस्यार्थप्रापणशक्तिलक्षणं मानत्वमपैति ॥ ३०७५ ॥

‘सकृज्जातविनष्टे च भवेन्नार्थे प्रमाणता’ इत्यत्राह—सकृदित्यादि ।

सकृज्जातविनष्टे च स्यादेवार्थे प्रमाणता ।

अनिश्चितेऽपि साऽस्त्येव निश्चयोऽप्युदितक्रमात् ॥ ३०७६ ॥

सेति । मानता ॥ ३०७६ ॥

उदितमेव क्रमं दर्शयन्नाह — यदि कारणशुद्धत्वादीत्यादि ।

यदि कारणशुद्धत्वादिज्ञानं निश्चयस्ततः ।

यदि चार्थक्रिया प्राप्ता साक्षाद्वा(द्वा?)हादिलक्षणा ॥ ३०७७ ॥

यद्वाऽभ्यासवती वृत्तिर्निरपेक्षा फलोदये ।

सर्वोपायवियोगे तु न प्रमाणविनिश्चयः ॥ ३०७८ ॥

अतः प्रमाणात् तस्मिन्विद्यमानाऽप्यनिश्चिता ।

अविद्यमानकल्पेति नैवास्तीत्यपदिश्यते ॥ ३०७९ ॥

यदि चार्थक्रिया प्राप्तेति । तदा निश्चयस्तत इति प्रकृतेन सम्बन्धः । ननु चार्थक्रियाज्ञानस्यान्यविषयत्वात्पूर्वप्रत्ययप्रामाण्यस्य सिद्धिस्ततो न युक्ता । तथाहि — अवयविद्रव्यासम्भवाज्जलविषयं लोचनज्ञानं रूपमात्रमाहि, स्त(स्त्रा ?)नार्थक्रियाज्ञानं तु स्पर्शमात्रगोचरमिति कथमन्यालम्बनं ज्ञानमन्यविषयस्य ज्ञानस्य प्रामाण्यं शोषयेदतिप्रसङ्गात् । नैष दोषः । एकसन्तानवर्तिनो विषयद्वयस्याविनाभावादन्यालम्बनमपि ज्ञानमन्यविषयस्य ज्ञानस्य प्रामाण्यं प्राधयिष्यति । नहि तौ रूपस्पर्शौ विनिर्भागेन वर्त्तते, एकसामग्र्यधीनत्वात् । तत्र पूर्वस्य ज्ञानस्यानर्थेऽप्यर्थरूपेण प्रवृत्तिदर्शनादुत्तरकालभाविनस्तद्विषयाविनाभूतस्पर्शमाहिणो ज्ञानान्न निश्चयोत्पत्तिरपेक्ष्यते । नन्वेवमपि क्षणिकत्वात्सर्वभावानां पूर्वज्ञानपरिगृहीतरूपाविनाभाविस्पर्शो नैवोत्तरज्ञानप्रवृत्त्या विषयीकृत इति कथं ततो विनिश्चयः । नैष दोषः । उत्तरेषां रूपादिकक्षणानां पूर्वज्ञानगृहीतै रूपादिकक्षणैरविशिष्टार्थक्रियावाञ्छायामभिन्नयोगक्षेमत्वादैक्यमेव व्यवह्रियते । नष्टवाग्दर्शनानां क्षणैर्व्यवहारः । अथवा पूर्वज्ञानपरिच्छिन्नरूपाद्यर्थाविनाभावादुत्तरज्ञानविषयस्य तत्कारणतया सत्यपि मेदव्यवहारे ततो निश्चयो न विरुध्यते ॥ ३०७७ ॥ ३०७८ ॥ ३०७९ ॥

यदुक्तम्—श्रोत्रधीश्चाप्रमाणं स्यादित्यादि, तत्राह—श्रोत्रबुद्धेरित्यादि ।

श्रोत्रबुद्धेरपि व्यक्ता नेत्रादिमति(तराभिर?)सङ्गतिः ।

एकसामग्र्यधीनं हि रूपशब्दादि वर्त्तते ॥ ३०८० ॥

परस्परविनिर्भागात्संतत्याऽन्योन्यकारणम् ।

तेषामस्त्येष सम्बन्धस्तदेवं सुपरिस्फुटम् ॥ ३०८१ ॥

नद्धियामपि तद्वारा धूमेन्धनविकारवत् ।

श्रोत्रधीस्तत्प्रमाणं स्यात्तदन्यमतिसङ्गतेः ॥ ३०८२ ॥

इतराभिश्चक्षुरादिधीमिरसङ्गतिर्नैव सिद्धा । तथाहि—वीणादिशब्दस्य तत्सम्बन्धिनश्च रूपादेरेकसामग्र्यधीनत्वात्परस्परामिर्विभागलक्षणो धूमेन्धनविकारयोरिव सम्बन्धोऽस्त्येव । प्रबन्धवृत्त्यपेक्षायां च पूर्वपूर्वः कलापोऽन्यस्योत्तरोत्तरस्य कारणं भवतीति साक्षाच्च कार्यकारणभावलक्षणोऽपि सम्बन्धोऽस्त्येव । ततश्च तद्वाहिणामपि ज्ञानानां तद्धारकपारम्पर्येण सम्बन्धोऽस्ति । तत्तस्माच्छ्रोत्रधीः प्रमाणं भवत्येव, तदन्याभिश्चक्षुरादिमतिमिर्यथोक्तसम्बन्धसद्भावात् । तथाहि दूराद्वीणादिशब्दश्रवणात्तदर्थिनो वेणवादिशब्दसाधर्म्यादुपजातसंशयस्य पुंसः प्रवृत्तौ वीणारूपदर्शनाद्यः प्रागुपजातः संशयः किमयं वीणाध्वनिरुक्त वेणुगीतादिशब्द इति स व्यावर्त्तते । यत्र च देशे मृदङ्गादिप्रतिशब्दश्रवणात्प्रवृत्तस्य तदर्थधिगतिर्न भवति तत्र विसंवादात्प्रामाण्यं प्रत्येति ॥ ३०८० ॥ ३०८१ ॥ ३०८२ ॥

साधनान्तरजन्या तु बुद्धिर्नास्ति द्वयोरपीत्यादावाह—साधनान्तरेत्यादि ।

साधनान्तरजन्या तु बुद्धिरेषा विनिश्चिता ।

हेत्वन्तरकृतज्ञानसंवादास्तेन वाऽच्छयते ॥ ३०८३ ॥

एषेति । वीणादिरूपग्राहिणी ॥ ३०८३ ॥

यथा त्वेकेन्द्रियाधीनविज्ञानान्तरसङ्गतिरित्यादावाह—एवमित्यादि ।

एवं नानेन्द्रियाधीनविज्ञानान्तरसङ्गतिः ।

प्रत्यक्षे कारणं क्लृप्ता वेदे त्वेषा न दृश्यते ॥ ३०८४ ॥

एषा न दृश्यत इति । नानेन्द्रियाधीना विज्ञानान्तरसङ्गतिः ॥ ३०८४ ॥

कथमसौ प्रत्यक्षे कारणं क्लृप्तेत्याह—तथाहीत्यादि ।

तथाहि सलिलज्ञानमाद्यमुत्पद्यतेऽक्षिजम् ।

पानस्नानादिनिर्भासं जिह्वाकायाश्रितं परम् ॥ ३०८५ ॥

अक्षिजमिति । रूपविषयं चक्षुर्विज्ञानमित्यर्थः । परमिति । उत्तरकालभावि ॥ ३०८५ ॥

एकेनैव हि वाक्येनेत्यादावाह—एकेनापीत्यादि ।

एकेनापि तु वाक्येन देशकालनरादिषु ।

लभ्यते नार्थसंवादः सर्वस्मिन्संशयोदयात् ॥ ३०८६ ॥

अग्निहोत्राद्भवेत्सर्ग इतीत्थं श्रूयते समम् ।

निश्चयाद्भूयुक्तं हि ग(श?)ब्ददर्शनात्प्रकम् ॥ ३०८७ ॥

अनेनासिद्धतामर्थसंवादस्याह । तथाऽऽमिहोत्रात्स्वर्गो भवतीत्यतो वाक्यात्प्रेक्षा-  
वतो निश्चयकारणाभावात्संशयो जायत एवेति न देशकालादौ संवादसिद्धिः  
॥ ३०८६ ॥ ३०८७ ॥

नापि नरान्तरे सर्वत्र संवादो लभ्यत इति दर्शयन्नाह—स्वर्गादावित्यादि ।

**स्वर्गादौ मतमेदञ्च विप्राणामपि हृद्यते ।**

**लभ्यते नार्थसंवादस्तस्मादिह नरादिषु ॥ ३०८८ ॥**

तथाहि—मनुः प्रातिशायिपुंष्विशेषनिकेतः सुमेरुगिरिशिखरादिदेशविशेषोऽ-  
धिमानुषसुखाधिष्ठानो नानोपकरणसमृद्धः स्वर्ग इति निरुक्तकारादयो वर्णयन्ति ।  
प्रीतिविशेषो मनुष्याणामेव स्वर्ग इति मीमांसकाः । यागेऽपि विप्रतिपत्तिर्हृद्यते ।  
श्रूयते हि पुराकाले पिष्टमयः पशुर्येनायजन्त यज्वान इति । अन्यैस्तु दुरात्मभि-  
र्निष्कृपैः प्राणिविशेष एव पशुरिति वर्णितम् ॥ ३०८८ ॥

तस्माद्दुदं यदुत्पन्नमित्याह—चोदनाजनित इत्यादि ।

**चोदनाजनिते ज्ञाने दाढर्थे प्रागपहस्तितम् ।**

**संदिग्धो हि तथाभावस्तद्वाच्यस्यान्यसाम्यतः ॥ ३०८९ ॥**

प्रागिति । श्रुतिपरीक्षायाम् । अन्यसाम्यत इति । अमिहोत्रात्स्वर्गो न भवती-  
त्यादिपौरुषेयवचनसमुद्भूतप्रतीत्या तुल्यत्वात् ॥ ३०८९ ॥

किञ्च—वाक्(मात्र)मेतद्भवताम्—यथा चोदनाजनिता बुद्धिर्देशादिषु न विसं-  
वदतीति दर्शयति—असर्वदर्शिभिरित्यादि ।

**असर्वदर्शिभिर्विप्रैः कुत एतद्विनिश्चितम् ।**

**चोदनाजनिता बुद्धिः सर्वसंवादिनीति च ॥ ३०९० ॥**

साध्या न चानुमानेनेत्यादावाह—निश्चितेत्यादि ।

**निश्चितोक्तानुमानेन प्रत्यक्षस्यापि मानता ।**

**शुद्धकारणजन्यत्वात्तत्प्रमाणं तदन्यवत् ॥ ३०९१ ॥**

अनिष्टापत्तिर्हि प्रसङ्ग उच्यते, न च प्रत्यक्षस्यानुमानतः प्रामाण्यसिद्धिर्नेष्टा,  
येन प्रसङ्गापादनं स्यात् । यथा चानुमानेन प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यं साध्यते तथा पूर्व-  
मुक्तम् । तदेव स्मारयति— शुद्धकारणजन्यत्वात्प्रमाणमिति । तदन्यवदिति ।  
सन्निकृष्टविषयग्राहिप्रत्यक्षवत् ॥ ३०९१ ॥

प्रमाणानां प्रमाणत्वं येन चान्येन साध्यत इत्यादावाह—सर्वस्येत्यादि ।

सर्वस्य च न साध्येयं प्रमाणान्तरतः प्रमा ।

यस्मादर्थक्रियाज्ञाने भ्रान्तिर्नास्तीति साधितम् ॥ ३०९२ ॥

यथा चार्थक्रियाज्ञाने भ्रान्तिर्नास्ति तथा पूर्वं 'उच्यते वस्तुसंवाद' इत्यादिना प्रसाधितम् । तेनार्थक्रियाज्ञानसंवादात्प्रामाण्ये नानवस्था भवति ॥ ३०९२ ॥

अनुमानेनापि साध्ये न भवत्येवेति दर्शयति—आत्मेत्यादि ।

आत्मकार्यारूपलिङ्गाच्च निश्चिन्ताव्यभिचारतः ।

जायमानेऽनुमानेऽपि भ्रान्तिरस्ति न काचन ॥ ३०९३ ॥

आत्मा च स्वभावः कार्यं चेति तथोक्तम्, तदारूपा यस्य लिङ्गस्येति विग्रहः । निश्चितोऽव्यभिचारो यस्य लिङ्गस्य तत्तथोक्तम् । एतदुक्तं भवति—तादात्म्यतदुत्पत्तिसम्बन्धाभ्यां प्रतिबद्धस्वभावकार्यारूपलिङ्गनिश्चयबलेनोपजायमानमनुमानं विभ्रमकारणाभावात्स्वत एव प्रमाणमिति नानवस्था ॥ ३०९३ ॥

अन्येनासाधिता चेदित्यादावाह—कचिदित्यादि ।

कचित्तु विविधभ्रान्तिनिमित्तबलभाविनी ।

भ्रान्तिरुत्सार्यतेऽनेन यस्मात्तत्र न निश्चयः ॥ ३०९४ ॥

अभ्यासादेर्निश्चयकारणस्याभावात् कचिदाद्ये प्रत्यक्षे भ्रान्तिरूपद्यत इति न तस्य सिद्धयेत्स्वत एव प्रमाणता ॥ ३०९४ ॥

'प्रमाणं ग्रहणात्पूर्वं स्वरूपेण प्रतिष्ठितम्' इत्यादावाह—अव्यक्तेत्यादि ।

अव्यक्तव्यक्तिकत्वेन व्यक्तोऽर्थो न प्रसिद्धयति ।

परप्रत्यक्षवत्तस्माज्ज्ञानं ज्ञातमितीष्यताम् ॥ ३०९५ ॥

अव्यक्ता व्यक्तिर्धस्यार्थस्य स तथोक्तः । अवश्यं हि ज्ञानं ज्ञातव्यम् । तदज्ञाने सर्वाज्ञानप्रसङ्गात् । तथाह्यर्थाभिव्यक्तिरेव ज्ञानमुच्यते नान्यत्, तस्याश्चाभिव्यक्तेः परोक्षत्वेऽर्थस्यापि परोक्षत्वप्रसङ्गः । यथा परसन्तानवर्तिप्रत्ययविषयस्यार्थस्याव्यक्तव्यक्तित्वात् । प्रयोगः—यद्यस्याव्यक्तव्यक्तिकं वस्तु तत्तस्य प्रत्यक्षं न भवति, यथा परसन्तानवर्तिनैव प्रत्यक्षेण विषयीकृतमन्यस्य, अव्यक्तव्यक्तिकं च विवादास्पदीभूतं विज्ञानं कस्यचिदिति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः । न चानैकान्तिको हेतुः, तस्य वस्तुनो व्यक्त्युत्पादमन्तरेण प्रत्यक्षत्वे सर्वेषां प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् । न चैवं भवति । तस्माद्विपर्ययः ॥ ३०९५ ॥

यथा चाविदितैरेवेत्यत्राह—स्वयमित्यादि ।

**स्वयं तु जडरूपत्वाच्चक्षुरादिभिरिन्द्रियैः ।**

**गृह्यन्ते विषया नैवं तेषां ज्ञाने तु हेतुता ॥ ३०९६ ॥**

विषयवज्जडरूपत्वाच्चक्षुरादीनां न विषयग्रहणं मुख्यतोऽस्ति, केवलं विज्ञानं प्रति हेतुभावमात्रेण तेषां विषयग्रहणं कल्पितमित्यज्ञातैरेव तैर्विषयज्ञानोऽस्पादकतया विषया गृह्यन्ते इति स्यात्, नत्वेवं विज्ञानेन विषयस्य किञ्चित्क्रियते, येनाज्ञात-मपि चक्षुरादिवद्विषयं गृह्णातीति स्यात् । अभिव्यक्तिः क्रियत इति चेत् । न । ज्ञानपर्यायत्वात् । अभिव्यक्तिरुपलब्धिः परच्छितिः संवेदनमित्येवमादयः पर्याया उच्यन्ते, नार्थान्तरम् । न च स्वात्मनः करणं युक्तम् । स्वात्मनि कारित्रविरोधात् । उत्पन्नानुत्पन्नावस्थयोः मदसत्त्वाच्च । तथाहि—उत्पन्नं वा ज्ञानमात्मानं कुर्यादनुत्पन्नं वा । न तावदुत्पन्नं, तदात्मनोऽप्येकयोगक्षेमतयोत्पन्नत्वात् । न च यो येन सहैक-योगक्षेमो न भवति स तत्त्वभावो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । न चोत्पन्नस्य स्वभावस्य करणं युक्तमतिशयस्याभावात् । करणाविरामप्रसङ्गाच्च । नाप्यनुत्पन्नमिति पक्षोऽ-मत्त्वात् । नष्टसतो व्यापारो युक्तस्तस्य सर्वसामर्थ्योपाख्याविरहलक्षणत्वात् । व्या-पारे सत्यसत्त्वहानिप्रसङ्गात् । इदमेव हि सत्त्वलक्षणं यदर्थक्रियाकारित्वम् । तस्मान्न साम्यं दृष्टान्तस्य दाष्टान्तिकेन ॥ ३०९६ ॥

तेनात्र ज्ञायमानत्वमित्यादावाह—तेनात्रेत्यादि ।

**तेनात्र ज्ञायमानत्वं प्रामाण्य उपयुज्यते ।**

**विषयानुभवो यस्मादज्ञातो नैव लभ्यते ॥ ३०९७ ॥**

ननु च यदि ज्ञानं स्वसंविदा स्वत एव सिद्धम्, तर्हि स्वत एव ज्ञानं प्रमाण-मित्याशङ्क्याह—एतावदित्यादि ।

**एतावत्तु भवेदत्र ग्रहणेऽपि स्वसंविद**

**भ्रान्तिकारणसद्भावात्तथात्वे न विनिश्चयः ॥ ३०९८ ॥**

**तदा चार्थतया भावोऽप्यस्मान्नैवावसीयते ।**

**साहचर्याद्युपलम्बेन तदन्यारोपसम्भवात् ॥ ३०९९ ॥**

ननुभूतमित्येव सर्वात्मना निश्चयो जायते कारणान्तरापेक्षत्वाग्निश्चयोत्पत्तेरिति बहुधा प्रतिपादितं, तेन गृहीतमपि ज्ञानस्य स्वसंविदोऽर्थप्रमाणसामर्थ्यं भ्रान्तिकार-

गस्याप्रमाणसारूप्यानभ्यासादेः सद्भावान्निश्चयानुत्पत्तेरनिश्चितमित्युच्यते । निश्च-  
यानुभवयोर्भेदात् । ततश्च समारोपव्यवच्छेदेन परतःप्रामाण्यमिष्टमित्यदोषः ।  
यथोक्तम्—स्वरूपस्य स्वतो गतिः प्रामाण्यं व्यवहारेणेति । तथा त्व इति । प्रा-  
माण्ये ॥ ३०९८ ॥ ३०९९ ॥

अप्रमाणं पुनः स्वार्थे इत्यादावाह---आभ्यासिकमित्यादि ।

**आभ्यासिकं यथा ज्ञानं प्रमाणं गम्यते स्वतः !**

**मिथ्याज्ञानं तथा किञ्चिदप्रमाणं स्वतः स्थितम् ॥ ३१०० ॥**

अभ्यासे भवमाभ्यासिकम् । यथाऽभ्यासबलात्प्रामाण्यं कश्चित्स्वत एव निश्ची-  
यते इत्युक्तम्, तथा मिथ्यात्वमपि कस्यचित्स्वत एवावसीयते । तथा च दृश्यन्त-  
एव तैमिरिकादयः केचिदभ्यासबन्धकेशोण्डूकादिविज्ञानमुत्पादसमन्तरमेव मि-  
थ्यात्वेन निश्चिन्वन्तः ॥ ३१०० ॥

तदत्राप्यन्यथाभावे धीर्यथा दुष्टकारण इत्यादावाह—बाधकारणेत्यादि ।

**बाधकारणदुष्टत्वज्ञानेऽप्युक्ताऽनवस्थितिः ।**

**तावता तस्य मिथ्यात्वं ग्रहीतुं तन्न पार्यते ॥ ३१०१ ॥**

उक्तेति । तथाहि—‘बाधकाभावात्प्रमाणं भवतोच्यते । बाधाभावोऽप्यभावाख्यं  
प्रमाणान्तरमिष्यत’ इत्यादिना । तदिति । तस्मात् ॥ ३१०१ ॥

‘उत्पत्त्यवस्थमेवेदं प्रमाणमिति मीयत’ इत्यत्राह—उत्पत्त्यवस्थमित्यादि ।

**उत्पत्त्यवस्थमेवेदं प्रमाणमिति मीयते ।**

**न तावदविकल्पत्वादनिष्टेश्चात्मसंविदः । ३१०२ ॥**

**नापि ज्ञानान्तरेणैव तत्कालेऽसन्निधानतः ।**

**तस्याप्यव्यक्तभावत्वादनिष्टापत्तिनोऽपि वा ॥ ३१०३ ॥**

उत्पत्त्यवस्थायां किमात्मनैव प्रमाणमिति निश्चीयते, आहोस्विद्विज्ञानान्तरेण  
सहकालभाविना, यद्वोत्तरकालभाविनेति पक्षाः । तत्र न तावदात्मनैव सर्वज्ञाना-  
नामात्मनि, निर्विकल्पत्वात्प्रमाणमित्येव ग्रहणमनुपपन्नम् । नापि परेण संवेदनं ज्ञान-  
स्येष्टम्, नित्यं बुद्धेः परोक्षत्वाभ्युपगमात् । नापि ज्ञानान्तरेण समानकालभाविना,  
युगपद्विज्ञानद्वयानुत्पत्तेः । नापि भिन्नकालभाविना, तस्यापि ज्ञानान्तरस्यासिद्धौ  
तद्वाच्यस्यासिद्धौ तद्वाच्यस्यापि ज्ञानम्याव्यक्तव्यक्तिकत्वेनासिद्धेस्तस्यापि ज्ञानान्तरेण  
सिद्धाविष्यमाणाया मनवस्थाप्रसङ्गात् ॥ ३१०२ ॥ ३१०३ ॥



अतो यत्रापि मिथ्यात्वमित्यादावाह—वेदेऽपीत्यादि ।

वेदेऽपि बाधकं मानमुक्तमेवानुमात्मकम् ।

तदुक्तात्माद्यपोहेन तस्मान्मानं न युज्यते ॥ ३१०४ ॥

पौरुषेयत्वसिद्धेश्च शङ्कया दुष्टनिमित्तता ।

वह्नेरिव स्वतः शक्तिर्मिथ्याज्ञानेषु वा भवेत् ॥ ३१०५ ॥

चोदनाप्रभवं ज्ञानमतो दुष्टनिमित्तकम् ।

शङ्कयते दृष्टदोषाच्च शङ्कयदोषं न भिद्यते । ३१०६ ॥

नहि साधर्म्यमात्रं बौद्धैर्वेदे बाधकं प्रमाणमुच्यते । किं तर्हि ? । तदुक्तस्यात्म-  
सामान्यादेः पदार्थस्य प्रमाणबाधनात् । एतच्चात्मपरीक्षादौ प्रतिपादितम् । किञ्च  
— श्रुतिपरीक्षायां वेदानां पौरुषेयत्वस्य साधितत्वात्, सत्यपि वाऽपौरुषेयत्वे दाव-  
वह्यादिवन्मिथ्यात्वकारणतासम्भवात्, अप्रामाण्यमस्य सम्भाव्यत इत्येवमुच्यते,  
न साधर्म्यमात्रम् । स्यादेतत्—यदि नाम सम्भाव्यते तथापि सम्भावनामात्रात्क-  
थमप्रामाण्यमस्य सिद्धयतीत्याह—दृष्टदोषाच्च शङ्कयदोषं न भिद्यत इति । शङ्कया-  
दोषा यस्मिन्वाक्ये तत्तथा । न भिद्यत इति । उभयस्यापि प्रामाण्यं (ण्य ?) सद्ब्रह्म-  
वहारनिषेधयोग्यनया (योः ?) तुल्यत्वात् ॥ ३१०४ ॥ ३१०५ ॥ ३१०६ ॥

तस्मादित्यादिनोपसंहरति ।

तस्मात्स्वतःप्रमाणत्वं वेदस्यापि नं युज्यते ।

तेन निश्चितनिर्दोषकृताख्यातत्वमिष्यताम् ॥ ३१०७ ॥

कृतश्चासावाख्यातश्चेति तथोक्तः । आख्यातो व्याख्यातः, निर्दोषैः पुरुषैः  
कृताख्यात इति तृतीयासमासः, तद्भावस्तत्त्वं, निश्चितं च तन्निर्दोषकृताख्यातत्वं  
चेति विग्रहः । तदेतदिष्यताम्, वेदस्य प्रामाण्यसिद्धय इति सम्बन्धः । ततश्चैव-  
मिष्यमाणे परतःप्रामाण्यं स्यादनिष्यमाणे त्वप्रामाण्यमेवेति भावः ॥ ३१०७ ॥

निश्चितनिर्दोषकृताख्यातत्वमिष्यतामित्यत्र कुमारिलस्योत्तरमाह— रागेत्यादि ।

रागद्वेषादियुक्ता हि प्रवक्तारो यथा यथा ।

तथा तथाहि रक्षन्ति स्वाध्यायं सुतरां ननु ॥ ३१०८ ॥

कस्य किं दुर्बलं को कस्मात्पूर्वं प्रपाठकः ।

कः स्वरक्षामतां कुर्यात्को भिन्ध्यादपदे पदम् ॥ ३१०९ ॥

इति यस्य हि संरब्धाः सन्ति रन्ध्रगवेषिणः ।  
 कथं न नाम निर्दोषं स पठेद्देवमाहृतः ॥ ३११० ॥  
 शुद्धाश्वेदभ्युदासीनाः स्युर्वेदाध्यायिनो नराः ।  
 आचक्षीरन्परैरेवं न ते वेदं विनाशितम् ॥ ३१११ ॥  
 ततः कालेन महता तूपेक्षितविनाशितः ।  
 अन्य एव भवेद्देवः प्रतिकञ्चुकतां गतः ॥ ३११२ ॥  
 रागद्वेषादियुक्तांश्च रुन्धद्भिर्वेदनाशिनः ।  
 सर्वदा रक्षितो वेदः स्वरूपं न प्रहास्यति ॥ ३११३ ॥

कस्याभ्येतुः किं स्मृतिमेवाति (मेधादि ?) दुर्बलम्, को वा कुतोऽधीतवान्, को वा स्वरस्योदात्तादेः क्षामतामन्यथात्वं कुर्वीत, अपदमेव वा कः पदत्वेन भित्त्वा पठेदित्येवं यस्य वेदपाठकस्य रन्ध्रं निरूपयन्तो वेदाध्यायिनो नराः सरंब्धाः समारब्धवीर्याः सन्ति, स कथं वेदपाठको वेदमादरात्न पठेत् । ततश्चास्य वेदस्याप्रामाण्याशङ्काया अभावात्किमिति निश्चितनिर्दोषकृताख्यातत्वमिष्यतामित्यभिप्रायः । तथाहि—यदि वेदाध्ययिनः शुद्धधियोऽपि परैर्विनाश्यमानान्वेदानौदासीन्यमालम्बमाना नाचक्षीरंस्तदा सम्भाव्यतेऽन्य एवायं वेदः प्रतिच्छायतां यात इति । यावता तैर्विशुद्धधीभिर्वेदविनाशिनो नगन्रागादिपरीतचेतसो रुन्धद्भिर्निवारयद्भिः सदैवायं संरक्षितो वेद इति स कथमात्मस्वरूपं जह्यात् ॥ ३१०८ ॥ ३१०९ ॥ ३११० ॥ ३१११ ॥ ३११२ ॥ ३११३ ॥

स्यादेतद्यद्यपि सर्वदा रक्षितस्तैर्वेदस्तथापि महाप्रलये समुच्छिन्नस्यास्य पश्चादन्यथात्वमपि सम्भाव्यत इत्याशङ्क्याह—इष्यत इत्यादि ।

इष्यते च जगत्सर्वं न कदाचिदनीहशम् ।  
 न महाप्रलयो नाम ज्ञायते पारमार्थिकः ॥ ३११४ ॥

नैतदेवमित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

नैतदेवं भवेत्ताम एव पाठस्य तुल्यता ।  
 तदर्थतत्त्वबोधस्तु न विनाऽस्यक्षदर्शनम् ॥ ३११५ ॥

एवं हि किल केवलपाठमात्रस्य तुल्यत्वं प्रतिपादितम् । नत्वथवि(र्थाधि ?)गमो पाठः, ततश्च तदर्थमवश्यं निश्चितनिर्दोषकृताख्यातत्वमस्येष्टव्यमेव ॥ ३११५ ॥

न चापि पाठमात्रस्यादर्शनमात्रेणासर्वविदा सर्वदेशादौ तौस्यं निश्चेतुं शक्यत इति दर्शयति— सर्वे चेत्यादि ।

सर्वे च यस्य पुरुषा देशकालौ तथाऽखिलौ ।

करामलकबद्रूपकं वर्त्तन्तेऽध्यक्षचेतसि ॥ ३११६ ॥

स पाठस्यापि तुल्यत्वं बोद्धुं शक्तोऽन्यथा पुनः ।

देशकालनरावस्याभेदेन विमतिः कथम् ॥ ३११७ ॥

अत्रैवोपपत्तिमाह—अन्यथेत्यादि । यदि पाठस्य तुल्यत्वं भवेत्तदा कश्चिद्देशादौ पाठं प्रति पुंसां विमतिः—संशयो न प्राप्नोति ॥ ३११६ ॥ ३११७ ॥

इष्यते च जगत्सर्वमित्यादावाह—जगत्सदेदृशमित्यादि ।

जगत्सदेदृशं चेति न प्रमाणमिहापि वः ।

न युक्ताऽदृष्टिमात्रेण संवर्त्तस्यापि नास्तित्वा ॥ ३११८ ॥

ईदृशमेव सर्वदा जगदित्यत्र न किञ्चित्साधकं प्रमाणमस्ति । यश्च बौद्धैः संवर्त्तकल्पो नर(नाश ?)कासम्भवात्प्रतिभाजनक्षय इति वर्णयते । यच्च स्मृतिकारैरुच्यते— “आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं सुषुप्तमिव सर्वतः ॥” इति तदेतदस्य द्विविधस्यापि संवर्त्तस्य न किञ्चिद्साधकं प्रमाणमस्ति, येन सर्वदा जगदीदृशमेव सिद्धयेत् । न चादर्शनमात्रेण वस्तुनां नास्तित्वा सिद्धयति, सत्यपि वस्तुनि कश्चिददर्शनात्, वस्त्वभावेन दर्शनमात्रस्य व्याप्त्यसिद्धेः ॥ ३११८ ॥

किंच—वेदस्य स्वतःप्रामाण्यान्नित्यं स्वार्थस्वरूपविषयनिश्चयोत्पत्तेः संमोहाभावात्, नित्यत्वाच्च स्वभावान्यथात्वस्य कर्तुमशक्यत्वात्, उभयथापि न विनाशः सम्भवति भवन्मतेनेत्यतो वेदाध्यायिभिरस्य निष्फलमेव रक्षा क्रियत इत्येतद्दर्शयति— स्वत इत्यादि ।

स्वतःप्रामाण्यपक्षे तु निश्चयं कुरुते स्वतः ।

वेदः स्वार्थस्वरूपे च तन्न मोहादिसम्भवः ॥ ३११९ ॥

अतश्चाज्ञानसंदेहविपर्यासापदे स्थिते ।

नोपदेशमपेक्षेत द्विजपोतोऽपि कश्चन ॥ ३१२० ॥

यथा चाज्ञातमूलस्य न विनाशोऽपि सम्भवी ।

को वा विनाशो नित्यस्य भवेद्ब्रह्मनिशायिनः ॥ ३१२१ ॥

अभिव्यक्त्यन्यथात्वं चेन्नित्ये सा नन्वपाकृता ।

अतो रक्षामपि प्राज्ञा निष्फलामस्य कुर्वते ॥ ३१२२ ॥

द्विजपोतः—ब्राह्मणशिशुः । एवं तावत्स्वतःप्रामाण्याद्विनाशोऽस्य न सम्भवतीति प्रतिपादितम् । इदानीं नित्यत्वादपि न सम्भवतीत्येतदर्शयितुं पृच्छति—को वेत्यादि । अभिव्यक्त्यन्यथात्वं चेदिति । विनाश इति सम्बन्धः । सेति । अभिव्यक्तिः । अस्येति वेदस्य ॥ ३११९ ॥ ३१२० ॥ ३१२१ ॥ ३१२२ ॥

अतीन्द्रियेत्यादिनोपसंहरति ।

अतीन्द्रियार्थहृक्तस्माद्विधूतान्तस्तमश्रयः ।

वेदार्थप्रविभागज्ञः कर्ता चाभ्युपगम्यताम् ॥ ३१२३ ॥

इति स्वतःप्रामाण्यवादपरीक्षा ।

अन्तस्तमः—क्लिष्टाक्लिष्टमज्ञानम्, तस्य चयः—संहतिः, स विधूतो येन स तथोक्तः । प्रविभागज्ञः—व्याख्याता । कर्तेति । वेदस्येति शेषः । तदेवं प्रतिज्ञातार्थस्य सर्वथा प्रमाणबाधितत्वम्, हेतोश्च तद्भावभावित्वादित्येतस्यानैकान्तिकत्वं साधितम् । सपक्षसिद्धयर्थं च प्रमाणं 'यः संदेहविपर्यासविषयैरित्यादिना प्रदर्शितमिति श्लेषार्थः ।

यत्तु पक्षचतुष्टयमुपन्यस्य पक्षत्रये दोषाभिधानं कृतम्, तत्रापि न काचिद्वैद्वस्व कृ(क्ष?)तिः, नहि बौद्धैरेषां चतुर्णामेकतमोऽपि पक्षोऽभीष्टोऽनियमपक्षस्येष्टत्वात् । तथाहि—उभयमप्येतकिञ्चित्स्वतः किञ्चिन्परत इति पूर्वमुपवर्णितम् । अत एव पक्षचतुष्टयोपन्यासोऽप्ययुक्तः । पञ्चमस्याप्यनियमपक्षस्य सम्भवात् ।

अपरे त्वन्यथा प्रतिज्ञार्थं वर्णयन्ति—बोधात्मकत्वं नाम प्रामाण्यम्, तच्च ज्ञानानां स्वभाविकमेव, न गुणकृतं, गुणाभावेऽपि विपर्ययज्ञाने बोधात्मकत्वसम्भवात् । अतः स्वतःप्रामाण्यमित्युच्यते । गुणैस्तु दोषनिराकरणमेव क्रियत इत्यतस्तन्निर्घाताय प्रामाण्यं गुणानपेक्षते नात्मप्रतिलम्भायेति । तदेतदसम्यक् । यतो न बोधात्मकत्वमेव प्रामाण्यं युक्तम् । विपर्ययज्ञानेऽपि सम्भवात् । बोधविशेषः प्रामाण्यमिति चेत्, न तर्हि वक्तव्यम्—तच्च ज्ञानानां स्वाभाविकमेव न गुणकृतम्, गुणाभावेऽपि विपर्ययज्ञाने सद्भावादिति । तथाहि—यदि बोधविशेषः प्रामाण्यमिदं स्यात्तदा तस्यैव गुणकृतत्वे व्यभिचारोपदर्शनं युक्तं नान्यस्य । न च विप-

र्ययज्ञानेऽपि सद्भावादित्यनेन बोधविशेषस्य गुणकृतत्वे व्यभिचारो दर्शितः । किं तर्हि ?—बोधसामान्यस्य । न च परेण बोधसामान्यं गुणकृतमिष्यते । किं तर्हि ? । बोधविशेषः । न च तस्य गुणकृतत्वे व्यभिचारः शक्यते प्रतिपादयितुम् । न चाप्यस्माभिर्गुणकृतत्वेन परतःप्रामाण्यमिष्टम्, यतस्तन्निषेधेन भवद्भिः स्वतो व्यवस्थाप्यते । किं तर्हि ? । अनुभूतोऽप्यसौ बोधविशेषः कचिद्भ्रान्तिनिमित्तसद्भावाद्यथानुभवं न निश्चयमुत्पादयतीति । अतस्तन्निश्चयोत्पत्तेः परत इति व्यवस्थाप्यते । किं चाप्रामाण्येऽपि शक्यमेवं कल्पयितुम् । बोधात्मकत्वं नामाप्रामाण्यम्, तच्च ज्ञानानां स्वाभाविकं न दोषकृतम्, दोषाभावेऽपि सम्यग्ज्ञाने सम्भवादित्यतः स्वतोऽप्रामाण्यमुच्यते, दौषैस्तु गुणनिराकरणमेव क्रियत इत्यतस्तन्निराकरणायाप्रामाण्यं दोषानपेक्षते नात्मप्रतिलम्भायेति । तस्माद्यत्किंचिदेतत् ।

उवेयकस्त्वाह (?)—न बोधात्मकत्वं नाम ज्ञानानां प्रामाण्यम्, किं तर्हि ?, अर्थाविसंवादित्वम् । तथाहि—सत्यपि बोधात्मकत्वे यत्रार्थाविसंवादित्वं नास्ति तत्राप्रामाण्यम्, यथा शुक्तिकायां रजतज्ञानस्य । विनापि बोध(बोधात्म ?)कत्वं यत्रार्थाविसंवादित्वमस्ति तत्र प्रामाण्यं यथामौ धूमस्य, तस्मादन्वयव्यतिरेकाभ्यामविसंवादित्वमेव प्रामाण्यं सिद्धम् । तच्च ज्ञानमात्मीयादेव हेतोरुपजायते । न सामग्र्यन्तरादित्यतः स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमित्युच्यते । स्वशब्दस्यात्मीयवचनत्वात् । स्वतः—आत्मीयाद्धेतोरित्यर्थः । नहि स्वतोऽसती शक्तिरित्यादिना पश्चादद्धेन सामग्र्यन्तराद्भावनिषेधे हेतुरुक्तः । नहि स्वतोऽसती कर्तुमन्येन विज्ञानसामग्र्यन्तरातिरिक्तेन शक्यत इत्यर्थः । स्यादेतत्—विज्ञानहेतवोऽपि प्रामाणाप्रमाणसाधारणाः, तत्कथं विज्ञानहेतुमात्रप्रतिबद्धं प्रामाण्यं स्यात्, तस्मात्सामग्र्यन्तरजन्यमेव प्रामाण्यं न तु ज्ञानहेतुमात्रजन्यम् । तच्च सामग्र्यन्तरं गुणसहितमेव इन्द्रियादिगुणाध्यास्य कारणमिति । शाब्दे चासप्रणीतत्वमेव कारणगुणत्वेन व्यवहारान्निश्चितम् । वेदे च त(दस)द्भावादप्रामाण्यं प्रसक्तमिति । नैष दोषः । सामग्र्यन्तरजन्यत्वासिद्धत्वात् । नहि विधिसुखेन गुणानां प्रामाण्याख्यकार्योत्पत्तौ व्यापारः प्रतीतः संभवति । इन्द्रियादिस्वरूपमेव अन्यनिरपेक्षमर्थाविसंवादिज्ञानोत्पादकम् । अज्ञानादीनां तु दोषापगमे व्यापारो न गुणाधाने । अथापि स्यादिन्द्रियादिस्वरूपप्रामाण्येऽप्यस्तीति सर्वत्र प्रामाण्योत्पत्तिप्रसङ्गोऽविकलकारणत्वात् । नैतदस्ति । दोषसमवधाने तु सामग्र्यन्तराद्विलक्षणकार्योत्पत्तिर्भविष्यति । स्यादेतत्—विपर्ययः कस्मान्न विज्ञा-

यते—इन्द्रियादिस्वरूपमेवान्यनिरपेक्षं व्यभिचारिज्ञानोत्पादकं, गुणसमवधाने तु सामग्र्यन्तरमर्थाविसंवादिज्ञानोत्पादकमिति । सत्यमेवमेतत्, अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तु विज्ञानोत्पादकमेव त्रैरूप्यमनुमानादौ प्रामाण्योत्पादकं दृष्टमिति प्रत्यक्षेऽपि च सम्भवात्तदेवोत्पादकं कल्प्यते । विपर्ययज्ञानरूपं तु कार्यमिन्द्रियादिस्वरूपादनुत्पद्यमानं सामग्र्यन्तरं कल्पयतीत्यनवद्यमिति । तदेतत्सर्वं नानवद्यम् । तथाहि—यत्तावदुक्तमर्थाविसंवादित्वमेव ज्ञानस्य प्रामाण्यं तच्चात्मीयादेव हेतोस्तस्योपजायत इति, अत्र सिद्धसाध्यता, यत इष्यत एवास्माभिः प्रमाणमविसंवादिविज्ञानमिति वचनादर्थविसंवादित्वं ज्ञानस्य प्रामाण्यम्, किन्तु ज्ञानमिति विशेषेणोपादानाद्भूमादेरज्ञानस्वभावस्य मुख्यतः प्रामाण्यं नेष्टमित्यर्थाविसंवादित्वमात्रं प्रामाण्यमसिद्धम् । ज्ञानस्यैव हेयोपादेयवस्तुनि प्रवृत्तौ प्राधान्यात् । तथाहि—सत्यप्यविनाभाविनि धूमादौ न तावत्पुरुषस्यार्थे प्रवृत्तिर्भवति यावद्विज्ञानोत्पादो न भवति, तस्मात्प्रवृत्तौ ज्ञानस्याव्यवहितं कारकत्वमिति तदेव प्रमाणम् । यदाह—“धीप्रमाणता । प्रवृत्तेस्तप्रभानत्वाद्धेयोपादेयवस्तुनि” इति, यच्चाविसंवादित्वं ज्ञानस्यार्थप्रापणशक्तिलक्षणं तत्त्वर्थप्रापणमेव, प्रतिबन्धादिसंभवात् । शक्तिश्च पदार्थानामात्मभूतैवेति कस्तस्या अर्थान्तरादुत्पत्तिमिच्छेद्येन सा निषिध्येत । नहि तन्निष्पत्तावनिष्पन्नो धर्मस्तत्स्वभावो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । सा च प्रमाणस्यात्मभूताऽपि सती भ्रान्तिकारणमद्वावादनधिगततत्कार्यैरवमातुं न पार्यत इति परतोऽर्थक्रियाज्ञानारूपात्कार्यनिश्चीयते । अतो निश्चयापेक्षया परतःप्रामाण्यमित्युच्यते नोत्पत्त्यपेक्षया । तेन कारणान्तरादुत्पादप्रतिषेधवैयर्थ्यं विवादाभावात् । निश्चयस्तु शक्तीनां परतो भवद्विरपीप्यत एव । यथोक्तम्—“शक्तयः सर्वभावानां कार्यार्थापत्तिसाधनाः” इति । यश्च—“नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यत” इत्येष सामग्र्यन्तराद्भावनिषेधाय हेतुरुपवर्ण्यतेऽसावप्रमाणेऽपि समान इति तदपि स्वत एव प्रसज्येत । न वा स हेतुर्व्यभिचारात् । यच्चोक्तम् । नहि विधिमुखेन गुणानामप्रामाण्योत्पत्तौ व्यापारः प्रतीतः सम्भवतीति, एतदप्यन्वयवचनमनुन्मीलितार्थं न ज्ञायते । कोऽयं विधिमुखेन व्यापारो नामेति । यदि तावदिदं चेदं करिष्यामीति कार्योत्पादाय बुद्धिपूर्वा प्रवृत्तिः, सा नेन्द्रियादिष्वपि संभवति । नहि भावानां प्रेक्षापूर्वकारिताऽस्ति, सर्वभावानां क्षणिकत्वेन समीहाव्यापारयोरसंभवात् । ततश्चेन्द्रियादेरपि विधिमुखेन व्यापारासंभवात्कारणत्वं न स्यात् । अथेन्द्रियादि विनापि क्रियास्यव्यापारसमा-

वेशं सत्तामात्रेण कार्योत्पत्तौ व्याप्रियत इति कारणमिष्यते, तदेतद्गुणेष्वपि समानम् । नहि सर्वकारणानां कार्योत्पत्तौ नियतः स्वसत्तासन्निधानव्यतिरेकेणान्यो व्यापारः प्रतीतः संभवति । अथ गुणसन्निधाने दोषनिवृत्तौ सत्यां प्रामाण्यमुपजायत इति दोषनिवृत्त्या व्यवहृतत्वात्साक्षाद्विधिसुखेन गुणानां व्यापारो न सम्भवतीत्युच्यते, तदेतद्दोषेष्वपि समानम् । तथाहि—दोषसन्निधानेऽपि गुणनिवृत्तौ सत्यामप्रामाण्यमुपजायत इति दोषाणामपि विधिसुखेनाप्रामाण्योत्पत्तौ व्यापारो न स्यात् । ततश्चाप्रामाण्यमपि स्वतः प्रसज्येत, अविशेषात् । नहि दोषा गुणाभिराकृत्य साक्षादप्रामाण्ये व्याप्रियमाणाः समालक्ष्यन्ते । तस्मात्तद्भावाभावानुविधानव्यतिरेकेण नान्यः कार्यकारणभावः सम्भवतीति दोषवद्गुणानामपि कारणत्वं समानम् । यच्चोक्तम्—इन्द्रियादिरूपमेवान्यनिरपेक्षमर्थाविसंवादिज्ञानोत्पादकमिति, तदप्ययुक्तम् । अविकलकारणत्वेन सर्वज्ञानानां प्रामाण्यप्रसङ्गात् । बोधरूपतावत् । यथा बोधरूपता ज्ञानानां समनन्तरप्रत्ययप्रतिबद्धा सती दोषादिसमवधानेऽप्यविकलकारणतया सर्वत्र ज्ञाने भवति तथाऽर्थाविसंवादित्वमपि स्यात् । स्यादेतत्—दोषैरप्रामाण्यस्योत्पादे सामान्यमविकलकारणमपि नोपजायते, प्रामाण्येतरयोरेकत्र ज्ञाने विरुद्धयोरयोगात्, बोधरूपता तु निष्प्रतिबद्धा सर्वत्र भवत्येवेति । यद्येवं न तर्हीन्द्रिय(स्व)रूपमेवान्यनिरपेक्षं कारणं सिद्धयति, सत्यपि तस्मिन्नविकले प्रामाण्याख्यकार्यानुत्पत्तेः । नह्यन्यनिरपेक्षस्य कदाचिदजनकत्वं युक्तम् । नापि यद्यस्मिन्सत्यपि न भवति तत्तन्मात्रकारणं युक्तमितिप्रसङ्गात् । किंचेदं तावच्च भवान्वक्तुमर्हति—यद्यविकलकारणं प्रामाण्यं किमिति दोषसन्निधानेऽपि नोत्पद्यत इति । स्वविरुद्धकारणस्य दोषस्य सन्निहितत्वादिति चेत् । अप्रामाण्येऽपि तुल्यम् । तस्यापि तदानीं स्वविरुद्धकारणमिन्द्रियादिसन्निहितमित्युत्पत्तिर्माभूत् । किंच—यदि नाम विरुद्धकारणाद्दोषाद्विभ्यतः प्रामाण्यस्यानुत्पत्तुमिच्छा स्यात्, स्वकारणं त्वप्रतिहतसामर्थ्यं सत्तदानीं किमिति तदुपेक्षेत । एवं हि तेनात्मनोऽप्रतिहतशक्तिता प्रकटिता स्याद्यदि स्वकार्यमुत्पत्तुमनिच्छदपि हठादुत्पादयेत् । दोषैरुपहतशक्तित्वादिन्द्रियं प्रामाण्यं न जनयेत्, विज्ञानमपि नैव जनयेदसामर्थ्यात् । अन्यथा विज्ञानहेतुमात्रजन्यं प्रामाण्यं न सिद्धयेत्, तदुत्पत्तावप्यनुत्पत्तेः । यो हि यदुत्पत्तावपि नियमेन नोत्पद्यते नासौ तेन सहैककारणः, यथा कौद्रवाङ्कुरोत्पत्तावप्यनुत्पद्यमानः शाख्यङ्कुरः । नोत्पद्यते च विज्ञानोत्पत्तावपि प्रामाण्यं नियमेनेति व्यापकानुपलम्भः ।

नापि तत्त्वभावमखण्डयन्नात्मभूतां शक्तिं कश्चिदुपहन्युं शक्यताम् । ततश्चैवमपि शक्यते पठितुम् — स्वतःसर्वोपलब्धीनां प्रामाण्यमिति गृह्यताम् । नहि स्वतः सती शक्तिर्हन्तुमन्येन पार्यते ॥ इति । स्यादेतत्—नेन्द्रियादिमात्रं प्रामाण्यकारणमिष्टम् । किं तर्हि ? । विशिष्टमेव यदोषरहितम्, तेन यथोक्तदोषाप्रसङ्ग इति । यद्येवम्, सामग्र्यन्तरमेव गुणसहितमिन्द्रियादिप्रामाण्यकारणमिति प्राप्तम्, गुणसहितस्यैव-दोषरहितत्वसम्भवात् । तत्र न वक्तव्यं सामग्र्यन्तरजन्यत्वासिद्धेरिति । दोषा-गमे गुणानां व्यापारो न प्रामाण्योत्पत्ताविति चेत् । तन्न । अपगमस्यावस्तुत्वान्न तत्र कस्यचिद्व्यापारो युक्तः । नञ्वावस्तुनि अशविषाणादावनुत्पाद्यस्वभावे कस्यचि-द्व्यापारः सम्भवति । यच्चोक्तम्—विज्ञानोत्पादकमेव त्रैरूप्यमनुमानादौ प्रामाण्यो-त्पादकं दृष्टमिति, एतदप्यसिद्धम् । नहि त्रैरूप्यमेव केवलमनुमानस्योत्पादकम्, किं तर्हि ?, प्रतिपत्तिर्गता ( प्रतिपत्तृगता ? ) अप्यमूढस्मृतसंस्कारा गुणाः । तथाहि—सत्यपि त्रैरूप्ये प्रअष्टसम्बन्धस्मृतिसंस्कारस्याप्रतीतसम्बन्धस्य च प्रतिपत्ति(त्तु ?)-नोपजायते । अनुमानमित्यतोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां विज्ञानोत्पादकमेव प्रामाण्योत्पाद-कमित्येतदसिद्धम् । अतो विपर्ययो दुर्निवार एव व्यवस्थितः । यच्चोक्तम्—विपर्य-यज्ञानरूपं कार्यमिन्द्रियादिस्वरूपाच्चोत्पद्यत इति, तदप्यतिसाहसम् । इन्द्रियानपे-क्षस्यापि विपर्ययज्ञानस्योत्पत्तिप्रसङ्गात् । नहि यो यतः स्वभावाच्चोत्पद्यते, तस्य तदपेक्षा युक्ताऽतिप्रसङ्गात् । न चेन्द्रियनिरपेक्षं तैमिरिकादिद्विचन्द्रादिज्ञानमुत्प-द्यते । किञ्च—यद्यथाविसंवादित्वं प्रामाण्यमुपवर्ण्यते तदा चोदनाजनिताया बुद्धेः कथमथाविसंवादित्वमवगतम् । येन तत्र भवतामर्वाग्दर्शिनां प्रामाण्यव्यवहारः स्यात् । नञ्वाविदिततत्कार्यैस्तच्छक्तिरवधारयितुं शक्यते, अतिप्रसङ्गात् । ततश्च यस्यैव वेदस्य प्रामाण्यस्थिरीकरणप्रत्याशया सर्वत्र सर्वमेतद्वाग्जालमुपरचितं तस्यैव तन्न प्रसिद्धमिति केवलं तन्दुर्लभिना तुषकण्डनमेतत्कृतमित्यलमितिप्रसङ्गेन ।

## इति स्वतःप्रामाण्यपरीक्षा ।

अनरूपकरुपासङ्गयेयसात्मीभूतमहादयः । यः प्रतीत्यसमुत्पादं जगाद वदतां वरः । तं सर्वज्ञं प्राणभ्यायं क्रियते तत्त्वसङ्ग्रहः ॥ इत्यनेन यत्सर्वज्ञोपदिष्टत्वं प्रतीत्यसमु-त्पादस्य विशेषणमुक्तं तत्समर्थनार्थं प्रस्तावमात्रं रचयन्नाह—एवमित्यादि ।

एवं सर्वप्रमाणानां प्रमाणत्वे स्वतोऽस्थिते ।

अतीन्द्रियार्थवित्सृष्टसिद्धये न प्रयत्नते ॥ ३१२४ ॥



एवमन्तरोक्तेन न्यायेन यदा सर्वेषामेव प्रमाणानां न स्वत एव प्रामाण्यमिति स्थितम् । अतोऽयन्नेनैवातीन्द्रियार्थदर्शी पुरुषः सिद्ध इति न तत्सिद्धये पृथक्प्रयत्नान्तरमास्थीयते ॥ ३१२४ ॥

स्यादेतत्—कथं यत्नमन्तरेण सिद्धयतीत्याह—वेदस्यापीत्यादि ।

वेदस्यापि प्रमाणत्वं यस्मात्पुरुषतः स्थितम् ।

तस्य चातीन्द्रियज्ञत्वे ततस्तस्मिन्प्रमाणता ॥ ३१२५ ॥

अन्यथाज्ञानसंदेहविपर्यासानुषङ्गिणि ।

पुंसि कर्त्तरि नैवास्य प्रामाण्यं स्यात्तदन्यवत् ॥ ३१२६ ॥

स्वर्गयागादिसम्बन्धो ज्ञात्वा तथेन भाषितः ।

विस्पष्टातीन्द्रियज्ञानः सोऽभ्युपेयः परैरपि ॥ ३१२७ ॥

तस्य चेति । पुरुषस्य । तत इति । पुरुषात्कर्तुः । तस्मिन्निति । वेदे । प्रमाणतेत्येतदपेक्षाऽधिकरणसप्तमी । प्रमाणतेति । अविपरीतातीन्द्रियार्थप्रतिपादकत्वम् । एतच्च परमतापेक्षयाऽभिहितम् । एतदुक्तं भवति—यदि भवद्विरवश्यं वेदस्य प्रामाण्यमभ्युपेयते तदाऽस्य पुरुषादेव कर्तुः प्रामाण्यं युक्तम्, न स्वत इति, एतच्च पूर्वं प्रतिपादितम् । स च वेदस्य कर्त्ता यद्यतीन्द्रियहृग्भवति तदाऽस्य ततः कर्तुरपि प्रमाणता युक्ता, अन्यथा हि विपरीतसंशयज्ञानादियुक्ते कर्त्तरि सत्युन्मत्तादिवाक्यवद्वेदोऽप्रमाणतामेवाशुचीत । तस्माद्योऽसौ वेदकर्त्ता पूर्वं श्रुतिपरीक्षायां प्रसाधितः, परैरपि मीमांसकैरतीन्द्रियार्थदर्शी सामर्थ्यादङ्गीकर्त्तव्य इति तत्प्रतिक्षेपो न कार्यः । तथाहि सर्वेषामेव पुंसां रागादिदोषतिमिरोपहतबुद्धिलोचनतया नातीन्द्रियार्थदर्शित्वमस्तीत्यवगम्य तत्प्रतीतेष्वगमेष्वप्रतिष्ठितप्रामाण्यप्रत्याशो धर्माधर्मावगमार्थी नरस्तीरादर्शीव शकुनिर्वेदमेव किल प्रमाणयिष्यतीति मन्यमानैर्यद्वा गुणद्रविणदारिद्र्योपहता (त!)विमोक्षतया जैमिनीयैरतीन्द्रियार्थहृक्प्रतिक्षिप्यते—सर्व एव हि पुरुषा रागादिभिरविद्यया च तदुपशमोपायवैकल्याद्विप्लुतास्तस्मान्नास्त्यतीन्द्रियार्थदर्शी कश्चिदिति चोदनालक्षण एवार्थो धर्मो नेन्द्रियादिलक्षणः, चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थं शक्नोत्यवगमयितुं नान्यत्किञ्चनेन्द्रियमिति । प्रमाणयन्ति चात्र । यः प्रमाणपञ्चकविरहस्वभावाभावप्रमाणविषयीकृतविग्रहः स विदुषामभावव्यवहारगोचरतामेवावतरति,

यथा गगननलिनम्, अभावप्रमाणविषयीकृतविग्रहश्च सर्वदर्शी पुरुष इति स्वभाव-  
हेतुः । व्यवहारयोग्यतायाः साध्यत्वात् । अभावस्त्वभावप्रमाणत एव सिद्धः  
॥ ३१२५ ॥ ३१२६ ॥ ३१२७ ॥

ननु चैतावदेव सर्वं प्रमेयं वस्तु, यदुत पञ्चविषया रूपादयः, तांश्च जानन्तो  
नरा लोकेऽतिप्रतीता एवेति । ततश्च प्रतीतिबाधा प्रतिज्ञाया इत्येतदाशङ्क्याह—  
धर्मज्ञत्वनिषेध इत्यादि ।

धर्मज्ञत्वनिषेधश्चेत्केवलोऽत्रोपयुज्यते ।

सर्वमन्यद्विजानानः पुरुषः केन वार्यते ॥ ३१२८ ॥

अत्र हि वेदप्रामाण्यसिद्धौ धर्मात्मविश्वपरिज्ञातृत्वनिषेधमात्रं विवक्षिसम्, न तु  
सर्वशब्दाभिधेयमात्रपरिज्ञातृत्वनिषेधः, तेन धर्माधर्मव्यतिरिक्ताशेषपदार्थपरिज्ञाना-  
पेक्षया यः कस्मिंश्चित्पुंसि सर्वज्ञव्यवहारो लोकस्य सम्भवति न तस्य प्रतिषेधोऽ-  
स्माभिः क्रियते, अतो न प्रतीतिबाधा सम्भवतीति भावः ॥ ३१२८ ॥

किञ्च—यदि भवद्विरपि बौद्धैर्धर्माधर्मज्ञव्यतिरेकेणान्यस्मिन्पुंसि सर्वज्ञत्वं प्रस-  
ज्यते तदा सिद्धसाध्यतेति दर्शयन्नाह—सर्वशब्दश्चेत्यादि ।

सर्वशब्दश्च सर्वत्र प्रकृतापेक्ष इष्यते ।

ततः प्रकृतसर्वज्ञे सति किं नोऽवहीयते ॥ ३१२९ ॥

किञ्च तत्प्रकृतं (?) सर्वमित्युच्यत इति दर्शयति—अर्थे चेत्यादि ।

अर्थे चासम्भवात्कार्यं किञ्चिच्छब्देऽपि कल्प्यते ।

तत्र यः सर्वशब्दज्ञः स सर्वज्ञोऽस्तु नामतः ॥ ३१३० ॥

यथाहि—व्याकरणेऽग्निर्देगित्यादिना लक्षणेन प्रत्ययागमादि कार्यं विधीयमान-  
मर्थे न सम्भवतीति सामर्थ्यादर्थावाचिनि शब्देऽवगम्यत इति वैयाकरणैर्वर्ण्यते तद्व-  
द्यदि भवद्विरपि सर्वस्य केनचित्परिज्ञातुमशक्यत्वादिति कृत्वा स (स्व?)सिद्धा-  
न्तरपरिपठितस्य सर्वज्ञशब्दस्य यत्सर्वपदं तस्य स्वरूपप्रधानतामाश्रित्य सर्वशब्दं यो  
वेत्ति स सर्वज्ञ इत्येवं वर्ण्यते तदास्तु—भवतु, नामतः—संज्ञामात्रात्, नहि  
यथेष्टं नाम कुर्वाणस्य कस्यचित्कचित्प्रतिरोद्धा स्वतन्त्रेच्छामात्रप्रभवत्वान्नाम इति  
भावः ॥ ३१३० ॥

अथापि प्रकृतं किञ्चित्तैलोदकघृतादिव(य?)म् ।

तेन सर्वेण सर्वज्ञस्तथाऽप्यस्तु न वार्यते ॥ ३१३१ ॥

अथापि धर्माधर्माभ्यां यदन्यत्तैलोदकघृतादि सर्वत्वेन विवक्षितम्, तेन सर्वेण विषयीकृतेन सत्ता सर्वज्ञ इतीष्यते, तथापि सिद्धसाध्यता ॥ ३१३१ ॥

किञ्च—सामान्याकारतः विश्वस्य जगतः सङ्क्षेपपरिज्ञानाद्वा सर्वज्ञ इष्टः, आहो-  
स्विद्विशेषाकारेण विस्तरपरिज्ञानात्, तत्राद्ये पक्षे सिद्धसाध्यतेति दर्शयति—भावा-  
भावेत्यादि ।

**भावाभावस्वरूपं वा जगत्सर्वं यदोच्यते ।**

**तत्संक्षेपेण सर्वज्ञः पुरुषः केन नेष्यते ॥ ३१३२ ॥**

**एवं ज्ञेयप्रमेयत्वसंक्षेपेणापि सर्वताम् ।**

**आश्रित्य यदि सर्वज्ञः कस्तं वारयितुं क्षमः ॥ ३१३३ ॥**

सर्वमेव हि जगदितरेतराभावादिस्वभावत्वादभावस्वभावं, विधिरूपतया व्यव-  
स्थितत्वात् भावस्वभावमिति यदेतदस्माभिर्भावाभावस्वभावत्वं सर्वजगद्द्रव्यापी सामा-  
न्यधर्मो वर्णितः, तेन रूपेण सर्वजगत्परिज्ञानाद्यदि सर्वज्ञः प्रसाध्यते, तथापीष्ट-  
मेव, न ह्येतावता धर्मज्ञत्वं प्रसिद्धयति कस्यचित् । तत्सङ्क्षेपेणेति । तदेव भावा-  
भावरूपत्वं जगतः सङ्क्षेपः, सङ्क्षिप्यतेऽनेनेति कृत्वा । एवं प्रमेयत्वादिभिः सामा-  
न्यधर्मैः परिज्ञानेऽपि सिद्धसाध्यता ॥ ३१३२ ॥ ३१३३ ॥

**पदार्था यैश्च यावन्तः सर्वत्वेनावधारिताः ।**

**तज्ज्ञत्वेनापि सर्वज्ञाः सर्वे तद्बन्धवेदिनः ॥ ३१३४ ॥**

अथापि स्याद्यैः स्वस्मिन्स्वस्मिन् शास्त्रे यावन्तः पदार्थाः सर्वत्वेनावधार्य नि-  
र्दिष्टाः—यथा बौद्धैः पञ्च स्कन्धाः, वैशेषिकैः षट् पदार्थाः, नैयायिकैः प्रमाणप्रमे-  
यादयः षोडश, साङ्ख्यैः प्रकृतिमहदादयः पञ्चविंशतिरित्येवमादि, तत्परिज्ञानात्स-  
र्ववित्प्रसाध्यत इति । एवं सत्यतिप्रसङ्गः, तद्बन्धार्थवेदिनोऽन्ये येऽध्येतारः ते  
सर्वज्ञाः प्राप्नुवन्ति ॥ ३१३४ ॥

**तथा षड्भिः प्रमाणैर्यः षट्प्रमेयविवेकवान् ।**

**सोऽपि संक्षिप्तसर्वज्ञः कस्य नाम न संमतः ॥ ३१३५ ॥**

अथापि स्याद्यो हि प्रत्यक्षानुमानशब्दोपमानार्थापत्त्यभावात्स्यैः षड्भिः प्रमाणैर्यथा-  
स्वमेषां विषयषट्कं विवेकेन परिजानाति स सर्वज्ञ इति, अत्रापि सिद्धसाध्यता ।  
तथाहि—प्रत्यक्षं रूपादिविषयपञ्चकनियतत्वान्न धर्माधर्मविषयम् । अनुमानमपि प्रत्य-

क्षगृहीतलिङ्गसम्बन्धलिङ्गविषयत्वान्न तद्विषयम्, धर्मादिरतीन्द्रियत्वेन केनचित्सम्बन्धस्य गृहीतुमशक्यत्वात् । शाब्दं यद्यपि सर्वं परोक्षार्थविषयं, तथापि न तेन ज्ञानेनातीन्द्रियार्थदर्शी भवितुमर्हति, तस्य ज्ञानस्य परोक्षार्थविषयत्वेनाप्रत्यक्षत्वात् । न चाप्रत्यक्षज्ञानासङ्गी पुरुषः साक्षाद्दर्शी युज्यते । उपमानमपि सादृश्यतदुपाधिविषयत्वान्न धर्माधर्मादिविषयम्, यथोक्तम्—“तस्माद्यत्स्मर्यते तत्स्यात्सादृश्येन विशेषितम् । प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदाश्रितम् ॥” इति । अर्थापत्तिरपि दृष्टश्रुतार्थान्यथानुत्पत्तिपरिकल्प्यार्थान्तरविषया, नासौ धर्मादिगोचरा, नहि कश्चिद्दृष्टः श्रुतो वार्थोऽस्ति यो धर्मादिना विना नोपपन्नः । भवतु वा धर्मादिविषयत्वमर्थापत्तेः, तथाऽपि तस्या अप्रत्यक्षस्वभावत्वान्न तत्सङ्गी धर्मादिसाक्षाद्दर्शी सिद्धयति । अभावस्य तु प्रमेयाभावविषयत्वादेवायुक्तं धर्मादिविषयत्वम् । ३१३५ ॥

एवं तावत्सङ्घिसर्वज्ञप्रमाधने सिद्धसाध्यतेति प्रतिपादितम्, इदानीं विस्तरेणाशेषजगत्परिज्ञानात्सर्वज्ञत्वमाधने दोषमाह—विशेषेणेत्यादि ।

**विशेषेण तु सर्वार्थसाक्षात्प्रत्यक्षदर्शिनम् ।**

**यः कल्पयति तस्यासौ मुधा मिथ्या च कल्पना ॥ ३१३६ ॥**

मुधेति । निष्फला । पुरुषार्थसिद्धावनुपयोगात् । मिथ्येति । असम्भावनीयार्थविषयत्वाद्वि तथा ॥ ३१३६ ॥

तदेवासम्भावनीयविषयत्वमस्या दर्शयति—एकस्यैवेत्यादि ।

**एकस्यैव शरीरस्य यावन्तः परमाणवः ।**

**केशरोमाणि यावन्ति कस्तानि ज्ञातुमर्हति ॥ ३१३७ ॥**

एकशरीरान्तर्गताशेषपरमाणुप्रविभागपरिज्ञानमेव तावत्स्वल्पं पुंसामसम्भाव्यम्, किमुताशेषजगद्गतसूक्ष्मादिविशेषपरिज्ञानं भविष्यति ॥ ३१३७ ॥

मुधात्वं कल्पनाया दर्शयन्नाह—समस्तावयवेत्यादि ।

**समस्तावयवव्यक्तिविस्तरज्ञानसाधनम् ।**

**काकदन्तपरीक्षावत्क्रियमाणमनर्थकम् ॥ ३१३८ ॥**

अवयवाश्च पाण्यादयः, व्यक्तयश्च धवस्वदिरपलाशादय इत्यवयवव्यक्तयः, समस्ताश्च ता अवयवव्यक्तयश्चेति विग्रहः, तासामणुकेशपत्रादिलक्षणं विस्तरं जानातीति तथोक्तम् । “कृत्यर्युटो बहुल”मिति कर्त्तरि र्युट् । तस्य साधनं प्रतिपादितम् ।

तदनर्थकम्—असम्भवित्वेन धर्माधर्माविषयत्वेन तु पुरुषार्थं प्रत्यनुपयोगित्वादिति भावः ॥ ३१३८ ॥

एतदेव दृष्टान्तेनोपपादयन्नाह—यथेत्यादि ।

यथा च चक्षुषा सर्वान्भावान्वेत्तीति निष्फलम् ।

सर्वप्रत्यक्षदर्शित्वप्रतिज्ञाऽप्यफला तथा ॥ ३१३९ ॥

एतेन सिद्धसाध्यत्वं प्रतीतिबाधितत्वं च प्रतिज्ञाया यथायोगमुक्तं भवति ॥३१३९॥

यत्र तु विवादो यत्साधने च पुरुषार्थोपयोगित्वं तद्दर्शयति—स्वधर्मेत्यादि ।

स्वधर्माधर्ममात्रज्ञसाधनप्रतिषेधयोः ।

तत्प्रणीतागमप्राण्यहेयत्वे हि प्रसिद्धयतः ॥ ३१४० ॥

तत्र सर्वजगत्सूक्ष्मभेदज्ञत्वप्रसाधने ।

अस्थाने क्लिश्यते लोकः संरम्भाद्ग्रन्थवादयोः ॥ ३१४१ ॥

स्वकीयश्चासौ धर्माधर्ममात्रज्ञश्चेति तथोक्तः, तस्य साधनप्रतिषेधाविति विग्रहः । सप्तमीयम् । तत्प्रणीतस्यागमस्य प्राण्यत्वहेयत्वे हि प्रसिद्धयत इति यथाक्रमं सम्बन्धः । एतदुक्तं भवति—यदि साधनवादी स्वकीयशास्तरं धर्माधर्मज्ञं साधयति तदा तस्य साधने कृते सति तत्प्रणीतागमस्य प्राण्यता सिद्धयति । दूषणवादी च यदि पराभ्युपगतं स्वधर्माधर्ममात्रज्ञं प्रतिषेधति तदा तस्य निषेधे कृते सति दूषितधर्माधर्मज्ञप्रणीतस्यागमस्य हेयत्वं प्रसिद्धयति । यत्पुनर्धर्माधर्मविषयां चित्रा(न्ता ?)-मपहाय स्वपरप्रसिद्धस्य सर्वज्ञस्य सकलजगद्गतसूक्ष्मादिभेदज्ञत्वाज्ञत्वसाधनाय साङ्ख्यबौद्धादिभिर्ग्रन्थरचनायां वादे वा संरम्भः क्रियते स केवलमेषां संकेशफल एव । सर्वजगत्सूक्ष्मभेदज्ञत्वप्रसाधन इति निमित्तसप्तमी । ग्रन्थवादयोरित्यत्र तु संरम्भापेक्षाऽऽधारसप्तमी ॥ ३१४० ॥ ३१४१ ॥

स्यादेतद्यदि न कश्चिद्धर्मादिपरिज्ञाताऽस्ति नरस्तदा लोके कथं पुण्यापुण्यावगतिर्भव(ती)त्याशङ्क्यामाह—सर्वप्रमातृसम्बद्धेत्यादि ।

सर्वप्रमातृसम्बद्धप्रत्यक्षादिनिवारणात् ।

केवलागमगम्यत्वं लप्स्यते पुण्यपापर्योः ॥ ३१४२ ॥

एतावतैव मीमांसापक्षे सिद्धेऽपि यः पुनः ।

सर्वज्ञवारणे यत्नस्तत्कृतं मृतमारणम् ॥ ३१४३ ॥

येऽपि विच्छिन्नमूलत्वाद्धर्मज्ञत्वे हते सति ।

सर्वज्ञान्पुरुषानाहुस्तैः कृतं तुषकण्डनम् ॥ ३१४४ ॥

केवलागमगम्यत्वमिति । आगममात्रगम्यत्वमित्यर्थः । यद्यप्यागमशब्दः सामान्यवचनस्तथाप्यर्थादपौरुषेयागमनिष्ठ एव द्रष्टव्यः । एतावतैवेति । धर्मज्ञत्वनिषेधमात्रेण “चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म” इत्यस्मिन्मीमांसापक्षे सिद्धेऽपि योऽस्माभिर्वक्ष्यमाणो भूयः सर्वज्ञपुरुषनिषेधाय यत्नः क्रियते सोऽभिमतफलसिद्धेर्जातत्वात्प्राप्तफलस्य मृतमारणवन्निष्फलः, येश्च बौद्धादीनां धर्मज्ञेऽभावप्रमाणेन हते सति सर्वज्ञसाधनाय यत्नः सोऽपि समीहितफलाभावात्तुषकण्डनं तन्दुलार्थिनः केवलमायासमात्रफल एव । यथा तुषान्तर्गततन्दुलपरित्यागेन तन्दुलार्थिनः केवलं तुषकण्डनमेवं बौद्धादौ स्वतःप्रधानभूतधर्मज्ञपरित्यागेनानुपयुज्यमानाशेषजगद्गतसूक्ष्मादिभेदज्ञसाधनमित्येतत्तुषकण्डनसाधर्म्यम् । विच्छिन्नमूलत्वादिति । विच्छिन्नं मूलं प्रधानं धर्मात्मकवस्तुपरिज्ञानं येषां ते तथोक्ताः । तद्भावस्तत्त्वम् ॥ ३१४२ ॥ ३१४३ ॥ ३१४४ ॥

न केवलमेषां बौद्धादीनां सर्वज्ञं साधयतामभीष्टफलासिद्धिरपित्वनिष्ठापत्तिरपीति दर्शयति—साक्षादित्यादि ।

साक्षात्प्रत्यक्षदर्शित्वाद्यस्याशुचिरसादयः ।

स्वसंवेद्याः प्रसज्यन्ते को नु तं कल्पयिष्यति ॥ ३१४५ ॥

स्यादेतत्सुगतादीनां सकल्पदार्थराशितत्त्वोपदेशादनुमितः सर्वज्ञभाव इत्यनुमानबाधितत्वं प्रतिज्ञाया हेतोश्चासिद्धत्वमित्याशङ्क्याह—न चेत्यादि ।

न च वेदोपवेदाङ्गप्रत्यङ्गाद्यर्थबोधनम् ।

बुद्धादेर्दृश्यते वाक्यं स सर्वज्ञः कथं मुधा ॥ ३१४६ ॥

वेदाः—ऋग्यजुःसामसंज्ञकाः, उपवेदाः—आयुर्वेदधनुर्वेदादयः, अज्ञानि-वेदानां षट्, शिक्षा कल्पो व्याकरणं छन्दो निरूक्तं ज्योतिषमिति, प्रत्यङ्गानि—तदवयवा धात्वादयः, आदिशब्देन तत्परिकरस्य भाष्यादेः परिग्रहः । एषामर्थोऽभिधेयस्तस्य बोधनम्—प्रतिपादकं वचनं तत्तथाभूतं वाक्यं बुद्धादेर्न दृश्यते, यद्वेदाद्युपदिष्टमर्थं प्रतिपादयतीत्यर्थः । नहि कस्यचिदखिलपदार्थराशिप्रतिपादिकशास्त्रप्रणयनं दृश्यते, सर्वशास्त्राणां भिन्नाभिधेयत्वदर्शनात् ॥ ३१४६ ॥

अथापि स्यात्कियन्मात्रपदार्थोपदेशदर्शनात् बुद्धादेरन्योऽपि स्वग्रन्थानुपदिष्टोऽर्थो विज्ञातत्वेनानुमीयते परिज्ञानशक्तिदर्शनात्, ततश्च तदवस्थ एव दोष इत्याह—स्व-ग्रन्थेष्वित्यादि ।

**स्वग्रन्थेष्वनिबद्धोऽपि स्वज्ञातोऽर्थो यदीष्यते ।**

**सर्वज्ञाः कवयः सर्वे स्युः स्वकाव्यनिबन्धनात् ॥ ३१४७ ॥**

यदि ग्रन्थेषु अनिबद्धोऽपि—अनुपदिष्टोऽपि योऽर्थः स तैर्विज्ञात इष्यतेऽनुमान-बलात्तदा स्वोत्प्रेक्षितकथाप्रबन्धकारिणोऽपि कवयः परिज्ञानशक्तिदर्शनात्सर्वज्ञाः कल्प्याः स्युः, अविशेषादित्यनैकान्तिकता हेतोः ॥ ३१४७ ॥

स्यादेतद्बुद्धादीनामतीन्द्रियपदार्थोपदेशो दृश्यते न तु कवीनाम्, तेन तेषामे-वाशेषातीन्द्रियार्थपरिज्ञानमनुमीयते नान्येषाम्, अन्यथा हि यस्याशेषातीन्द्रियार्थ-पदार्थपरिज्ञानसामर्थ्यं नास्ति, तस्य कियन्मात्रातीन्द्रियार्थपरिज्ञानमपि न स्यादविशे-षात् । तेनातीन्द्रियार्थपरिज्ञातृत्वे सतीति सविशेषणत्वाद्देतोर्न कविभिर्व्यभिचार इत्याशङ्क्याह—सर्वज्ञेष्वित्यादि ।

**सर्वज्ञेषु च भूयत्सु विरुद्धार्थोपदेशेषु ।**

**तुल्यहेतुषु सर्वेषु को नामैकोऽवधार्यताम् ॥ ३१४८ ॥**

बहुतरेषु सुगतकपिलकृष्णभक्षाक्षपादादिषु तद्भक्तैः सर्वज्ञत्वेनोपकल्पितेषु सा-ध्येषु कतम एकोऽत्र सर्वज्ञत्वेनावधार्यतां निश्चीयताम्, सर्वेषामतीन्द्रियार्थोपदेष्टृ-त्वस्य सर्वज्ञनिश्चयहेतोस्तुल्यत्वात् । न च सर्व एव सर्वज्ञ इत्यवधारयितुं युक्तम्, सर्वेषां परस्परविरुद्धार्थोपदेष्टृत्वात् । नहि परस्परप्रतिहतोपदेष्टारः सर्व एव तत्त्वद-र्शिनो युक्ता वस्तुनामेकरूपत्वेन परस्परविरुद्धानेकस्वभावसंसर्गाभावात् ॥ ३१४८ ॥

सुगत एकोऽवधार्यत इति चेदाह—सुगतो यदीत्यादि ।

**सुगतो यदि सर्वज्ञः कपिलो नेति का प्रमा ।**

**अथोभावपि सर्वज्ञौ मतमेवस्तयोः कथम् ॥ ३१४९ ॥**

द्वावपि तर्हि सर्वज्ञौ भवेतामिति चेदाह—अथोभावपीत्यादि ॥ ३१४९ ॥

अथापि स्यात्—यस्य वचनं सत्यार्थमुपलब्धमेकदा तस्यैवाविपरीताशेषपदार्थ-तत्त्वपरिज्ञानमनुमीयत इत्याह—गणितेत्यादि ।

**गणिताग्रेकदेशे तु सर्वेषां सत्यवादिता ।**

**जनबुद्धादिसत्त्वानां विशेषो नावधार्यते ॥ ३१५० ॥**

सर्वेषां हि जिनबुद्धादीनां देहिनां गणिताद्येकदेशेषु कचिदविसंवादि वचो दृश्यत एव । नञ्जनरूपं प्रलपताम् ( प्रजल्पतां ? ) न किञ्चित्सत्यार्थं भवेत्, यथोक्तम्—  
“नञ्जेकं नास्ति सत्यार्थं पुरुषे बहुभाषिणि” इति । ततश्च तुल्यहेतुतः सर्वेषामेव विशेषाऽनवधारणात्सर्वज्ञता प्राप्नोति, न चैतद्युक्तम्, परस्परविरुद्धार्थोपदेशादिति पूर्वमुक्तत्वात् ॥ ३१५० ॥

अथापि स्याद्यस्य वचनं सर्वत्र प्रमाणैर्निवार्यमाणं व्याहन्तुं न पार्यते स एव सर्वज्ञो भविष्यतीत्याह—येनैवेत्यादि ।

येनैव हेतुनैकस्य सर्वज्ञत्वं प्रसाध्यते ।

स्वपक्षप्रीतिमात्रेण सोऽन्यस्याप्युपतिष्ठते ॥ ३१५१ ॥

दूषणानि ससंरम्भाः सर्वज्ञजिनसाधने ।

शाक्या यान्येव जल्पन्ति जैनास्तान्येव युञ्जते ॥ ३१५२ ॥

तत्रानवस्थितैस्तेषां भिन्नैः साधनदूषणैः ।

प्रतिबिम्बोदयग्रस्तैर्निर्णयः क्रियते कथम् ॥ ३१५३ ॥

यो हि हेतुः सुगतसर्वज्ञ(ता)साधनायोपादीयते सुगतसुतैः । यथा साक्षाद्विदितसकलार्थतत्त्वः सुगतः, अश्रुताननुमिताविपरीतार्थोपदेष्टत्वात्, यथा प्रत्यक्षावगतसलिलादिस्तदुपदेष्टेति । अयमेव दिगम्बराणां जिनसर्वज्ञ(ता)साधनाय हेतुरूपतिष्ठते । ततश्च तदवस्थ एव संदेहः । तथा जिनसर्वज्ञ(ता)साधनाय दिगम्बरैः साधने कृते यानि दूषणानिः शाक्यैरुपादीयन्ते—तदुपदिष्टानां स्याद्वादादीनामयोगान्नासौ सर्वज्ञ इति, तानि शाक्यैः सुगतसर्वज्ञसाधने कृते जैना अप्युपाददते—नासौ सर्वज्ञस्तदुपदिष्टानां क्षणभङ्गादीनामयोगादिति । ततश्च यथा बिम्बसन्निधानानन्तरं प्रतिबिम्बोदय एवमेषां साधनदूषणानन्तरं परस्परप्रत्यनीकभूतानि साधनदूषणान्युपतिष्ठन्त इति तत्कथमेभिः साधनदूषणैरनवस्थितैः प्रतिबिम्बोदयेनैव ग्रस्तैर्निर्णयः क्रियते कस्यचित्सर्वज्ञत्वेन ॥ ३१५१ ॥ ३१५२ ॥ ३१५३ ॥

स्यादेतत्—यस्य न केनचित्परमार्थतो दूषणं शक्यते कर्तुम्, स एव सर्वज्ञत्वेन विज्ञास्यत इत्याह—एवमित्यादि ।

एवं सर्वज्ञकल्पेषु निहतेषु परस्परम् ।

अल्पशोषीकृतान्सर्वान्वेदवादी हनिष्यति ॥ ३१५४ ॥



आत्मानमुत्कर्षयन्नाह—यथा नकुलेत्यादि ।

यथा नकुलदन्ताग्रस्पृष्टा या काचिदौषधिः ।

सर्वं सर्वविषं हन्ति क्रीडङ्गिरपि योजिता ॥ ३१५५ ॥

वेदवादिमुखस्थैवं युक्तिलौकिकवैदिकी ।

या काचिदपि शाक्यादिसर्पज्ञानविषापहा ॥ ३१५६ ॥

का पुनरसौ या काचिद्युक्तिरित्यादि—यस्येत्यादि ।

यस्य ज्ञेयप्रमेयत्ववस्तुसत्त्वादिलक्षणाः ।

निहन्तुं हेतवः शक्ताः को नु तं कल्पयिष्यति ॥ ३१५७ ॥

एकेनैव प्रमाणेन सर्वज्ञो येन कल्प्यते ।

नूनं स चक्षुषा सर्वान् रसादीन्प्रतिपद्यते ॥ ३१५८ ॥

यस्य हि ज्ञेयत्वादयः सपक्षविपक्षसाधारणत्वेनाप्रतीताः सन्तो बाधका भवन्ति, सोऽत्यन्तासम्भवीति न प्रेक्षावताभ्युपेयः । तथाहि—शक्यमिदं वक्तुं सुगतोऽस-  
र्वज्ञो ज्ञेयत्वप्रमेयत्ववस्तुत्वसत्त्ववक्तृत्वपुरुषत्वादिभ्यो रथ्यापुरुषवदिति । न चाप्ये-  
तेऽनैकान्तिका भवन्ति । तथाहि—सर्वपदार्थज्ञानात्सर्वज्ञ इष्यते, तच्च सकलवस्तु-  
परिज्ञानं कदाचिदिन्द्रियज्ञानेन वा भवेत्, मनोज्ञानेन वा । न तावन्न्द्रियज्ञानेन,  
तस्य प्रतिनियतार्थविषयत्वादयुक्तमशेषार्थविषयत्वम्, तथाहि—चक्षुरादिज्ञानानि-  
प्रतिनियतविषयग्रहणस्वभावान्येव स्वकारणैरिन्द्रियैर्नियामकैर्जनितानि, ततश्चानति-  
क्रान्तस्वविषयमर्यादानि लोकेऽतिप्रतीतानीति न युक्तमेतैरशेषार्थग्रहणम् । अन्यथा  
ज्ञानेकेन्द्रियवैयर्थ्यप्रसङ्गः स्यात् । ततश्चैकेनैव ज्ञानेन सर्वधर्मान् भिन्नेन्द्रियग्राह्या-  
नपि रसरूपादीन् जानातीत्येवं येन बौद्धेन कल्प्यते, 'एकेन सर्वं जानाति सर्वमे-  
केन पश्यती'ति वचनानूनं स वादी बौद्धश्चक्षुषा करणभूतेन तद्धारणवृत्तेन ज्ञानेन  
सर्वधर्मान् रसादीनवगच्छतीति प्राप्तम् । न चैतच्छक्यते वक्तुम् । माभूदेकेन ज्ञा-  
नेन युगपदशेषार्थस्य ग्रहणम्, अनेकेन भविष्यतीति । यतो युगपदनेकविज्ञानास-  
म्भवात् । सम्भवेऽपि न सर्वपदार्थग्रहणमस्ति, परचित्तस्येन्द्रियज्ञानाविषयत्वात्,  
अगोचरप्राप्तस्य च दूरसूक्ष्मव्यवहितादेरर्थस्य तेन ग्रहीतुमशक्यत्वात् ॥ ३१५७ ॥  
॥ ३१५८ ॥

स्यादेतत्—यदि नाम चक्षुरादिज्ञानानां विजातीयार्थग्रहणमिदानीं न इश्यते ।

तथाऽपि कालान्तरे कदाचिद्विजातीयार्थग्रहणमभूत्कस्यचिदिति सम्भाव्यत इत्याह—  
यज्जातीयैरित्यादि ।

**यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनम् ।**

**दृष्टं सम्प्रति लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ॥ ३१५९ ॥**

हेतुप्रतिबद्धो हि भावानां स्वभावप्रतिनियमो नाकस्मिकः, अन्यथा सर्वस्य सर्व-  
स्वभावत्वप्रसङ्गः, ततश्च तथाविधहेतुप्रतिबद्धात्मलाभस्य कथमन्यथात्वं कदाचि-  
दपि सम्भाव्यम्, नहि धूमकेतुप्रतिबद्धात्मसंस्थितेरन्यतो धूमस्योद्भवः सम्भाव्यत  
इति भावः । नापि मनोज्ञानेनेति पक्षः । तथाहि—यद्यपि तत्सर्वार्थविषयम्,  
तथापि न तस्य स्वातन्त्र्येणार्थग्रहणव्यापारोऽस्ति, अन्धवधिगद्यभावप्रसङ्गात् । पार-  
तन्त्र्ये चेन्द्रियज्ञानपरिगृहीनार्थविषयत्वाद्दूरसूक्ष्मव्यवहितपरचित्तादेरर्थस्येन्द्रियज्ञानं  
(ना?)विषयीकृतस्य तेन परिच्छेदो न प्राप्नोति ॥ ३१५९ ॥

स्यादेतत्—प्रज्ञादीनामभ्यासात्प्रतिपुरुषं तारतम्यभेददर्शनादत्यन्तप्रकर्षोऽपि स-  
म्भाव्यत इत्यत्राह—येऽपीत्यादि ।

**येऽपि सातिशया दृष्टाः प्रज्ञामेधाबलैर्नराः ।**

**स्तोकस्तोकान्तरत्वेन नत्त्वतीन्द्रियदर्शनात् ॥ ३१६० ॥**

**प्राज्ञोऽपि हि नरः सूक्ष्मानर्थान्द्रष्टुं क्षमोऽपि सन् ।**

**स्वजातीरनतिक्रामन्ननिशेने परास्तरान् ॥ ३१६१ ॥**

नहि कस्यचिदभ्यासेऽप्यतीन्द्रियार्थदर्शित्वमुपलब्धम् । तथाहि—नरोऽतिप्रा-  
ज्ञोऽपि निपुणबुद्धिगम्यतया सूक्ष्मानर्थानुपलब्धुं समर्थोऽपि स्वजातीः—मनुष्यजाति-  
भाविनीः प्रकृतीरदिव्यचक्षुष्पादिलक्षणा अनतिवर्तमान एवान्यान् नरानतिशयानो  
दृश्यते न तु दिव्यचक्षुष्पादिना युक्तः कश्चिद्दृश्यते इति यावत् । ततश्च—‘स पश्यति  
दिव्येन चक्षुषा सुविशुद्धेनातिक्रान्तमानुष्यकेन सत्त्वान्सुगतिमपि गच्छतो दुर्गति-  
मपि गच्छत’ इत्यादि यद्बौद्धैरुपधोष्यते तत्किल नोपपद्यत इति भावः ॥ ३१६० ॥  
॥ ३१६१ ॥

भवतु नामाभ्यासादिभिरतिशयः सर्वासां बुद्धीनाम्, तथाऽप्येता अविलङ्घित-  
स्वविषयसीमान एव सत्योऽतिशेस्त इति विस्तरेण प्रतिपादयन्नाह—श्रोत्रगम्ये-  
ष्वित्यादि ।

श्रोत्रगम्येषु शब्देषु दूरसूक्ष्मोपलब्धिभिः ।

पुरुषातिशयो दृष्टो न रूपाद्युपलम्भनात् ॥ ३१६२ ॥

चक्षुषाऽपि च दूरस्थसूक्ष्मरूपप्रकाशनम् ।

क्रियतेऽतिशयप्राप्त्या न तु शब्दादिदर्शनम् ॥ ३१६३ ॥

दूरसूक्ष्मेषूपलब्धयो—ज्ञानानि, ताभिरितीत्यंभूनलक्षणे तृतीया, कचिदूरसूक्ष्मो-  
पलब्धत इति पाठः, तदा हेतौ पञ्चमी विधायाद्यादित्वात्तसिर्विधेयः । न तु  
शब्दादिदर्शनम्—चक्षुषा क्रियत इति सम्बन्धः ॥ ३१६२ ॥ ३१६३ ॥

एतावनेन्द्रियधियां स्वविषयमर्यादानतिक्रमो दर्शितः, माम्प्रतं मनोविज्ञानस्या-  
भ्यस्यमानविषयानतिक्रमेणैवातिशयो दृश्यते इति प्रतिपादयति—एवमित्यादि ।

एवं शास्त्रविचारेषु दृश्यतेऽतिशयो महान् ।

न तु शास्त्रान्तरज्ञानं तन्मात्रेणैव लभ्यते ॥ ३१६४ ॥

एतदेव स्पष्टयन्नाह—ज्ञात्वेत्यादि ।

ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं बुद्धिः शब्दापशब्दयोः ।

प्रकृष्यते न नक्षत्रनिधिग्रहणनिर्णये ॥ ३१६५ ॥

ज्योतिर्विषय प्रकृष्टोऽपि चन्द्रार्कग्रहणादिकम् (वित् ?) ।

न भवत्यादिशब्दानां साधुत्वं ज्ञातुमर्हति ॥ ३१६६ ॥

तथा वेदेतिहासादिज्ञानातिशयवानपि ।

न सर्गदेवताऽपूर्वप्रत्यक्षीकरणक्षमः । ३१६७ ॥

ज्योतिर्वेत्तीति ज्योतिर्वित् । वेदेतिहासादिषु ज्ञानानि तेषामतिशयः स विद्यते  
यस्येति विग्रहः । अपूर्वशब्देन धर्माधर्मावुच्येते ॥ ३१६५ ॥ ३१६६ ॥ ३१६७ ॥

किंच—स्वविषयमर्यादातिक्रमेणाप्यतिशयो भवन्नात्यन्तप्रकर्षनिष्ठां गच्छति,  
अपि तु कियन्मात्रविशेषावधिरेव दृश्यत इत्येतद्दर्शयन्नाह—दशहस्तान्तरमित्यादि ।

दशहस्तान्तरं व्योम्नो यो नामोत्प्लुत्य गच्छति ।

न योजनमसौ गन्तुं शक्तोऽभ्यासशतैरपि ॥ ३१६८ ॥

तथाहि यदि नाम केचिदुपचितश्लेषमवपुषो हस्तमात्रव्योमोत्प्लवनासमर्थाः पश्चा-  
दभ्यासक्रमेण समासादिगतात्रलाघवा दशहस्तान्तरगगनविलङ्घिनो जाताः, तथापि  
न ते योजनमेकपि स्वगपथमुत्पतितुं समर्थाः प्रयत्नशतेनापि भवन्ति ॥ ३१६८ ॥

तस्मादित्यादिनोपसंहरति—

तस्मादतिशयज्ञानैरतिदूरगतैरपि ।

किञ्चिदेवाधिकं ज्ञातुं शक्यते न त्वत्तीन्द्रियम् ॥ ३१६९ ॥

अतिशयेन प्रकर्षेण ज्ञानानि अतिशयज्ञानानि । तृतीयेपि(ति?) योगविभागात्स-  
मासः । तैरिति करणतृतीया ॥ ३१६९ ॥

एतदेव स्पष्टीकुर्वन्नाह — एकेत्यादि ।

एकापधरकस्यस्य प्रत्यक्षं यत्प्रवर्तते ।

शक्तिस्तत्रैव तस्य स्यान्नैवापधरकान्तरे । ३१७० ॥

ये चार्था दूरविच्छिन्ना देशपर्वतसागरैः ।

वर्षद्वीपान्तरैर्ये वा कस्तान्पश्येदिहैव सन् । ३१७१ ॥

वर्षम्—लोकविशेषः । यथा भारतलोको भारतवर्षमित्युच्यते । ३१७० ॥ ३१७१ ॥

अन्यैरप्यत्रास्माकं स्वहस्तो दत्त इति दर्शयन्नाह— नलेत्यादि ।

नलर्तुपर्णयोश्चामावश्वाक्षहृदयज्ञयोः ।

संवाहे गच्छतोर्वाक्यमृतुपर्णेन भाषितम् ॥ ३१७२ ॥

सर्वः सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नोपपद्यते ।

नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति ज्ञानस्य पुरुषे क्वचित् ॥ ३१७३ ॥

संवाह इति । रथे । तथाहि किल श्रूयते-नलो नाम राजा बभूव । स किला-  
क्षहृदयानभिज्ञतया सकलमेव राज्यं द्यूतेन हाग्यामाम । तस्य च राज्ञी दमयन्ती  
नाम बभूव । सोऽपहृतसकलगज्यस्तया देव्या केवलया सार्द्धमरण्यमुपजगाम ।  
तत्रागतस्यापि तत्र दैववशात्तया राज्ञा सह वियोगोऽभूत् । सोऽनीव समुद्रजात-  
प्रियाविरहशोकाश्रुदुर्दिनवदनश्चिन्ताजलधिमवगाहमानोऽतिशयसञ्जातशरीरकशिमा परि-  
भ्रमन्निस्ततः कथमपि सङ्केशहृतुपर्णस्य राज्ञोऽनुजीविवृत्तिमास्थायविदितस्थि-  
तोऽभूत् । सा च तस्य राज्ञी कथं कथमपि पितृगृहमनुप्राप्ता बभूव । तस्याश्च पिता  
तत्स्वामिनस्तत्रागमनाय सर्वदेशेषु दमयन्त्याः स्वयंवरमुद्धोषयामास । श्रुतमृतुपर्णेन  
राज्ञा—यथा किल दमयन्तीस्वयंवरैति, स श्रुत्वा नलेन सागथिना तत्र गन्तुमभि-  
प्रतप्से । ऋतुपर्णश्चाक्षहृदयज्ञो नाश्वहृदयवेदी । नलस्त्वश्वहृदयज्ञो नाश्वहृदयाभिज्ञः ।  
परिजातमृतुपर्णेन यथाऽयमश्वहृदयज्ञ इति । स ज्ञात्वा तेनाभ्यधायि, भोः कथय  
मेऽश्वहृदयमिति । नलोऽप्यभिहितवान्—कथयामि यदि मम त्वमप्यश्वहृदयं कथय-

सीति । तत इदमृतुपर्णेन कीर्तितम्—सर्वः सर्वं न जानातीत्यादि । ततो नलेन गजाऽक्षहृदयमृतुपर्णतो विदित्वा पुनरपि तद्राज्यं जित्वा प्रत्यानीतमिति वार्त्ता ॥ ३१७२ ॥ ३१७३ ॥

किंच—सर्वज्ञेन सताऽवश्यमतीतानागतं वस्तु ज्ञातव्यम्, अन्यथा हि प्रत्यक्षमात्रपरिज्ञाने प्रदेशज्ञः स्यान्न सर्वज्ञ, न चानागतादिपरिज्ञानं सम्भवतीति दर्शयन्नाह—अनागत इत्यादि ।

**अनागतेन दृष्टं च प्रत्यक्षस्य मनागपि ।**

**सामर्थ्यं नानुमानादिजन्म लिङ्गादिभिर्विना ॥ ३१७४ ॥**

प्रत्यक्षस्य वस्तुसामर्थ्यबलेनोत्पत्तेरनागतस्य चावस्तुत्वात् तत्र प्रत्यक्षव्यापारः । नाप्यनुमानस्य, लिङ्गाभावात् । नञानागतवस्तुसम्बद्धं कचिद्विदितं लिङ्गमस्ति, अनागतस्याभावात् । आदिशब्देन दृष्टान्तपरिग्रहः । अनागतग्रहणमुपलक्षणम्, अतीतस्यापि ग्रहणं द्रष्टव्यम् । यतस्तत्राप्यावस्तुतया न प्रत्यक्षव्यापारोऽस्ति । तस्मात्सिद्धा प्रमेयत्वादेर्हेतुगणस्य व्याप्तिः । अत एव पूर्वोक्तस्याभावप्रमाणविषयीकृतविग्रहत्वादित्येतस्य हेतोर्व्याप्तिरुक्ता भवति ॥ ३१७४ ॥

तदेवं हेतूनां व्याप्तिं प्रशान्यो(माध्योः)पसंहरन्नाह—तस्मादित्यादि ।

**तस्मादतीन्द्रियार्थानां साक्षाद्द्रष्टा न विद्यते ।**

**वचनेन तु नित्येन यः पश्यति स पश्यति ॥ ३१७५ ॥**

स्यादेतत्—न नित्येनैव वचनेन सर्वः पश्यति । तथाहि—कनककाश्यपमुनि-प्रभृतिप्रणीताद्वाक्याच्छाक्यमुनिः पश्यति, ततोऽप्यन्य, इति । अत्राह—एतदित्यादि ।

**एतदक्षममाणो यः पौरुषेयागमान्तरात् ।**

**अतीन्द्रियार्थविज्ञानं बुद्धादेरपि मन्यते ॥ ३१७६ ॥**

**तस्य तेनैव तुल्यत्वाच्चद्वाक्यस्याप्रमाणात् ।**

**पुरुषस्य च वक्तव्या पूर्वोक्तैरेव हेतुभिः ॥ ३१७७ ॥**

एतत्—अनन्तरोक्तम्—‘वचनेन तु नित्येन यः पश्यति स पश्यतीति, असहमानो य एवं मन्यते बौद्धादिर्म नित्येन वचनेन सर्वं पश्यति, किन्तु पुरुषान्तरकृतेन, तद्यथा कनककाश्यपादिप्रणीतेनागमेन शाक्यमुनिरिति, तस्यैवंवादिनस्त-

द्वाक्यस्याप्रमाणता वक्तव्या—तस्य पुरुषान्तरस्य वाक्यं तद्वाक्यम्, तेनैव दृष्टाभि-  
मतपुरुषवाक्येन तुल्यत्वात्कारणात् । पुरुषस्य चागमकर्तुरप्रमाणता वक्तव्येति स-  
म्बन्धः । कथं ?, पूर्वोक्तैर्ज्ञेयप्रमेयत्वादिभिर्हेतुभिः ॥ ३१७६ ॥ ३१७७ ॥

ननु चानादिर्बुद्धपरम्परा तत्प्रणीतोऽपि सिद्धान्तोऽनादिरेव । ततश्च वेदा-  
भियुक्तपरम्परावद्वेदवचनयोरप्यनादित्वाददोषत्वमेवेत्यत्राह— कर्तृकृत्रिमवाक्यानामि-  
त्यादि ।

**कर्तृकृत्रिमवाक्यानामुच्यते या त्वनादिता ।**

**अप्रमाणद्वयाधारा न मा प्रामाण्यसाधनी ॥ ३१७८ ॥**

एतदेव दर्शयन्नाह—न शौद्धोदनिवाक्यानामित्यादि ।

**न शौद्धोदनिवाक्यानां पारतन्त्र्यात्प्रमाणता ।**

**अपश्यतः स्वयं धर्मं तथा शौद्धोदनेरपि ॥ ३१७९ ॥**

यथा शौद्धोदनेस्तद्वाक्यस्य चाप्रामाण्यं तच्चान्येषां कनककाश्यपादीनां तद्वचसां  
चेति ॥ ३१७९ ॥

**ईदृशां पुद्गलानां च कल्प्यमानाऽप्यनादिता ।**

**अप्रामाण्यपदस्थत्वाच्च तस्मादतिरिच्यते ॥ ३१८० ॥**

ततश्चेदृशां पुद्गलानां तद्वाक्यानां चानादिता कल्पिताऽपि सती (न) तस्मादप्र-  
ामाण्यादतिरिच्यते दूरीभवति । अप्रामाण्यपद एव स्थितत्वात् ॥ ३१८० ॥

**अतोऽनादित्वसामान्यं बुद्धानामभिधीयते ।**

**मीमांसकायमानैस्तेर्यद्वेदाध्यायिनामिव ॥ ३१८१ ॥**

**तदज्ञानविशेषत्वाच्च तेषां याति तुल्यताम् ।**

**प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्यातामेवं चानादिनी ॥ ३१८२ ॥**

तत्र यदि नामानादित्वमात्रेण बुद्धादेर्वेदाध्यायिभिः सह साम्यमुपवर्णितम्,  
तथाऽपि नानादित्वात्प्रामाण्यं सिद्धयति । प्रामाण्याप्रामाण्ययोरनादित्वाविरोधात् ।  
केवलं वेदाध्यायिनां बुद्धादीनां च प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे यथाक्रममनादिनी स्याताम् ।  
न तु द्वयोरनादित्वात्प्रमाणत्वमेव वाऽप्रमाणत्वमेव वा सिद्धयतीति समुदायार्थः  
॥ ३१८१ ॥ ३१८२ ॥

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टीकुर्वन्नाह—य इत्यादि ।

ये प्रमाणतदाभासगुणदोषा ह्यनादयः ।

न तेऽनादित्वमात्रेण सर्वे गच्छन्ति तुल्यताम् ॥ ३१८३ ॥

सुवर्णं व्यवहाराङ्गमनाद्यन्तं यथास्थितम् ।

मायासुवर्णमप्येवमिति किं तेन तत्समम् ॥ ३१८४ ॥

प्रमाणतदाभासयोर्गुणदोषा इति विग्रहः ॥ ३१८३ ॥ ३१८४ ॥

इदानीमभावप्रमाणविषयीकृतविग्रह(त्व)स्यासिद्धतापरिहारेण सर्वज्ञस्याभाव(वं?)-  
प्रसाधयन्वेदस्य ततो विशेषमाह—सर्वज्ञत्वमित्यादि ।

सर्वज्ञत्वं च बुद्धादेर्या च वेदस्य नित्यता ।

तुल्ये जल्पन्ति ये तेभ्यो विशेषः कथ्यतेऽधुना ॥ ३१८५ ॥

तुल्ये जल्पन्तीति । सम्यक्प्रतिपत्तिहेतुत्वेन द्वयोरपि साम्यान्नित्यवेदद्वारेण  
चातीन्द्रियार्थप्रतीतिः सर्वज्ञवचनद्वारेण चेति न कश्चिद्विशेष इति य एवं जल्पन्ति  
तेभ्य एवंवादिभ्यो वेदस्य विशेषः कथ्यते ॥ ३१८५ ॥

तथाहि—सर्वदर्शी प्रत्यक्षानुमानशाब्दोपमानार्थापत्तीनां मध्ये नैकेनापि प्रमाणेन  
सिद्धः । तत्कथमभावप्रमाणग्रासीकृतमूर्त्तरसतस्तस्य प्रमाणभूतेनागोपालाङ्गनादि-  
प्रतीतेन वेदेन साम्यं भविष्यतीति मन्यमानः सर्वज्ञ इत्यादिना प्रत्यक्षादिप्रमाण-  
पञ्चकप्रसिद्धतामस्य निराकरोति ।

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।

दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं वा योऽनुमापयेत् ॥ ३१८६ ॥

न तावत्प्रत्यक्षेणास्मदादिभिरर्वाग्दर्शनैः सर्वज्ञो दृश्यते, तथाऽर्वाग्दर्शिनः प्रत्यक्षं  
त्रिविधम्, इन्द्रियज्ञानं मानसं सर्वचित्तचैत्तानामात्मसंवेदनं चेति तदेतन्त्रिविधमपि  
न सर्वज्ञमवगमयितुमलम्, अतद्विषयत्वात्, इन्द्रियज्ञानं हि रूपादिविषयपञ्चक-  
नियतमतो न तेन परसन्तानसमवायिनो बुद्धिधर्मा विषयीक्रियन्ते । नापि मान-  
सेन, तस्य इन्द्रियज्ञानपरिगृहीतविषयानन्तरविषयग्राहित्वेनेन्द्रियज्ञानवत्प्रतिनियत-  
रूपादिविषयत्वात् । नापि स्वसंवेदनेन, तस्य स्वसन्तानवर्त्तिवर्त्तमानचित्तचैत्तविष-  
यत्वादतो न तेन परसन्तानवर्त्तिनः स्वसन्तानिकाश्चानागताश्चेतोधर्माः शक्यन्ते  
वेदयितुम् । योगिज्ञानस्यैव च साध्यत्वान्न तेन ग्रहणाग्रहणचिन्ताऽवतरति । नाप्य-  
नुमानेन, तद्धि त्रिविधलिङ्गसमाश्रयमिष्यते सौगतैः । तत्र विधिसाधनस्यात्राधि-

कारान्नानुपलब्धिस्तावदिहाधिक्रियते । नापि कार्यम्, प्रत्यक्षानुपलम्भ(प्रत्यक्षोप-  
लम्भ ?)साधनत्वात्कार्यकारणभावस्य विप्रकर्षिणा सर्वज्ञेन सह कस्यचित्कार्यकारण-  
भावासिद्धेः । स्वभावोऽपि हेतुर्न सर्वदर्शिनः सत्तां साधयति, तदप्रत्यक्षत्वे स्वभा-  
वस्य तदव्यतिरेकिणो ग्रहीतुमशक्यत्वात्तस्माद्दृष्टः प्रसिद्धो लिङ्गभूत एकदेशः पक्ष-  
धर्मः स न सम्भवति, निरूप्यमाणो यः सर्वज्ञमनुमापयेत् । किंच—सर्वज्ञसत्ता-  
साधने सर्वो हेतुस्वयीं दोषजातिं नातिवर्त्तते, असिद्धिं विरुद्धत्वमनैकान्तिकत्वं च ।  
तथाहि हेतुरुच्यमानो भावधर्मो वाऽभिधीयेत, अभावधर्मो वा, यद्वोभयधर्मः, इति  
पक्षत्रयम् । तत्र सर्वज्ञे धर्मिणि न भावधर्मः प्रतिवादिप्रसिद्धः सम्भवति, तस्यैव  
धर्मिणः साध्यत्वेन(ना ?)सिद्धत्वात् । सिद्धौ वा अविवादप्रसङ्गात् । यो हि भावधर्मं  
तत्रेच्छति स कथं वादी तं वादं नेच्छेत् । निराश्रयस्य धर्ममात्रस्य ग्रहीतुमशक्य-  
त्वात् । नाप्यभावधर्मो हेतुः सर्वज्ञसिद्धये युक्तः, तस्य भावविपरीतसाधकत्वेन  
विरुद्धत्वात्, नाप्युभयधर्मस्तस्यानैकान्तिकत्वात् । कथं हि नाम भावाभावधर्मो  
भावधर्मसिद्धावभावरूपविपक्षवृत्तिव्यवच्छेदलभ्यं भावाद्वय( व्य ? )भिचारित्वलक्षणं  
हेतुत्वमनुभवेत् । तस्मान्निप्रकारोऽप्येकदेशो लिङ्गभूतो नास्त्यनुमापक इति नानुमा-  
नतः सर्वज्ञस्य सिद्धिः ॥ ३१८६ ॥

शब्दादपि न सर्वज्ञावमायोऽस्तीति दर्शयति—न चागमविधिरित्यादि ।

**न चागमविधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञबोधकः ।**

**कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥ ३१८७ ॥**

शब्दादसन्निकृष्टेऽर्थे यज्जायते ज्ञानं तच्छब्दम्, नञ् द्विविधं नित्यशब्दजनितं  
पौरुषेयध्वनिहेतुकं च । तत्र तथाविधस्य सर्वज्ञप्रतिपादकस्यागमस्य नित्यस्याभावान्न  
तावदाद्यं सम्भवति । यच्चोपनिषदादौ पठ्यते—“यः सत्यवाक् सत्यसङ्कल्पः सत्य-  
कामः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः” इत्येवमादि, सोऽप्यर्थवादो दृष्टव्यः ।  
यच्च पौरुषेयं वचनमुच्यते—स भगवांस्तथागतोऽर्हन् सम्यक् सम्बुद्ध इति, तस्या-  
प्रमाणत्वात्कथं तेनासत्येन स प्रत्याख्येत ॥ ३१८७ ॥

स्यादेतन्न यतः कुतश्चिद्वचनात्सर्वज्ञोऽस्माभिः प्रतीयते । किं तर्हि ? । तेनैव भग-  
वतोक्तेन । सर्वज्ञोऽहं सर्वदर्शी, नास्ति तथागतस्य किंचिदज्ञातमित्यादि । अतस्तद्व-  
चनादेव प्रतीयत इत्याह—अथेत्यादि ।



अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते ।

प्रकल्प्येत कथं सिद्धिरन्योन्याश्रययोस्तयोः ॥ ३१८८ ॥

एवं सतीतरेतसश्रयदोषः प्राप्नोति ॥ ३१८८ ॥

कथमित्याह — सर्वज्ञोक्ततयेत्यादि ।

सर्वज्ञोक्तनया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता ।

कथं तदुभयं सिद्धयेत्सिद्धान्मूलान्तराहते ॥ ३१८९ ॥

तथाहि न तावच्चद्वयवचनस्य प्रामाण्यं निश्चीयते यावत्सर्वज्ञोक्तमेतदित्येवं नावग-  
म्येत । तस्य च सर्वज्ञस्यावगतिस्तत एव वचनादिति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् । सि-  
द्धान्मूलान्तराहते इति । निश्चितात्कारणान्तगद्विनेत्यर्थः ॥ ३१८९ ॥

अथापि स्याच्छ्रवका(कः)च्छारिपुत्रादेर्वचनात्सर्वज्ञोऽवसीयते, यतस्तेनोक्तम्—  
सर्वज्ञोऽयं शाक्यकुलनन्दन इति, अत्राह—असर्वज्ञप्रणीताचित्यादि ।

असर्वज्ञप्रणीतात्तु वचनान्मूलवर्जितात् ।

सर्वज्ञमवगच्छन्तः स्ववाक्यार्थिकं न जाय(न ?)ते ॥ ३१९० ॥

नह्यनाभादितप्रमाणभावस्यान्यवाक्यस्य स्ववचनात्कश्चिद्विशेषोऽस्ति, येन बौद्धाः  
स्ववचनादेव सर्वज्ञं न प्रतिपद्यन्ते, अन्यवचना-प्रतियन्तीति न किञ्चित्कारणमुत्प-  
श्यामोऽन्यत्र जाड्यात् ॥ ३१९० ॥

अथ मतमपरिमितास्तथागता अभूवन्, भविष्यन्तश्च, ततश्चैकस्य तदन्यवचना-  
त्सर्वज्ञताऽवसीयते । अन्यस्याप्यन्यवचनादित्यत्राह—सर्वज्ञा बहव इत्यादि ।

सर्वज्ञा बहवः कल्प्याश्चैकमर्षज्ञसिद्धये ।

य एवैकोऽप्यसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न बुद्धयते ॥ ३१९१ ॥

एकमर्षज्ञसिद्धये सर्वज्ञपरम्परामनुसरतः सकलपुरुषायुषसंक्षयेऽपि नार्वाग्दर्श-  
नस्य सर्वज्ञनिश्चयोत्पत्तिप्रभव इति सर्वज्ञाः कल्प्याः प्रसज्येरन् ॥ ३१९१ ॥

अपि च—आस्तां तावदिदं यदिदानींतनाः, सर्वज्ञमसन्निहितं बौद्धमस(म)र्था  
इति, अपि तु तत्कालसन्निहिता अपि तं ज्ञातुं न शक्नुवन्त्येवासर्वविद इत्येतद्दर्शयन्नाह  
—सर्वज्ञोऽयमित्यादि ।

सर्वज्ञोऽयमिति ह्येवं तत्कालैरपि बौद्धभिः ।

तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानशून्यैर्ज्ञातुं न शक्यते ॥ ३१९२ ॥

सर्वज्ञो नावबुद्धश्च येनैव स्यान्न तं प्रति ।

नद्वाक्यानां प्रमाणत्वं मूलाज्ञानेऽन्यवाक्यवत् ॥ ३१९३ ॥

तस्य सर्वज्ञ(स्य)ज्ञानं तज्ज्ञानम्, तदेव ज्ञेयं परिच्छेद्यं यस्य विज्ञानस्य तत्तथा, तच्च तद्विज्ञानं चेति तथोक्तम्, तेन शून्याः—रहिताः । अथवा तज्ज्ञानस्य यद्विज्ञेयं तस्य यद्विज्ञानं तेन शून्याः, असर्वज्ञा इत्यर्थः । नहि शरीरमात्रदर्शनात्सर्वज्ञ इत्येवमवसातुं पार्यते । विशिष्टज्ञानसम्बन्धग्रहणानन्तरीयकत्वावसायस्य । तच्च विशिष्टं ज्ञानं सकलपदार्थविषयं साधकम् । सकलपदार्थविषयता तस्य तद्वाच्यविषयग्रहणमन्तरेणावसातुं न शक्यते । नहि दण्डिप्रत्ययो दण्डग्रहणमन्तरेण भवति । प्रयोगः—यस्य यद्ग्रहणोपाधिरवग्रहस्तस्य तदुपाधिग्रहणाभावे ग्रहणं न भवति, तद्यथा दण्डग्रहणोपाधिदण्ड (ण्डि ?) ग्रहणं न दण्डि(ण्ड ?)रूपा(रूपोपाध्य ?)ग्रहे भवति, नास्ति च सर्वज्ञज्ञानग्रहणस्य ज्ञेयग्रहणोपाधेर्ज्ञेयरूपोपाधिग्रहणमर्वाभर्शिनामिति व्यापकानुपलब्धिः । उपाधिग्रहणेनोपाधिमद्ग्रहणस्य व्याप्तत्वात् । तस्य चेहाभावः । ततश्च तदानीं सन्निहितेनाप्यसर्वविदा येनैव सर्वज्ञो नावधार्यते, तं प्रति सर्वज्ञवाक्यानामपि सतामनिश्चितत्वादप्रामाण्यमेव, मूलस्य प्रामाण्यनिश्चयकारणस्य सर्वज्ञज्ञाननिश्चयस्याभावात् । अन्यवाक्यवदिति । रथ्यापुरुषवाक्यस्येव ॥ ३१९२ ॥ ३१९३ ॥

अथ मतम्—अशेषशिष्यजनधर्मस्यानेकविधचित्तचरितादेः परिज्ञादादेशनादिप्रातिहार्येण विनेयजनमनांस्यावर्जयन्नमावात्मनः सर्वज्ञतामयत्नेन तेभ्यः प्रतिपादयतीत्यत्राह सर्वशिष्यैरपीत्यादि ।

सर्वशिष्यैरपि ज्ञातानर्थान्संवाद्यन्नपि ।

न सर्वज्ञो भवेदन्यलोकज्ञातार्थवर्जनात् ॥ ३१९४ ॥

न च सर्वनरज्ञातज्ञेयसंवादसम्भवः ।

कालत्रयत्रिलोकस्यैर्नरैर्न च समागमः ॥ ३१९५ ॥

यन्नाम तत्कालसन्निहितकियन्मात्रजनपरिज्ञातानर्थान्परिज्ञातवास्तथाऽपि न सर्वज्ञो भवति, तत्कालसन्निहितान्यलोकपरिज्ञातस्यार्थस्यापरिज्ञानात् । नष्टेकदेशपरिज्ञानेन सकलज्ञो भवत्यतिप्रसङ्गात् । नापि तत्कालसन्निहिताशेषजनपरिज्ञातार्थसंवादः सम्भवति । दूरस्थानामनर्थिनां च संवादाभावात् । स्यादेतत्—यदा सर्व एव जनास्तथागतं युगपदुपेत्य यद्यत्प्रभयन्ति तदा स भगवांस्तदैव व्याकरोतीत्यतोऽस्त्येव

सर्वनरज्ञातज्ञेयसंवाद इत्यत्राह—कालत्रयत्रिलोकस्थैरिति । नष्टतीतानागतवर्त्तमानकालवर्त्तिनां नृणां समागमः कचिदपि सम्भवी, नापि स्वर्गपातालमर्त्यात्मकलोकत्रयस्थानाम् । यद्वा—लोकत्रयं कामरूपारूपधानुत्रयात्मकं बोद्धव्यम् ॥ ३१९४ ॥  
॥ ३१९५ ॥

स्यादेतत्—यदि समस्तलोकपरिज्ञातार्थपरिज्ञानसामर्थ्यं तस्य न स्यात्तदा क्रियन्मात्रपरिज्ञातार्थसंवादोऽपि कथं स्यात्, भवति च, तेन मन्यामहे—अस्त्येवास्य सकल्पदार्थपरिज्ञानसामर्थ्यमिति, अत्राह—किञ्चिज्ज्ञोपीत्यादि ।

किञ्चिज्ज्ञोपि हि शक्नोति : तोकान्ध्रमयितुं नरान् ।

सर्वज्ञं येन गृहीयुस्ते भक्तिभ्रान्तचेतसः ॥ ३१९६ ॥

मुक्तचिन्तितमुष्टिस्यद्रव्यसंवादनक्षमाः ।

केचित्कुहकविज्ञानैर्द्धर्मादिज्ञानवर्जिताः ॥ ३१९७ ॥

तथा मायेन्द्रजालादिकुशलाः केचिदज्ञकम् ।

भ्रामयन्ति जनं येन सर्वज्ञाः प्रतिभान्ति ते ॥ ३१९८ ॥

नहि किञ्चिन्मात्रातीन्द्रियपदार्थपरिज्ञानमात्रेण धर्माधर्मादिपरिज्ञानं तस्य सिद्धयति, कुहकज्ञानिमिमायेन्द्रजालादिकुशलैश्वानेकान्तात् । तथाहि—मग्नौषधादिप्रयोगेण यथा मुक्तम्—अन्नव्यञ्जनादि, यथा चिन्तितं च मनसा वस्तु, मुष्टिस्थं च द्रव्यं संवादयन्त्येव । न चैतावता ते धर्मादिविदो भवन्ति । यथा केचिदिन्द्रजालकुशला विचित्रोद्यानविमानाप्लरोगणदेवपुत्रादिकमाकाशे दर्शयन्तीत्यनेकान्तः ॥ ३१९६ ॥ ३१९७ ॥ ३१९८ ॥

ननु चेतिहासपुराणेषु ब्रह्मादिः सर्वज्ञः कीर्तितः, तथाहि ब्रह्मणो ज्ञानमप्रतिघं वैराग्यं चेति तत्र पठ्यते, तत्कथमागमात्सर्वज्ञो न सिद्ध इत्यत्राह—इतिहासेत्यादि ।

इतिहासपुराणेषु ब्रह्मादिर्योऽपि सर्ववित् ।

ज्ञानमप्रतिघं यस्य वैराग्यं चेति कीर्तितम् ॥ ३१९९ ॥

गौणत्वेनैव वक्तव्यः सोऽपि मन्त्रार्थवादवत् ।

यद्वा प्रकृतधर्मादिज्ञाना( प्रति)घतोच्यते ॥ ३२०० ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रकृतेषु चतुर्ष्वपि ।

ज्ञानमप्रतिघं तस्य न तत्सर्वार्थगोचरम् ॥ ३२०१ ॥

यथा मन्त्रेष्वर्थवादनिर्देशो भवति तथेतिहासादिष्वपि ब्रह्मादेः सर्वज्ञत्वमर्थवादा-  
द्बोद्धव्यम् । अन्यार्थो हि शब्दोऽन्यमर्थं वदतीति कृत्वाऽर्थवाद उच्यते । अथवा  
प्रकृतेषु धर्मार्थिकाममोक्षेषु ज्ञानस्याप्रतिघत्वादस्य ब्रह्मादेर्ज्ञानार्थाऽप्रतिघता निर्दिष्टा ।  
न तु सर्वार्थेष्वप्रतिघातात् ॥ ३१९९ ॥ ३२०० ॥ ३२०१ ॥

ननु च यदि तस्य धर्मादेरन्यत्र वस्तुविज्ञानं प्रतिहन्येत तत्कथमप्रतिघमित्युच्ये  
तेत्यत्राह— न हीत्यादि ।

न ह्यप्रतिघतामात्रात्सर्वगोचरतोच्यते ।

स्वार्थेष्वप्यप्रतीघाताद्भवत्यप्रतिघं हि तत् ॥ ३२०२ ॥

यद्येवं यदि स्वार्थाप्रतिघातावप्रतिघमुच्यते तदा सर्वेषामेव पुंसां ज्ञानं स्वार्थाप्र-  
तिघातीति तत्को विशेषो ब्रह्मादेर्येन तस्यैवाप्रतिघं ज्ञानमुच्यते नान्येषामित्यत्राह—  
एतच्चेत्यादि ।

एतच्च फलवद्ज्ञानं यावद्धर्मा(दि)गोचरम् ।

न तु वृक्षादिभिर्ज्ञानैः सर्वैः किञ्चित्प्रयोजनम् ॥ ३२०३ ॥

यावदौपयिकज्ञानं न चैतत्प्रतिहन्यते ।

तेनाप्रतिघविज्ञानव्यपदेशोऽस्य लभ्यते ॥ ३२०४ ॥

एतदाचष्टे—पुरुषार्थोपयोगिषु धर्मादिषु तस्यैव ब्रह्मणो ज्ञानमप्रतिघं प्रवर्त्तते  
नान्येषामित्येतद्विशेषरूपापनाय ब्रह्मादेरेव स्वार्थाप्रतिघत्वादप्रतिघाति ज्ञानमुक्तं ना-  
न्येषाम् । औपयिकज्ञानमिति । औपयिके—पुरुषार्थोपयोगिनि धर्मादौ ज्ञानमौप-  
यिकज्ञानम् । यावदिति । नि(ग)विशेषम् । औपयिकज्ञानविशेषणं चैतत् ॥ ३२०३ ॥  
॥ ३२०४ ॥

यद्वेति पक्षान्तरमाह ।

यद्वाऽऽत्मन्येव तज्ज्ञानं ध्यानाभ्यासप्रवर्तितम् ।

तस्यैवाप्रतिघातेन ज्ञानाप्रतिघतोच्यते ॥ ३२०५ ॥

आत्मनीति पुरुषे । तस्यैवेति । आत्मविषयस्य ज्ञानस्य ॥ ३२०५ ॥

ननु चेश्वरस्य ज्ञानादयो दशाव्यथा गुणाः पठ्यन्ते, तत्कथमसावव्ययज्ञानयो-  
गात्सर्वज्ञो न भवतीत्याह—ज्ञानमित्यादि ।

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यमिति योऽपि दशाव्ययः ।

शंकरः श्रूयते सोऽपि ज्ञानवानात्मवित्तया ॥ ३२०६ ॥

ज्ञानम्—तत्त्वावबोधः, वैशाम्यम्—विषयवैमुख्यम्, ऐश्वर्यमष्टविधम्—अणिमा  
 क्वचिमा महिमा प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं यत्रकामावसायिता चेति, एते  
 दश ज्ञानादयोऽव्यया अनुयायिनो यस्यासौ दशाच्ययः । तत्राणिमा—यदणुशरीरो  
 भूत्वा सुखं लोकं सञ्चरति सर्वभूतैरदृश्यः । लघिमा—यो लघुत्वाद्वायुवद्विचरति ।  
 महिमा—यत्सूजितः सर्वलोकेषु वन्दितोऽर्चितश्च महद्भयोऽपि महत्तमो भवति ।  
 प्राप्तिः—यद्यन्मनसा चिन्तयति नत्तप्राप्नोति । प्राकाम्यम्—यत्प्रचुरकामो भवति  
 विषयान्मोक्तुं शक्नोतीत्यर्थः । ईशित्वम्—यत्रैलोक्यस्य प्रभुर्भवति । वशित्वम्—  
 यद्भूतानि म्पावरज्जमानि वशं नयति, तस्येन्द्रश्च भवति । यत्रकामावसायिता—  
 यत् ब्राह्मप्राजापत्यदैवगान्धर्वयाक्ष्यराक्षस्यपैत्रपैशाचेषु मानुष्येषु तैर्योन्येषु च स्था-  
 नान्तरेषु यत्र यत्र कामयते तत्र तत्रावसति । आत्मवित्तयेति । आत्मवेदितया स  
 ज्ञानवान्न तु निरवशेषपदार्थरिज्ञानवत्तयेत्यर्थः ॥ ३२०६ ॥

कस्मात्पुनरेकदेशपरिज्ञानेऽपि स एव ऋद्धो ज्ञानवानुच्यते नान्य इत्याह—  
 एतदेव हीत्यादि ।

**एतदेव हि तज्ज्ञानं यद्विशुद्धात्मदर्शनम् ।**

**अशुद्धे तन्निमित्ते च यत्तदज्ञानमुच्यते ॥ ३२०७ ॥**

विशुद्धश्चासावात्मा चेति तथोक्तः, तस्य दर्शनमिति समासः । तन्निमित्त इति ।  
 तस्य शुद्धात्मदर्शनस्य निमित्तं तन्निमित्तम्, किं तत् ? आत्मैव । तस्मिन् शुद्धे तन्नि-  
 मिस्ते आत्मनि सति यदात्मदर्शनमविशुद्धं प्रवर्तते तदज्ञानमुच्यते, कुत्सितत्वात्  
 ॥ ३२०७ ॥

ननु यदि ध्यानाभ्यासाद्ब्रह्मादेर्विशुद्धज्ञानसम्भवोऽभ्युपगम्यते तदा कः प्रद्वेषो  
 बुद्धादिषु, येन तेषामपि ज्ञानमप्रतिषेधं विशुद्धं च नेष्यते इत्याशङ्क्य पक्षान्तरोपद-  
 र्शनेन ब्रह्मादीनां विशेषं दर्शयन्नाह—अथापीत्यादि ।

**अथापि वेददेहत्वाद्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।**

**सर्वज्ञानमयाद्वेदात्सर्वज्ञा मानुषस्य किम् ॥ ३२०८ ॥**

**क च बुद्धादयो मर्त्याः क च देवोत्तमत्रयम् ।**

**येन तत्स्पर्द्धया तेऽपि सर्वज्ञा इति मोहहृक् ॥ ३२०९ ॥**

सात्मीभूतवेदत्वाद्देददेहा उच्यन्ते । सर्वपदार्थज्ञानकारणत्वात्सर्वज्ञानमयो वेदः ।

एतदुक्तं भवति । नहि ब्रह्मादीनां स्वातन्त्र्येण धर्मादिषु ज्ञानमप्रतिषं प्रवर्त्तते । किं तर्हि ? । वेदद्वारेण । न चैवं बुद्धादीनां भवद्विरिष्यते । तेषां स्वयं तु (स्वायत्त ?) ज्ञानत्वात् । किञ्च—ब्रह्मादीनां ध्यानाभ्यासाद्विशुद्धज्ञानसम्भवो युज्यत एव, तेषां देवत्वेन सर्वजनोत्कृष्टत्वात् । वेदे पठित्वाच्च । मनुष्यस्य तु न कदाचिदीदृशं सामर्थ्यं सम्भाव्यं तस्य तद्विपरीतत्वात् । तस्मान्मनुष्या अपि सर्वज्ञा इति मोहदृक् । मोहदर्शनमेतद्भवताम् ॥ ३२०८ ॥ ३२०९ ॥

स्यादेतद्यदि ब्रह्मादयो वेदे पठ्यन्ते तदा कथमनित्याभिधेयमम्बन्धाद्वेऽस्याप्यनित्यत्वं न प्रसज्येत । अथ वेदानां नित्यत्वमिष्यते तदा ब्रह्मादीनां नित्यवेदाभिधेयत्वं विरुध्यते तेषामनित्यत्वात् । अथ तद्विरुद्धं तदा बुद्धादीनामपि तदभिधेयत्वाविरोध इत्येतदाशङ्क्याह—नित्येऽपीत्यादि ।

नित्येऽपि चागमे वेदे ब्रह्मादित्रयकीर्त्तनम् ।

तन्नित्यत्वाच्च वेदानां नित्यत्वं न विहन्यते ॥ ३२१० ॥

तन्नित्यत्वादिति । तेषां ब्रह्मादीनां नित्यत्वात् ॥ ३२१० ॥

ते हीत्यादिना—एतदेव स्पष्टीकरोति ।

ते हि नित्यैर्गुणैर्नित्यं कर्मभिश्च समन्विताः ।

नित्यवेदाभिधायित्वसम्भवाच्च विरोधिनः ॥ ३२११ ॥

अनित्यस्य तु बुद्धादेर्न नित्यागमगम्यता ।

नित्यत्वे चागमस्येष्टे वृथा सर्वज्ञकल्पना ॥ ३२१२ ॥

न नित्यागमगम्यतेति । शब्दार्थसम्बन्धस्यानित्यत्वप्रसङ्गात् । नित्यस्य चागमस्य परैरनभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा सर्वज्ञकल्पनाया वैयर्थ्यप्रसङ्गात् ॥ ३२११ ॥ ॥ ३२१२ ॥

एतदेव दर्शयति—सर्वज्ञज्ञापनात्तस्येति ।

सर्वज्ञज्ञापनात्तस्य वरं धर्मावबोधनम् ।

वेदबोधितसर्वज्ञज्ञानाद्धर्मास्तिरोहितात् ॥ ३२१३ ॥

अतिरोहितधर्मादिज्ञानमेव विशेष्यते ।

एवमागमगम्यत्वं न सर्वज्ञस्य लभ्यते ॥ ३२१४ ॥

नित्यस्यागमस्य सर्वज्ञज्ञापनात्सकाशाद्धरं धर्मावबोधनमेवेष्टम् । कथं तद्वरमित्याह

—वेदबोधितेत्यादि । वेदाश्रयेण हि धर्मज्ञानं भवदतिरोहितं भवति आ(अन्यथा ?) लोकस्थितेरविशेषेण सर्वेषामेव सम्भवात् । तिरोहितस्तु वेदबोधितसर्वज्ञज्ञातो धर्मस्तस्य निर्वाणं(ग)तस्याप्रकटत्वात् । अनिर्वाणावस्थायामप्यनिच्छया तदुपदेशाभावात् । उपदेशेऽपि सर्वत्र सर्वदा सर्वेषां श्रवणाभावात् ॥ ३२१३ ॥ ३२१४ ॥

नाप्युपमानप्रमाणसमधिगम्यः सर्वज्ञ इति दर्शयति— सर्वज्ञसदृश इत्यादि ।

**सर्वज्ञसदृशः कश्चिद्यदि दृश्येत सम्प्रति ।**

**तदा गम्येत सर्वज्ञसद्भाव उपमाबलान् ॥ ३२१५ ॥**

उपमानं हि सादृश्यतदुपाधिविषयत्वात्सदृशपदार्थग्रहणनान्तरीयकमसन्निकृष्टार्थ-गोचरम्, यथा—गजग्रहणद्वारेण गोः स्मरणम्, न च सर्वज्ञसदृशः कश्चित्प्रतीतः सम्भवेतीत्यतः सदृशपदार्थग्रहणाभावात् प्रवर्त्तते । प्रयोगः—यस्य सदृशग्रहणं नास्ति, न स उपमानगम्यः, यथा बन्ध्यासुतः, नास्ति च सदृशग्रहणं सर्वज्ञम्येति व्यापकानुपलब्धिः ॥ ३२१५ ॥

किञ्च—उपमानान्न केवलं सर्वज्ञाधिगमोऽसम्भवी, अपि तु सर्वेषामेव पुंशामुपमानादसर्वज्ञत्वमेव युक्तं प्रत्येतुमित्यादर्शयति—नरानित्यादि ।

**नरानदृष्ट्वा त्वसर्वज्ञानन्सर्वानेषाधुनातनान् ।**

**सादृश्यस्योपमानेन शेषासर्वज्ञनिश्चयः ॥ ३२१६ ॥**

न चाप्यर्थापत्त्या सर्वज्ञः सिद्धयतीत्येनप्रतिपिपादयिषुः परमतं तावदाशङ्कते—उपदेशो हीत्यादि ।

**उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माधर्मादिगोचरः ।**

**अन्यथा नोपपद्येत सर्वज्ञो यदि नो भवेत् ॥ ३२१७ ॥**

**प्रत्यक्षादौ निषिद्धेऽपि सर्वज्ञप्रतिपादके ।**

**अर्थापत्त्यैव सर्वज्ञमित्थं यः प्रतिपद्यते ॥ ३२१८ ॥**

योऽयं बुद्धादेर्धर्माद्युपदेशः सोऽन्यथा नोपपद्यते, यदि धर्मादयस्तेन साक्षान्न विदिता भवेयुः, तस्माद्यद्यपि प्रत्यक्षादि सर्वज्ञप्रतिपादकं निषिद्धम्, तथाऽप्यर्थापत्त्या सर्वदर्शी पुमान्सिद्ध इत्येवं यः प्रतिपद्यते—सोऽयुक्तं प्रतिपद्यते, वक्ष्यमाणान्यायादिति भावः ॥ ३२१७ ॥ ३२१८ ॥

यद्वा—अनुमानमेवेदं नार्थापत्तिलैरूप्यसम्भवादिति दर्शयति यद्वेत्यादि ।

यद्वा सामान्यतो दृष्टं प्रवृत्तमिह साधनम् ।  
 सर्वज्ञस्योच्यतेऽन्यत्र ज्ञानपूर्वत्वदर्शनात् ॥ ३२१० ॥  
 यः कश्चिदुपदेशो हि स सर्वो ज्ञानपूर्वकः ।  
 यथाऽभयादिशक्तीनामुपदेशस्तथाविधः ॥ ३२२० ॥  
 धर्माधर्मोपदेशोऽयमुपदेशश्च तत्कृतः ।  
 तदीयज्ञानपूर्वत्वं तस्मादस्यानुमीयते ॥ ३२२१ ॥

सामान्यतो दृष्टमित्यनेन विशेषतो दृष्टस्यासम्भवमाह । ययोरेव हि लिङ्गलि-  
 ङ्गिनोः प्रत्यक्षेण सम्बन्धो दृष्टः स एव लिङ्गी तेनैव लिङ्गेन कालान्तरे मंशयन्व्यव-  
 च्छेदाय यदाऽनुमीयते तदा विशेषतो दृष्टमनुमानमुच्यते । न च सर्वज्ञेन सह धर्मा-  
 द्युपदेशस्य कचित्सम्बन्धो गृहीत इत्यतः सामान्यतो दृष्टमेवैतत् । तथाहि—सामा-  
 न्येनोपदेशस्यान्यत्र स्वसन्ताने ज्ञानपूर्वकत्वं दृष्टम् , अतो यथा देवदत्तस्य गतिपूर्विकां  
 देशान्तरप्राप्तिमुपलभ्याऽऽदित्यस्य देशान्तरप्राप्त्या गतिरनुमीयते, एवं बुद्धादेरपि  
 भगवतो धर्माद्युपदेशात्तज्ज्ञानमनुमास्यते । प्रयोगः—यः कश्चिदुपदेशः स वक्तृज्ञान-  
 पूर्वकः, यथा हरीतक्यादिशक्त्युपदेशः, उपदेशश्चायं बुद्धादीनां धर्माद्युपदेश इति  
 स्वभावहेतुः ॥ ३२१९ ॥ ३२२० ॥ ३२२१ ॥

अत्रोत्तरमाह—अन्यथाऽपीत्यादि ।

अन्यथाऽप्युपपन्नत्वान्नार्थापत्तिरियं क्षमा ।  
 अत एवानुमाऽप्येषा न माध्वी ऽग्यवनिष्ठते ॥ ३२२२ ॥  
 उपदेशो हि बुद्धादेरन्यथाऽप्युपपद्यते ।  
 स्वप्नादिदृष्ट(ष्टं?)व्यामोहात् (वेदाद्वादि(वावि?)नथ(थं?)श्रुतात्  
 ॥ ३२२३ ॥

अन्यथाऽपि हि व्यामोहादिनोपदेशस्य सम्भवादुभयोरप्यनुमानार्थापत्त्योरनैका-  
 न्तिकत्वम् । कथमन्यथापि सम्भवतीत्याह स्वप्नादीत्यादि । यथोक्तं शाबरे भाष्ये  
 —‘उपदेशो हि व्यामोहादपि भवति, असति व्यामोहे वेदादपि भवती’ति । तत्र  
 व्यामोहाद्भवन्दृष्टो यथा स्वप्नोपलब्धस्यार्थस्य, वेदाद्दृष्टो यथा मन्वादीनाम् ॥ ३२२२ ॥  
 ॥ ३२२३ ॥

ये तु सुगतादयो वेदानमिज्ञास्तेषां व्यामोहात्परवच्चनार्थं वोपदेशः सम्भाव्यत  
 इत्येतत्प्रतिपादयति—ये हीत्यादि ।



ये हि नावदवेदज्ञास्तेषां वेदादसम्भवः ।

उपदेशकृतो, यस्तैर्व्यामोहादेव केवलात् ॥ ३२२४ ॥

शिष्यव्यामोहनार्थं वा व्यामोहाद्वाऽनदाश्रयात् ।

लोके बुष्टोपदेष्टृणामुपदेशः प्रवर्त्तते ॥ ३२२५ ॥

अतदाश्रयादिति । अवेदाश्रयात् ॥ ३२२४ ॥ ३२२५ ॥

कथमिदमवगतम्—न वेदाश्रयोऽसावुपदेश इत्याह—यद्यसावित्यादि ।

यद्यसौ वेदमूलः स्याद्वेदवादिभ्य एव तु ।

उपदेशं प्रगच्छेयुर्यथा मन्वादयस्तथा । ३२२६ ॥

यतस्तु मूर्खशूद्रेभ्यः कृतं तैरुपदेशनम् ।

ज्ञायते तेन बुष्टं तत्सांष्टृतं कूटकर्मवत् ॥ ३२२७ ॥

यदि हि बुद्धादीनां धर्माद्युपदेशो वेदमूलः स्यात्तदा ब्राह्मणेभ्य एव विद्वद्भ्यो मन्वादिवदुपदेशोऽयुः, न च तैर्ब्राह्मणेभ्य एवोपदिष्टम्, किन्तु वठशूद्रेभ्य एव, अतोऽवगम्यते, सांष्टृतम्—अलीकम्, तत्—उपदेशनम्, यथा कूटदीनारादिकर्मैति ॥ ३२२६ ॥ ३२२७ ॥

ये तु मन्वादयस्तेषां वेदज्ञत्वाद्वेदमूल एव धर्माद्युपदेशो न तु स्वातन्त्र्येणेति दर्शयति—ये त्वित्यादि ।

ये तु मन्वादयः सिद्धाः प्राधान्येन त्रयीविदाम् ।

त्रयीविदाश्रितग्रन्थास्ते वेदप्रभवोक्तयः ॥ ३२२८ ॥

ऋग्यजुःसामारुशास्त्रयो वेदास्त्रयी भण्यते, तां विदन्तीति त्रयीविदो ब्राह्मणा उच्यन्ते । त्रयीविद्विगश्रितो धर्मशास्त्रादिग्रन्थो येषां ते तथोक्ताः । तद्ग्रन्थाश्रयणा(णे ?)काण्यमाह—ते वेदप्रभवोक्तय इति । वेदप्रभवा उक्तयो येषां ते तथोक्ताः ॥ ३२२८ ॥

एतदपि कथमवसितमित्याह—नादृष्टेत्यादि ।

नादृष्टा वेदवाक्यानि शिष्येभ्यश्चाप्रदह्यं वा ।

ग्रन्थप्रणयनं तेषामर्पणं चोपपद्यते ॥ ३२२९ ॥

अर्पणमिति बोधनम् । एवं पञ्चभिरपि प्रमाणैर्न सर्वज्ञः सिद्धयतीति पारिशेष्यादभावेनैव गम्यत इति सिद्धोऽभावप्रमाणविषयीकृतविग्रहत्वादित्ययं हेतुः । नाप्यनै-

कान्तिक इति पूर्वं प्रतिपादितम्, निमित्तान्तराभावाच्चाभावव्यवहारस्येति भावः  
॥ ३२२९ ॥

येऽपि मन्यन्ते—नास्माभिः शृङ्गग्राहिकया सर्वज्ञः प्रसाध्यते, किं तर्हि ?, सामान्येन सम्भवमात्रं प्रसाध्यते—अस्ति कोऽपि सर्वज्ञः, कचिद्वा सर्वज्ञत्वमस्ति, प्रज्ञादीनां प्रकर्षदर्शनादिति, तान्प्रतीदमाह—नर इत्यादि ।

नरः कोऽप्यस्ति सर्वज्ञस्तत्सर्वज्ञत्वमित्यपि ।

साधनं यत्प्रयुज्येत प्रतिज्ञान्यूनमेव तत् ॥ ३२३० ॥

सिसाधयिषितो योऽर्थः सोऽनया नाभिधीयते ।

यत्तच्चयते न तत्सिद्धौ किञ्चिदस्ति प्रयोजनम् ॥ ३२३१ ॥

हेतोस्तावत्पूर्वमनैकान्तिकत्वं प्रतिपादितमित्यतः पक्षदोषमेव तावत्प्रतिपादयति । अन्यस्मिन्साधयितुमिष्टे यदन्यत्प्रतिज्ञायते तत्प्रतिज्ञान्यूनं पक्षदोषः । इह च स्वत्वशास्तुः सर्वज्ञत्वं साधयितुमिष्टं न सामान्येन । तथाहि—न व्यसनितया सर्वज्ञोऽन्विष्यते प्रेक्षावता, किं तर्हि ?, तद्वचनाद्धर्माधर्मौ ज्ञात्वा प्रवर्षिष्ये निवर्षिष्ये वेति प्रवृत्तिनिवृत्तिकामतया, न च सामान्येन सिद्धेनापि तेन प्रवृत्तिं प्रति पुरुषस्य कश्चिदुपयोगोऽस्ति, विशेषपरिज्ञानमन्तरेण तद्वचनानिश्चयात्, तस्मात्स एव विशेषः प्रवृत्तिकामेन साधनीय इति सामान्यप्रतिज्ञानं प्रतिज्ञान्यूनमेव । सिसाधयिषितो योऽर्थ इति । साधयितुमिष्टो योऽर्थः । स इति । विशेषः, स्वशास्ता । अनयेति । प्रतिज्ञया । यत्तच्चयत इति । विशेषासम्पर्शेन कोऽप्यस्ति नरः सर्वज्ञः कचिद्वास्ति सर्वज्ञत्वमिति, तेन सिद्धेनापि न किञ्चित्प्रयोजनम् ॥ ३२३० ॥ ३२३१ ॥

कथमित्याह—यदीयेत्यादि ।

यदीयागमसत्यत्वसिद्धयै सर्वज्ञतोच्यते ।

न सा सर्वज्ञसामान्यसिद्धिमात्रेण लभ्यते ॥ ३२३२ ॥

स(से ?)ति । य(त ?)दीयागमसत्यत्वसिद्धिः ॥ ३२३२ ॥

कस्मान्न लभ्यत इत्यत्राह—यावदित्यादि ।

यावद्बुद्धौ न सर्वज्ञस्नावत्तद्वचनं मृषा ।

यत्र क्वचन सर्वज्ञे सिद्धे तत्सत्यता कुतः ॥ ३२३३ ॥

तथाहि यावद्बुद्धस्य सर्वज्ञत्वं न सिद्धयति तावत्तद्वचनस्यापि न सत्यत्वनिश्च-

योऽस्ति न च सामान्येन सर्वज्ञसिद्धौ बुद्धवचनस्य सत्यत्वं सिद्धयेत, प्रतिबन्धा-  
भावात् ॥ ३२३३ ॥

एतदेव दर्शयति—अन्यस्मिन्नित्यादि ।

अन्यस्मिन्नहि सर्वज्ञे वचसोऽन्यस्य सत्यता ।

सामानाधिकरण्ये हि तयोरङ्गाङ्गिना भवेत् ॥ ३२३४ ॥

कदा नाम तयोः प्रतिबन्धो न भवतीति प्रतिबन्धो भवतीति—त्याह—सामानाधि-  
करण्ये हीत्यादि । सामानाधिकरण्यम्—एकपुरुषाश्रितत्वम् । तयोरिति । सर्वज्ञ-  
त्व(सत्य)वचनयोः । अङ्गाङ्गिता । हेतुफलता । एतदुक्तं भवति—एकाश्रयत्वे सति  
सत्यस्य वचसः सर्वज्ञत्वं कारणं भवेत्, नान्यथाऽतिप्रमत्तात् ॥ ३२३४ ॥

यदप्यम(प ?)रैः सर्वज्ञसिद्धये साधनमुपरचितं तदप्येतेनैव प्रतिव्यूढमिति दर्शयितु-  
माह—यत्सर्वमित्यादि ।

यत्सर्वं नाम लोकेऽस्मिन्प्रत्यक्षं तद्धि कस्यचित् ।

प्रमेयज्ञेयवस्तुत्वैर्दधिरूपरसादिवत् ॥ ३२३५ ॥

ज्ञानमात्रेऽपि निर्दिष्टे पक्षन्यूनत्वमापतेत् ।

सर्वज्ञ इति योऽभीष्टो नेत्थं स प्रतिपादितः ॥ ३२३६ ॥

यदि बुद्धातिरिक्तोऽन्यः कश्चित्सर्वज्ञतां गतः ।

बुद्धवाक्यप्रमाणत्वे तज्ज्ञानं कोपयुज्यते ॥ ३२३७ ॥

यत्प्रमेयत्ववस्तुत्वादियोगि तत्कम्यचित्प्रत्यक्षं, यथा दधिरूपरसादिकं, सर्वं च  
पदार्थजातं प्रमेयादिस्वभावमिति स्वभावहेतुः । अत्रापि पूर्ववत्प्रतिज्ञान्यूनत्वं हेतो-  
श्चानैकान्तिकत्वं वक्तव्यम् । तस्मान्न विशेषेण नापि सामान्येन सर्वज्ञत्वस्य सिद्धिः  
सम्भवति । अतो नास्ति सर्वज्ञ इति सिद्धम् । तदभावात्तद्वचनस्याभाव इति न तद्व-  
चनात्प्रवृत्तिः सम्भवति कम्यचित् ॥ ३२३५ ॥ ३२३६ ॥ ३२३७ ॥

अथवा सम्भवतु नाम सर्वज्ञः पुरुषस्तथाऽपि सर्वज्ञप्रणीतं वचनं न सम्भवत्येव,  
यतः प्रवृत्तिर्भविष्यति भवतामित्येतत्प्रतिपादयन्नाह—दशभूमित्यादि ।

दशभूमिगतश्चासौ सर्वरागादिसंक्षये ।

शुद्धस्फटिकतुल्येन सर्वं ज्ञानेन बुद्धयते ॥ ३२३८ ॥

ध्यानापन्नश्च सर्वार्थविषयां धारणां दधत् ।

तथा ध्यातश्च सर्वार्थैः शक्तो नैवोपदेशने ॥ ३२३९ ॥

तथाहि किल दशभूमिप्रतिष्ठितोऽशेषरागादिमलकलङ्कापगमाच्छुद्धस्फटिकतुल्येन ज्ञानेन सकलं ज्ञेयमवच्छेद्यत इत्येवं भवद्भिर्वर्ण्यते । ततश्चास्यां तावदवस्थायां धारणां चित्तम्यैकाग्र्यतां दध्मदर्थबोध एव व्यापृतत्वान्नासौ गच्छति धर्ममुपदेष्टुं न हीयतो व्यापारान्कश्चित्कर्तुं समर्थः ॥ ३२३८ ॥ ३२३९ ॥

व्युत्थाय देशयति चेदित्याह—यदा चेत्यादि ।

यदा चोपदिशेदेकं किञ्चित्सामान्यवक्तृवत् ।

एकदेशज्ञगीतं तन्न स्यात्सर्वज्ञभाषिणम् ॥ ३२४० ॥

नञ्चित्कर्ता वचनप्रवृत्तिरस्तीति सविकल्पचेतोऽवस्थितेनैवानेन धर्मो देशनीयः, ततश्चास्यामवस्थायां बालपण्डितयोरविशेषादसर्वज्ञ एवामाविति तद्भाषितमसर्वज्ञभाषितमेव स्यात् ॥ ३२४० ॥

स्यादेतत् -- नैवासावुपदिशति किञ्चिन्, सर्वदा निर्विकल्पसमाधिस्थितत्वात्, किन्तु तदाधिपत्येन विचित्रधर्मदेशनाप्रतिभासा विज्ञप्तयो भव्यानां भवन्ति । यथोक्तम्—यस्यां रात्रौ तथागतोऽभिसम्बुद्धो यस्यां च परिनिवृतः, अत्रान्तरे तथागतेन एकमप्यक्षरं नोदाहृतं न प्रव्याहृतम्, तत्कथं हेतोः ?, सततसमाहितो हि तथागतः, अपि तु ये अक्षररुतदेशना वैनेयिकास्ते तथागतस्य मुखादुष्णीषादूर्णायाः शब्दं निःसरन्तं शृण्वन्तीत्यादि, तत्राह—तस्मिन् ध्यानसमाषन्न इत्यादि ।

तस्मिन्ध्यानसमापन्ने चिन्तारतनवदास्थिते ।

निश्चरन्नि यथाकामं कुट्यादिभ्योऽपि देशनाः ॥ ३२४१ ॥

ताभिर्जिज्ञासितानर्थान्सर्वान् जामन्ति मानवाः ।

हितानि च यथाभव्यं क्षिप्रमासादयन्ति ते ॥ ३२४२ ॥

इत्यादिकीर्त्यमानं तु श्रद्धानेषु शोभने ।

वयमश्रद्धानास्तु ये युक्तीः प्रार्थयामहे ॥ ३२४३ ॥

चिन्तारत्नम्—चिन्तामणिः । अयमत्र समुदायार्थः—ये श्रद्धालवस्तान्प्रतीदमप्रमाणकमुपवर्ण्यमानं शोभेन । ये तु पुनरस्मद्विधाः प्रमाणोपपन्नार्थग्राहितया युक्तिमेव प्रार्थयन्ते ते कथमेतदुच्यमानमप्रमाणकं गृहीष्यन्ति । ३२४१ ॥ ३२४२ ॥ ३२४३ ॥

किञ्च—भवतु नामैवं कल्पना, तथापि कुट्यादिनिर्गनासु देशनासु सर्वज्ञाधिपत्यप्रभवत्वं सदिग्धमेवेति न तत्र प्रमाणत्वेन प्रेक्षावतां विश्वसो युक्त इति दर्शयति—कुट्यादिनिःस्व(सु ?)तानामित्यादि ।

कुठ्यादिनिःस्व(सू?)तानां च न स्यादाप्तोपदिष्टता ।  
 विश्वासश्च न तासु स्यात्केनेमाः कीर्तिता इति ॥ ३२४४ ॥  
 किंनु बुद्धप्रणीताः स्युः किंनु ब्राह्मणवश्रकैः ।  
 श्रीङ्गिरुपदिष्टाः स्युर्दूरस्थप्रतिशब्दकैः ॥ ३२४५ ॥  
 किंवा क्षुद्रपिशाचाद्यैरदृष्टैरेव कीर्तिताः ।  
 तस्मान्न तासु विश्वासः कर्तव्यः प्राज्ञमानिभिः ॥ ३२४६ ॥

सर्वं सुबोधम् ॥ ३२४४ ॥ ३२४५ ॥ ३२४६ ॥

एतावत्कुमारिलेनोक्तं पूर्वपक्षीकृतम्, साम्प्रतं सामटयज्ञटयोर्मतेन पुनरपि सर्व-  
 श्लक्ष्णमाह—इदं चेत्यादि ।

एवं सर्वज्ञता पुंसां स्वातन्त्र्येण निरास्पदा ।  
 इदं च चिन्त्यते भूयः सर्वदर्शी कथं मतः ॥ ३२४७ ॥  
 युगपत्परिपाठ्या वा सर्वं चैकस्वभावतः ।  
 जानन्यथाप्रधानं वा शक्त्या वेष्ट्येत सर्ववित् ॥ ३२४८ ॥  
 युगपच्छुच्यशुच्यादिस्वभावानां विरोधिनाम् ।  
 ज्ञानं नैकधिया दृष्टं भिन्ना वा गतयः क्वचित् ॥ ३२४९ ॥  
 भूतं द्रवद्रविष्यच्च वस्त्वनन्तं क्रमेण कः ।  
 प्रत्येकं शक्नुयाद्बोद्धुं वत्सराणां शतैरपि ॥ ३२५० ॥  
 स्वभावेनाविभक्तेन यः सर्वमवबुध्यते ।  
 स्वलक्षणानि भावानां सर्वेषां न स बुध्यते ॥ ३२५१ ॥  
 बोद्धा सामान्यरूपस्य सर्वज्ञेनापि तेन किम् ।  
 अन्याकारेण बोधेन नैव वस्त्ववगम्यते ॥ ३२५२ ॥  
 तदेकाकारविज्ञानं सम्यङ्मिथ्याऽपि वा भवेत् ।  
 सम्यक्त्वे दृष्ट्वाधैवं प्रसक्तं सर्वमद्वयम् ॥ ३२५३ ॥  
 ततश्च शिष्यसर्वज्ञधर्माधर्मतदुक्तयः ।  
 न स्युर्वो भिन्नरूपत्वे स्वभावानवधारणात् ॥ ३२५४ ॥  
 मृषात्वे त्वेकबोधस्य भ्रान्तः प्राप्नोति सर्ववित् ।  
 न भ्रद्वेयं वचस्तस्य तदोन्मत्तादिवाक्यवत् ॥ ३२५५ ॥

सहेतु सकलं कर्म ज्ञानेनालौकिकेन यः ।  
समाधिजेन जानाति स सर्वज्ञो यदीष्यते ॥ ३२५६ ॥  
प्रत्यक्षमनुमानं वा शाब्दं वा तदतत्कृतम् ।  
प्रमाणमस्य सद्भावे नास्तीति नास्ति तादृशः ॥ ३२५७ ॥  
युगपत्परिपाठ्या वा कथं कार्याद्विनाऽनुमा ।  
सामर्थ्यमपि नैवास्ति समर्थं सर्वमेव वा ॥ ३२५८ ॥  
सर्वे सर्वावबोधे च क्षेत्रज्ञाः प्रभविष्णवः ।  
उपायविकलत्वात्तु बुध्यन्ते निखिलं न ते ॥ ३२५९ ॥  
लब्धासाधारणोपायोऽशेषपुंसां विलक्षणः ।  
तत्रैकः सर्ववित्कश्चिदित्येवं निष्प्रमाणकम् ॥ ३२६० ॥  
इत्थं यदा न सर्वज्ञः कश्चिदप्युपपद्यते ।  
न धर्माधिगमे हेतुः पौरुषेयं तदा वचः ॥ ३२६१ ॥  
इति मीमांसकाः प्राहुः स्वतन्त्रश्रुतिलालसाः ।  
विस्तरेण च वेदानां साधिता पौरुषेयता ॥ ३२६२ ॥

किं युगपदशेषपदार्थपरिज्ञानात्सर्वविन, आहोस्वित्परिपाठ्या—क्रमेण, यद्वा सर्वस्य जगत एकेन—नित्यादिना रूपेण ज्ञानात्, यथा प्रधानावगमाद्वा—यदेव हि पुरुषार्थोपयोगि कर्मफलादि तस्यैव ज्ञानात्, यद्वा सर्वपदार्थपरिज्ञानसामर्थ्य-योगात् सर्वविदुच्यते—यथाग्निः सर्वं क्रमयौगपद्याभ्यामभुज्जानोऽपि सर्वभुगिति । तत्र प्रथमे पक्षे कल्पनाद्वयम्, एकया वा धिया युगपदशेषं जानीयादनेकया वा । न तावदेकया, परस्परविरुद्धानां शुच्यशुच्यादीनामर्थानां युगपदेकज्ञानेन ग्रहणादर्शनात् । स्यादेतद्विरुद्धानेकपदार्थविषया बहुषो बुद्धयस्तस्य सकृद्वर्तन्त इत्याह—भिन्ना वा गतय इति । न दृष्टा इति विभक्तिविपरिणामेन सम्बन्धः । नहि युगपद्भिन्नगतयो दृष्टा एकविज्ञानसन्ततयः सत्त्वा इति सि<sup>१</sup>..... वर्षशतैरपि ज्ञातुमशक्यत्वात् । वर्षशतग्रहणमुपलक्षणं कल्पैरपि न ..... । अन्यथा स्वतन्त्रत्वं हीयेत .....

१ इत आरभ्य—३२:२ कारिकाभ्याख्याने जायत् प्रभ्यो भूयान् विगणितः । जावर्शपुस्तक एव च प्रच्युतिचिह्नमात्रं विरचितम् ।

तस्मादतीन्द्रियार्थानां साक्षाद्द्रष्टैव विद्यते ।

न तु नित्येन वचसा कश्चित्पश्यत्यसम्भवात् ॥ ३२६३ ॥

तेन साक्षादेवातीन्द्रियार्थानां द्रष्टा विद्यते, न तु नित्यवचनद्वारेण, तस्य नित्यस्य वचसोऽसम्भवात् । द्रष्टैवेत्यवधारणं भिन्नकर्म साक्षादित्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यम् ॥ ३२६३ ॥

भवतु नाम नित्यस्य वचसः सम्भवस्तथापि न तस्यातीन्द्रियार्थप्रतिपत्तिं प्रति कारणभावो युक्त इत्येतत्प्रतिपादयन्नाह—नित्यस्येत्यादि ।

नित्यस्य वचसः शक्तिर्न स्वतो वापि नान्यतः ।

स्वार्थज्ञाने समुत्पाद्ये क्रमाक्रमविरोधतः ॥ ३२६४ ॥

तत्र स्वार्थः स्वकीयमभिधेयम् । यद्वा—स्वः—आत्मा, शब्दस्य स्वभावः, अर्थः—अभिधेयः, स्वश्चार्थश्च स्वार्थो, तयोर्ज्ञानम्, तस्मिन्समुत्पाद्ये । तत्समुत्पादनाय नित्यस्य वचसः शक्तिः स्वतो वा भवेन्निरगसिद्धा, अन्यतो वा सहकारिकारणात् । तत्र न तावत्स्वतः, कुतः, क्रमाक्रमाभ्यां कार्योत्पादनं प्रति नित्यस्य विरोधात् । नहि क्रमयौगपद्याभ्यामन्यः प्रकारः सम्भवति, येनार्थक्रिया भवेत् । अन्योन्यव्यवच्छेदस्थितलक्षणत्वादनयोः । तेन क्रमयौगपद्याभ्यामेवार्थक्रिया व्याप्ता । न च नित्यस्य वचसः क्रमेण स्वार्थज्ञानोत्पादकत्वं युक्तम् । प्रथमकार्योत्पादावस्थायामुत्तरकालभाविज्ञानकार्योत्पादकस्वभावाप्रच्युतेस्तन्मात्रभावीनि कार्याणि युगपदेव स्युः । नापि क्रमेण युक्तम्, उत्तरकालमपि प्रथमकार्योत्पादावस्थावत्कार्यकरणसमर्थाविकलस्वभावानुवृत्तेरजनकत्वविरोधात् । प्रयोगः—यो यद्द्रव्यापकधर्मरहितः स तद्द्रव्यासधर्मविकलः, यथा वृक्षत्वधर्मशून्यो घटादिस्तद्द्रव्यासशिशपात्वधर्मविकलः, अर्थक्रियासामर्थ्यधर्मव्यापकक्रमाक्रमधर्मरहितं च नित्यं वेदाख्यं वचनमित्यर्थतो व्यापकानुपलब्धिः, अतो न स्वतो नित्यवचसः शक्तिरसम्भवः । नाप्यन्यतः सहकारिकारणात् । तेन शक्तेस्तत्स्वभावव्यतिरिक्तायास्तस्वभाववत्कर्तुमशक्यत्वात् अर्थान्तरत्वेऽपि सम्बन्धासिद्धेरिति बहुधा चर्चितमेतत् । तस्मादतीन्द्रियार्थपरिज्ञानस्य नित्यवचनाश्रयत्वमनुमानबाधितत्वादयुक्तम् ॥ ३२६४ ॥

यद्योक्तमभावप्रमाणविषयीकृतविग्रहत्वान्नास्ति धर्मज्ञ इति, तत्र धर्मज्ञाभावप्र

तिज्ञाया अर्थापत्तिप्रमाणवाधित्वं हेतोश्चासिद्धत्वं पराभ्युपगमेनैव प्रतिपादयन्नाह  
—स्वर्गयागादयस्तस्मादित्यादि ।

स्वर्गयागादयस्तस्मात्स्वतो ज्ञात्वा प्रकाशिताः ।

वेदकारस्तवाप्यस्ति नादृशोऽतीन्द्रियार्थदृक् ॥ ३२६५ ॥

प्रधानपुरुषार्थज्ञः सर्वधर्मज्ञ एव वा ।

तस्यानुपगमे न स्याद्वेदप्रामाण्यमन्यथा ॥ ३२६६ ॥

तेनार्थापत्तिलब्धेन धर्मजोपगमेन तु ।

बाध्यते तन्निषेधोऽयं विस्तरेण कृणस्त्वया ॥ ३२६७ ॥

स्वत इति । स्वानन्वयेण । वेदानपेक्षेण ज्ञानेनेत्यर्थः । तादृश इति । यादृशो भवद्भिः प्रतिक्रियते । अर्थापत्तिलब्धेनेति । वेदप्रामाण्याभ्युपगमसामर्थ्यलब्धेन । अत एवाभावप्रमाणविषयीकृतविग्रहत्वमप्यसिद्धम्, अर्थापत्त्या विषयीकृतत्वात् ॥ ३२६५ ॥ ३२६६ ॥ ३२६७ ॥

यच्च सर्वशब्दस्य प्रकृतार्थो(र्था?)पेक्षित्वं बहुधा विकल्प्य दूषणमुक्तम्, तत्रावतरत्येव । अस्य पक्षम्यानभ्युपगमात् । न ह्यस्मामिर्धर्मादिन्यतिरिक्तविवक्षिताशेषार्थाभिज्ञतया सर्वज्ञोऽभ्युपगम्यते, येन तत्र दूषणमासज्येत किं तर्हि ? । यस्य सकलक्लेशज्ञेयावरणमलव्यपगतेन चेतसा सकलमेव धर्मादिकं ज्ञेयमवभासते स सर्वज्ञोऽमीष्टः । तत्र न भवता न किञ्चिद्वाधकं प्रमाणमभ्यधायि । यच्चोक्तम्—‘एकस्यैव शरीरस्य यावन्तः परमाणवः’ इत्यादि, तत्केवलं प्रतिज्ञामात्रमप्रमाणमुक्तम् । न च प्रतिज्ञामात्रादुपपत्तिशून्यादर्थसिद्धिः सम्भवति । सर्वस्य सर्वार्थसिद्धिप्रसङ्गादित्येतत्सर्वमागूर्याह—किञ्चेत्यादि ।

किञ्चाकारणमेवेदमुक्तमाज्ञा ( मज्ज ? ) प्रभाषि(षि ?)तम् ।

केशरोमाणि यावन्ति कस्तानि जानुमर्हति ॥ ३२६८ ॥

यस्मान्निर्मलनिष्कम्पज्ञानदीपेन कञ्चन ।

द्योतिताखिलवस्तुः स्यादित्यत्रोक्तं न बाधकम् ॥ ३२६९ ॥

अकाण्णमिति । न विद्यते कारणमुपपत्तिस्विरूपलिङ्गाख्यानं यस्य तत्तथोक्तम् । क्लेशज्ञेयावरणमलविविक्तत्वान्निर्मलं मारतीर्थिकपरिहाण( ! )समीरणकम्प्यत्वादकम्प्यं यदेव ज्ञानं तदेव दीपः । प्रकाशमाभ्यात् । द्योतितं विषयीकृतमखिलं धर्मा-



दिकं वस्तु येन स तथोक्तः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । अत्रोक्तं न बाधकमिति । प्रमाणमिति शेषः । न केवलं नोक्तम्, नाप्यत्र किञ्चिद्बाधकमस्तीति-भावः । तथाहि— न तावत्प्रत्यक्षं बाधकम्, तस्यातद्विषयत्वात् । यदेव हि वस्तु प्रत्यक्षेण यथा विषयीक्रियते तत्र प्रत्यक्षप्रसिद्धे विपरीतो धर्मोऽभ्युपगम्यमानः प्रत्यक्षेण बाध्यते । यथा शब्दे धर्मिणि अभावणत्वं भावणत्वेन । न तु यत्र प्रत्यक्ष-स्याप्रवृत्तिः । न च परसन्तानवर्तीनि चेतांसि सर्वाणि प्रत्यक्षतोऽसर्वज्ञेन विषयीक्रियन्ते केनचित् । येन तत्र सर्वज्ञत्वं प्रतिज्ञायमानं प्रत्यक्षेण बाध्येत । सर्वेषामेवावा-र्दशित्वात् । विषयीकरणे वा स एव सर्वज्ञ इत्यप्रतिक्षेपः ।

स्यादेतत्—न वयं प्रत्यक्षं प्रवर्त्तमानमभावं साधयतीति ब्रूमः । किं तर्हि ? । निवर्त्तमानम् । तथाहि—यत्र वस्तुनि प्रत्यक्षस्य निवृत्तिस्तस्याभावोऽवसीयते, यथा शशविषाणस्य । यत्र प्रवृत्तिस्तस्य भावः, यथा—(अ)भ्यादेः । न च सर्वज्ञविषयं कदाचित्प्रत्यक्षं प्रवृत्तमित्यतस्तन्निवृत्तेस्तदभावोऽवसीयत इति । तदेतदसम्बद्धम् । नहि प्रवृत्त(प्रत्यक्ष ?)निवृत्तेर्यो भवति निश्चयः स प्रत्यक्षाद्भवति । अभावभावयोरेकत्रविरोधात् । न च प्रत्यक्षनिवृत्तिर्वस्तु(स्त्व ?)भावेन व्याप्ता, येनासौ वस्त्वभावस्ततो निश्चीयते । सत्यपि वस्तुनि व्यवहितादौ प्रत्यक्षस्य निवृत्तिदर्शनात् । स्यादेतत्—न प्रत्यक्षनिवृत्तेः सकाशात्स्यादभावनिश्चय इति ब्रूमः । किं तर्हि ? । निवृत्तं प्रत्यक्षमभावं साधयतीति । तदेतच्छब्दान्यत्वं केवलं भवतोच्यते । नत्वर्थभेदः । न च शब्दान्यत्वमात्रादर्थान्यत्वं युक्तमतिप्रमत्नात् । तथाहि—निवृत्तिर्वस्तुसत्तानिषेध उच्यते । निवृत्तशब्देनापि परमार्थतः स एवाभिधीयते । केवलमेको भेदान्तरप्रतिक्षेपेण तन्मात्रजिज्ञासायां तमाह, अपरस्त्वप्रतिक्षेपेणेति विशेषः । परमार्थतस्तु द्वाभ्यामसत्त्वमेव वस्तुनः प्रतिपाद्यते । नवाऽमतो हेतुभावः सम्भवी, सर्वसामर्थ्यविरहलक्षणत्वात्तस्य । तस्माद्यस्य यदुत्पादकं प्रकाशकं वा तत्तस्योत्पादने प्रकाशने च सन्नहितसत्ताकमेव भवति, न तु निवृत्तस्वभावं, यथा बीजमङ्कुरस्य शीपो वा रूपस्य । नहि तौ निवृत्तावङ्कुरघटरूपाद्युत्पादनप्रकाशने समर्थौ भवतः । अपि च—निवृत्तं प्रत्यक्षमभावं साधयतीति कोऽत्रार्थोऽभिमतः । यदि तावद्वर्त्तमानादध्वनो निवृत्तमित्यर्थस्तदा सामर्थ्यादतीतानागतावस्त्वमित्वेवमुक्तं स्यात् । न चातीतानागतवस्तु विद्यत इति पूर्वं प्रतिपादितम् । तत्कथमसतो व्यापारः सिध्येत् । अथ वर्त्तमानमपि सद्यत्र विषये नोत्पद्यते तत्ततो निवृत्तमित्युच्यते । एवमपि नातो वस्त्वभावसिद्धिर्व्य-

भिचारात् । नहि बहुविज्ञानं गन्धरसादिविषये नोत्पद्यत इत्येतावता ततस्तदभावः सिद्धयेत् । तस्मान्न प्रत्यक्षतः कस्यचिदभावसिद्धिः । यद्येवं कथमनुपलम्भाख्या-  
त्प्रत्यक्षात् घटाद्यभावसिद्धिः प्रदेशान्तरे भवद्विवर्णने । नैतदस्ति । नहि तत्राभा-  
वविषयीकरणात्प्रत्यक्षमभावं साध्यतीत्युच्यते । किं तर्हि ? , एकज्ञानसंसर्गयोग्ययोर-  
र्थयोरन्य-नरस्यैव या सिद्धिः साऽपरम्याभावसिद्धिरिति कृत्वा । यतस्तयोः सतोर्नैक-  
रूपनियता प्रतिपत्तिः सम्भवति । योग्यताया अविशेषात् । न चैवं सर्वज्ञत्वस्य  
केनचित्सार्द्धमेकज्ञानसंसर्गिता निश्चिता, यस्य केवलस्योपलम्भात्तदभावं व्यवस्थामः ।  
तस्य सर्वदैवात्यन्तपरोक्षत्वात् ।

एवं तावत्प्रत्यक्षं सर्षविदो (न) बाधकं सम्भवति । नाप्यनुमानं सर्वज्ञाभावं साध-  
यति । तस्य विधिविषयत्वाभ्युत्थामात् । यतोऽभावमेव प्रमाणमभावविषयमुपव-  
र्ण्यते नान्यत् । अत एवार्थापत्त्यादीनां त्रयाणामपि वा(न सा?)भक्तत्वम् । अथापि  
स्यात्—नाम्माभिः प्रसज्यरूपेण सर्वज्ञाभावः प्रसाध्यते, किं तर्हि ? , सर्वनरान्प-  
क्षीकृत्य पर्युदासवृत्त्या तेष्वसर्वज्ञत्वं साध्यते, तेनानुमानादीनां व्यापारो भवत्ये-  
वेति । भवत्वेवम्, तथाप्यनुमानं तावन्न सम्भवति, सर्वनरेष्वसर्वज्ञत्वाव्यभिचा-  
रिलिङ्गाप्रसिद्धेः । यदपि च -मेयत्ववक्तृत्वादिकमुक्तं तदपि व्यभिचारीति प्रश्नात्प्र-  
तिपादयिष्यते । नाप्यर्थापत्तिरसर्वज्ञं साधयति । प्रत्यक्षानुमानव्यतिरेकेणान्येषां  
प्रमाणत्वासिद्धेः । सत्यपि वा प्रमाणान्तरत्वे नार्थापत्तिस्त्वादसर्वज्ञसाधने पर्याप्ता,  
यतो दृष्टः श्रुतो वाऽर्थोऽन्यथा नोपपद्यते इत्यदृष्टपरिरूपनाऽर्थापत्तिः । न चासर्वज्ञ-  
त्वमन्तरेण सर्वनरेषु कश्चिदर्थो दृष्टादिर्नोपपद्यते, यतस्तदार्थापत्त्या कल्प्येत । नाप्यु-  
पमानं क्षमम्, तथाहि—स्मर्यमाणमेव वस्तु पुरोवर्त्तिपदार्थसादृश्योपाधि सादृ-  
श्यमात्रं वा पुरोवर्त्तिना स्मर्यमाणवस्तुगतमुपमानेन प्रतीयते । यथानुभूतगोदर्शनस्य  
पुंसोऽरण्यगतस्य गवयदर्शनात्पूर्वानुभूते गवि तत्साधर्म्यज्ञानम् । यथोक्तम्—  
“तस्माद्यत्स्मर्यते तत्स्यात्सादृश्येन विशेषितम् । प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तद-  
न्वितम् ॥” इति । तस्मात्स्मर्यमाण एव धर्मी उपमानस्य विषयः, अनुभूतमेव च  
वस्तु स्मरणेन विषयीक्रियते, नान्यत् । न च सर्वनरसन्तानवर्त्तिनि चैनासि केन-  
चित् सर्वविदाऽनुभूतानि, यतः स्मरणेन विषयीक्रियेरन् । न चानुभूयमानस्य वस्तुनः  
सर्वनरैरसर्वज्ञत्वसाधारणधर्मनिश्चयोऽस्ति, यद्वशादसर्वज्ञत्वं सर्वनरेषूपमीयेत । यदपि  
सत्त्वादिकं कचिदसर्वज्ञे दृष्टं तदपि नासर्वज्ञत्वसाधारणं सिद्धम् । सर्वज्ञस्यापि

सत्त्वाद्यविरोधात् । नहि गवये सत्त्वादिधर्मदर्शनाद्दृष्टादीनामपि गवयसादृश्यमु-  
पमीयते । भवतु नाम सर्वनराणां सत्त्वादिना साधर्म्यमसर्वज्ञत्वं तु न सिद्धयति ।  
एतेनैव तत्पत्युक्तम् , यदुक्तं—नरान् दृष्टेत्यादि ।

नापि शब्दाख्यं प्रमाणं सर्वविदो बाधकमस्ति । यत्तावत्पौरुषेयं तदप्रमाणमेव  
ख्यं मीमांसकैरतीन्द्रियार्थविषयेऽभ्युपगम्यते, यच्चापौरुषेयं तदप्यप्रमाणमिति निवे-  
दितम् । न चापि किञ्चिद्वैदिकं वचनं सर्वनरामसर्वज्ञत्वप्रत्यायकमुपलभ्यते । न च तत्रा-  
नुपदेशादर्थान्तराभावः सिद्धयति, सर्ववस्तुनां शास्त्रोपदेशेऽनधिकृतत्वात् । अन्यथा  
हि भवन्मातृमविवाहादीनामप्यभावप्रसङ्गः स्यात्, तत्रापाठात् । न चैकदेशे क्वचित्पा-  
ठादर्शनात्सर्वत्रापाठनिश्चयो युक्तः, अनेकशाखाशताऽन्तर्हितश्रवणादन्यत्रापि पाठस्य  
सम्भाव्यमानत्वात् । शास्त्रान्तरे स्फुटतरमेव सर्वज्ञः पठ्यत इति पश्चात्प्रतिपाद-  
यिष्यामः ।

नाप्यभावप्रमाणविषयीकृतत्वात्सर्वविदोऽसत्त्वसिद्धिः । तथाहि—यदि प्रमाण-  
निवृत्तिमात्रं प्रसज्यलक्षणमभावप्रमाणं वर्ण्यते तदा नासौ कस्यचित्प्रतिपत्तिर्नापि-  
प्रतिपत्तिहेतुरिति न तेन विषयीकरणं युक्तमवस्तुत्वात् । अतो नासौ प्रमाणम् ।  
अथ पर्युदासावृत्त्या प्रमाणाख्याद्वादान्यो भाव एवामिप्रेतः, एवमपि प्रमाणाद्व्या-  
वृत्त्यात्मतया न प्रामाण्यं सिद्धयेत् । नहि ब्राह्मणादन्यो ब्राह्मण एव युक्तः । स्या-  
देतत्—न सर्वप्रमाणव्यावृत्तोऽसौ वर्ण्यते किं तर्हि ! । विवक्षितप्रमाणपञ्चक-  
व्यतिरेकेणान्यः प्रत्ययविशेष एव । यद्येवं किमाकारोऽसाविति वाच्यम् । यस्मा-  
त्प्रमाणपञ्चकागोचरस्तस्मादसौ सर्वज्ञो नास्तीत्येवमाकार इति चेत् । यद्येवमाकारो  
न तर्हि प्रमाणम्, व्यभिचारात् । नहि प्रमाणपञ्चकस्या(स्व ?)स्वभावाकारणभूतस्य  
निवृत्तावप्रतिबद्धं सर्वज्ञादिवस्तु निवर्तते, येनायं प्रत्ययः सत्यत्वमश्नुवीत । तस्मान्न  
किञ्चिद्बाधकं प्रमाणं सर्व(ज्ञ)स्यास्तीति भावः ॥ ३२६८ ॥ ३२६९ ॥

स्यादेतत्—अनुपलम्भो यो युष्माभिरुपवर्णितोऽनुमानत्वेन स एव सर्वज्ञस्य  
बाधको भविष्यति, किमत्रास्माकमन्येन प्रमाणेनेति । सत्यमेतदनुपलम्भः प्रमाणम् ।  
किञ्चिदमिह सम्प्रधार्यम् । किं स्वोपलम्भनिवृत्तिस्त्वया सर्वज्ञाभावसिद्धयेऽनुपल-  
म्भोऽभिप्रेतः ?, आहोस्वित्सर्वपुरुषोपलम्भनिवृत्तिर्वा ?, अनुपलम्भोऽपि किं निर्वि-  
शेषणोऽमीष्ट उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्येत्येतस्य विशेषणस्यानाश्रयणत् ? , आहोस्वित्सवि-

शेषण इति । तत्र न तावन्निर्विशेषणश्चा(म्स्वा ?)नुपलम्भः प्रमाणं सर्वज्ञाभावसिद्धये युक्त इति दर्शयन्नाह—न चाप्यदृष्टिमात्रेणेत्यादि ।

न चाप्यदृष्टिमात्रेण तदसत्ताविनिश्चयः ।

हेतुव्यापकतायोगादुपलम्भस्य वस्तुषु ॥ ३२७० ॥

मात्रग्रहणमुपलब्धिप्रमाणप्राप्तयेतद्विशेषणनिरासार्थम् । तदसत्ताविनिश्चय इति । सर्वज्ञासत्ताविनिश्चयः । कस्मात् ?, वस्तुषु—वस्तुविषये उपलम्भस्य हेतुत्व-व्यापकत्वायोगत । न चार्वाग्दर्शनस्योपलम्भो वस्तुनां व्यापको वृक्षत्वमिव शिक्षपा-त्वस्य, सत्यपि वस्तुनि देशादिविप्रकर्षेणानुपलम्भसम्भवात् । नापि कारणमग्निरिव-धूमस्य, वस्तुनामेवोपलम्भं प्रति कारणत्वाभावात् । न चाकारणाव्यापकभूतस्यान्यस्य निवृत्तावन्यस्य निवृत्तिर्युक्ता, अतिप्रसङ्गान् । या च कार्यानुपलब्धिसत्ता(ता ?) न सा कारणमात्रस्याभावं गमयति । किं तर्हि ? अप्रतिबद्धसामर्थ्यस्यैव । न चार्वाग्-दर्शनो(न उ ?)पलम्भं प्रति वस्तुनामप्रतिबद्धसामर्थ्यमस्ति । येन स निवर्त्तमानो वस्तुनामभावं साधयेत् ॥ ३२७० ॥

कारणव्यापकयोर्निवृत्तावपि कथमन्यस्य निवृत्तिरिति चेदत्राह— कारणेत्यादि ।

कारणव्यापकाभावे निवृत्तिश्चेह युज्यते ।

हेतुमद्वयाप्तयोस्नस्मादुत्पत्तरेकभावतः ॥ ३२७१ ॥

कृशानुपादपाभावे धूमाम्रादिनिवृत्तिवत् ।

अन्यथाऽहेतुनैव स्यान्नानात्वं च प्रसज्यते ॥ ३२७२ ॥

हेतुर्विद्यते यस्य तद्धेतुमत्, कार्यमित्यर्थः । हेतुमच्च व्याप्तं चेति विग्रहः । तयोर्हेतु मद्वयाप्तयोर्निवृत्तिर्युज्यत इति पूर्वेण सम्बन्धः । अत्र कारणं तस्मादुत्पत्तरेकभावत इति । हेतुनिवृत्तौ हि सत्यां हेतुमात्रिवर्त्तते, ततो हेतोरुत्पत्तरेकभावप्रतिलम्भाद्धे-तुमतः, यथा कृशानुनिवृत्तौ धूमस्य निवृत्तिः, तथा व्यापकनिवृत्तौ व्याप्यं निव-र्त्तते, तेन व्यापकेन सह तस्यैकभावतः—एकस्वभावत्वात् । यथा वृक्षनिवृत्तौ आम्र-खदिरादिनिवृत्तिः, वृक्षविशेषस्यैव आम्रादित्वेन प्रतीतेः । अन्यथा हि यदि कार-णनिवृत्तावपि न निवर्त्तत तत्कारणमेव न स्यात् । नहि यद्यस्मिन्स(नस ?)न्यपि-भवति तत्तस्य कारणं युक्तमतिप्रसङ्गात् । नापि यन्निवृत्तौ यन्न निवर्त्तते स तस्य स्वभावो युक्तो गौरिव गवयस्य । तस्माद्व्यापक एव स्वभावो व्याप्यं कारणमेव च

कार्यं निवर्त्तमानं निवर्त्तयेत्, नान्यदतिप्रसङ्गात् । यथोक्तम्—‘तस्मात्तन्मात्रसम्बद्धः स्वभावो भावमेव तु । निवर्त्तयेत् कारणं वा कार्यमव्यभिचारतः । अन्यथैकनिवृत्त्याऽन्यविनिवृत्तिः कथं भवेत् ! नास्त(श्च ! )वानिति मत्त्येन न भाव्यं गोमताऽपि कि’मिति ॥ ३२७१ ॥ ३२७२ ॥

अथापि स्वोपलम्भस्य सर्वार्थान्प्रति हेतुत्वं व्यापकत्वं चाङ्गीक्रियते तदा स्ववचनविरोधः प्रतिज्ञायामापद्यत इति दर्शयन्नाह— स्वोपलम्भस्येत्यादि ।

स्वोपलम्भस्य चार्थेषु निखिलेषु विनिश्चये ।

कुतश्चिद्भवतो जानाद्देतुत्वव्यापकत्वयोः ॥ ३२७३ ॥

भवानेष तदा सिद्धः सर्वार्थजोऽप्रयत्नतः ।

तनश्च स्वात्मनि द्वेषः कस्ते सर्वविदि स्वतः ॥ ३२७४ ॥

हेतुत्वव्यापकत्वयोरिति । निश्चयापेक्षया षष्ठी । उपलम्भस्य चार्थेष्विति षष्ठीसप्तम्यौ हेतुत्वव्यापकत्वयोरित्येतदपेक्ष्य यथाक्रमं सम्बन्धे विषयभावे च योज्ये । एतदुक्तं भवति—यदि भवता कुतश्चित्प्रमाणात्स्वोपलम्भस्य सर्वार्थेषु हेतुत्वे व्यापकत्वं निश्चितं तदाऽऽत्मनि स्फुटतरमेव त्वया सर्वज्ञत्वं प्रतिज्ञातं भवति । नञ्सर्वविदो ज्ञानमशेषज्ञेयव्यापकं भवति । सर्वज्ञाभावसिद्धये च साधनोपादानात्तदेव निषिध्यत इति स्ववचनव्याघातः ॥ ३२७३ ॥ ३२७४ ॥

एवं तावन्निर्विशेषणः स्वानुपलम्भो न सर्वविदोऽसत्त्वप्रसिद्धये निर्देशनमर्हति, नाप्युपलब्धिभक्षणप्राप्तस्य सतोऽनुपलम्भादिति विशेषणात्सविशेषणः । तथाहि—स निर्दिश्यमानः स्वशब्देन वा निर्दिश्यते, यथा नास्ति कचिन्प्रदेशविशेषे घट उपलब्धिभक्षणप्राप्तस्यानुपलम्भादिति निर्देशस्तथा सर्वज्ञाभावसिद्धयेऽपि स्यात् । य(अ ?)थार्थान्तरस्य तत्कारणव्यापकात्मन उपलब्धिभक्षणप्राप्तस्याभावोपदर्शनादस्वशब्देन । यथा—नास्त्यत्र धूमो बहुयभावात्, नास्त्यत्र शिशपा वृक्षाभावादिति । न च प्रतिबद्धस्याहेत्वव्यापकभूतस्यान्यस्य विनिवृत्तावपरस्य नियमेन निवृत्तिर्युक्तेति पूर्वमुक्तमतिप्रसङ्गापत्तेरिति । नाचाप(प्य ?)निश्चितस्वहेतुव्यापकव्यतिरेकस्यार्थस्य कारणव्यापकयोर्व्यतिरेकाद्बह्वतिरेकः सिद्धयतीति, अतस्तत्राप्युपलब्धिभक्षणप्राप्तस्येति विशेषणमाश्रयणीयम् । एवं सर्वज्ञेऽपि स्यात् । यद्वा—अर्थान्तरस्य साक्षात्पारम्पर्येण वा विरुद्धस्यैव विधानात्तन्निषेधः, नाविरुद्धस्य, तस्य तत्सहभावसम्भवात् ।

यथा—नाम्यत्र शीतस्पर्शो बहेरिति साक्षाद्विरुद्धस्य बह्वेर्विधानाच्छीतस्पर्शनिषेधः, तद्वत्सर्वज्ञनिषेधेऽपि स्यात् । पारम्पर्येण तु विरुद्धस्य कदाचित्तद्वयात्कविरुद्धस्यैव वा विधानात्सर्वविदो निषेधः, यथा—तुषारस्पर्शव्यापकशीतविरुद्धवह्निविधानात्तुषारस्पर्शनिषेधः । तत्कारणविरुद्धविधानाद्वा, यथा—रोमहर्षादिकारणशीतविरुद्धदहनविशेषविधानाच्छीतकार्यरोमहर्षादिनिषेधः । तद्विरुद्धकार्यस्य वा विधानात्, यथा—कचित्प्रदेशविशेषे शीतादिविरुद्धवह्नादिकार्यस्य धूमादेर्विधानात् शीतस्पर्शनिषेधः । तत्कारणविरुद्धकार्योपलम्भाद्वा, यथा—रोमहर्षादिकारणशीतविरुद्धवह्निकार्यधूमोपदर्शनाद्दोमहर्षादिनिषेधः । रोगहर्षादिविशेषयुक्तपुरुषमान- (ना?)यं प्रदेशो धूमादिति । तद्विरुद्धव्याप्तस्य वा विधानात्तन्निषेधः, यथा—ध्रुवभावित्वविरुद्धाध्रुवभावित्वव्याप्तस्य सापेक्ष(त्व)स्य विधानाद्भ्रुवभावित्वनिषेध इति । त एते सर्व एवानुपलब्धिलक्षणप्रयोगाः सर्वज्ञाभावसिद्धये न सम्भवन्ति, तस्य सर्वविदः सर्वदैवानुपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वात् । एषां चोपलब्धिलक्षणप्राप्तानुपलम्भभेदत्वादित्येतददर्शयति—अत एवेत्यादि ।

अत एव न दृश्योऽयं सर्वज्ञस्ते प्रसिद्धयति ।

तद्दृश्यत्वे हि सार्वज्ञ्यं तथैव स्यादयन्नतः । ३२७५ ॥

सर्वार्थविषयं ज्ञानं यस्य दृश्यः स ते कथम् ।

सर्वार्थविषयं ज्ञानं तवापि यदि नो भवेत् । ३२७६ ॥

अत एव स्वयंचनविरोधप्रसङ्गान्न भवता सर्वज्ञः स्वयमुपलब्धिलक्षणप्राप्तोऽङ्गीकर्त्तव्यः । अन्यथा हि स्वस्मिन्सर्वज्ञत्वमभ्युपेतं स्यात् । कथमित्याह—सर्वार्थविषयमित्यादि । यदि हि सर्वार्थगोचरं तत्रा(वा?)पि ज्ञानं भवेदेवं ते सर्वज्ञ उपलब्धिलक्षणप्राप्तो भवेन्नान्यथा, नह्यसर्वविदां सर्वविदुपलम्भगोचरो भवति ॥ ३२७५ ॥ ॥ ३२७६ ॥

स्यादेतत्—माभूदुपलब्धिलक्षणप्राप्तोऽस्माकं सर्वज्ञस्तथापि किमित्येतेऽनुपलब्धिप्रयोगास्तदभावसिद्धये न सम्भवन्तीत्याह—तेनेत्यादि ।

तेनाहृष्टिविशेषोत्थं कारणव्यापकात्मनाम् ।

प्रकृत्या दृश्यरूपत्वात्सर्वज्ञस्य न सिध्यति ॥ ३२७७ ॥

यस्मादुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्तत्र न भवति सर्वज्ञस्तेन कारणेन सर्वज्ञकारणव्याप-

स्वभाववानामदृष्टिविशेष उपलब्धिलक्षणप्राप्तानुपलम्भो न सिद्धयति । स्वभावकार-  
णव्यापकानुपलब्धिप्रयोगा आद्यास्तयो न सिद्धयन्तीति यावत् ॥ ३२७७ ॥

यद्येवमन्ये तर्हि शेषाः सिद्धयन्तु, तथाऽपि सिद्ध एव सर्वज्ञाभाव, इति चेदाह  
—इयं चेत्यादि ।

इयं च त्रिविधा दृष्टिर्विश्व(नव ?)रूपा प्रवर्तते ।

तत्तद्विरुद्धाद्यगतिगतिभेदप्रयोगतः । ३२७८ ॥

मूलप्रभेदरूपाया अस्याः सर्वविदं प्रति ।

साधिते शक्तिवैकल्ये व्यस्ता अन्या अयत्नतः ॥ ३२७९ ॥

इयमेवानन्तरोक्ता स्वभावव्यापककारणानामदृष्टिलेधा प्रपञ्च्यमाना नवधा भिद्यते ।  
कथमित्याह—तत्तद्विरुद्धाद्यगतीत्यादि । तच्छब्देन प्रकान्तं स्वभावव्यापककार-  
णाख्यं त्रयमभिसम्बध्यते, तेन स्वभावादिना विरुद्धं तद्विरुद्धम्, तच्च त्रिविधमेव  
भवति, स्वभावव्यापककारणविरुद्धभेदात्, तद्विरुद्धमादिर्यम्य तत्तद्विरुद्धादि । आदि-  
शब्देन विरुद्धकार्य—कारणविरुद्धकार्य—विरुद्धव्याप्तौ गृह्यन्ते । पुनर्द्वितीयेन  
तच्छब्देन तदेव स्वभावादित्रयं सम्बध्यते । तच्च तद्विरुद्धादि चेति तत्तद्विरुद्धादीति ।  
यथाक्रमं तयोरगतिगती तद्विरुद्धाद्यगतिगती । तदगतिस्तद्विरुद्धादिवानि(गति ?)-  
श्चेत्यर्थः । तयोर्भेदस्तेन प्रयोग इति समासः । तत्र तदगत्या साभ्रात्रिविधा स्वभाव-  
कारणव्यापकानुपलब्धिर्निर्दिष्टा । अस्या एव त्रिविधाया दृष्टेः शेषानुप-  
लब्धयः पारम्पर्येण सूचिका इत्यत इयं त्रिविधानुपलब्धिरासां मूलभेदरूपा भवति ।  
तथाहि—तद्विरुद्धगत्या स्वभावविरुद्धोपलब्धिः व्यापकविरुद्धोपलब्धिः कारणवि-  
रुद्धोपलब्धिश्च निर्दिष्टा । आदिशब्देन विरुद्धकार्योपलब्धिः कारणविरुद्धकार्योपलब्धि-  
विरुद्धव्याप्तौपलब्धिश्च संगृहीताः । एतामिश्च पारम्पर्येण यथायोगं स्वभावव्यापक-  
कारणानुपलब्धयः सूच्यन्त इत्यतस्त्रिविधाया मूलप्रभेदरूपायाः सर्वज्ञाभावसिद्धिं  
प्रत्यसामर्थ्यप्रतिपादनात्तच्छाखाभूतानां यत्नमन्तरेणैव प्रतिपादितं भवतीति नास्यां  
पृथगसामर्थ्यप्रतिपादनाय यत्नः कार्यः, नहि मूले छिन्ने शाखानामवस्थितिर्भवेत् ।  
परमार्थतस्तु स्वभावानुपलब्धिरेव सर्वासां मूलभूता, अर्थान्तरभेदाश्रयणान्तु त्रिविधा  
मूलत्वेनोक्ता ॥ ३२७८ ॥ ३२७९ ॥

स्यादेतत्—यदि सर्वज्ञोऽनुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्तदा माभूत्तदनुपलम्भविशेषसिद्धिः,

तत्कारणव्यापकयोस्तूपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वात्किमिति तददृष्टिविशेषो न सिद्धयति, तद्विरुद्धादीनां चोपलभ्यस्वभावत्वादुपलम्भः किमिति न सिद्धयेदित्याह—कार्यकारणतेत्यादि ।

**कार्यकारणताव्याप्यव्यापकत्वविरोधिनाः ।**

**दृश्यत्वे सति सिद्धयन्ति यश्चात्मा सविशेषणः ३२८० ॥**

**सर्वज्ञो न च दृश्यस्ते तेन नैना अदृष्टयः ।**

**तन्निराकरणे शक्ता निषेधाङ्गं न चापरम् ॥ ३२८१ ॥**

कार्यकारणभावो व्याप्यव्यापकत्वं विरोधिता चेति द्वन्द्वः । प्रत्यक्षानुपलम्भसाधनो हि कार्यकारणभावः, सर्वज्ञादेरदृश्यत्वान्न तेन सह कार्यकारणभावः सिद्धयति । नापि व्याप्यव्यापकभावस्तस्याप्युपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलम्भपूर्वकत्वात् । तथाहि—यन्नित्युक्तौ यन्नियमेन निवर्त्तते स तेन वासो व्यपदिश्यते, निवृत्तेश्च नानुपलब्धिलक्षणप्राप्तानुपलम्भमन्तरेण सिद्धिर्भवति । विरोधिनापि दृश्ययोरेव वस्तुनोः सिद्धयति नादृश्ययोः । तथाहि—सहानवस्थानलक्षणस्तावद्विरोधोऽविकलकारणस्य भवतोऽन्यभावेऽभावादृश्यते । भावाभावौ च नानुपलभ्यस्वभावयोर्वस्तुनोर्निश्चेतुं शक्यौ । परस्परपरिहारस्थितलक्षणोऽपि विरोधो यद्य(दः)वच्छेदनान्तरीयको यस्य परिच्छेदस्तयोर्व्यवस्थाप्यते, यथा क्रमाक्रमयोः । परिच्छेदश्च नादृश्ये सम्भवति । यद्येवं भावाभावादीनां कथं विरोधसिद्धिः, नहि तत्रोभयोर्दृश्यत्वमस्ति । नैष दोषः । नहि भावाभावौ पृथक्परिच्छिद्य पश्चात्तयोर्व्यवच्छेद्यव्यवच्छेदकभावात् विरोधो व्यवस्थाप्यते । किं तर्हि ?, पृथक्परिच्छिन्नयोरेव । तथाह्येकस्मिन्धर्मिण्येककालं तयोर्विरोधो व्यवस्थाप्यते न तु धर्म्यन्तरे । न हि गोरभावे अश्वस्य भावविरोधः कश्चित् । नाप्येकत्रधर्मिणि भिन्नकालयोस्तयोर्विरोधः, नहि प्रागभूतस्य (भूतस्य) वा पश्चाद्भावाभावौ न संभवतः । एकस्मिन्स्तु वस्तुनि तयोर्गुणपदपरिच्छेदाद्विरोधः, न तु तत्रैव, परिच्छिद्य व्यवच्छेदात् । अपरिच्छिन्नस्य कथं व्यवच्छेद इति चेत् । अत एव, यत एव न परिच्छिद्यते तत्र धर्मिणि तत एव तस्य व्यवच्छेदः संभवेत् । अन्यथा तत्र परिच्छिन्नधर्मस्य कथं व्यवच्छेदः शक्यते कर्तुम् । अयमेव हि तदभावव्यवच्छेदो य एव तत्परिच्छेदः, स एवान्याभावस्य तत्र परिच्छेदो य एवान्यव्यतिरिक्तस्य तस्य परिच्छेदः । तस्माद्यस्य धर्मिणोऽभावो व्यवच्छिद्यते



भावश्च परिच्छिद्यते सोऽवश्यं दृश्योऽभ्युपगन्तव्यो नष्टदृश्यस्य परिच्छेदो नापरि-  
च्छिन्नस्य तद्विपरीतधर्मव्यवच्छेदः सम्भवति । न त्वेवं सर्वज्ञे सम्भवति, नहि सर्वे  
नरा धर्मिणो दृश्याः कस्यचित्, येन तेष्वसर्वज्ञत्वधर्मपरिच्छेदात्सर्वज्ञत्वव्यव-  
च्छेदः सिद्धयेत । तस्यैव सर्वज्ञत्वप्रसङ्गात् । तस्मादनुपलभ्यधर्मिणि सर्वज्ञत्वासर्व-  
ज्ञत्वयोर्विरोधो न सिद्धयति । स्वसन्ताने तु सिद्धयति । तत्रापि नानागतावस्थायां  
तस्मात्स्तदानीपददृश्यत्वात् । तस्मात्स्थितमेतत् दृश्यस्यैव कार्यकारणादिभावः सिद्धय-  
तीति । यश्चात्मा सविशेषण इति । स सिद्धयतीति सम्बन्धः । तत्र आत्मा स्व-  
भावः, सह विशेषणेन वर्त्तत इति सविशेषणः । तत्र विशेषणं त्रिविधप्रकर्षर-  
हितत्वम् । एता अदृष्टय इति । कारणानुपलब्धयः सर्वज्ञस्य केनचित्सह कार्य-  
कारणभावविरोधव्याप्यव्यापकाभावासिद्धेः । सत्स्वन्येषु लभ्यकारणेषु कचित्कदा-  
चित्प्रत्यक्षत्वासिद्धेश्च । निषेधाङ्गं न चापरमस्यनुपलब्धिविशेषं त्यक्त्वा ॥ ३२८० ॥  
॥ ३२८१ ॥

पुनरपि स्वानुपलम्भस्य निर्विशेषणस्य प्रयोगेऽतिप्रसङ्गापादनेनानैकान्तिकतामु-  
द्भावयन्नाह — यदीत्यादि ।

यदि त्वदृष्टिमात्रेण सर्ववित्प्रतिषिध्यते ।

नदा मातृविवाहादिनिषेधोऽपि भवेत्तव ॥ ३२८२ ॥

मातृविवाहादीत्यादिशब्देन स्वपित्रोः सुरतोपभोगादिपरिग्रहः । ततश्च जारजात-  
त्वमापन्नं भवन इति भावः । यथोक्तम्—‘यद्यत्र भवतो मन्दचक्षुषोऽनुपलब्धिरर्था-  
नपाकुर्यान् इन्त हतोऽसि, पितृव्यपदेशनिबन्धनस्याप्यप्रवृत्तिप्रसङ्गादिति ॥ ३२८२ ॥

अत्र परस्य परिहारमाशङ्कते—सुताख्येत्यादि ।

सुताख्यकार्यदृष्ट्या चेद्देतोः स्मस्यास्ति नागतिः ।

तदभावेऽपि तत्कार्यं ननु कस्याश्चिदीक्षते ॥ ३२८३ ॥

तस्य मातृविवाहादिकस्य हेतोः सुताख्यादिकार्यदर्शनादनुमानप्रमाणतः सिद्ध-  
त्वात्तदनुपलब्धिर्न सिद्धेति न तदभावप्रसङ्गः । तदभाव इत्यादिनाऽस्य कार्यहेतो-  
र्व्यभिचारमादर्शयति—तदभाव इति । तस्य विवाहस्याभावे तथा विवाहितभर्त्रा  
च सह सुरतोपभोगाभावेऽपि कस्याश्चिद्दृष्टयोषितः परपुरुषपत्न्या सुताख्यं कार्य-  
मुपलभ्यते तद्भवतु (तो?) मातुरपि स्यादित्यसिद्धमनुमानम्, ततश्च भवतो जार-

जातत्वप्रसङ्गो दुर्निवारः । आचार्यधर्मकीर्तिनाऽपि विशिष्टपितृव्यपदेशनिबन्धना-  
भावप्रसङ्गापादनस्य विवक्षितत्वाज्जारजातत्वप्रसङ्गापादनमेव कृतम् ॥ ३२८३ ॥

अन्योपलम्भत इत्यादिना परस्योत्तरमाशङ्कते ।

अन्योपलम्भतस्तस्य नासत्ता गम्यते यदि ।

ननु चान्योपलम्भस्ते सिद्धस्तद्विषयः कथम् ॥ ३२८४ ॥

अन्येषां पुरुषाणामुपलम्भोऽन्योपलम्भः । तस्येति । मातृविवाहादेः । नासत्ता  
गम्यते, किं तर्हि ? सत्तैव । अत्रान्योपलम्भासिद्धिः, तद्भावयन्नाह—ननु चे-  
त्यादि ॥ ३२८४ ॥

कथमिति पृष्टः सन्पर आह—उपदेशादिति ।

उपदेशान्न सर्वज्ञेऽप्ययं किं विद्यते तथा ।

इदं च स्वोक्तमपरं किमत्र न समीक्ष्यते ॥ ३२८५ ॥

सर्वदा चैव पुरुषाः प्रायेणानृतवादिनः ।

यथाऽद्यत्वे न विस्रम्भस्तथाऽतीतार्थकीर्त्तने । ३२८६ ॥

सिद्ध इति प्रकृतेन संबन्धः । अतिप्रसङ्गापादनामु(दु ?)पदेशस्यानैकान्तिकता-  
मादर्शयन्नाह—न सर्वज्ञेऽपीति । अयमिति । उपदेशः । सर्वज्ञे किं न विद्यते,  
अपि तु विद्यत एव, तत्र यदि मातृविवाहाद्युपदेशः प्रमाणीक्रियते, सर्वज्ञोऽस्तीत्यय-  
मस्मदीयोऽप्युपदेशः किं न प्रमाणीक्रियेत, विशेषाभावात् । किञ्च—स्ववाचैवो-  
पदेशस्याप्रामाण्यमुक्तं भवतेति दर्शयति—इदं चेत्यादि ॥ ३२८५ ॥ ३२८६ ॥

एवं तावन्न स्वोपलम्भनिवृत्तिः सर्वज्ञाभावसिद्धये प्रमाणं युक्ता, निर्विशेषणया  
अनैकान्तिकत्वात्सविशेषणयाश्वासिद्धत्वादिति प्रतिपादितम्, इदानीं सर्वपुरुषोप-  
लम्भनिवृत्तेरसिद्धत्वान्न सर्वज्ञामन्वसाधने प्रामाण्यं युक्तमित्येतत्प्रतिपादयन्नाह—  
मा वाभूदित्यादि ।

मा वाभूदुपदेशोऽस्य प्रामाण्यं वा तथाऽपि वः ।

कृतोऽयं निश्चयः सर्वैः सर्वविज्ञोपलभ्यते ॥ ३२८७ ॥

एवं हि निश्चयो हि स्यात्सर्वसत्त्वात्मदर्शने ।

तद्दृष्टौ सर्वविद्भूतो भवानिति च वर्णितम् ॥ ३२८८ ॥

उपदेश इति । सर्वविदोऽस्तित्वप्रतिपादक इति शेषः । अस्य—प्रामाण्यं वेत्युप-

देशस्य । सर्वसत्त्वात्मदर्शन इति । सर्वसत्त्वस्वभावदर्शने । अस्त्येवास्माकं सर्वसत्त्वात्मदर्शनमिति चेदाह—तद्दृष्टावित्यादि । तद्दृष्टौ—सर्वसत्त्वात्मदृष्टौ ॥ ३२८७ ॥  
॥ ३२८८ ॥

अन्यथा संशयो युक्तोऽनुपलम्भेऽपि सत्त्ववत् ।  
केचित्सर्वविदः सन्तो विदन्तीति हि शङ्कयते ॥ ३२८९ ॥  
स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानमात्मज्योतिः स पश्यति ।  
इत्यप्याशङ्कयतेऽतश्च सर्वाहष्टिरनिश्चिता । ३२९० ॥

अन्यथेति । सर्वसत्त्वात्मदर्शनाभावे । सत्त्ववदिति । देशादिविप्रकृष्टस्य वस्तुनः सत्तायामिव सत्त्ववत् । एतदुक्तं भवति—यथा देशादिविप्रकृष्टस्य वस्तुनः सत्यप्यनुपलम्भे तत्सत्तायां संशयो भवति, सत्यपि वस्तुन्यनुपलम्भात्, एवमन्यपुरुषवर्तिनि सर्वज्ञविषयोपलम्भेऽपि संशयो युक्तः । अथवा—अयमर्थः—यथा सर्वज्ञसत्तायामनुपलम्भेऽपि संशयस्तथा सर्वज्ञत्वविषयोपलम्भेऽपि संशयः, द्वयोरपि स्वभावविप्रकर्षेणानुपलम्भसम्भवात् । ननु वस्तुसत्त्वे संशयो युक्तो यतः सत्यपि वस्तुनि तदनुपलम्भस्य दर्शनात्कदाचित्स्यादिति सम्भाव्यमानत्वात् । न तु सर्वज्ञदर्शनं कस्यचिदर्वाग्दर्शनस्य सम्भाव्यते, न चासम्भाव्यमाने वस्तुनि प्रेक्षावतः संशयो युक्त इत्यत आह—केचिदित्यादि । स्वयमेवेति । परसिद्धान्ताभ्युपगमादुक्तम् । स्वयमेवेत्यस्यैव निर्देश आत्मनेति । आत्मेति पुरुषः । ज्योतिरिति । चिद्रूपत्वेन प्रकाशात्मकत्वादात्मनः ॥ ३२८९ ॥ ३२९० ॥

तथाहीत्यादीना इदमेव समर्थयते ।

तथाहि सर्वशब्देन सर्वे प्राणभृतो मताः ।  
स च सर्वावहिर्भूत इत्यहष्टिरनिश्चिता ॥ ३२९१ ॥

स चेति सर्वज्ञः ॥ ३२९१ ॥

स्यादेतदर्वाग्दर्शिन एव सर्वशब्देन विवक्षिता न तु सर्वज्ञः, तेन शङ्का न भविष्यतीत्याह—तदेकेत्यादि ।

तदेकपरिहारेण प्रतिबन्धोऽत्र को भवेत् ।

न ह्यन्यैरपरिज्ञानात्स्वरागादि निवर्त्तते ॥ ३२९२ ॥

यदि हि तस्य सर्वज्ञस्य परिहारेणान्येषामर्वाग्दर्शिनानुपलम्भो हेतुत्वेनोपादीयते

तदाऽनैकान्तिकता, तस्य स्वानुपलम्भवत्सर्वज्ञाभावेन सहाविनाभावलक्षणस्य प्रतिबन्धस्याभावात् । नहीत्यादिना तमेव प्रतिबन्धाभावं समर्थयते ॥ ३२९२ ॥

एवमनुपलम्भाख्यस्य प्रमाणस्यानैकान्तिकत्वमसिद्धत्वं च प्रतिपादितम्, इदानीमभावप्रमाणविषयीकृतविग्रहत्वादित्यस्यापि हेतोः सन्दिग्धासिद्धतेति प्रतिपादयन्नाह—केचिदित्यादि ।

केचिदर्वाग्दृशो वाऽपि प्रपश्यन्तेऽनुमानतः ।

काश्चिदेव हि केषांचिन्निपुणा मतयः क्वचित् ॥ ३२९३ ॥

तथाहि वेदभूम्यादेः क्षणिकत्वादिसाधनम् ।

पुरः प्रोक्तं सुविस्पष्टमपि नो लक्षितं जडैः ॥ ३२९४ ॥

तदेवं शक्या नास्य ज्ञानाभावोऽपि निश्चितः ।

यतोऽसत्त्वं प्रपश्यन्ते निर्विशङ्का हि जातयः ॥ ३२९५ ॥

केचिन्निपुणमतय अर्वाग्दर्शिनोऽपि सन्तः कदाचिदनुमितेः सर्वज्ञं प्रतिपद्यन्त इति संभाव्यमानत्वात्सन्दिग्धासिद्धत्वमभावप्रमाणविषयीकृतत्वादित्यस्य हेतोः । तथाहि—वेदध्वनिघरणिगिरितनुवज्रादीनां क्षणिकत्वानात्मत्वादि स्फुटतरमपि भवद्विर्मीमांसकपशुभिरनुपलक्षितमपि सत्, अस्माभिर्दृढतरसाधनोपदर्शनेन प्रसाधितम्, तथा सर्वज्ञे यदि नाम साधनमिदानीं नोपलभ्यते तथाऽपि सम्भाव्यमानत्वात्सन्दिग्धमित्यतः प्रमाणपञ्चकविरहस्वभावाभावप्रमाणविषयीकृतविग्रहत्वमसिद्धम् । सन्दिग्धमानत्वात् । यत इति । मानाभावात् ॥ ३२९३ ॥ ३२९४ ॥ ३२९५ ॥

किञ्च—माभूनामर्वाग्दर्शिनां सर्वेषामेव सर्वज्ञसिद्धावनुमानम् । तथाऽप्यनैकान्तिकता हेतोरिति दर्शयन्नाह—अभावेऽप्यनुमानस्येत्यादि ।

अभावेऽप्यनुमानस्य नातोऽसत्ताविनिश्चयः ।

असमारब्धधूमादिकार्यवह्यादिसत्त्ववत् ॥ ३२९६ ॥

प्रतिपादितं हि पूर्वं यथा न प्रमाणं वस्तुनो हेतुर्नापि व्यापकं तत्कथमस्य निवृत्तावपि वस्तु निवर्तते । तथा ह्ययोगोलकवह्यादेरनारब्धधूमादिकार्यस्यापवरककुहरान्तर्गतस्य लिङ्गाभावान्नुमानमुत्पद्यते । अथ च तस्य सत्त्वमनिवृत्तमिति नासत्तानिश्चयस्तद्वत्सर्वज्ञाभावसाधने अनुमानाभावे संशयः । अत इति । अनुमानाभावात् । असमारब्धं धूमादिकार्यं येन वह्यादिना स तथोक्तः, असमारब्धधूमादिकार्यश्चासौ वह्यादिश्चेति विग्रहः, तस्य सत्तायामिव सत्त्ववत् ॥ ३२९६ ॥

कदाचिदुपलब्धेऽर्थे इत्यादिना परः अयोगोलकवह्यादिदृष्टान्तसंशयकारण-  
मुपलम्भं दर्शयत, सर्वज्ञे च तदभावादयुक्तः संशय इति प्रतिपादयन् हेतोरनैका-  
न्तिकतामेव समर्थयते ।

कदाचिदुपलब्धेऽर्थे सन्देहो ननु युज्यते ।

यथा स्थाणौ तथा ह्येष उभयांशावलम्बकः ॥ ३२९७ ॥

यतः स्थाणुनरौ दृष्टौ कदाचिदिति तद्गतिः ।

संशयो युज्यते तत्र दृष्टस्त्वेवं न सर्ववित् ॥ ३२९८ ॥

यो ह्यर्थः कदाचिदुपलब्धपूर्वस्तत्रैव संशयो युज्यते, यथा स्थाणौ नान्यत्र, तथो-  
(स्यो!)भयांशावलम्बित्वात् । अन्यथा हि यत्किंचिददृष्टं तत्सर्वमालम्बेत संशयः ।  
ततश्चोभयांशावलम्बित्वनियमो न स्यात् । तेनायोगोलकवह्यादौ युक्तः संशयो न तु  
सर्वज्ञे, तस्य कदाचिदप्यनुपलम्भात् ॥ ३२९७ ॥ ३२९८ ॥

नन्वित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

ननु मातृविवाहादेरसत्त्वं मुक्तसंशयम् ।

एतेनैव प्रकारेण तव धीमन्प्रसज्यते ॥ ३२९९ ॥

यदि कदाचिदुपलब्धेऽर्थे संशयोऽन्यत्राभावनिश्चयस्तदाऽमुना न्यायेन भवतो  
मातृविवाहादेस्त(रस ?)त्वमसंशयितं प्राप्नोति । नहि भवता कदाचिन्मातृविवाह  
उपलब्धपूर्वः । येनात्रापि नाभावनिश्चयो भवेद्भवतः । अत्र च शेषं चोद्यमुत्तरपूर्वव  
द्वाच्यम् । धीमन्त्रित्युपहासवचनम् ॥ ३२९९ ॥

यद्येवं निर्निबन्धन एव तर्हि संशयः प्राप्त इत्याह—अस्माभिरित्यादि ।

अस्माभिः संशयस्त्वत्र प्रमाभावेऽपि वर्ण्यते ।

भावेऽभावे च वस्तुनां प्रमाणविनिवृत्तितः ॥ ३३०० ॥

प्रमाणाभावमात्रस्य हि वस्तुभावाभावयोरपि प्रदर्शनादव्यवस्थितत्वमतः सदस-  
त्तानिश्चयानुत्पत्तेरेव संशयो वर्ण्यते । यथोक्तम्—उपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातो  
विशेषापेक्षौ विमर्शः संशय इति ॥ ३३०० ॥

स्यादेतन्नैव वस्तुसदसत्तयोरुभयत्रापि प्रमाणनिवृत्तिर्दृश्यत इत्याह—नेत्रादी-  
नामित्यादि ।

नेत्रादीनां हि वैकल्ये वस्तुसत्त्वेऽपि न प्रमा ।

तेषामविकलत्वेऽपि वस्त्वभावाद्धटादिवत् ॥ ३३०१ ॥

ततश्चानुपलम्भस्य केवलस्य द्विधेक्षणात् ।

तत्प्रमाभावतोऽप्यस्तु सर्वज्ञे संशयो वरम् ॥ ३३०२ ॥

तथाहि सत्यपि घटादिके वस्तुनि नेत्रविकलस्य न प्रमाणं प्रवर्त्तते । तेषां च नेत्रादीनामवैकल्येऽपि विषयाख्यस्य वस्तुनोऽसन्नहितत्वेनासत्त्वेऽपि न प्रवर्त्तत इति प्रकृतेन सह सम्बन्धः । यथा घटादौ योग्यदेशान्निरहिते । केवलस्येति । दृश्यताविशेषणरहितस्य । द्विधेक्षणादिति । भावेऽभावे च । तदिति नस्मात् । वरमिति । कुशलमूलप्रतिसन्धानकारणात् । तथाहि—मिथ्यादृष्ट्या समुच्छन्नकुशलमूलानां कुशलमूलप्रतिसन्धानं(नेः)काङ्क्षाऽस्ति, 'दृष्टिभ्यां वण्यते मान्यः काङ्क्षाऽस्ति दृष्टिभ्यामिति वचनात् (ः) । अत एव तत्र तत्राचार्याः संशयं विदधते 'भावे किं प्रमाणमिति चेदत एव संशयोस्त्विति ॥ ३३०१ ॥ ३३०२ ॥

स्यादेतत्—यदि सर्वज्ञोऽस्ति किमिति कदाचित्केनचिन्नोपलभ्यते । यदि नामा-र्वादर्शिनां नित्यानुपलभ्योऽसाविति स्यात्, तथाऽपि तत्कार्यं वा किं न केनचित् गृह्येत, नहि चक्षुरादीनामप्रत्यक्षत्वे तत्कार्यम्यापि ज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वेन भवितव्यमित्यत आह—स हि सन्नपीत्यादि ।

स हि सन्नपि नेक्ष्येन जडैरन्यविकल्पवत् ।

साक्षादयोगुडाङ्गारा(र?)वह्निवन्न च कार्यकृत ॥ ३३०३ ॥

तत्कार्यं वा यदाऽदृश्यमन्यकल्पजरागवत् ।

कार्ये दृश्येऽपि वा तेन नान्वयोऽस्य प्रतीयते ॥ ३३०४ ॥

सर्वार्थज्ञो यतोऽदृश्यः सदैव जडधीदृशाम् ।

नातोऽनुमानतस्तस्य सत्ता सिद्धिं प्रयास्यति ॥ ३३०५ ॥

अहेत्वव्यापकं चोक्तं प्रमाणं वस्तुनोऽस्य च ।

निवृत्तावस्य भावोऽपि दृष्टस्तेनापि संशयः ॥ ३३०६ ॥

नेक्ष्येत साक्षादिति सम्बन्धनीयम् । नहि यावत् किञ्चित्सकृत्सर्वमुपलभ्यम्, येनोपलम्भाभावात्सर्वज्ञाभावः स्यात्, सतोऽप्यन्यपुरुषगतस्य विकल्पस्य परैरनुपलम्भात् । नाप्यवश्यं कारणानि सदैव समारब्धकार्याणि भवन्ति, येन सर्वज्ञस्य कार्यानुपलम्भादसत्त्वं स्यात्, अनारब्धधूमकार्यस्याप्ययोगोलकवह्यादेर्दर्शनात् । भवतु नाम सदैव कारणानां कार्यवत्त्वं तथाऽपि न तत्कार्याभावनिश्चयः, नहि

सर्वकार्यमुत्पन्नमपि दृश्यत्वेन व्याप्तम्, येन कार्यानुपलब्ध्या तदभावः सिद्धयेत् ।  
 उत्पन्नस्यापि कार्यस्यादर्शनात् । अन्यकरूपजरागवत—यथाऽन्यस्य पुरुषस्य करुपा-  
 दयोनिर्सौमनस्काराज्जातोऽपि रागो नोपलभ्यते, न चास्याभावः । सत्यपि वा कार्य-  
 दर्शने तत्कारणस्यातीन्द्रियत्वादगृहीततदन्वयव्यतिरेकस्य पुंसस्तदनुमानानुत्पत्तिस-  
 म्भवान्, तथा—सत्यपि सर्वे(सर्वज्ञे ?)नानुमानात्सिद्धिर्भवेदिति सम्भाव्यते । जड-  
 धीदृशामिति । धीरेव दृक्—धीदृग्, जडा धीदृग् येषां ते तथोक्ताः । अपि च-  
 पूर्वमुक्तम्—यथा न प्रमाणं वस्तुनो हेतुः, नापि व्यापकं, तत्कथमस्यानुमानस्याहे-  
 तु(त्व ?)व्यापकभूतस्य निवृत्तावपि वस्तु निवर्त्तेति भावः । अहेतुश्च तदव्यापकं  
 चेति तथोक्तम्—न चाप्येतच्छक्यं वक्तुम्, अकारणाव्यापकभूतस्याप्यनुमानाख्यस्य-  
 प्रमाणस्य निवृत्तौ वस्तु निवर्त्तमानं दृष्टमेव(मिति ?) । नहि दृष्टेऽनुपपन्नं नामेत्याश-  
 क्य्याह—निवृत्तावस्य भावोऽपि दृष्ट इति । अस्यानुमानस्य निवृत्तावपि सत्यामस्य  
 वस्तुनो भावोऽपि दृष्टः, यथा—अयोगोलकवह्न्यादेरिति पूर्वमुक्तम् ॥ ३३०३ ॥  
 ॥ ३३०४ ॥ ३३०५ ॥ ३३०६ ॥

एवं विस्तरेण सर्वज्ञाभावसिद्धये बाधकप्रमाणासम्भवं प्रतिपाद्योपसंहरति—  
 तस्मादित्यादि ।

तस्मात्सर्वज्ञसद्भावबाधकं नास्ति किञ्चन ।

प्रमाणं साधकं त्वस्य विस्तरेणाभिधास्यते ॥ ३३०७ ॥

स्यादेतत्—यथाऽस्माकं न किञ्चित्त्वाधकं प्रमाणमस्ति, तथा भवतां (न)  
 तत्साधकमपीत्यत्राह—साधकं त्वस्येति ॥ ३३०७ ॥

यदुक्तम्—समस्तावयव्यक्तिविस्तरज्ञानसाधनमित्यादि, अत्राह—निःशेषा-  
 र्थेत्यादि ।

निःशेषार्थपरिज्ञानसाधने विफलेऽपि च ।

सुधियः सौगता यत्र कुर्वन्त्यन्येन चेतसा ॥ ३३०८ ॥

अने(न्ये ?)न चेतसेति । अने(न्ये ?)नाभिप्रायेण ॥ ३३०८ ॥

कः पुनरसावित्याह—स्वर्गेत्यादि ।

स्वर्गापर्गसम्प्राप्तिहेतुज्ञोस्तीति गम्यते ।

साक्षात् केवलं किन्तु सर्वज्ञोपि प्रतीयते ॥ ३३०९ ॥

मुख्यं हि तावत्स्वर्गमोक्षसम्प्रापकहेतुज्ञत्वसाधनं भगवतोऽस्माभिः क्रियते, यत्पु-  
नरशेषार्थपरिज्ञातृत्वसाधनमस्य तत्प्रासङ्गिकमन्यत्रापि भगवतो ज्ञानप्रवृत्तेर्बाधकप्र-  
माणाभावात्साक्षाद्देशार्थपरिज्ञानात्सर्वज्ञो भवन् न केनचिद्बाध्यत इति, अतो न  
प्रेक्षावतां तत्प्रतिक्षेपो युक्तः । किंतु ये सर्वज्ञत्वाधिगमार्थिनस्तेषां तदर्थप्रवृत्तिर्युक्ता  
चेति दर्शितं भवति ॥ ३३०९ ॥

ततश्चैवं बाधकप्रमाणाभावे सति वक्ष्यमाणे च परिस्फुटे सर्वज्ञसाधने योऽयं  
भवतां निश्चयैकविषयस्य सर्वज्ञस्य प्रतिक्षेपः—सर्वे एव पुरुषा रागादिभिरविषया  
नोपप्लुता इति, स केवलं मोहादेवेति दर्शयति—ततश्चेत्यादि ।

ततश्च बाधकाभावे साधने सति च स्फुटे ।

कस्माद्विप्रतिपद्यन्ते सर्वज्ञे जडबुद्धयः ॥ ३३१० ॥

स्यादेतत्—तथाभूतपुरुषसंसाधकं प्रमाणं तथाविधं नास्तीत्येवं मन्यमानैरस्माभिः  
प्रतिक्षिप्यते, न तु मोहादित्याह—माभूद्वेत्यादि ।

माभूद्वा साधनं तत्र बाधके त्वविनिश्चिते ।

संशयं स्यादयं त्वेषां निश्चयः किंनिबन्धनः ॥ ३३११ ॥

एतच्चाभ्युपगम्योच्यते, साधनं तु वक्ष्यमाणमस्त्येव । अयं निश्चय इति । नास्ति  
सर्वज्ञ इत्येवं मीमांसकानाम् ॥ ३३११ ॥

यच्चोच्यते भवद्भिः—‘चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितमित्ये-  
वज्ञातीयकमर्थं शक्तोत्यवगमयितुं नान्यत्किञ्चनेन्द्रियमिति, एतदपि केवलं प्रतिज्ञा-  
मात्रप्रमाणकमेवोद्घोष्यते भक्तिवादेनेति दर्शयति—भूतादीत्यादि ।

भूतादिबोधने शक्ता चोदनैवापरं न तु ।

इत्ययं नियमो युक्तो ह्यन्यासत्त्वे विनिश्चिते ॥ ३३१२ ॥

अपरमिति । सर्वज्ञप्रत्यक्षादि । अन्यासत्त्व इति । अन्यस्य सर्वज्ञास्यासत्त्वे  
विनिश्चिते सत्येवं वक्तुं युक्तं नान्यथा, अवधारणस्य नैष्कल्यात् ॥ ३३१२ ॥

तत्र सर्वं जगत्सूक्ष्मेत्यादावाह—प्रधानेत्यादि ।

प्रधानपुरुषार्थज्ञसर्वार्थज्ञप्रसिद्धये ।

तच्च मानं पुरः प्रोक्तं पश्चादन्यच्च वक्ष्यते ॥ ३३१३ ॥

अतः सर्वजगत्सूक्ष्मभेदज्ञार्थप्रसाधने ।

नास्थाने क्लिश्यते लोकः संरम्भाद्बन्धवादयोः ॥ ३३१४ ॥



नह्यस्मभिः सर्वज्ञविषयां चिन्तां मुक्त्वा सर्वज्ञसाधने प्रयत्नः क्रियते । किं तर्हि ? प्रधानभूतधर्मज्ञसाधन एव । तथा च पूर्वम्—तेनार्थापत्तिलभ्येन धर्मज्ञोपगमेनेत्यादिना धर्मज्ञसाधनेऽर्थापत्त्याख्यं भवन्मतेनैव प्रमाणमुक्तम् , पश्चाच्चानुमानाख्यं प्रमाणमिधास्यते, तेन नास्थाने लोकः क्लिश्यते, किं तर्हि ? , स्थान एव ॥ ३३१३ ॥ ३३१४ ॥

सर्वप्रमातृसम्बद्धेत्यादावाह—सर्वेत्यादि ।

सर्वप्रमातृसम्बद्धप्रत्यक्षाद्यनिवारणात् ।

केवलागमगम्यत्वं नाप्यते पुण्यपापयोः ॥ ३३१५ ॥

धर्मादिविषयस्य सर्वप्रमातृसंबद्धस्य प्रत्यक्षादेर्दर्शन(रदर्शन ?)मात्रेण निवारयितुमशक्यत्वान्न धर्माधर्मयोग्यमात्रगम्यत्वं लभ्यते ॥ ३३१५ ॥

यच्चोक्तमेतावता चेत्यादि, तत्राह—एतावतेत्यादि ।

एतावता च मीमांसापक्षेऽसिद्धेऽपि यः पुनः ।

सर्वज्ञवाङ्मणे यन्नः सोऽतिसौख्या(सौख्या?)त्परैः कृतः ॥३३१६॥

आसिद्धेऽपीति : धर्मज्ञस्य सिद्धत्वान्न । परैरिति । मीमांसकैः ॥ ३३१६ ॥

ये तु विच्छिन्नमूलत्वादित्यादावाह—ये त्वविच्छिन्नमूलत्वादित्यादि ।

ये त्वविच्छिन्नमूलत्वाद्धर्मज्ञत्वेऽहते सति ।

सर्वज्ञानपुरुषानाहुर्धर्मिता तैः प्रकाशिता ॥ ३३१७ ॥

अहत इत्यकारप्रश्लेषो द्रष्टव्यः । तैरिति । बौद्धैः ॥ ३३१७ ॥

साक्षात्प्रत्यक्षदर्शित्वादित्यादावाह—रसनेत्यादि ।

रमनेन्द्रियसम्बन्धान्मद्याशुचिरसादयः ।

वेद्येरन्यादि तस्यैव तदानीं निन्द्यता भवेत् ॥ ३३१८ ॥

भूतार्थभावानुद्गतमानसेनैव चेतसा ।

अप्राप्ता एव वेद्यन्ते निन्दिता अपि संबृतौ ॥ ३३१९ ॥

यदि नाम साक्षान्मद्यरसादिसंवेदनमभूत्तस्य तथाऽपि न धर्मज्ञत्वहानिर्भवेत् । निन्द्यत्वभाष्यत इति चेत् , यो रमनादीन्द्रियसंसर्गेण तान्रसनादीन्संवेदयते स लोकसंबृत्या निन्द्यो भवेत् , न तु गगत्रांस्तथा संवेदयते, किं तर्हि ? , मनसा, तच्चाप्राप्तविषयमिति न लोके तत्कृतं निन्द्यत्वं प्रतीतम् । नहि निन्द्यत्वं परमार्थतः कस्यचि-

दस्ति, अनवस्थितत्वात्तस्य । तथाहि—श्रोत्रियस्य यन्निन्द्यं न तज्जोर्द्विग(ज्जुञ्जित ?)स्य, किंतु संवृत्या लोके मद्यादयो गर्हितास्तान्संवेदयतस्तथाऽपि भगवतो न निन्द्यत्वम्, मद्यस्य मनसैव वेदनात् । स्यादेतत्—यथा रसनेन्द्रियसम्बन्धादन्येषां मद्यादिसंविचौ दुःखाद्यनुभवस्तथा मनसाऽपि संवेदयतः प्राप्नोतीति । नैतदस्ति । रसनादीन्द्रियसम्बन्धेनानुभूयमाना रसादय इन्द्रियस्यानुग्रहोपघातं कुर्वन्तो दुःखादिहेतवो भवन्ति । ते चाकुशलादिकर्मानुरूपेण विपर्यस्तचेतसां केषाञ्चिदेव तथा दुःखादिहेतुत्वेन प्रख्यायन्ते, न सर्वेषाम् । यथाहि प्रेतानां पूयादिरूपेण सलिलादि । नचैवं (चैदं ?) भगवतः सर्वमस्ति । तथाहि मनसैव संवेदनात्त्रेन्द्रियोपघातादिसम्भवः, अनाश्रवपञ्चव्यवहारात्मकत्वाद्भगवतो नापि साश्रवकर्माधिपत्यसम्भवः, अविपरीतानित्यादिरूपेण संवेदनात्त्रापि विपर्यस्तत्वम्, अत एव भगवतो मानसस्यापि दौर्मनस्यादिलक्षणस्य दुःखादेरसम्भवः, तस्य मोहजत्वात् । एतच्च सर्वं ब्राह्मार्थसम्भवे सति चोद्यमवनरतिः । विज्ञानवादनये तु दूरीकृतावकाशमेतत् । तथाहि—परमार्थतो रूपस्कन्धासम्भवान्न सन्त्येवाशुच्यादयस्तेषाम्, मा भूत्तपरिकल्प्या वासना, (?) बोधमात्रसमुत्थितत्वात् । अतो न (ते) सात्मीकृतपरमार्थदर्शनानां दूरीभूताशेषाशुच्यादिप्रतिभासानां दर्शने प्रतिभासन्ते यथा तिमिरादिदोषापगमेऽनुपहतचक्षुषां दर्शने न केशादयः । यथोक्तम्—“नन्वज्ञानेन भासन्ते तस्याशुचिरसादयः । असंवेदान्ततः सिद्धा द्वितीयशशिबिम्बवत् ॥” यस्य तु विप्रस्य व्यापितया सकलाशुचिदेशसम्बद्धा वेदध्वनयो वदनोदरादिवर्तिनः सदैव स कथमिह लोके न निन्द्यो भवेत् ॥ ३३१८ ॥ ३३१९ ॥

न च वेदोपवेदाङ्गत्यादावाह—यत एवेत्यादि ।

यत एव न वेदादिप्रोक्तार्थप्रतिपादकम् ।

तायिनो हृद्यते वाक्यं तत एव स सर्ववित् ॥ ३३२० ॥

सम्भाव्यते समस्तासत्तीर्थ्याऽसाधारणस्थितिः ।

प्रमादाधीतमात्मादि वेदेऽलीकं ब्रवीति हि ॥ ३३२१ ॥

यद्यथैवावस्थितं वस्तु सदादिरूपेण तस्य तथैव ज्ञानात्सर्वविद्भवति । न च यथा वेदे निर्दिष्टा आत्मादयोऽर्थास्ते तथैव सन्ति प्रमाणेन बाध्यमानत्वात् । तत्कथं तथैव तानुपदिशंस्तत्त्वदर्शी भवेत् । न चैतच्छक्यं वक्तुं मिथ्यात्वेनापि ते नैव ज्ञाता इति,

यथा ज्ञाता एव । तथाहि—वेदादिविहिताः सर्व एव प्रणिवषादयोऽकुशलाः कर्म-  
पथ्या दुर्गतिहेतुत्वेन निर्दिष्टाः, तथा—‘नास्तीह सत्त्व आत्मा वा धर्मास्त्वेते सहे-  
तुकाः’ इत्यादिनाऽऽत्मादयोऽप्यसत्त्वेनोक्ता इत्यसिद्धं वेदादिविहितपदार्थापरिज्ञानं  
भगवतः ॥ ३३२० ॥ ३३२१ ॥

स्वप्नन्धेष्वनिबद्धोऽपीत्यादावाह—अद्वितीयमित्यादि ।

**अद्वितीयं शिवद्वारं कुदृष्टीनां भयङ्करम् ।**

**विन(ने?)येभ्यो हितायोक्तं नैरात्म्यं तेन तु स्फुटम् ॥ ३३२२ ॥**

अन्यतीर्थैरनधिगतत्वाद्द्वितीयम्, तेषां स्वेषामेव वितथात्मदृष्ट्यभिनिविष्टत्वात् ।  
एतच्च सर्वं नैरात्म्यविशेषणम् । शिवद्वारमिति । निर्वाणप्रवेशोपायभूतत्वात् । शिव-  
मिति निर्वाणमुच्यते । कुदृष्टीनामिति । कुत्सिता आत्मादिदृष्टयो येषां ते तथोक्ताः ।  
वितथदृष्ट्यभिनिविष्टबालजनत्रासकरमित्यर्थः । यथोक्तम्—“नास्म्यहं न भविष्यामि  
न मेऽस्ति न भविष्यति । इति बालस्य संत्रासः पण्डितस्य भयक्षयः ॥” इति । एतेन  
विपरीताभिनिवेशावस्थितैस्तदधि(ग)मो (व)क्तुमपि न शक्यते, किमुताधिगन्तुमिति  
दर्शितं भवति ॥ ३३२२ ॥

न चापि पृथग्जनभूमिस्थितेन केनचित्कदाचिदपि परिज्ञातपूर्वं तदिति दर्शयति  
—संसार्यनुचितमिति ।

**संसार्यनुचितं ज्ञातं सर्वानर्थनिवर्त्तकम् ।**

**तदभ्यासादियुक्तानां गुणरत्नाकरं परम् ॥ ३३२३ ॥**

**ईदृक्च परमं तत्त्वं जानन्ति कवयो यदि ।**

**प्रधानपुरुषार्थज्ञानसर्वज्ञानको न मन्यते ॥ ३३२४ ॥**

संसारिभिः पृथग्जनैरनुचितमनभ्यस्तमित्यर्थः । कथं हिताय तत्प्रभवति येन  
तदर्थं देशितमित्याह—ज्ञातमित्यादि । ज्ञातं साक्षात्कृतं सत्क्लेशजन्मादिलक्षण-  
स्याशेषानर्थराशेर्निवर्त्तकं भवति । उत्तरकालमपि तदभ्यस्यमानं रथ्यादि(?)वैशेषि-  
कगुणाभिनिवर्त्तकमित्येव परमं पुरुषार्थोपयोगितत्त्वं यदि कवयोऽधिगच्छन्ति, तेऽपि  
सन्तु सर्वज्ञाः, न ह्यस्माभिरेकपुरुषावधिकमेव सर्वज्ञत्वमभ्युपेयते, किं तर्हि?, य  
एवं यथोदिततत्त्ववेदी स एव सर्वविदिष्यते नान्यः, न चैवं कवीनामस्ति, तेनाति-  
प्रसङ्गो न भवति ॥ ३३२३ ॥ ३३२४ ॥

एतेन—यदुक्तं सर्वज्ञेषु च भूयस्त्वित्यादि, तदपि प्रत्युक्तमिति दर्शयन्नाह—  
इदं चेत्यादि ।

इदं च वर्द्धमानादेर्नैरात्म्यज्ञानमीदृशम् ।  
न समस्त्यात्मदृष्टौ हि विनष्टाः सर्वतीर्थिकाः ॥ ३३२५ ॥  
स्याद्वादाक्षणिकस्या(त्वा?)दि प्रत्यक्षादिप्रयो(या?)धितम् ।  
बह्वेवायुक्तमुक्तं यैः स्युः सर्वज्ञाः कथं नु ते ॥ ३३२६ ॥  
वाहीकादिप्रसिद्धेऽस्मिन्प्रत्यक्षेऽर्थे स्खलन्ति ये ।  
कथं सम्भाव्यते तेषामत्यक्षाधिगमः स्फुटः ॥ ३३२७ ॥  
असर्वज्ञत्वमेवं तु अ(प्र?)स्पष्टवगम्यते ।  
मिथ्याज्ञानानुषङ्गित्वाद्धिपरीतप्रकाशनात् ॥ ३३२८ ॥  
स्थाणौ नर इति भ्रान्तः प्रतिपत्त्या(त्ता?) यथा परः ।  
सर्वाभिश्च परीक्षाभिर्विज्ञेयो हेतुसिद्धितः ॥ ३३२९ ॥  
सम्यक् सर्वपदार्थानां तत्त्वज्ञानाच्च सर्ववित् ।  
हेतावतो न सम्बोध्या संदिग्धव्यतिरेकिता ॥ ३३३० ॥

यथोक्तं तत्त्वज्ञानं यदि वर्द्धमानकपिलादीनां सम्भवेत्तदा तेषामपि सर्वज्ञत्वं  
भवतु, यथा सर्व एवामी सर्वदोषप्रसवहेतुविनथात्मग्रहग्राहगृहीताः प्रत्यक्षादिप्रमाण-  
बाधिनाक्षणिकादिपदार्थानामुपदेष्टारः, तत्कथमाकुमारमतिप्रतीतिपथमुपगतेष्वपि  
पदार्थेषु प्रसन्नलतामेषामतीन्द्रियार्थदर्शनं सम्भावनापथमवतरिष्यति, येनोच्यते  
“कपिलो नेति का प्रमेति ।” तथाहीयमत्र प्रमा स्फुटतरमभिधातुं शक्यते, ये  
मिथ्याज्ञानानुषङ्गिणस्ते सर्वविदो न भवन्ति, यथा स्थाणौ नर इति समुपजातवि-  
भ्रमः पुमान्, मिथ्याज्ञानानुषङ्गिणश्च वर्द्धमानादय इति विरुद्धव्याप्तोपलब्धिः ।  
सर्वज्ञ(त्व)विरुद्धेनासर्वज्ञत्वेन मिथ्याज्ञानानुषङ्गित्वस्य व्याप्तत्वात् । न चासिद्धो  
हेतुः, यतो विपरीतार्थप्रकाशनमेषां सर्वाभिः परीक्षाभिः प्रतिपादितम् । न चापि  
सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तितयाऽनैकान्तिकता हेतोः, यतः सम्यगशेषपदार्थपरिज्ञानु-  
त्वेन सर्वज्ञत्वमिष्यते । न च यत्र सम्यग् ज्ञानं तत्र तद्विरुद्धस्य मिथ्याज्ञानस्य  
सम्भवंः ॥ ३३२५ ॥ ३३२६ ॥ ३३२७ ॥ ३३२८ ॥ ३३२९ ॥ ३३३० ॥

स्यादेतत्—यदि नाम विपरीतार्थप्रकाशनमेषाम्, तथाऽपि मिथ्याज्ञानानुषङ्गि-

त्वमतोऽवसातुं न शक्यते, यतोऽन्यथाऽपि व्यवहाराः शक्यन्ते कर्तुं विचित्राति-  
(भि ?)सन्निवृत्तात्पुरुषाणाम्, तेन हेतोः सदिग्धासिद्धतेत्येतदाशङ्क्याह—आभिप्रा-  
यिकमित्यादि ।

**आभिप्रायिकमेतेषां स्याद्वादादिवचो यदि ।**

**नात्त्विकं सर्ववस्तूनां किमेभी रूपमिष्यते ॥ ३३३१ ॥**

यदि ह्यन्याभिप्रायेण तैरेतस्याद्वादादिप्रमाणविरुद्धमित्यु(मप्यु ?)क्तमित्यभिधी-  
यते । अभिधीयताम्, नह्यस्माभिः स्वातन्त्र्येण वर्द्धमानादीनामसर्वज्ञत्वं साधयितुमि-  
ष्टम्, किंतु भवता परस्परविरुद्धमतावस्थितेन कपिलादिषु यदि सुगतः सर्वज्ञस्तदा  
कपिलो नेति का प्रमेत्युक्तम्, अत्रास्माभिः प्रमाणं भवन्मत्या तेषां मतभेदमङ्गीकृ-  
त्याभिधीयते, तेन नासिद्धता हेतोः । तथाहि यद्येषामभिप्रायिकं वचो वर्ण्यते तदा  
किमेषां पारमार्थिकं वस्तुरूपमिष्टमिति वक्तव्यम् ॥ ३३३१ ॥

परं ( एवं ? ) पृष्टः सन्परः आह—अनात्मक्षणिकत्वादीति ।

**अनात्मक्षणिकत्वादि यद्येवं सर्वदर्शिनः ।**

**साक्षात्समस्तवस्तूनां तत्त्वरूपस्य दर्शनात् ॥ ३३३२ ॥**

**मन्तु तेषि समस्तानामैकमत्येन संस्थितेः ।**

**परस्परविरुद्धार्थं नीतार्थं न हि ते जगुः ॥ ३३३३ ॥**

यदि सात्मादीनि ब्रूयात्तदा मतभेद एवोक्तः स्यादिति नासिद्धता भवेत् ।  
यद्येवमित्यादिनोत्तरमाह—नह्यस्माभिः शृङ्गग्राहिकयाऽयमसौ सर्वज्ञ इत्येवं साध-  
यितुमिष्टः, किंतु सामान्येन । यदि कपिलादीनामेवंविधतत्त्वपरिज्ञानमभ्युपगम्यते  
न तर्हि भवता वक्तव्यम् 'मतभेदः कथं तयो'रिति, सर्वेषामैकमत्येन स्थितत्वात् ।  
यस्तु परस्परविरुद्धार्थोपदेशस्तेषां स नेयार्थतया व्यवतिष्ठते । नह्यैकमत्येन स्थिताः  
परस्परविरुद्धं नीतार्थं—तात्त्विकं रूपं गदन्तीति युक्तम् । तस्मान्मतभेदमिच्छता-  
ना(मा ?)भिप्रायिकं वचो वाच्यम्, एषां मतभेदाभ्युपगमे च न वक्तव्यम्—'को  
नामैको निरूप्यता'मिति, यतः सुगत एव यथोक्तज्ञानयोगितया सर्वज्ञत्वेनावधार्यते  
नान्य इति निरूपितमेतत् ॥ ३३३२ ॥ ३३३३ ॥

किंच कपिलादीनां यथोक्तज्ञानाभ्युपगमे सुगतत्वमेवापद्यत इत्येतद्दर्शयन्नाह—  
प्रतिपादितरूपस्येत्यादि ।

प्रतिपादितरूपस्य सर्ववस्तुगतस्य च ।

साक्षात्तत्त्वस्य विज्ञानात्सुगताः सर्वदर्शिनः ॥ ३३३४ ॥

तेषां चैवंविधे ज्ञाने सुगतत्वं न भिद्यते ।

प्रशस्तज्ञानयोगित्वादेनावत्तस्य लक्षणम् ॥ ३३३५ ॥

प्रतिपादितं प्रसाधितं प्रमाणतो रूपं स्वभावो गम्यानात्मादिलक्षणस्य तत्त्वस्य तत्तथोक्तम् । तेषामिति । सर्वज्ञानादीनाम् । एतावदिति । प्रशस्तज्ञानयोगित्वम् । तस्येति । सुगतत्वस्य । यतो नैगत्यज्ञानात्प्रशस्तं समास्तज्ञेयावराणप्रहाणं गत इति सुगत उच्यते ॥ ३३३४ ॥ ३३३५ ॥

किञ्च — सामान्येनापि सर्वज्ञसम्भवे माध्यमाने भगवत्येवावतिष्ठते सामर्थ्यादिति दर्शयति—तत्सम्भव्यपीत्यादि ।

तत्सम्भव्यपि सर्वज्ञः सामान्येन प्रसाधितः ।

तल्लक्षणाविनाभावात्सुगतो व्यवतिष्ठते ॥ ३३३६ ॥

तदिति । तस्मात् । लक्षणाविनाभावादिति । सर्वज्ञलक्षणाविनाभावात् ॥ ३३३६ ॥

ननु विशेषनिर्देशमन्तरेण कथमसौ लभ्यत इत्याह—अनिर्दिष्टविशेषोऽपीत्यादि ।

अनिर्दिष्टविशेषोऽपि सर्वज्ञः कोऽपि सम्भवेत् ।

यो यथावत् जगत्सर्वं वेत्त्यनात्मादिरूपतः ॥ ३३३७ ॥

यो हि सर्वं जगदान्मादिरूपेण यथावदवगच्छति स सर्वज्ञ इत्येवं सामान्येन कृतेऽपि सर्वज्ञलक्षणे यत्र तदुपलभ्यते स सामर्थ्याद्विशेषोऽवगम्यत एवेति विशेषोपादानमनर्थकम्, एतच्च सर्वज्ञलक्षणं भगवत्येवोपलभ्यते नान्यत्र, विचित्रैरुपायैरविकलचतुःसत्यलक्षणसाभ्युपायहेयोपादेयतत्त्वप्रकाशनादिति भावः । नह्यविदितं वस्तु तथाभावैस्तथावत्तदविपरितमविकलमुपदेष्टुं शक्यते । यथोक्तम्—“परोक्षोपेयतद्धेतोस्तदाख्यानं हि दुष्करम्” इति ॥ ३३३७ ॥

स्यादेतद्यदि नामानात्मादिरूपतो जगद्विदितमस्य तथापि कथमसौ सर्वज्ञः सिद्धयतीत्याह—प्रत्यक्षीकृतनैरात्म्य इत्यादि ।

प्रत्यक्षीकृतनैरात्म्ये न दोषो लभते स्थितिम् ।

तद्विरुद्धतया दीपे प्रदीपे तिमिरं यथा ॥ ३३३८ ॥

क्लेशज्ञेयावरणप्रहाणतो हि सर्वज्ञत्वम्, तत्र क्लेश एव रागादयो यथा मृतदर्शनप्रति-

बन्धा(न्भ ?)मावात्क्लेशावरणमुच्यन्ते, दृष्टस्यापि हेयोपादेयतत्त्वस्य यत्सर्वाकारापरि-  
 ज्ञानं प्रतिपादनासामर्थ्यं च ज्ञेयावरणम् । तत्र क्लेशावरणस्य नैरात्म्यप्रत्यक्षीकर-  
 णात्प्रहाणि । ज्ञेयावरणस्य तु तस्यैव नैरात्म्यदर्शनस्य सादरनिरन्तरदीर्घकालाभ्या-  
 सात् । तथाह्यमी रागादयः क्लेशा वितथात्मदर्शनमूलका अन्वयव्यतिरेकाभ्यां नि-  
 श्चिताः, न बाह्यार्थबलभाविनः ; यतः सत्यपि बाह्यार्थे नायोनिशोभनच्छा(स्काः)-  
 रमन्तरेणोत्पद्यन्ते । विनापि चार्थेनायोनिशोविकल्पसंमुखीभावे समुत्पद्यन्ते । न च  
 स(य ?)त्सदसत्तानुविधायि यत्र भवति तत्तत्कारणं युक्तमतिप्रसङ्गात् । नाप्येते पर-  
 परिकल्पितात्मसमवायिनः, तस्यात्मनो निरस्तत्वात् । सत्यपि वा तस्मिन्नित्यं रागा-  
 दीनामुत्पत्त्यनपायप्रसङ्गात् । उत्पत्तिस्थितिकारणस्याविकल्पस्यात्मनः सर्वदा सन्निहि-  
 तत्वात् । परैरनाधेयातिशयस्य तदपेक्षानुपपत्तेश्चेति बहुधा चर्चितमेतत् । सदसतो-  
 श्चाश्रयगनिषेधाद्युक्तमेषां क्वचित्प्रमवायित्वमित्यतो न नित्यहेतुप्रतिबद्धात्मस्थितयः ।  
 नापि बाह्यार्थबलभाविनः । किंत्वभूतात्मदर्शनवत्समुद्भाविनः, तथाह्यहमित्यप-  
 श्यतो नात्मस्नेहो जायते, नापि ममेत्यगृह्णत आत्ममुखोत्पादानुकूलत्वेनागृहीते वस्तु-  
 न्यात्मीयत्वेनाभिप्वङ्गः समुद्भवति । द्वेषोऽपि नहि क्वचिदसक्तम्यात्मात्मीयप्रतिकू-  
 लत्वेनागृहीते वस्तुनि प्रादुर्भावमासादयति । आत्मीयानुपरोधिनि तदुपरोधप्रतिधा-  
 तिनि च तस्यासम्भवात् । एवं नामादयोऽपि वाच्याः । तस्मादनादिकालीनं पूर्व-  
 पूर्वसजातीयाभ्यामजनिनमात्मदर्शनमात्मीयग्रहं प्रसूते, तौ चान्मीयस्नेहम्, सोऽपि  
 द्वेषादिकमित्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामात्मग्रहादात्मात्मीयग्रहमूलत्वमेषां स्फुटतरमागो-  
 पालाङ्गनमवसितमेव । आत्मदर्शनविरुद्धं च नैरात्म्यदर्शनम्, तद्विपरीताकाराल-  
 म्बनत्वात् । अनयोर्हि युगपदेकस्मिन् मन्ताने रज्जुमर्पतज्ज्ञानयोरिव सहावस्थानमैक्यं  
 च विरुद्धम् । अतो नैरात्म्यदर्शनम्यात्मदर्शनविरोधात्तन्मूलैरपि रागादिभिः सह  
 विरोधो भवति, दहनविशेषे(णे)व शीतकृतरोमहर्षादिविशेषस्य । तेन सर्वदोषविरो-  
 धिनैरात्म्यदर्शने प्रत्यक्षीकृते सति न तद्विरुद्धो रागादिदोषगणोऽवस्थानं लभते  
 तिमिरवदालोकपरिगणे देश इत्यतो नैरात्म्यदर्शनात्क्लेशावरणप्रहाणं भवति । प्रयोगः  
 —यत्र यद्विरुद्धवस्तुसमवधानं न तत्र तदपरमवस्थितिमासादयति, यथा दीप्रप्रदी-  
 पप्रभाप्रसरसंमर्शिणि धरणितले तिमिरम्, अस्ति च दोषगणविरुद्धनैरात्म्यदर्शनस  
 मवधानं प्रत्यक्षीकृतनैरात्म्यदर्शने पुंसीति विरुद्धोपलब्धिः ।

स्यादेतत्—यथा नैरात्म्यदर्शनसमाक्रान्ते चेतसि विरुद्धतयाऽऽत्मदर्शनस्योत्प-

तुमनवकाशस्तथा नैरात्म्यदर्शनस्याप्यात्मदर्शनसमाक्रान्ते मनसि, विरोधस्य तुल्यत्वात्, ततश्च कस्यचिन्नैरात्म्यदर्शनस्यासम्भवादसिद्धो हेतुः । सम्भवतु वा न वा नैरात्म्यदर्शनम्, तथाऽप्यनयोर्विरोधे सत्यपि नात्यन्तं बाध्यबाधकभावः सिद्ध्यति, यथा रागद्वेषयोः सुखदुःखयोर्वा । यतोऽत्यन्तप्रहाणमिह साधयितुमिष्टम् । न तु तावत्कालाममुदाचारमात्रमित्यतोऽनैकान्तिकता हेतोः । दृश्यन्तेऽपि अतामखण्डितमहिमानो रागादयः समुदयमाप्तादयन्त इत्यतोऽपि हेतोर्नैकान्तिकतेति । नैतदस्ति । यदि नैरात्म्यविकल्पस्योत्पादोऽप्रहाणक्लेशस्य सन्ताने न संभवेत्तदा न सम्भवेन्नैरात्म्यदर्शनोदयावकाशः, यावताऽनुभवसिद्धस्तावन्नैरात्म्यविकल्पसंमुखीभावः सर्वेषामेव । स एव च भावनया कामिनीविकल्पवत्प्रकर्षगमनसम्भवाद्दन्ते स्फुटप्रतिभासतया प्रमाणप्रतीतार्थमाहितया च प्रत्यक्षतामापद्यत इति कथं नैरात्म्यदर्शनोदयासम्भवः । अपि च—यथाऽन्धकारपरिगते देशे कालान्तरेण प्रकाशोदयावकाशसम्भवस्तथेहापि किं न सम्भाव्यते । न चाप्येवं शक्यं वक्तुम्—सैव तादृशी भावना न कस्यचित्सम्भवति, या तथाभूतप्रत्यक्षज्ञानफला भवेदिति । यतोऽसम्भवे कारणं वचनीयम् । तथाहि—भावनायामप्रयोगे सर्वेषामेवानर्थित्वं वा कारणं भवेत् ? प्रेक्षावतः प्रवृत्तेरर्थितया व्याप्तत्वात् । सत्यप्यर्थित्वे प्रहेयस्वरूपापरिज्ञानाद्वा न प्रवर्तते प्रेक्षावान् ?, अनिर्ज्ञातस्वरूपस्य दोषस्य हातुमशक्यत्वात् । सत्यपि तत्स्वरूपज्ञाने नित्यत्वं वा दोषाणां पश्यंस्तत्प्रहाणाय न यत्नमारभते ?, नित्यस्य प्रहाणासम्भवात् । असत्यपि वा नित्यत्वनिर्हेतुकत्वमेवामवगम्य निवर्तते ?, स्वतन्त्रस्यासंभवदुच्छेदत्वात् । सत्यपि वा कारणवत्त्वे तत्कारणस्वरूपानिश्चयादपि नाद्रियते भावनायाम् ?, अपि(वि ?)ज्ञातनिदानस्य व्याधिरिव प्रहातुमशक्यत्वात् । भवतु वा तत्कारणपरिज्ञानं किं तत्कारणं नित्यमवगम्य नोत्महते तत्प्रहाणाय प्रेक्षापूर्वकारी ?, अविकलकारणस्य प्रतिबद्धमशक्तेः । अनित्यत्वेऽपि वा तत्कारणस्य दोषाणां प्राणिधर्मतामेत्य न प्रयतते ?, स्वभासस्य हातुमशक्यत्वात् ! अस्वभावत्वे वा दोषाणां क्षयोपायासम्भवान्निवर्तते ?, नह्युपायविकल्पोपेयसंप्राप्तिरस्ति । सत्त्वेऽपि चोगम्यस्य तदपरिज्ञानादसंभवत्तदनुष्ठानो भवेत् ?, अपरिज्ञातस्वरूपस्यानुष्ठानासम्भवात् । परिज्ञानेऽपि वा लङ्घनादिव व्यवस्थितोत्कर्षतया जन्मान्तरसम्भवेन वा भावनाया अत्यन्तप्रकर्षमप्यभावयन्नाभियोगवान्भवति ? । भवतु वाऽत्यन्तप्रकर्षगमनसम्भवात्प्रतिपक्षोदयेन दोषाणां क्षयः, तथापि ताम्रादिकाठिन्यवत्तुनरपि दोषादयं सम्भा-



वयन्नाभियोगमारभत इति ? ; तत्र न तावदनर्थित्वं सिद्धम् । तथाहि—ये तावज्जा-  
 त्यादिदुःखोत्पीडितमानसाः संसारादुन्नतमनसस्तदुपशममात्मनः प्रार्थयन्ते, तेषां  
 श्रावकादिवोधनियतानां संसाराद्भयमेव नैरात्म्यभावनार्थित्वनिमित्तम् । ये तु गोत्र-  
 विशेषात्प्रकृत्यैव परहितकरणैकाभिरामाः संस्कारादिदुःखत्रिनयपरिपीडितं जगद-  
 वेक्ष्य कृपापरतन्नया तद्दुःखदुःखिनः स्वात्मनि व्यपेक्षामपास्य सकलानेव संसा-  
 रिण आत्मत्वेनाभ्युपगतास्तत्परित्राणाय प्रणिदधते तेषां करुणैव भावनाप्रवृत्तिनिमि-  
 त्तम्, परोक्षोपेयतद्धेतोर्नदाख्यातस्य दुष्करत्वात् । परहितकरणेन प्रेक्षावतः किं  
 प्रयोजनमिति चेन्न । तदेव प्रयोजनमिष्टलक्षणत्वात्तस्य । न चाप्रेक्षावत्त्वप्रसङ्गः ।  
 परिकल्पितानामग्रहनिबन्धनत्वादात्महितकरणाभिनिवेशस्य, सकलप्राधुजनसंमतत्वात्  
 स्वफलानुबन्धित्वाच्च परहितकरणस्य । अपि च भावनाप्रवृत्तावर्थित्वासम्भवोऽत्र  
 प्रतिपादयितुमारब्धः, तद्यदि नामाप्रेक्षावत्त्वं तस्य भवेत्किमियता प्रवृत्तावनर्थित्वं  
 तस्य स्यात् । तस्मादिदमेव वक्तव्यम्—परहितकरणाय नैव कश्चित्प्रवर्त्तते प्रयोज-  
 नाभावादिति, तत्र चोक्तम् । अपि च—यथा केचिदुपलभ्यन्तेऽतिनरामभ्यस्त-  
 नैर्धृष्या अकारणमेव परव्यसनाभिरामाः परदुःखसुखिनस्तथा केचिदभ्यस्तकारुण्याः  
 परसुखाभिरामाः परदुःखदुःखिनः प्रयोजनान्तरमन्तरेणापि भवन्तीति किं न सम्भा-  
 व्यम् । नापि दोषस्वरूपापरिज्ञानम्, यतोऽभिष्वङ्गपरिघातात्मात्मीयोन्नत्याद्याकारेण  
 रागद्वेषमोहमानमदेष्यामात्सर्यादयः क्लेशोपक्लेशगणा विदितस्वरूपा एवोदयन्ते व्य-  
 यन्ते च । नापि च ते नित्याः, कादाचित्कतया संवेद्यमानत्वात् । अत एव नाहेतुक-  
 त्वमेषाम्, अहेतोरनपेक्षितत्वेन देशकालस्वभावनियमायोगात् । अतोऽपि नित्यहेतु-  
 त्वमेषां प्रतिक्षिप्तम्, तत्कारणस्यात्मादेः सदा मन्निहितत्वादानाघेयातिशयस्य परैः  
 सहकारिनिरपेक्षत्वात् । तन्मात्रभाविनां सर्वदा युगपन्नो(च्चो ?)त्पत्तिप्रसङ्गात् । अतः  
 सामर्थ्यादनित्यहेतव एवैते । अनित्योऽपि हेतुर्षां विदितस्वरूप एव, आत्मात्मीय-  
 विपर्यासहेतुकत्वाद्वागादेर्दोषगणस्य तदन्वयव्यतिरेकानुविधानादिति पूर्वं प्रतिपादित-  
 त्वात् । नापि प्राणिधर्मत्वमेषां तस्यैव धर्मिणोऽसिद्धेः, न हि प्राणी नाम धर्मो विद्यते  
 कश्चिन्, यस्यामी रागादयो धर्मा भवेयुः । केवलमिदप्रत्ययतामात्रमिदं विकल्पस-  
 मारोपितत्वाद्धर्मधर्मव्यवहारस्य । अथ चित्तस्वभावत्वेन तत्रोत्पत्त्या वा प्राणिधर्म-  
 त्वमेषाम्, तथाऽप्यसिद्धिरनैकान्तिकश्च । तथाहि—विषयविषयिभावभिच्छता चित्तं  
 विषयग्रहणस्वभावमभ्युपेयम्, अन्यथा विषयज्ञानयोर्न विषयविषयिभावः । अर्थ-

ग्रहणस्वभावत्वेनाङ्गीक्रियमाणे यस्तस्य स्वभावस्तेनैवात्मनोऽशोर्थस्तेन गृह्यत इति वक्तव्यम् । अन्यथा कथमसौ गृहीतः स्यात् । यद्यसताऽऽकारेण गृह्येत ततश्च विषयविषयिभावो न स्यात् । तथाहि—यथा ज्ञानं विषयीकरोत्यर्थं न तथा सोऽर्थः, यथा सोऽर्थो न तथा तं विषयीकरोतीति निर्विषयान्येव ज्ञानानि स्युः । ततश्च सर्वपदार्थासिद्धिप्रसङ्गः । तस्माद्भूतविषयाकारग्रहिताऽस्य स्वभावो निज इति स्थितम् । भूतश्च स्वभावो विषयस्य क्षणिकानात्मादिरूप इति प्रतिपादितमेतत् । तेन नैरात्म्यग्रहणस्वभावमेवेति तन्नात्मग्रहणस्वभावम् । यत्पुनरन्यथास्वभावोऽस्य ख्यातिमूढानाश(मूढानांस ?) सामर्थ्यादागन्तुकप्रत्ययबलादेवेत्यवतिष्ठते, न स्वभावत्वेन, यथा रज्ज्वां सर्पप्रत्ययस्य । अन एव क्लेशगणोऽत्यन्तसमुद्धतोऽपि नैरात्म्यदर्शनसामर्थ्यमस्योन्मूलयितुमसमर्थः । आगन्तुकप्रत्ययकृतत्वेनादृढत्वात् । नैरात्म्यज्ञानं तु स्वभावत्वात्प्रमाणसहायत्वाच्च बलवदिति तुल्येऽपि विरोधित्वे आत्मदर्शने प्रतिपक्षो व्यवस्थाप्यते । न चात्मदर्शनं तस्य तद्विपरीतत्वात् । यस्यापि न बाह्योऽर्थोऽस्तीति पक्षस्तस्यापि मते नैरात्म्यग्रहणस्वभावमेव ज्ञानं नात्मदर्शनात्मकम्, तस्यात्मनोऽसत्त्वात् । तथाहि—यदि नाम तेन विषयम्याभावात्तद्ग्रहणात्मकं ज्ञानं नेष्टम्, स्वसंवेदनात्मकं तु तदवश्यमङ्गीकर्त्तव्यम् । अन्यथा ज्ञानस्यापि व्यवस्था न स्यात् । स चात्मा विद्यमानेनैवात्माद्वयादिरूपेण संवेद्यो नान्यथा, पूर्ववद्दोषप्रसङ्गात् । तस्मात्प्राणिधर्मत्वमेषामसिद्धम् । नापि तत्रोत्पद्यत इत्येतावता स्वभावत्वे परिकल्पिते प्रहाणासम्भवोऽनेकान्तात् । तथाहि—रज्ज्वां सर्पज्ञानमुत्पद्यते, अथ च तत्सम्यग्ज्ञानोत्पादान्निवर्त्तते । नापि क्षयोपायासम्भवः । स्वहेतुविरुद्धस्वभावपदार्थाभ्यासस्य क्षयोपायत्वेन सम्भवात् । तथाहि—ये सम्भवत्स्वहेतुविरुद्धस्वभावाभ्यासास्ते सम्भवदत्यन्तसन्तानविच्छेदाः, तद्यथा व्रीह्यादयः, तथा चामी रागादय इति सम्भवत्येवैषां क्षयोपायः । नापि तदपरिज्ञानम्, यतो हेतुस्वरूपज्ञानादेव यत्तद्विपरीताल्म्बनाकारं वस्तु स तस्य प्रतिपक्ष इति स्फुटमवसीयत एव । नैरात्म्यदर्शनं च तत्र विपरीताल्म्बनाकारत्वात्प्रतिपक्ष इति प्रदर्शितमेतत् । नापि लङ्घनादिवद्भवस्थितोत्कर्षता । पूर्वपूर्वाभ्यासाहितस्य स्वभावत्वेनानपायादुत्तरोत्तरप्रयत्नस्यापूर्वविशेषाधानैकनिष्ठत्वात् । श्लिगाश्रयत्वात् । पूर्वमजातीयबीजप्रभवत्वाच्च प्रज्ञादेर्नस्त्वेवं लङ्घनादिरिति पश्चात्प्रतिपादयिष्यते । नापि जन्मान्तरासम्भवः, पूर्वजन्मप्रसरम्य प्रसाधितत्वात् । नापि ताम्रादिकाटिन्थादिवत्पुनरूपत्तिसम्भवो दोषाणाम्,

तद्विरोधिनैरात्म्यदर्शनस्यात्यन्तसात्म्यमुपगतस्य सदाऽनपायात् । ताम्रादिकाठिन्यस्य हि यो विरोधी वह्निस्तस्य कादाचित्कसन्निहितत्वात्काठिन्यादेस्तदभाव एव भवतः पुनस्तदपायादुत्पत्तिर्युक्ता । नत्वेवं मलानाम् । अपायेऽपि वा मार्गस्य भस्मादिभिरनैकान्तान्नावश्यं पुनरुत्पत्तिसम्भवो दोषाणाम्, तथाहि—काष्ठादेरग्निसम्बन्धाद्भस्मसाद्भूतस्य तदपायेऽपि न प्राक्तनरूपानुवृत्तिः, तद्बहोषाणामपीत्यनैकान्तः । किञ्चागन्तुकतया प्रागप्यसमर्थानां मलानां पश्चात्सात्मीभूतं तन्नैरात्म्यं बाधितुं कुतः शक्तिः, नहि स्वभावो यत्नमन्तरेण निवर्त्तयितुं शक्यते । न च प्राप्यपरिहर्त्तव्ययोर्वस्तुनोर्गुणदोषदर्शनमन्तरेण प्रेक्षावतां हातुमुपादातुं वा प्रयत्नो युक्तः । न च विपक्षसा(न चाविपर्यस्ता ?)त्मनः पुरुषस्य दोषेषु गुणदर्शनं प्रतिपक्षे वा दोषदर्शनं सम्भवति, अविपर्यस्तत्वात् । न हि निर्दोषं वस्त्वविपर्यस्तधियो दुष्टत्वेनोपाददते, नापि दुष्टं गुणवत्त्वेन । न च नैरात्म्यदर्शनस्य कदाचिद्दुष्टता । सर्वोपद्रवरहितत्वेन गुणवत्त्वात् । तथाहि—निःशेषरागादिमलस्यापगमत्तन् भूतार्थदर्शननिबन्धोपद्रवः । नापि रागादिपर्यवस्थानकृतः कायचित्तपरिदाहोपद्रवोऽस्ति । नापि जन्मप्रतिबद्धो व्याधिजाद्युपद्रवः, जन्महेतोः क्लेशस्याभावात् । नापि साश्रवसुखोपभोगवद्वैरस्योपद्रवः, प्रशमसुखरसस्यैकान्ततयाऽनुद्वेगकरत्वात् । तन्नास्य हानाय यत्नो युक्तः । अपि तु यदि भवेदपरिहाणायैव भवेत् । बुद्धेः प्रकृत्या गुणपक्षपानात् । नापि दोषोपादानाय प्रयत्नः, तेषां सर्वोपद्रवास्पदत्वेन दुष्टत्वात् । तस्मात्सम्भविनी नैरात्म्याभावना । तस्याश्च प्रकर्षपर्यन्तगमनात्स्फुटप्रतिभासज्ञानफलत्वं दृष्टम् । यथा कामिनीं भावयतः कामातुरस्य । तथाहि तस्य सविभ्रमाः पश्याम्युपगूह इत्येवं वाचः कायव्यापाराश्चामिप्रायानुरूपाः साक्षात्कारनिबन्धनाः प्रवर्त्तन्ते । तस्मान्नासिद्धो हेतुः । नाप्यनैकान्तिक, यतो नैरात्म्यदर्शनस्य भूतार्थविषयत्वेन बलवत्त्वमात्मदर्शनस्य तु विपर्ययाद्विपर्यय इति भवति विपक्षप्रतिपक्षभावः । रागद्वेषयोरप्यभूतात्मग्रहसंस्पर्शेन प्रवृत्तेर्न तयोर्विरुद्धरूपग्रहणनिमित्तो विपक्षप्रतिपक्षभाव । नापि विपर्यासात्, अविपर्यासकृतोर्द्वयोरपि विपर्यस्तत्वात् । नाप्यनयोर्विरोधः सिद्धः द्वयोरप्यात्मग्रहैकयोनित्वात् कार्यकारणभावाच्च । तथाहि—सत्यात्मात्मीयाभिष्वङ्गे तदुपरोधिनि द्वेषो जायते नान्यथा । न चाभिन्नकारणयोः कार्यकारणभूतयोर्बाध्यबाधकभावो युक्तः, यथा वह्निधूमयोरेकेन्धनप्रभवयोः, यथा वात्स्यग्रहस्नेहयोः, अतिपसङ्गात् । युगपदनुत्पत्तिस्तु तदुपादानचित्तस्य युगपत्सजातीयचित्तद्वयाक्षेपासाम-

ध्याति । नापि सुखदुःखयोः परस्परं विरोधः, तथाहि—द्विविधे सुखदुःखे मानसे विषयजे च । तत्र ये तावन्मानसे तयोर्द्वेषानुनयसंप्रयोगित्वाद्भागद्वेषाभ्यामेक्यो-  
गक्षेमतया तद्विपर्यस्तत्वमभिन्नात्मरूपग्राहित्वमात्मग्रहैक्योन्तत्वं कार्यकारणभावश्चेति न परस्परं विरोधः संभवति । ये च विषयजे तयोरपि परस्परं कारणभेदाप्रतिनि-  
यमात्र विरोधः । तथाहि यत एव सुखमुत्पद्यते तत एवातिसेव्यमानादुःखमपीति न तयोः कारणभेदप्रतिनियमोऽस्ति । नत्वेवं नैरात्म्यदर्शनस्येतरेण : किञ्च—द्वयो-  
रप्यनयोर्विषयबलभावित्वेन तुल्यबलत्वम्, न तु मार्गदोषयोः, मार्गस्यैव भूतार्थवि-  
षयत्वेन बलवत्त्वात्, न दोषाणाम् । अपि (च) खलु सुखदुःखेऽचिरस्थितिके न तु पुनरेवं नैरात्म्यदर्शनम्, तस्य सात्मत्वेन सदाऽनपायादिति पूर्वमुक्तमतो न व्यभि-  
चारः । युगपदनुत्पत्तेस्तु कारणमुक्तम् । यत्पुनरुक्तमनुमानबलावधारितनैरात्म्याना-  
मपि समुत्पद्यन्ते रागादय इति, तदयुक्तम् । यस्माद्भावनामयं स्फुटप्रतिभासनया निरात्मकवस्तुसाक्षात्कारिज्ञानमविकल्पकं प्रमाणप्रसिद्धार्थविषयतया चाभ्रान्तं तन्नै-  
रात्म्यदर्शनमात्मदर्शनस्यात्यन्तोन्मूलनेन प्रतिपक्षो वर्णितो न श्रुतचिन्तामयम् । यस्मा-  
दनादिकालाभ्यासादत्यन्तोपाखण्डमूलत्वान्मलानां क्रमेणैव विपक्षवृद्ध्याऽवहसतां क्षयः न तु सकृच्छ्रवणेन । यथा शीतस्पर्शस्य वह्निरूपसंपर्कमात्रात् क्षयः । न चापि श्रुतचिन्तामयनैरात्म्यज्ञानसंमुखीभावे सति रागादिममुदयः सिद्धो येन व्यभिचारः स्यात् । तथाहि—समुत्पन्नं रागादिपर्यवस्थानमशुभादिमनस्कारवलेन विनोदय-  
न्त्येव सौगताः । अत एवाखण्डितमहिमत्वमेषां सिद्धम् । विरोधोऽपि नैरात्म्य-  
दर्शनेनैषामत एव व्यवस्थाप्यते । तत्संमुखीभावे सत्यपकर्षात् । ये हि यदुपधा-  
नादपकर्षधर्माणस्ते तदत्यन्तवृद्धौ निरन्वयसमुच्छित्तिधर्माणो भवन्ति, यथा सलि-  
लावृद्धावग्निज्वाला, नैरात्म्यज्ञानोपधानाच्चापकर्षधर्माणो दोषा इति तदत्यन्तवृद्धौ-  
कथमवस्थां लभेरन् । अतो नानैकान्तिकता हेतोः । सपक्षे भावाच्च न विरुद्धता ॥ ३३३८ ॥

एवं क्लेशावरणप्रहाणं प्रसाध्य ज्ञेयावरणप्रहाणं प्रतिपादयन्नाह—साक्षात्कृति-  
विशेषादिति ।

साक्षात्कृतिविशेषाच्च दोषो नास्ति सवासनः ।

सर्वज्ञत्वमतः सिद्धं सर्वावरणमुक्तिः ॥ ३३३९ ॥

साक्षात्करणं कस्य ? , नैरात्म्यस्येति प्रकृतत्वाद्गम्यते । तस्याविशेषः—बहुशो बहुधोपायं(यैः ?)कालेन बहुना सर्वाकारेण तत्र तद्विपक्षे च गुणदोषाणामत्यन्तप्रकाशीभावः । अत एव श्रावकादेर्नैरात्म्यदर्शनेऽपि न सर्वज्ञत्वम् । तथाविधान्तराभ्यासविशेषाभावेन ज्ञेवावरणस्याप्रहाणात् । प्रयोगः—या सादरनैरन्तर्यदीर्घकालविशेषणा भावना सा करतलायमानग्राह्यावभासमानज्ञानफला, तद्यथा कामातुरस्य कामिनीभावना, यथोक्तविशेषणत्रययुक्ता च सर्वाकारसर्वमतनैरात्म्यभावना कारुणिकस्येति स्वभावहेतुः । न चासिद्धो हेतुः, कारुणिकस्यार्थित्वेन तथा प्रवृत्तिसम्भवस्य प्रतिपादिनत्वात् । नाप्यनैकान्तिकत्वम्, यतः सर्वधर्मगतनैरात्म्यालम्बनस्य मनोविज्ञानस्य धर्मिणो यथोक्तविशेषणत्रययुक्तभावनासंस्पृष्टत्वेन हेतुना स्फुटप्रतिभासित्वं साध्यम् । एतेन च साध्यधर्म्येण यथोक्तसाधनधर्मस्य व्याप्तिः सिद्धा । कारणान्तरानपेक्षित्वात्स्फुटप्रतिभासित्वस्य । ततश्च सामर्थ्यात्सर्वज्ञत्वेनापि व्याप्तिः सिद्धा । यस्मात्सर्ववस्तुगतनैरात्म्यालम्बनस्य मनसो यत्स्फुटप्रतिभासित्वं तदेवास्य सर्वज्ञत्वं नान्यत् । तथाहि भाव्यमानवस्तुस्फुटप्रतिभासित्वेन भावनायाः सामान्येन व्याप्तौ सिद्धायां सामर्थ्यात्सर्वज्ञत्वेनापि सिद्धैव । यथोक्तधर्मिण्यन्यस्य स्फुटप्रतिभासित्वम्यासम्भवात् । एतेन ये सत्तासाधने दोषाः प्रोक्तास्ते प्रत्युक्ताः । सर्वज्ञसत्तायां अमाध्यत्वात् । प्रसिद्धे मनसि धर्मिणः स्फुटप्रतिभासित्वस्य साध्यत्वात् । एवमनेन प्रकारेण प्रसिद्धात्साक्षात्कृतिविशेषात्कायबान्बुद्धिवैगुण्यलक्षणाया दोषवासनायाः प्रहाणात्सिद्धमावरणद्वयप्रहाणम् । अतः सर्वावरणविमुक्त्या सिद्धं सर्वज्ञत्वम् । ३३३९ ॥

स्यादेतद्यदि नाम सामान्येन सिद्धं सुगते तु न सिद्धमित्याह—एतच्चेत्यादि ।

**एतच्च सुगतस्येष्टमादौ नैरात्म्यकीर्तनात् ।**

**सर्वतीर्थकृतां तस्मात्स्थितो मूर्ध्नि तथागतः ॥ ३३४० ॥**

एतद्यथोक्तं सर्वज्ञत्वं सुगतस्यैवेष्टं—सिद्धम् । न कपिलादेः । कस्मात् ? , आदौ नैरात्म्यकीर्तनात् । एतदुक्तं भवति । येनेदं सर्वपदार्थानां स्कन्धपञ्चकत्वादिदेशनया सर्वाकारमादौ प्रथमतो नैरात्म्यं कीर्तितम्, स एवादौ सर्वधर्माणां विचित्रप्रमेदनैरात्म्यकीर्तनात्कार्यलिङ्गात्सिद्धः पुरुषविशेषोऽस्माभिः सुगत इत्युच्यते । तस्यानया देशनया साभ्युपायहेयोपादेयतत्त्वस्थिराशेषज्ञानं साध्यते । (ते) न ज्ञान-

योगादेवासौ सर्वज्ञः प्रमाणभूतश्चेति तदुक्तप्रतिपत्तिकामैः साध्यितुं युक्तः, न तु कीटसङ्ख्यादिज्ञानात् । किंतु कीटसङ्ख्यादावपि तस्य ज्ञानसम्भवः साध्यते । तत्त्व-  
स्थिराशेषज्ञानं त्वाहत्य । तथाहि—प्रमाणसंवादिनैरात्म्यदेशनया तत्त्वज्ञानं यस्य  
सिद्धम्, तस्यैव नैरात्म्यस्य पूर्वापरान्याहृतदेशनया स्थिरज्ञानम्, नवाङ्गेषु शास्त्र-  
प्रवचने त्रियानविषयायामपि देशनायां दुःखादिलक्षणसत्यदेशनाया एकवा-  
क्यत्वात् । विचित्रैश्वोपायैश्चतुःसत्यप्रकाशनादशेषज्ञानमस्यानुमीयते । शेषस्य सर्वा-  
कारज्ञानप्रतिपादनासामर्थ्यलक्षणस्य प्रहाणात् । न ह्यविदितसर्वाकारगुणदोषस्तत्प्रति-  
पादनाकुशलश्च तथा प्रतिपादयति । नापि वेदाद्विज्ञाय प्रतिपादयतीति युक्तम् ।  
तस्य पौरुषेयत्वप्रतिपादनादिति भावः । अतोऽशेषतीर्थकरमूर्ध्नि भगवान्ज्ञानातिश-  
ययोगात्स्थित इति सिद्धम् ॥ ३३४० ॥

अत एव यथोक्तज्ञानातिशययोगिना भगवता सहान्येषां न तुल्यत्वमस्तीति दर्श-  
यन्नाह—तेनेत्यादि ।

तेन प्रमाणसंवादिनत्त्वदर्शनयोगिना ।

न तुल्यहेतु(योग?)ताऽन्येषां विरुद्धार्थोपदेशिनाम् ॥ ३३४१ ॥

प्रमाणगोचरा येषां प्रमाबाधाकुलं वचः ।

तेषामत्यक्षविज्ञानशक्तियोगो हि दूरतः ॥ ३३४२ ॥

न ह्येषां ज्ञानातिशययोगिताप्रसाधकः कश्चिद्धेतुरस्ति । तथाहि—हेतुर्भवत् वच-  
नारूपमेव लिङ्गं भवेत् । तत्रैषां प्रमाणविरुद्धार्थप्रतिपादकमिति कथं ततो ज्ञाना-  
तिशययोगिताऽमीषां प्रतीयेत ॥ ३३४१ ॥ ३३४२ ॥

सुगतस्यापि वचनं प्रमाणविरुद्धमिति चेदाह—सम्बद्धेत्यादि ।

सम्बद्धानुगुणोपायं पुरुषार्थाभिधायकम् ।

दृष्टेऽप्यर्थे प्रमाणाभ्यामीषदप्यप्रबाधितम् ॥ ३३४३ ॥

सम्बद्धम्—वाक्यानामेकार्थोपसंहारेण परस्परं सङ्गतम्, न तु दशदाडिमादि-  
वाक्यवत्परस्परसङ्गतम् । अनुगुणः—शक्यानुष्ठानतया नैरात्म्यभावनादिलक्षण  
उपायो यस्मिन्नुपदिष्टस्तत्तथोक्तम्, न तु विषप्रशमनाय तक्षकचूडारत्नालङ्कारोपदेश-  
वदशक्योपायम् । पुरुषार्थः—अभ्युदयनिःश्रेयसलक्षणः, तस्याभिधायकम्, न तु काक-  
दन्तपरीक्षावदपुरुषार्थफलम् । ननु चैतत्सर्वं कषिलादिवाक्येष्वप्यस्तीत्याह—दृष्टे-

ऽपीत्यादि । दृष्टे—प्रत्यक्षानुमानविषयत्वेनाभिप्रेते । प्रामाणाभ्याम्—प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् । अबाधितं यथा निर्दिष्टस्यार्थस्य तथाभावात् । तथाहि—नीलादिसुखदुःखादिनिमित्तोद्ग्रहणरागादिबुद्धिलक्षणस्य स्कन्धपञ्चकस्य प्रत्यक्षत्वेनाभिमतस्य नान्यथात्वं सम्भवति, अप्रत्यक्षत्वेन चाभिमतानामप्रत्यक्षतेव । यथा परैः प्रत्यक्षाभिमतानां रूपशब्दादिसन्निवेशानां सुखादीनां द्रव्यकर्मसामान्यसंयोगादीनां च । तथा—वस्तुबलप्रवृत्तानुमानविषयत्वेनाभिप्रेतानां तथा भाव एव ; यथा चतुर्णामर्थसत्यानामतद्विषयत्वेनेष्टानां चातद्विषयत्वमेव । यथा परैर्वस्तुबलानुमानविषयत्वेनाभिमतानामात्मादीनाम् । अपिशब्दाददृष्टेऽपि न विक्रियेति दर्शितम् । तथाऽत्र रागादिरूपं तत्प्रभवं वा धर्ममुद्दिश्य तत्प्रहाणाय तन्निदानात्मदर्शनविरोधेन नैरात्म्यदर्शनमेव प्रतिपक्षो देशितो न तु कपिलादिशास्त्रवत्तन्निदानाविरुद्धः ज्ञानाग्निहोत्रादिरुपदिष्टः ॥ ३३४३ ॥

अत एव विशुद्धसुवर्णवत्परीक्ष्य ग्राह्यमेतद्विषयचक्षुषैरिति भगवतोक्तमित्येतत्सूचयन्नाह—तापादित्यादि ।

**तापाच्छेदान्निकषाद्वा कलधौतमिवामलम् ।**

**परीक्ष्यमाणं यन्नैव विक्रियां प्रतिपद्यते ॥ ३३४४ ॥**

यथा कलधौतं सुवर्णममलं सर्वदोषरहितं परीक्ष्यमाणं तापादिभिर्न विक्रियां प्रतिपद्यते तथा भगवद्ब्रह्मचोरत्वं प्रत्यक्षेण तापसदृशेन वस्तुबलप्रवृत्तानुमानेन निकषप्रख्येणागमापेक्षानुमानेनापि छेददृष्टान्तसूचितेन न विक्रियते । अतः प्रेक्षापूर्वकारिण एवम्भूतादेवागमात्प्रवृत्तिर्युक्ता नान्यत इत्यभिप्रायः ॥ ३३४४ ॥

रत्नसाधर्म्यमस्य दर्शयन्नाह—समस्तेत्यादि ।

**समस्तकुमतध्वान्तविध्वंसानुगुणोदयम् ।**

**तथागतवचोरत्नमलब्धं बहुकल्मषैः ॥ ३३४५ ॥**

**ततः सुगतमेवाहुः सर्वज्ञमतिशालिनः ।**

**प्रधानपुरुषार्थज्ञं तं चैवाहुर्भिषग्वरम् ॥ ३३४६ ॥**

**सुगतस्तेन सर्वज्ञः कपिलो नेति तु प्रमा ।**

**अनन्तरोदिता व्यक्ताऽप्येषा मूढैर्न लक्षिता ॥ ३३४७ ॥**

कुमतबेव ध्वान्तमन्धिकारम्, तस्य विध्वंसो विनाशः, तस्मिन्ननुगुण उदयो

यस्य तत्तथोक्तम् । बहुकल्मषैरिति । अपुण्यवद्भिः । अनन्तरोदितेति । यथोक्त-  
वचनाख्यकार्यलिङ्गजा ॥ ३३४५ ॥ ३३४६ ॥ ३३४७ ॥

गणिताद्येकदेशेष्वित्यादावाह—यथोदितान्तरादित्यादि ।

यथोदितान्तरादेव विशेषोऽप्यवधार्यते ।

ऋषभादिकुतीर्थेभ्यः स्मरभङ्गविधायिनः ॥ ३३४८ ॥

यथोक्तज्ञानातिशययोगाद्भगवतो माग्जितो ऋषभवर्द्धमानादिभ्यो विशेषे सिद्धे  
सति न युक्तं सत्यवचसा भवता वक्तुम्—न विशेषोऽवधार्यत इति (इति) समु-  
दायार्थः ॥ ३३४८ ॥

स्यादेतत् -- गणिताद्येकदेशार्थेऽविसंवादादुभयेषामस्माभिरविशेष उच्यत इत्याह  
—को हीत्यादि ।

को हि निःशेषशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं मन्यते जडः ।

समानभोजनज्ञानान्मातृकामात्रवेदनात् ॥ ३३४९ ॥

येनैव हेतुनेत्यादावाह—तद्येनेत्यादि ।

तद्येन हेतुनैकस्य सर्वशत्त्वं प्रसाध्यते ।

तद्धेतुवस्तुनोऽसत्त्वात् सोऽन्यस्योपतिष्ठते ॥ ३३५० ॥

तदिति । तस्मात् । तद्धेतुवस्तुन इति । यदि नाम शब्दमात्रमस्ति— स्याद्वा-  
दादीनामविपरीतार्थानां सर्वार्थव्यापिनामुपदेष्टृत्वादिति, तथाऽपि तभ्य वस्तुप्रतिब-  
द्धस्य हेतुवस्तुनो—हेत्वर्थस्याभावान्नासौ हेतुरन्यस्य कपिलादेरुपतिष्ठते, वस्त्वेव हि  
वस्तुप्रतिबद्धत्वाद्बस्तु गमयति, न शब्दमात्रम् ॥ ३३५० ॥

दूषणानीत्यादावाह --तद्दूषणानीत्यादि ।

तद्दूषणान्यसंरम्भाः सर्वशजिनशासने ।

शाक्या यानि वदन्त्येव तान्यशक्ता दिगम्बराः ॥ ३३५१ ॥

असंरम्भा इति । संरम्भहिताः । कृपयैव परानुग्रहाय तेषां प्रवृत्तेर्न भवता-  
मिव रोषमानादिभिः । एवमिति । तदुपदिष्टस्य स्याद्वाद्वादेर्दुष्टत्वप्रतिपादनात् ॥ ३३५१ ॥

तत्रानवस्थितैरित्यादावाह--यदित्यादि ।

यत्सिद्धप्रतिबन्धेन प्रमाणेनोपपादितम् ।

तत्त्वं सौगतसिद्धान्ते सिद्धं नान्यमते तथा ॥ ३३५२ ॥



तेन व्यवस्थितैस्तेषां भिन्नैः साधनदूषणैः ।

प्रतिबिम्बोदयाग्रस्तैर्निर्णयः क्रियतामलम् ॥ ३३५३ ॥

यदिति । यस्मात् । सिद्धप्रतिबन्धेनेति । वस्तुबलप्रवृत्तेर्न(र्नः?) सिद्धतादात्म्य-  
तदुत्पत्तिलक्षणप्रतिबन्धेनेत्यर्थः । तेनेति । तस्मात् ॥ ३३५२ ॥ ३३५३ ॥

यस्य ज्ञेयेत्यादावाह—सर्वाकारज्ञतायास्वित्यादि ।

सर्वाकारज्ञतायास्तु न कश्चिदपि विद्यते ।

साक्षादितरथा वाऽपि विरोधो ज्ञेयतादिभिः ॥ ३३५४ ॥

अज्ञेयत्वादिविश्लेषात् ज्ञेयत्वादि व्यवस्थितम् ।

न सर्वज्ञत्वविश्लेषात्तत्पुनः स्थितलक्षणम् ॥ ३३५५ ॥

अर्थान्तरविधानेनार्थान्तरस्य निषेधं प्रतिपादयितुमिच्छता साक्षात्पारम्पर्येण वा  
विरुद्धस्यैव विधानात्प्रतिपादनीयो नाविरुद्धस्य, अन्यथा हि यस्य कस्यचिद्विधानेन  
मर्त्यस्य निषेधः स्यात् । न च सर्वज्ञत्वस्य, ज्ञेयत्वादिभिः सह कश्चित्साक्षात्पारम्पर्येण  
वा विरोधोऽस्ति । तथाहि—द्विविध एव भावानां विरोधो निरूप्यमाणोऽवतिष्ठते,  
परस्परपरिहारस्थितलक्षणो वा—यथा भावाभावयोः क्रमाक्रमयोर्वा । सहानवस्था-  
नलक्षणो वा—यथाग्निशीतस्पर्शयोः । तत्राद्यस्तावज्ज्ञेयत्वादिभिः सह सर्वज्ञत्वस्य  
न सम्भवतीति दर्शयति—अज्ञेयत्वादीत्यादि । यद्व्यवच्छेदनान्तरीयको यस्य परि-  
च्छेदस्तयोरेव परस्परपरिहारस्थितलक्षणो विरोध इति पूर्वमुक्तम् । न च ज्ञेयत्वादि  
सर्वज्ञत्वव्यवच्छेदेन स्थितम्, किं तर्हि ?, अज्ञेयत्वादिद्व्यवच्छेदेन ॥ ३३५४ ॥  
॥ ३३५५ ॥

नापि द्वितीयो विरोधः सम्भवतीति दर्शयन्नाह—सर्वज्ञत्वमित्यादि ।

सर्वज्ञत्वं न चाऽतत्कश्चित्संपूर्णकारणम् ।

सत्त्वादिसम्भवे पश्चात्प्राक्प्रवृत्तं निवर्त्तते ॥ ३३५६ ॥

यस्य अविकलकारणस्य भवतो यत्सन्निधानादभावस्तयोरेव सहानवस्थानलक्षणो  
विरोधः, न चैतत्सर्वज्ञत्वमविकलकारणं प्राक्प्रवृत्तं दृष्टम्, येन पश्चात्सत्त्वादिसम्भवे  
सति निवर्त्तत इति स्यात् ॥ ३३५६ ॥

कस्मान्न प्रवृत्तमित्याह—नैःस्वाभाव्य इत्यादि ।

नैःस्वाभाव्योऽस्ववित्तौ च न हि तज्जातु जायते ।

प्राक्प्रवृत्तेः प्रसिद्धेयमेवं सर्वज्ञता भवेत् ॥ ३३५७ ॥

यदि सर्वज्ञत्वं सत्त्वज्ञेयत्वसद्भावे सति निवर्त्तत इति भवताऽभ्युपगम्यते । तथा च सति सत्त्वादिसन्निधानात्पूर्वमस्यासत्त्वमज्ञेयत्वं च स्वसंविदापीत्यभ्युपगतं भवेत् , ततश्चासत्त्वेन नैःस्वाभाव्ये सत्यज्ञेयत्वाच्चास्ववित्तौ सत्यां नैतत्सर्वज्ञत्वं जायते—भवतीति तत्कथं प्राक्प्रवृत्तं पश्चान्निवर्त्तत इति स्यात् । नहि निःस्वभावस्योत्पत्तिः सम्भवति । नाप्यनुपलब्धस्य सत्ताव्यवस्थानिबन्धनमस्ति, ज्ञाननिबन्धनत्वाद्बस्तुसत्ताव्यवस्थायाः । तस्मात् स्ववचनव्याघात इत्यभिप्रायः । किं व यदि प्राक् प्रवृत्तिरस्याभ्युपगम्यते तदा प्रवृत्तेः प्रयत्नमन्तरेणैव सर्वज्ञता सिद्धा, अतो न तत्प्रतिक्षेपो युक्तः, अन्यथा स्ववचनव्याहतिः स्यादिति दर्शयन्नाह—प्राक्प्रवृत्तेरित्यादि । प्राक्प्रवृत्तेः, सर्वज्ञत्वस्याभ्युपगमे सतीति शेषः ॥ ३३५७ ॥

अथापि स्यान्मा भूद्विरुद्धं ज्ञेयत्वादि, तथापि सर्वज्ञासत्त्वं गमयतीत्याह ।

नाविरुद्धविधाने च युक्तमन्यनिवर्त्तनम् ।

अन्यथा रूपसद्भावाद्द्रसाभावोऽपि गम्यते ॥ ३३५८ ॥

यस्तु मन्यते—यद्यपि ज्ञेयत्वादयो न विरुद्धयन्ते सवज्ञत्वेन, वक्तृत्वं तु विरुध्यत एव, पारम्पर्येणैतत्कारणेन विकल्पेन सर्वज्ञत्वस्य सहानवस्थानात् । तथाहि—नावितर्क्यं नाविचार्यं वाचं भाषत इति न्यायाद्बचनस्य विकल्पो हेतुः, विकल्पानां च सर्वेषामभिलापसंसृष्टतया न वस्तुस्वरूपग्रहणमस्ति, तस्य निर्विकल्पज्ञानगोचरत्वात्, अतो विकल्पावस्थायां वस्तुस्वरूपपरिज्ञानाभावान्न सर्वज्ञत्वमस्तीति सिद्धाऽभ्य वक्तृत्वस्य विपक्षात्सर्वज्ञत्वलक्षणात्कारणानुपलब्ध्या व्यतिरेकनिश्चितिरिति नानैकान्तिकता हेतोः । अयं च वक्तृत्वाख्यो हेतुः 'यस्य ज्ञेयप्रमेयत्ववस्तुसत्त्वादि लक्षणा' इत्यत्रादिशब्देनाक्षिप्त एवेति । तदेतत् तदत्रादिपदाक्षिप्त इत्यादिनाऽऽशङ्क्य अत्रापि ये प्रवक्तृत्वमित्यादिना परिहरति ।

तदत्रादिपदाक्षिप्ते वक्तृत्वे योऽभिमन्यते ।

निश्चयं व्यतिरेकस्य परस्परविरोधतः ॥ ३३५९ ॥

विकल्पे सति वक्तृत्वं सर्वज्ञश्चाविकल्पतः ।

न ह्याविष्टाभिलापेन वस्तु ज्ञानेन गम्यते ॥ ३३६० ॥

अत्रापि ये प्रवक्तृत्वं वितर्कानुविधानतः ।

सर्वज्ञस्याभिमन्यन्ते न तैर्वचनसम्भवे ॥ ३३६१ ॥

सर्वज्ञ इष्यते नापि विकल्पज्ञानवृत्तितः ।

तस्मिन्क्षणे विकल्पे तु वक्तृत्वं न प्रसिद्ध्यति ॥ ३३६२ ॥

केचिद्भगवतो वक्तृत्वं विकल्पसंमुखीभावादेवेति प्रतिपन्नाः, अन्ये तु पूर्वावेव-  
(श ?)वशादेवाविकल्पयतोऽपि वचनप्रवृत्तिर्भगवत इति वर्णयन्ति । तत्र प्रथमे दर्शने  
यदि विकल्पावस्थायामसर्वज्ञत्वं साध्यते तदा सिद्धसाध्यता, इष्यत एव तैस्तस्याम-  
वस्थायां भगवतोऽसर्वदर्शित्वम् । अथाविकल्पावस्थायामसर्वज्ञत्वं भावयितुमिष्टम् ।  
तदा हेतोरसिद्धता । नहि तस्यामवस्थायां वचनप्रवृत्तिरस्ति, समुत्थापकस्य विक-  
ल्पस्य तदानीमभावात् ॥ ३३५९ ॥ ३३६० ॥ ३३६१ ॥ ३३६२ ॥

ननु यदि विकल्पावस्थायामसर्वज्ञत्वमिष्यते तदा तद्वचनस्यासर्वज्ञभाषितत्वाद-  
प्रामाण्यमेव प्राप्नोतीत्याशङ्क्याह—असर्वज्ञप्रणीतत्वमित्यादि ।

असर्वज्ञप्रणीतत्वं न चैवं तस्य युज्यते ।

सर्वज्ञतासमाक्षेपादतः संवादनं भवेत् ॥ ३३६३ ॥

अनुभूय यथा कश्चिदौष्ण्यं पश्चात्प्रभाषते ।

तस्माद्ब्रह्मविश्वसंवादस्तदर्थानुभवोद्भवात् ॥ ३३६४ ॥

तेन सर्वज्ञताकाले हेतोरस्याप्रसिद्धता ।

व्याहारवृत्तिकाले तु भवेत्सिद्धप्रसाधनम् ॥ ३३६५ ॥

यद्यपि तस्यामवस्थायामसर्वज्ञतथाप्यसर्वज्ञप्रणीतत्वमस्य न भवति, कुतः ?, सर्व-  
ज्ञतया समाक्षिसत्वात्तस्य । अत एव सर्वज्ञज्ञानबलोत्पन्नविकल्पसमुत्थापितत्वात्तस्य  
पारम्पर्येण वस्तुनि प्रतिबन्धादनुमानविकल्पवत्प्रामाण्यमपि भवति । अत्रैव दृष्टान्त-  
माह—अनुभूयेत्यादि । तस्मादिति । उष्णानुभवबलभाविनो वचनात् । तदर्था-  
नुभवोद्भवादिति । तस्योष्णार्थस्यानुभवात्पारम्पर्येण विकल्पस्योद्भवदित्यर्थः । स्या-  
देतत्—यदि सर्वज्ञस्य विकल्पप्रत्ययोऽस्ति तदा भ्रान्तः प्राप्नोति, विकल्पस्य प्रकृत्या  
• स्वप्रतिभासेना(ऽन ?)र्थेऽर्थाध्यवसायेन प्रवृत्तेर्भ्रान्तत्वादिति । नैतदस्ति । यद्यारोपितस्य  
तात्त्विकस्य च रूपस्य विभागं न जानीयात्तदा भ्रान्तो भवेत्, यावता विकल्पवि-  
षयपारोपिनात्मनैव निश्चिन्वन्वाह्यं च वस्तु निर्विकल्पकज्ञानगोचरं पृथगेव तात्त्विकं  
तात्त्विकात्मना पश्यन्कथं विपर्यस्तो नाम । यद्यविपर्यस्तः कथमारोपयति विकल्पा-  
वस्थायामिति चेत् । न ! शब्दप्रवृत्त्युपायज्ञत्वात् । यतो नान्यमारोपकविकल्पव्य-

तिरेकेण शब्दस्य समुत्थापकं पश्यति, नापि शब्दार्थमारोपितादन्यमुपलभते, अतः शब्दप्रवृत्त्युपायज्ञो जगदनुकम्पया यथावदधिगतं तत्त्वमप्रतिपाद्य परस्मै नासितुं समर्थः संस्तप्रतिपिपादयिषया शब्दप्रवृत्त्युपायमारोपकं विकल्पमारोप्यं च शब्दाभिधेयमारचयति । एतच्च पाश्चादाशङ्क्य चोद्यं परिहरिष्यति । अस्माभिस्त्र प्रस्तावागतत्वादित्यमिहितम् । अत एव वक्तृत्वाद्वागित्वानुमानमप्ययुक्तमन्यथापि वचनप्रवृत्तिसम्भवात् । नहि रागादीनामेव कार्यं वचनस्पन्दादयः, वक्तुकामतासामान्यहेतुत्वात् । भाव(सा च ?)वक्तुकामता वीतरागस्य करुणयापि सम्भवतीति व्यभिचारः । सैव करुणा राग इति चेत् । न । (न)नामकरुण(या) किञ्चिदनिष्टमापद्यते । किंतु नित्यसुखात्मासीयदर्शनाक्षिप्तं साश्रववस्तुविषयं चेतसोऽभिष्वङ्गं रागमाहुः । तत्पूर्वकश्चात्मात्मीयोपरोधिनि प्रतिहतिर्द्वेषः । आत्मात्मीयग्रहश्च मोहो न चैव कृपा । तस्या असत्यप्यात्मग्रहे दुःखविशेषदर्शनमात्रेणाभ्यासवलेनैवोत्पादात् । तथाहि वीतरागाणां धर्माद्यालम्बना मेढ्यादयः शास्त्रे वर्णिताः ॥ ३३६३ ॥ ३३६४ ॥ ३३६५ ॥

स्यादेतद्यदि सर्वविषयज्ञानासंमुखीभावमात्रं साध्यते, तथापि सिद्धसाध्यता भवेद्यावता समस्तवस्तुतत्त्वविस्तरज्ञानाशक्तता साधयितुमिष्टा, अतो न सिद्धसाध्यता नापि हेतोरसिद्धता व्याहारसामर्थ्यमात्रस्य हेतुत्वेन विवक्षितत्वात् इत्यत आह—समस्तेत्यादि ।

समस्तवस्तुविज्ञानशक्त्यपाकरणेऽपि ते ।

संदिग्धव्यतिरेकित्वं तदवस्थं प्रसृज्यते ॥ ३३६६ ॥

व्याहारवृत्तिसामर्थ्यं हेतुत्वेनापि संमते ।

संदिग्धव्यतिरेकित्वदोष एवानुवर्त्तते ॥ ३३६७ ॥

उभयत्रापि पक्षे साध्यविपर्यये हेतोर्बाधकप्रमाणाभावात् । संदिग्धव्यतिरेकित्वेन नैकान्तिकता हेतोः ॥ ३३६६ ॥ ३३६७ ॥

अथ येषामविकल्प(य)तोऽपि भगवतो वचनप्रवृत्तिरिति पक्षस्तत्राह—चक्रेत्यादि ।

चक्रभ्रमणयोगेन निर्विकल्पेऽपि तायिनि ।

सम्भारावेगसामर्थ्याद्देशना संप्रवर्त्तते ॥ ३३६८ ॥

इति ये सुधियः प्राहुस्तान्प्रत्यपि न सिध्यति ।

यथाहि चक्रस्योपरतेऽपि दण्डप्रेरणव्यापारे पूर्वाविगवशाद्भ्रमणम्, एवं भगवति प्रत्यस्तमितसमस्तकरूपनाजालेऽपि स्थिते प्रवर्त्तत एव पूर्वपुण्यज्ञानसम्भारावेगवशा-  
द्देशनेति सुधियः सौगताः केचन विज्ञानवादिनः प्रतिपन्नाः, तान्प्रति स्फुटतरमसि-  
द्धतादोषो हेतोरवसीयत एव ।

स्यादेतदस्मिन्दर्शने सर्वेषामेव स्वप्रतिभासानुभवमात्रत्वात्परमार्थतो न कस्यचिद्ब-  
क्तृत्वमस्ति, किं त्वध्यवसायवशादवदत्यपि परस्मिस्तथा प्रतिभासिविज्ञानोत्पत्ताव-  
धिपतिप्रत्ययभावेन स्थिते वक्तृत्वाभिमानो लोके, तदेवाध्यवसायिकं लोकप्रतीतं  
वक्तृत्वं हेतुत्वेनाभिप्रेतम् । नहि सिद्धान्तप्रसिद्धो हेतुर्धर्मी वा क्रियते, किं तर्हि  
लोकप्रतीत एवेत्यतो नासिद्धता हेतोरित्याशङ्क्याह—वक्तृत्वमित्यादि ।

वक्तृत्वं यत्तु लोकेन मतमाध्यवसायिकम् ॥ ३३६९ ॥

तत्र तादृशि हेतोः स्यात्सन्दिग्धव्यतिरेकिता ।

अत्रापि पूर्ववत्सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिकत्वादनैकान्तिकता हेतोः ।

नन्वित्यादिना परो यदसिद्धत्वमत्र विज्ञानवादनये प्रोक्तं तद्विधटयति ।

ननु चासिद्धता केन मतेऽत्रानुपपत्तिके ॥ ३३७० ॥

एवं मन्यते—य एव तूभयनिश्चितवाची स एव साधनं दूषणं वा, नान्यतर-  
(रा?)प्रसिद्धः सन्दिग्धवाची, पुनः साधनापेक्षणादिति श्यायात् । अप्रमाणोपपत्ते-  
ऽस्मिन्विज्ञानवादमते कथमसिद्धतोद्भाव्यते, नहि स्वेच्छामात्रेण सिद्धत्वासिद्धत्व-  
परिकल्पनायां दूषणं भवति, किं तर्हि ?, प्रमाणबलोपपादितायां सिद्धावसिद्धौ वा,  
न च प्रमाणबलाद्विज्ञाननयः सिद्धः, अस्य विस्तरेण निरस्तत्वात् ॥ ३३६८ ॥  
॥ ३३६९ ॥ ३३७० ॥

उच्यत इत्यादिना प्रतिविधत्ते ।

उच्यते यदि वक्तृत्वं स्वतन्त्रं साधनं मतम् ।

तदानीमाश्रयासिद्धः सन्दिग्धासिद्धताऽथवा ॥ ३३७१ ॥

अस्य चार्थस्य सन्देहात्सन्दिग्धासिद्धता स्थिरा ।

प्रसङ्गसाधनं तस्मात्त्वया वक्तव्यमीहंशम् ॥ ३३७२ ॥

तत्र चागममात्रेण सिद्धो धर्मः प्रकाशयते ।

न तु तद्भावसिद्धयर्थं ज्ञापकं विद्यते परम् ॥ ३३७३ ॥

अत्र विकल्पद्वयं कदाचिद्वक्तृत्वं स्वातन्त्र्येण साधनं वामिप्रेतं भवेत्, प्रसङ्गसाधनं वा । तत्राद्ये पक्षे विशेषणाश्रयो न सिद्ध इत्याश्रयासिद्धता हेतोः । अथ सामान्येनाश्रयो विवक्षितस्तथापि यावत्प्रतिवादिनं प्रति प्रमाणेन वक्तृत्वं न साध्यते तावत्सन्दिग्धासिद्धता, य एव तूभयनिश्चितवाची स एव साधनमिति न्यायात् । अस्येति । वक्तृत्वस्य । तस्मान्माभूदयं दोष इति प्रसङ्गसाधनमङ्गीकर्त्तव्यं त्वया । तत्रापि प्रसङ्गसाधने य एवाविचाररमणीयतयाऽऽगममात्रात्परस्य प्रसिद्धो धर्मः स एव साधनत्वेन प्रकाशनीयः परस्परविरोधोद्भावनाय, नत्वसौ प्रमाणेन साधनीयो निष्प्रयोजनत्वात् । न च वक्तृत्वं परस्यागममात्रेण प्रसिद्धमित्युभयथाऽप्रसिद्धता हेतोः ॥ ३३७१ ॥ ३३७२ ॥ ३३७३ ॥

एवमित्यादिनोपसंहरन्परोक्तेष्वर्थविपर्ययमादर्शयति ।

एवं यस्य प्रमेयत्ववस्तुसत्तादिलक्षणाः ।

निहन्तुं हेतवोऽशक्ताः को न तं कल्पयिष्यति ॥ ३३७४ ॥

वेदवादिमुखस्थैवं युक्तिलौकिकवैदिकी ।

न काचिदपि शाक्योऽग्रसर्पज्ञानविषापहा ॥ ३३७५ ॥

दृग्विषैरिह दृष्टोऽपि खल्पशक्तिर्द्विजो जडः ।

उच्छ्वासमपि नो कर्तुं शक्नोति किमु वासि(बाधि?)तुम् ॥ ३३७६ ॥

वेदवादिमुखस्था तु युक्तिः साध्यपि दुर्भगा ।

कण्ठिका चरणस्थैव जघन्याश्रयसंस्थितेः ॥ ३३७७ ॥

को न तं कल्पयिष्यतीति । सम्भविस्त्वेनेति श्लेषः । यतो बाधकानुपलम्भादेव तस्य सम्भावना सिद्ध्यतीति भावः । आस्तां तावदेतन्—यदसाध्वी युक्तिर्वेदवादिमुखस्था नैव शोभत इति, नैवात्र चित्रम्, किंतु—साध्यप्याश्रयदोषेण भवतोच्यमाना न आजते ॥ ३३७४ ॥ ३३७५ ॥ ३३७६ ॥ ३३७७ ॥

कथमित्याह—पावकाव्यभिचारित्वमित्यादि ।

पावकाव्यभिचारित्वं धूमस्यापि न शक्यते ।

वक्तुं तेन यतो धूमस्तन्मतेऽन्यत्र वर्त्तते ॥ ३३७८ ॥

एकवस्तुस्वरूपत्वादुदन्वत्यपि वर्त्तते ।

तत्राप्यनलसद्भावे व्यतिरेकः किमाश्रयः ॥ ३३७९ ॥

धूमस्य हि दहनप्रतिबद्धजन्म तथा तदव्यभिचारित्वमागोपालमतिप्रतीतमेव, तस्यापि त्वया सर्वस्य जायतो वस्तुत्वादिना पारमार्थिकमैक्यं वर्णयता दहनाव्यभिचारित्वं न शक्यं प्रतिपादयितुम्, वस्तुस्वरूपत्वेनोदकेस्य भवन्मतेन धूमस्य परमार्थतो वृत्तेः । स्यादेतत्—अव्यभिचारितैवेत्याह—तत्रापीत्यादि । तत्राप्युदन्वति तादात्म्येन यद्यनलस्वभावोऽङ्गीक्रियते तदाऽनले साध्ये जलादिर्न विपक्षः स्यात्, ततश्च विपक्षाभावाद्भूमादेर्लिङ्गस्व किमाश्रयो विपक्षाद्व्यतिरेको भवेत् । ३३७८ ॥ ३३७९ ॥

तद्रूपकार्यविज्ञप्तिः किंवा तत्रापि नो भवेत् ।

विलक्षणात्मभावे वा वस्तुभेदोऽस्तु तात्त्विकः ॥ ३३८० ॥

यदि जलधौ परमार्थतो दहनोऽवस्थित इति मतम्, किमिति तद्रूपोपलब्धिर्दाहपाकादिलक्षणकार्यनिर्भासा च विज्ञप्तिर्न जायते । वैलक्षण्यमपीष्टमिति चेदाह—विलक्षणात्मेत्यादि । एतच्च विस्तरेण स्याद्वादपरीक्षायां विचारितमित्यास्तां तावदेतत् ॥ ३३८० ॥

यदुक्तमेकेन प्रमाणेनेत्यादि, तत्राह—समस्तेत्यादि ।

समस्तवस्तुसम्बद्धतत्त्वाभ्यासबलोद्भूतम् ।

सार्वज्ञं मानसं ज्ञानं मानमेकं प्रकल्प्यते ॥ ३३८१ ॥

न तु नेत्रादिविज्ञानं ततः किमिदमुच्यते ।

नूनं स चक्षुषा सर्वाङ्गसादीन्प्रतिपद्यते ॥ ३३८२ ॥

सिद्धं च मानसं ज्ञानं रूपाद्यनुभवात्मकम् ।

अविवादः परस्यापि वस्तुन्येतावति स्फुटः ॥ ३३८३ ॥

वर्णयते हि स्मृतिस्तेन रूपशब्दादिगोचरा ।

स्वप्ने च मानसं ज्ञानं सर्वार्थानुभवात्मकम् ॥ ३३८४ ॥

ततश्चानियतार्थेन मानसेन प्रकल्पिते ।

सर्वज्ञे चक्षुषा कस्माद्गसादीन्प्रतिपद्यते ॥ ३३८५ ॥

चाक्षुषेणैव तत्कल्पसावयं दोषो भवेदपि ।

समासेन तु चित्तेन वेद्येव च रसादिकम् ॥ ३३८६ ॥

यत्राप्यतिशयो दृष्टः स्वस्वार्थानतिलङ्घनात् ।

दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तितः ॥ ३३८७ ॥

इत्यादिकमतोऽनिष्टं परैरुक्तं न नो यतः ।

स्वार्थाविलङ्घनेनैव मानसेऽतिशयो मतः ॥ ३३८८ ॥

यज्जातीयैः प्रमाणैश्च यज्जातीयार्थदर्शनम् ।

दृष्टं सम्प्रति लोकस्य तथा कालःन्तरेऽपि नः ॥ ३३८९ ॥

यदि चक्षुरादीन्द्रियधियां मवार्थपरिज्ञानमभ्युपगतं भवेत्, तदा भवेद्यथोक्तदो-  
षप्रसङ्गः यावता समस्तवस्तुगता नित्यत्वादिलक्षणाशेषतत्त्वाभ्यासप्रकर्षपर्यन्तजेन  
मनोविज्ञानेन सत्त्वार्थगोचरेण स्फुटप्रतिभासासंवादित्वाभ्यां प्रत्यक्षतामुपगतेन  
युगपदशेषवस्तुग्रहणात्सर्वविदिष्टः, न तु चक्षुरादिधिया । न च मनोज्ञानं सर्वार्थगो-  
चरतया न प्रसिद्धमिति युक्तं वक्तुम्, यतो भवताऽपि रूपशब्दादिविषयं स्मार्त्त  
ज्ञानमुपवर्णितम् । तच्च मनोज्ञानमेव । स्वप्ने च रूपादिप्रतिभासमतिप्रतीतमेवेति नाम्या-  
पहवः शक्यक्रियः । तेन स्वार्थाविलङ्घनेनैवातिशयस्येष्टत्वान्नास्माकं किञ्चिदनिष्टमा-  
पादितं भवता ॥ ३३८१ ॥ ३३८२ ॥ ३३८३ ॥ ३३८४ ॥ ३३८५ ॥ ३३८६ ॥  
॥ ३३८७ ॥ ३३८८ ॥ ३३८९ ॥

यस्यापि ज्ञानवादिनोऽक्षधिया सर्वविदिष्टस्तस्यापि दोषा(१) दौण्ड्यकुल्यवासनायाः  
प्रहाणे सति सर्वार्थवृत्तित्वेन सर्वधियां विभुत्वलाभस्येष्ट-वात् । दौण्ड्यकुल्यवासनैव हि  
धियां नियमकारणम् । तत्प्रहाणे सति कुतो नियनार्थविषयत्वमासां सम्भवेदिति  
मन्यमान आह— विशुद्धं वेत्यादि ।

विशुद्धं वा भवेज्ज्ञानं सर्वं सर्वार्थगोचरम् ।

हेतोः संभाव्यते कश्चित्फलेऽप्यतिशयः कश्चित् ॥ ३३९० ॥

नहि सूक्ष्मफला दृष्टा आमलक्यो मराविति ।

सर्वास्तत्त्वेन तद्रूपा अन्यत्रापि भवन्ति ताः ॥ ३३९१ ॥

शृण्वन्ति चक्षुषा सर्पा इत्येषाऽपि श्रुतिस्ततः ।

सम्भाव्यार्था विचित्रा हि सत्त्वानां कर्मशक्तयः ॥ ३३९२ ॥

कारणभेदेन हि भावानां स्वभावभेदप्रतिनियमान्न शक्यते कचिदेकदा दृष्टम्य  
वस्तुनः सर्वत्र सर्वदा तथा भावो निश्चेतुम्, नहि सूक्ष्मफला आमलक्यो मरुषु  
समुपलब्धा इत्येतावता सर्वत्र देशे सत्यपि कारणभेदसंभवे तथात्वेनावधारयितुं दर्श-  
नमात्रेण प्रेक्षावन्तो युक्ताः । तेन चक्षुषाऽपि योगाभ्यासविशेषबलशलाकोन्मीलितेन  
कश्चिदपि सर्वार्थान्पश्यतीत्यविरुद्धम् ॥ ३३९० ॥ ३३९१ ॥ ३३९२ ॥



यज्जातीयैरित्यादावाह—यस्येत्यादि ।

यस्याध्वत्रितयस्यं हि सर्वं वस्त्ववभासते ।

तथा नियतसामर्थ्यं वक्तुमित्थं स शोभते ॥ ३३९३ ॥

तथा नियतसामर्थ्यमिति । तेनेष्टरूपेण नियतसामर्थ्यं सर्वं वस्त्ववभासत इति

सम्बन्धः ॥ ३३९३ ॥

कीदृशं तद्वक्तुं शोभत इत्याह—यज्जातीयैरित्यादि ।

यज्जातीयैः-प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनम् ।

भवेदिदानीं लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ॥ ३३९४ ॥

इदानीमपि लोकस्य शक्तिर्जातुं न शक्यते ।

भवता जन्तुमात्रेण सर्वशक्त्यविनिश्चयात् ॥ ३३९५ ॥

निःशेषमत्त्वशक्तीनां ज्ञाने सर्वज्ञता यत ।

न चानुमानतः सिद्धिरन्यथाभावशङ्कया ॥ ३३९६ ॥

स्यादेतत्—न वयं प्रत्यक्षतो ज्ञात्वैवं ब्रूमः 'तथा कालान्तरेऽप्यभूदिति, किं तर्हि ?', अनुमानात् । यत्प्रमाणं यज्जातीयार्थग्राहि दृष्टं तत्कालान्तरेऽपि तथैवाभूत्प्रमाणत्वादिति, तत्राह—न चानुमानतः सिद्धिरिति । आमलक्यादिवद्भेदतुविशेषकार्यस्य विशेषदर्शनात् । अन्यथाऽपि विजातीयार्थग्रहणद्वारेण प्रवृत्तेः सम्भाव्यमानत्वादनैकान्तिकता हेतोः ॥ ३३९४ ॥ ३३९५ ॥ ३३९६ ॥

येऽपि सातिशया दृष्टा इत्यादावाह—अतीन्द्रियार्थविज्ञानयोगेनापीत्यादि ।

अतीन्द्रियार्थविज्ञानयोगेनाप्युपलभ्यते ।

प्रज्ञादिगुणयोगित्वं पुंसां विद्यादिशक्तितः ॥ ३३९७ ॥

अस्ति हीक्षणिकाद्याख्या विद्या या सुविभाविता ।

परचित्तपरिज्ञानं करोतीहैव जन्मनि ॥ ३३९८ ॥

श्रुतानुमितदृष्टं च यन्न वस्त्वत्र जन्मनि ।

भूतं भवद्भविष्यच्च तद्विदन्ति वदन्ति च ॥ ३३९९ ॥

मसंवादमभिव्यक्तमाविष्टाः पुरुषा इह ।

विचित्रमन्त्रनागेन्द्ररक्षोयक्षादिशक्तितः ॥ ३४०० ॥

मा वा भूदृष्टमित्यादि तथाऽप्यत्र बाधकम् ।

किञ्चित्प्रमाणमस्तीति तदभावो न सिद्धयति ॥ ३४०१ ॥

नत्वतीन्द्रियार्थदर्शनादित्यसिद्धमेतत्, तथाहि—ईक्षणिकादिविद्याबलेन डाकिन्यादीनां परचित्तज्ञानं भूतभवद्भविष्यद्भस्तुपरिज्ञानं चोपलभ्यत एव । आदिशब्देन गान्धारीप्रभृतीनां ग्रहणम् । विचित्रभूतग्रहाच्चा(द्या?)वेशबलाच्चातीन्द्रियार्थपरिज्ञानदर्शनादन्यत्राप्यप्रतिक्षेपः । मा भूद्वा व्यवमिचारविषयदर्शनम् ; तथाप्यप्रति(लम्भ)-मात्रेण सर्वविदो नाऽभावो निश्चेतुं युक्तः । तदभावः—अतीन्द्रियार्थदृग्भावो न सिद्धयति ॥ ३३९७ ॥ ३३९८ ॥ ३३९९ ॥ ३४०० ॥ ३४०१ ॥

प्राज्ञोऽपि हीत्यादावाह—उक्तेन चेत्यादि ।

उक्तेन च प्रकारेण वेदकारे प्रसाधिते ।

अवश्याभ्युपगन्तव्यस्त्वयाऽस्तीन्द्रियदृग्भ्रः ॥ ३४०२ ॥

अतः प्राज्ञो नरः सूक्ष्मानर्थान् द्रष्टुं क्षमो भवेत् ।

सजातीरप्यतिक्रामन्परानभिभवेन्नरान् ॥ ३४०३ ॥

उक्तेनेति । अ(श्रु ?)तिपरीक्षायाम् ॥ ३४०२ ॥ ३४०३ ॥

अत्रैवोपपत्तिमाह—यथा स्वविषय इत्यादि ।

यथा स्वविषये शक्तिः श्रोत्रादेः प्रविशिष्यते ।

गतियोगविशेषाद्यैर्मनसोऽपि तथा भवेत् ॥ ३४०४ ॥

यथा गतिविशेषाज्जनादिलक्षणयोगविशेषेण च श्रोत्रादेः स्वार्थशक्तिर्विशिष्यते तथा मनसोऽपि हेतुविशेषेण शक्तिः प्रविशिष्यत इति सम्भाव्यम् ॥ ३४०४ ॥

तत्र गतिविशेषकृतं श्रोत्रादेर्विशेषं दर्शयति—तथाहीत्यादि ।

तथाहि वीक्ष्यते रूपं गृध्रैर्दूरतरस्थितम् ।

तिरस्कृतं निधानादि तथा सिद्धाज्जनादिकैः ॥ ३४०५ ॥

योगविशेषकृतमप्याह—तिरस्कृतमित्यादि । सिद्धाज्जनादिकैरिति । वीक्ष्यत इति सम्बन्धः । हेतौ कल्पे वा तृतीयेषु ॥ ३४०५ ॥

एवं गतिविशेषस्य ज्ञानशक्तिविशेषं प्रति हेतुभावं प्रसाध्य दार्ष्टान्तिकेऽर्थे योजयन्नाह—एवमित्यादि ।

एवं गतिविशेषेण देवादेर्दर्शनं भवेत् ।

सूक्ष्मरूपवहितादीनां स्वोपपन्नानुरूप्यतः ॥ ३४०६ ॥

स्वोपपन्नानुरूप्यत इति । अभस्तादेषां ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते नोर्द्धमित्येवं यथा-

स्वमुपपत्त्या आनुरूप्येण ज्ञानं भवच्चातुर्महाराजकायिकादीनां(?) देवानां केन वार्यते ॥ ३४०६ ॥

योगकृतमपि विशेषं योजयति—योगाभ्यासेत्यादि ।

योगाभ्यासविशेषाच्च योगिनां मानसं तथा ।

ज्ञानं प्रकृष्टरूपं स्यादित्यत्रास्ति न बाधकम् ॥ ३४०७ ॥

यदि तु पुनर्यथोक्तगतियोगादिकारणासम्भवमुपदर्शयतिशयनिषेधः क्रियते तदा सिद्धसाध्यतेति दर्शयन्नाह—गतियोगादिवैकल्य इति ।

गतियोगादिवैकल्ये ज्ञाने त्वतिशयो यदि ।

क्षिप्यतेऽयुक्तमेतद्वि हेत्वभावात्फलं नहि ॥ ३४०८ ॥

यथा शास्त्रान्तरज्ञानं तन्मात्रेण न लभ्यते ।

उत्तरोत्तरतद्वेतुवैकल्येऽतिशयस्तथा ॥ ३४०९ ॥

देवानाम् । यच्चोक्तम्—‘श्रोत्रगम्येष्वित्यादि, तदप्यनेनैव प्रत्युक्तम्, अदर्शनमात्रेण तथाविधस्यातिशयस्य प्रतिषेद्धमशक्यत्वादित्यभिप्रायः ॥ ३४०८ ॥ ३४०९ ॥

यच्चोक्तम्, ‘एवं शास्त्रविचारेष्वित्यादि, (तत्राह)— न चैकदेशेत्यादि ।

न चैकदेशविज्ञानात्सर्वज्ञानास्तितोच्यते ।

येन वेदादिविज्ञानात्स्वर्गाद्यध्यक्षता भवेत् ॥ ३४१० ॥

किंतु प्रज्ञाकृपादीनामभ्यासाद्बृद्धिदर्शनात् ।

अन्योऽप्यतिशयस्तस्माद्बर्धमानात्प्रतीयते ॥ ३४११ ॥

मनोगुणतयाऽप्येषां काष्ठापर्यन्तसम्भवः ।

नैर्घृण्यवन्महाभ्यासान्निष्टाऽशेषार्थबोधनात् ॥ ३४१२ ॥

धर्मा(अर्था?)बोधरूपा हि प्रज्ञा लक्षणतः स्थिता ।

एकस्याप्यपरिज्ञाने साऽसमाप्तैव वर्तते ॥ ३४१३ ॥

नष्टसाभिरेकदेशपरिज्ञानमात्रादशेषपदार्थपरिज्ञानमभ्युपगम्यते येनाभ्यघायि भवता ‘न(तु) शास्त्रान्तरज्ञानं तावन्मात्रेण लभ्यत’ इति । किन्त्वभ्यासवशात्प्रज्ञाप्रकर्षोपलभ्यादन्योऽप्यतीन्द्रियपरिज्ञानकृतो विशेषस्तस्मादभ्यासाद्बर्धमानात्प्रकर्षविशेषं प्राप्ताद्भवतीति सम्भाव्यते । एतच्च पूर्वं प्रसाधितं पुनरपि न्यूनः प्रमाणयति—प्रयोगः—ये ये मनोगुणास्तेऽभ्यासातिशये सति सम्भवत्प्रकर्षपर्यन्तवृत्तयः, यथा

श्रोत्रियजोर्दिग( ? )नैर्बृण्यम् , मनोगुणश्च प्रज्ञेति स्वभावहेतुः । न नैकान्तिकता हेतोः, प्रज्ञायाः पदार्थस्वभावबोधलक्षणायाः प्रकर्षपर्यन्तगमनं नाशेषार्थपरिज्ञानमन्तरेण संभवति । नाप्यप्रसिद्धविशेषणतया हेतोरसिद्धता, पूर्वमभ्यासविशेषसम्भवस्य विस्तरेण प्रसाधितत्वात् । काष्ठाशब्दः प्रकर्षपर्यायः ॥ ३४१० ॥ ३४११ ॥ ३४१२ ॥ ३४१३ ॥

ये वा समानजातीयपूर्वबीजप्रवृत्तयः ।

तेऽत्यन्तवृद्धिधर्माणः संस्कारोत्कर्षभेदतः ॥ ३४१४ ॥

व्रीह्यादिवत्सम्भविनो दयामत्यादयोऽपि च ।

यथामिहितधर्माणः प्रवृद्धौ सर्वदर्शिता ॥ ३४१५ ॥

अथवा ये तुल्यजातीयपूर्वबीजप्रसूतयस्ते संस्कारविशेषे सत्यत्यन्तवृद्धिधर्माणः सम्भविनः यथा व्रीह्यादयः, यथोक्तधर्माणश्च दयाप्रज्ञादय इति स्वभावहेतुः । अत्रापि पूर्ववदसिद्धानैकान्तिकता न भवति । मतिः—प्रज्ञा । यथाऽमिहितधर्माण इति । समानजातीयपूर्वबीजप्रवृत्तय इत्यर्थः ॥ ३४१४ ॥ ३४१५ ॥

ये चापचयधर्माणः प्रतिपक्षस्य सन्निधौ ।

अत्यन्तापचयस्तेषां कलधौतमलादिवत् ॥ ३४१६ ॥

सम्भाव्यन्ते तथा चामी क्लेशज्ञेयानृतादयः ।

यथोपदिष्टधर्माणस्तत्प्रहाणेऽमला धियः ॥ ३४१७ ॥

यथोक्तधर्मणामेषां सम्भाव्यो यदि वा मलः ।

अत्यन्तोन्मूलने दक्षः प्रतिपक्षस्तथैव हि ॥ ३४१८ ॥

अथवा ये प्रतिपक्षसन्निधावपचयधर्माणो दृष्टास्ते प्रतिपक्षात्यन्तवृद्धौ सत्यां सम्भवदत्यन्तापचयधर्माणः, यथा कनकमलादि, नैरास्यादिलक्षणसंमुखीभावे चापचयधर्माणो रागादय इति स्वभावहेतुरिति । नासिद्धता हेतोः, नैरास्यज्ञानेन सह क्लेशादेर्विरोधस्य प्रसाधितत्वात् । नाप्यनैकान्तिकता, प्रतिपक्षात्यन्तवृद्धौ सत्यां विपक्षस्यावस्थानासम्भवात् । अन्यथा योऽत्यन्तमुन्मूलयितुमसमर्थः स कथमल्पमप्यपचयं कुर्यात् । नहि स्फुटतरस्फुरत्स्फुलिङ्गमालोज्ज्वलज्वलनकलापान्तर्गतमपि वज्रमपचयमनुभवति कदाचित् । न चापि विपक्षस्यात्यन्तवृद्धयसम्भवादनैकान्तिकता, पूर्वं विस्तरेणात्यन्तवृद्धिसम्भवस्य प्रसाधितत्वात् । अथवा ये प्रतिपक्षसन्निधावपच-

यधर्माणस्ते सम्भवदत्यन्तोन्मूलनदक्षप्रतिपक्षाः, तद्यथा कनकमल्लादि, यथोक्तधर्माणश्च क्लेशज्ञेयावरणादय इति स्वभावहेतुः । अत्रापि पूर्ववदसिद्धानैकान्तिकते परिहार्ये । आदिशब्देन कर्मावरणादिपरिग्रहः ॥ ३४१६ ॥ ३४१७ ॥ ३४१८ ॥

तत्त्वदृष्टिनिबन्धत्वादत्यन्तापचयः कश्चित् ।

बाह्यस्येवास्य तमस आन्तरस्यापि गम्यते ॥ ३४१९ ॥

तस्य चापचये जाते ज्ञानमव्याहृतं महत् ।

स्वातन्त्र्येण प्रवर्त्तत सर्वत्र ज्ञेयमण्डले । ३४२० ॥

अथवा ये तत्त्वदर्शननिबन्धकारिणस्ते सम्भवदत्यन्तापचयाः, यथा बाह्यं शार्वरं तमः, तत्त्वदर्शननिबन्धकारिणश्च क्लेशज्ञेयावरणादय इति स्वभावहेतुः । न चास्यानैकान्तिकतेति दर्शयन्नाह—तस्य चेति । तस्यान्तरस्य तमसः ॥३४१९॥३४२०॥

ये वा स्थिराश्रये वृत्ताः कथञ्चिदपि चाहिताः ।

तद्भावायापुनर्यत्नव्यापेक्षा बाधकेऽसति ॥ ३४२१ ॥

संस्कारोत्कर्षभेदेन काष्ठापर्यन्तवृत्तयः ।

ते सम्भवन्ति विस्पष्टं शातकुम्भविशुद्धिवत् ॥ ३४२२ ॥

यथाऽभिहितधर्माण इमे मतिदयादयः ।

तेषां पर्यन्तवृत्तौ च सर्वविष्वं प्रभास्वरम् ॥ ३४२३ ॥

लङ्घनोदकतापाभ्यां न चेह व्यभिचारिता ।

नहि तल्लङ्घनादेव लङ्घनं बलयत्नयोः ॥ ३४२४ ॥

अथवा—ये स्थिराश्रयवर्त्तिनः सकृच्च यथाकथञ्चिदाहितविशेषः सन्तोऽसति विरोधिप्रत्यये तद्भावायापुनर्यत्नपेक्षिणस्ते संस्कारोत्कर्षभेदेन सम्भवत्प्रकर्षपर्यन्तवृत्तयः, तद्यथा कनकविशुद्ध्यादयः, यथोक्तधर्माणश्च प्रज्ञाकृपादय इति स्वभावहेतुः । लङ्घनोदकतापाभ्यां न चेह व्यभिचारितेति । विशेषणत्वादित्यभिप्रायः । नहि लङ्घनोदकतापौ सकृदाहितौ पुनराधानाय यत्नादिनिरपेक्षौ वर्त्तते । नापि स्थिराश्रयौ यदि वाऽत्रापि समानजातीयबीजवृत्तित्वे सतीति विशेषणापेक्षणादव्यभिचारो लङ्घनेनेति मन्यमान आह—नहि तल्लङ्घनादेवेति । तल्लङ्घनं नहि लङ्घनादेव जायते । कस्मिन् सति नाम जायते इत्याह—लङ्घनं बलयत्नयोरिति । बले यत्ने च सति लङ्घनं भवति, न तु लङ्घने सति । तयोश्च बलयत्नयोः स्थितशक्तितया लङ्घनस्यापि

स्थितात्मतेति भावः । स्यादेतद्यदि बलयन्ताभ्यामेव लङ्घनं भवति न लङ्घनात् , एवं सत्यभ्यासे यादृशं लङ्घनं पुरुषस्य भवति तादृगभ्यासात्प्रागपि प्राप्नोतीति । नैष दोषः । प्राक्तनस्य श्लेषादिना देहस्य विगुणत्वात्पश्चाद्बलं लङ्घनमुपजायते । पश्चात्तु शनैः प्रयत्नेन देहवैगुण्येऽपनीते सति यथाबलमेवावतिष्ठते लङ्घनम् । अवश्यं चैत- देवं विज्ञेयम् । अन्यथा यदि लङ्घनादेव लङ्घनं स्यात्तदा लङ्घनस्य व्यवस्थितोत्कर्षता न स्यात् ॥ ३४२१ ॥ ३४२२ ॥ ३४२३ ॥ ३४२४ ॥

अथवा लङ्घनम्यापि हेतुविशेषापेक्षिणः स्थितोत्कर्षताया असिद्धेर्न तेन व्यभिचार इति दर्शयति—यदि वेत्यादि ।

यदि वा लङ्घनस्यापि काष्ठापर्यन्तवृत्तिता ।

अमाधिवलगत्यादिविशेषात्स्यात्स्वहेतुतः ॥ ३४२५ ॥

सिद्धिर्मनोजवासंज्ञा तथा च श्रूयते प्रमा ।

यथा चिन्तितमात्रेण याति दूरमपि प्रभुः ॥ ३४२६ ॥

न चाप्यहृष्टिमात्रेण तदभावः प्रसिद्धयति ।

न चात्र बाधकं किञ्चिद्वक्तुमत्र परः क्षमः ॥ ३४२७ ॥

तथाहि—समाधिवलविशेषप्रयोगालङ्घनम्यास्माभिरिष्यत एवात्यन्तप्रकर्षवर्त्ति- त्वम् , यथा भगवतो मनोजवा नाम सिद्धिः पठ्यते, यस्यां स्थितस्य मनस इव जवो भवति । अत एव सा मनोजवेति प्रख्याता । न चास्या बाधकं प्रमाणमस्ति । नाप्यदर्शनमात्रेण प्रतिक्षेपो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् ॥ ३४२५ ॥ ३४२६ ॥ ३४२७ ॥

अपि च दृश्यत एवाश्रये विशेषोपाधिकादभ्यासविशेषाद्गतेरत्यन्तविशेषः, ततो- ऽपि भगवतस्तादृशी गतिः सम्भविनीति दर्शयन्नाह—राजहंसशिशुरित्यादि ।

राजहंसशिशुः शक्तो निर्गन्तुं न गृहादपि ।

याति चाभ्यासभेदेन पारमरुभःपतेरपि ॥ ३४२८ ॥

आश्रयोपाधिकाभ्यासभेदादस्य गतिर्यथा ।

तादृशी तादृशादेव किं न सम्भाव्यतेऽधिका ॥ ३४२९ ॥

बोधिसत्त्वदशायां हि न शक्तस्तादृशीं गतिम् ।

प्राप्तुं प्राप्ते समाधौ तु विशिष्टे शक्नुयान्मुनिः ॥ ३४३० ॥

यथा च राजहंसशावः प्राक् स्वकुलायादपि निर्गन्तुमशक्तः पश्चादल्पीयस्यप्य-

भ्यासे सति समुपजातपक्षो जलधेरपि पारमुत्पतति, तद्वदन्योऽप्याश्रयविशेषोपाधि-  
कादभ्यासाद्विशिष्टामपि गतिमासादयतीति सम्भाष्यम् । पक्षविशेषलाभादेवासौ  
दूरतरदेशगामी भवतीति नाभ्यासबलेनेति चेत् । नहि सञ्जातपक्षोऽपि सहसैवो-  
ज्जीय गच्छन् दृश्यते शकुनिशावः, किं तर्हि ?, शास्त्रान्तराच्छास्त्रान्तरगमनक्रमेणा-  
भ्यस्य कियन्मात्रं गमनं पश्चादपास्तशक्नो दूरतरमपि देशं व्रजति । किञ्च—आश्र-  
यविशेषलाभे सति यथा हंसादेः प्रागशक्तस्यापि सतः पश्चाद्गतिर्विशेष्यते तथा भग-  
वतोऽपि बोधिसत्त्वावस्थायामशक्तस्यापि सतः पश्चात्समाधिविशेषलाभादासादिता-  
श्रयविशेषस्य तथाविधा गतिः सम्भाव्यत इत्येवम्परमेतत् । अभ्यासग्रहणमतन्त्रम् ।  
प्रयोगः—यः सम्भवदाश्रयविशेषोपाधिरभ्यासः स सम्भवदत्यन्तदूरगमनफलः,  
यथा राजहंसशिशोरभ्यासः, सम्भवदाश्रयविशेषोपाधिर्मनुष्याणामभ्यास इति स्व-  
भावहेतुः ॥ ३४२८ ॥ ३४२९ ॥ ३४३० ॥

यदुक्तं दशहस्तान्तरमित्यादि तदपास्तमिति दर्शयति—दशेत्यादि ।

दशहस्तान्तरव्योम्नस्तथवुत्प्लुत्य गच्छति ।

शक्तिः स्यादीदृशी हेतोस्तस्य दूरगतावपि ॥ ३४३१ ॥

स्थिराश्रयत्वे सतीति विशेषणोपादानादुदकतापेन नानैकान्तिक इति दर्शयति—  
उष्णतामित्यादि ।

उष्णतां नीयमानस्य क्षयो भवति चाग्भसः ।

अस्थैर्यादाश्रयस्यातः कस्य कस्मिन्प्रकृष्टता ॥ ३४३२ ॥

स्यादेतत्, प्रज्ञादेस्तु स्थिराश्रयत्वमेव कथं सिद्धमित्याह—मानसानामित्यादि ।

मानसानां गुणानां तु चित्तसन्ततिराश्रयः ।

साऽधारयोगतो वृत्ताद् कथंचिन्नवर्त्तते ॥ ३४३३ ॥

सेति । चित्तसन्ततिः । आधारयोगतो वृत्तादिति । बोधिसत्त्वाश्रयलक्ष-  
णाधारसम्बन्धेन प्रवृत्तेरित्यर्थः । विशिष्टसाधारस्य विवक्षितत्वात् । तथाहि—पर-  
लोकस्य प्रसाधितत्वाद्बोधिसत्त्वानां च सात्मीभूतमहाकृपाणामासंसारमशेषसत्त्वो-  
द्धरणायवस्थानात्तदाश्रयवर्त्तिनी चित्तसन्ततिरतितरां स्थिराश्रया । या तु श्रावका-  
दीनां सन्तानवर्त्तिनी सा न स्थिराश्रया तेषां शीघ्रतरं परिनिर्वाणान्मन्दत्वात् कृपा-  
यास्तेषामवस्थाने यत्नाभावादिति भावः ॥ ३४३३ ॥

द्वितीयमपि विशेषणं कथं सिद्धमिति चेदाह—यावदित्यादि ।

यावथावद्गुणौघोऽस्यामाभिमुख्येन वर्त्तते ।

प्रभास्वरतरा तावत्सुतरामेष वर्त्तते ॥ ३४३४ ॥

एतदेव कथं सिद्धमित्याह—प्रभास्वरमित्यादि ।

प्रभास्वरमिदं चित्तं तत्त्वदर्शनसात्मकम् ।

प्रकृत्यैव स्थितं यस्मान्मलास्त्वागन्तवो मताः ॥ ३४३५ ॥

एतच्च पूर्वमेव व्याख्यातमस्माभिः । एते च प्रकृत्या तत्त्वदर्शनात्मकतया चित्तस्य स्वभावभूताः प्रज्ञादयो विशेषा इति प्रतिपादितमिति स्वभावत्वेन प्रज्ञादीनां सकृदाहितानां स्वरसत एव प्रवृत्तिर्भवतीति सिद्धम् ॥ ३४३५ ॥

द्वितीयमपि विशेषणं तत्त्वदर्शनात्मकमेव विज्ञानस्य कथं सिद्धमिति चेदाह—परबोधात्मेत्यादि ।

परबोधात्मनियतं चेतो यदि हि सम्भवेत् ।

तदाऽसिद्धोपलम्भत्वादर्थवित्तिर्न सम्भवेत् ॥ ३४३६ ॥

तस्मात्स्वसंवेदनात्मत्वं चेतसोऽस्ति प्रकाशनात् ।

अनारोपितरूपा च स्वसंवित्तिरियं स्थिता ॥ ३४३७ ॥

मुख्यं हि तावच्चित्तस्य स्वसंवेदनमेव रूपमित्यवश्यं सर्ववादिमिरभ्युपेयम्, अन्यथा यदि परेण ज्ञानान्तरेण बुध्यत इति स्यात्तदाऽप्रसिद्धोपलम्भत्वेनार्थवित्तिर्न सिद्धयेत् । तस्मान्मुख्यं चेतस आत्मप्रकाशनमेव रूपम् । स चात्मा तस्यानित्यादिरूप इति सामर्थ्यात्तत्त्वदर्शनात्मकमेव चित्तं सिद्धमिति भावः ॥ ३४३६ ॥ ३४३७ ॥

स्यादेतत्—भवतु तत्त्वदर्शनात्मकं चेतस्तथाऽपि प्रहीणानामपि बलेन पुनरुत्पत्तिसम्भवात्सर्वेषामेव यथोक्तानां हेतूनामनैकान्तिकता दुर्निवारेत्याशङ्क्याह—मार्गे सात्म्यमित्यादि ।

मार्गे सात्म्यमतो याते तेत(तैस्त ?)स्याभिभवो न हि ।

रागद्वेषादिभिर्दोषैस्ते हि प्रागेव दुर्बलाः ॥ ३४३८ ॥

सात्मीभावाच्च मार्गस्य सर्वापक्षालनाशिनः ।

न यत्नेन विना हानिर्यत्नो न गुणदर्शनात् ॥ ३४३९ ॥

अतो निर्मलनिष्कम्पगुणसन्दोहभूषणः ।

दोषवानाधिकम्प्यात्मा सर्वज्ञो गम्यते जिनः ॥ ३४४० ॥



मार्गे(र्गे?)सात्मीभावात्प्रागपि यदा रागादयो मला आगन्तुकतया दुर्बलत्वा-  
न्मार्गमभिभवितुमसमर्थास्तदा सात्मीभावगते मार्गे कथं तगमिभविष्यन्ति । किञ्च  
— सात्मीभावमुपगतस्य .चेतोगुणस्य श्रोत्रियस्य जोर्दिग(?)नैर्घृण्यवन्न यत्नमन्तरेण  
प्रहाणं शक्यं कर्तुम् । न च गुणवति वस्तुनि तत्त्वदर्शिनः प्रहाणाय यत्नः सम्भवति ।  
कस्मात् ? गुणदर्शनात् । एतच्च पूर्वमावेदितमेव । अपक्षालः—दोषः ॥ ३४३८ ॥  
॥ ३४३९ ॥ ३४४० ॥

अथवा—यदेव वस्तुत्वादि त्वया सर्वज्ञप्रतिषेधायोक्तं तदेव तत्साधने पर्याप्त-  
मिति दर्शयितुं व्याप्तिं तावद्द्वस्तुत्वादेर्हेतोः साधयन्नाह— किञ्चेत्यादि ।

किञ्च ये ये ति(वि?)भाव्यन्ते ते ते भ्रा(भा?)न्ति परिस्फुटम् ।

भावनापरिनिष्पत्तौ कामादिविषया इव ॥ ३४४१ ॥

सर्वधर्माश्च भाव्यन्ते दीर्घकालमनेकधा ।

शून्यानात्मादिरूपेण तात्त्विकेन महात्मभिः ॥ ३४४२ ॥

शून्यानात्मादिरूपस्य भाविकत्वं च साधितम् ।

भूतार्थभावनोद्भूतेः प्रमाणं तेन तन्मतम् ॥ ३४४३ ॥

तत्रायं मौलः प्रयोगो वक्ष्यमाणः । ये वस्तुत्वज्ञेयत्वादिधर्मयोगिनस्ते सम्भव-  
द्भावनाप्रकर्षपर्यन्तवर्त्येकज्ञानस्फुटप्रकाशनाः, तद्यथा—कामिनीपुत्रचोरादयः का-  
माद्युपप्लुतैर्भाव्यमानाः, सर्वधर्माश्च वस्तुत्वादिधर्मयोगिन इति स्वभावहेतुः । न चाय-  
मनैकान्तिकः । तथाहि—यद्यद्भूतमभूतं वा भाव्यते तत्सर्वं भावनानिष्पत्तौ स्फुटप्र-  
तिभासज्ञानफलं सिद्धम्, यथा कामुकादेरज्ञानादयो विषयाः, सर्वे च धर्मा भाव्यन्ते  
दीर्घकालं सात्मीभूतकृपैस्नात्त्विकेन रूपेणेति स्वभावहेतुः । अनेन स्फुटप्रतिभासेन  
ज्ञानफलेन भावना व्याप्तेति दर्शितम्, अर्थान्तरानपेक्षितत्वात्स्फुटप्रतिभासस्य ता-  
त्त्विकत्वमेव शून्यादिरूपस्य कथं सिद्धमित्याह—शून्येत्यादि ॥ ३४४१ ॥ ३४४२ ॥  
॥ ३४४३ ॥

एतच्च शून्यादिज्ञानं प्रत्यक्षप्रमाणं साधयन्नाह—प्रत्यक्षमित्वादि ।

प्रत्यक्षं व्यक्तभासित्वात्प्रमाणं वस्तुसङ्गतेः ।

अक्षुराद्याश्रयोद्भूतमीलादिप्रतिभासवत् ॥ ३४४४ ॥

सम्भवत्येकविज्ञाने सकृत्स्पष्टावभासनम् ।

सर्वेषामपि धर्माणामतश्चैवं प्रतीयताम् ॥ ३४४५ ॥

तथा विभाव्यमानत्वाद्भङ्गनात्मजचोरवत् ।

इच्छामात्रमुखीभावा भावनापि न दुर्लभा ॥ ३४४६ ॥

स्फुटप्रतिभासित्वेनाविकल्पतया प्रमाणप्रसिद्धार्थविषयत्वेनाविसंवादितया चक्षुरादिज्ञानवत्प्रत्यक्षप्रमाणमेतत् । ततश्च भावनामात्रभाविनि स्फुटप्रतिभासित्वे सिद्धे सिद्धमेव सर्वधर्माणामेकज्ञाने युगपत्स्फुटप्रतिभासनमिति सिद्धा व्याप्तिः सम्भवत्येकविज्ञाने सर्वधर्माणां सकृत्स्पष्टावभासनमिति । प्रयोगः—ये ये विभाव्यन्ते ते सम्भवत्सकृदेकविज्ञानस्फुटप्रतिभासना यथाऽङ्गनादयः । सर्वधर्माश्च विभाव्यन्ते इति स्वभावहेतुः । न चायमसिद्धो हेतुर्मन्तव्य इत्यादर्शयन्नाह—इच्छेत्यादि । पूर्वं च विस्तरेण भावनासम्भवस्य प्रतिपादितत्वादिति नासिद्धो हेतुः ॥ ३४४४ ॥ ३४४५ ॥ ॥ ३४४६ ॥

एवं स्फुटप्रतिभासित्वस्य भावनामात्रानुबन्धित्वप्रतिपादनेन व्याप्तिं प्रसाध्य साम्प्रतं मौलं प्रमाणार्थं दर्शयन्नाह—भावनेत्यादि ।

भावनोत्कर्षनिष्ठैकबुद्धिस्पष्टप्रकाशनाः ।

वस्तुसत्त्वादिहेतुभ्यः सर्वधर्माः प्रियादिवत् ॥ ३४४७ ॥

एवं च यस्य वस्तुत्वसत्त्वोत्पादादिलक्षणाः ।

निश्चये हेतवः शक्ताः को न तं साधयिष्यति ॥ ३४४८ ॥

एकज्ञानक्षणव्याप्तनिःशेषज्ञेयमण्डलः ।

सुरासुरशिरोरत्नभूतः सिद्धोऽत्र सर्ववित् ॥ ३४४९ ॥

भावनोत्कर्षस्य निष्ठा यस्यामेकबुद्धौ सा तथोक्ता । गमकत्वाद्वैयधिकरण्येऽपि बहु-ब्रीहिः । भावनोत्कर्षनिष्ठायामेकबुद्धौ स्पष्टं प्रतिभासनं येषां ते तथोक्ताः । यस्य च ज्ञाने ते तथा भासन्ते स सकृदेकज्ञानव्याप्ताशेषज्ञेयमण्डलः सकलसुरासुरचूडामणिभूतः सिद्धः सर्वज्ञ इति ॥ ३४४७ ॥ ३४४८ ॥ ३४४९ ॥

ज्ञाता धर्मादयो वै ते केनचिद्ब्रूवनाहते ।

सत्यात्मनोपदिष्टत्वात्कनकादिविशुद्धिवत् ॥ ३४५० ॥

अथवा ये सत्यात्मनोपदिष्टास्ते केनचिद्विदिताः, यथा कनकविशुद्ध्यादयः, सत्यात्मना चोपदिष्टा धर्मादय इति स्वभावहेतुः ॥ ३४५० ॥

स्यादेतत्—वेदतोऽपि ज्ञात्वोपदेशसम्भवात्सिद्धसाध्यतेति चेदाह—वेदानामित्यादि ।

वेदानां पौरुषेयत्वे सिद्धे सिद्धं न साधनम् ।

अज्ञातस्योपदेशोऽस्ति तथ्यो यादृच्छिको नरः(हि?) ॥३४५१॥

पूर्वं श्रुतिपरीक्षायां वेदानां पौरुषेयत्वस्य प्रसाधितत्वान्न सिद्धसाध्यता । अथापि स्यादज्ञात्वा यदृच्छयाऽप्युपदेशसम्भवादनेकान्तिकतेत्याह—अज्ञातस्येत्यादि । नञ्-ज्ञात्वा यदृच्छया प्रमाणाविरुद्धं नियमेन बहु शक्यं भाषितुम् ॥ ३४५१ ॥

मुद्रामण्डलमन्त्रादेर्यत्सामर्थ्यमतीन्द्रियम् ।

पिशाचडाकिनीमोक्षविषापनयनादिषु ॥ ३४५२ ॥

श्रुतानुमानभिन्नेन साक्षाज्ज्ञानेन निर्मलम् ।

मुनिताक्षर्यादिविज्ञानं न चेत्तद्गदितं कथम् ॥ ३४५३ ॥

किञ्च—यदेतन्मन्त्रादीनां विषापनयनादिसामर्थ्यमत्यन्तपरोक्षं तद्यदि बुद्धा-दिभिः साक्षान्न विदितं तत्कथं तैर्भाषितमिति वक्तव्यम् ॥ ३४५२ ॥ ३४५३ ॥

अनुमानतो ज्ञात्वा भाषितमिति चेदाह—न चानुमानत इत्यादि ।

न चानुमानतो ज्ञानं तस्य पूर्वमदृष्टितः ।

तेन लिङ्गस्य सम्बन्धदर्शनानुपपत्तिनः ॥ ३४५४ ॥

नञ्चविदितलक्षणसम्बन्धं वस्त्वनुमानविषयः, न च तेनात्यन्तपरोक्षेण वस्तुना सह कस्यचिद्विज्ञस्य सम्बन्धः शक्यते निश्चेतुम् ॥ ३४५४ ॥

श्रुत्वा न चान्यतः प्रोक्तं तुल्यपर्यनुयोगतः ।

न यदृच्छाविसंवादिरूपमीहक् च भावितम् ॥ ३४५५ ॥

देशनैवम्परैवेयं नान्यहेतूपकल्पना ।

हेत्वन्नरकृतायां हि वृत्तौ तन्नाम शङ्कयते ॥ ३४५६ ॥

पिपासाकुलचित्तस्य बाहिनीमुपमर्षतः ।

तथा विद्रुमसम्प्राप्तेर्युक्ता यादृच्छिकी स्थितिः ॥ ३४५७ ॥

परतः श्रुत्वा प्रोक्तमिति चेन्न, तस्यापि तुल्यपर्यनुयोगात् । तथाहि—तथाऽप्ययं विचारोऽवतरति तेनापि परेण कथं ज्ञातम्, नञ्ज्ञात्वा तथोपदेशः सम्भवेत्, तेनाप्यन्यतो ज्ञातमिति चेत्, एवं तर्कानवस्था स्यात्, ततश्चान्धपरम्परायां सत्यां सर्वेषामनमिज्ञत्वान्न सम्प्रगुपदेशः स्यात् । यथोक्तम्—नैवज्ञातीयकेष्वर्थेषु पुरुषवचनं प्रामाण्यमुपैति, अन्धानामिव वचनं रूपविशेषेष्विति । स्यादेतदविसंवादित्वं घुणा-

क्षरवद्याहच्छिकमपि सम्भाव्यत इत्याशङ्क्याह—न यदृच्छेत्यादि । यदृच्छया अविसंवादस्तदेव रूपं यस्येति विग्रहः । अन्यार्थसमीहया प्रवृत्तस्यार्थान्तरसंवादो यादृच्छिकः सम्भाव्यते । यथा नदीदेशोपसर्पणाभिप्रायेण प्रवृत्तस्य वृक्षमूलोपसर्पणम् । न चात्रान्यार्थाभिप्रायेण प्रवृत्तिः सम्भवति, तथाहि—धर्मो वो भिक्षवो देशयिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञाय प्रवृत्तेर्धुर्माद्युपदेशपरैवेयं देशना, नान्यार्थपरेत्यवसीयते । वाहिनी—नदी । विद्रुमो—वृक्षः । प्रवालं वा ॥ ३४५५ ॥ ३४५६ ॥ ३४५७ ॥

मोहादप्युपदेशसम्भवादनैकान्तिकतेति चेदाह—विक्षिप्तचेतसामित्यादि ।

**विक्षिप्तचेतसामेतन्मूढानां न च भाषितम् ।**

**नियतानुक्रमं हीदं प्रकृष्टं फलसाधकम् ॥ ३४५८ ॥**

नहि नियतानुपूर्वीकं पूर्वापरान्व्याहृतं पुरुषार्थसाधकं वाक्यं विक्षिप्तचेतोभिरनल्पं भाषितुं शक्यम् । तस्मात्सिद्धं केनचित्साक्षाद्धर्मादयो विज्ञाता इति ॥ ३४५८ ॥

स्यादेतत्—यदि नाम सामान्येन सिद्धम्, तथाऽपि सुगते धर्मज्ञत्वं साधयितुमिष्टम्, तत्ते कथं सिद्धयतीत्याशङ्क्य भगवति धर्मज्ञत्वं साधयन्नाह—योऽश्रुतानुमितमित्यादि ।

**योऽश्रुतानुमितं सत्यं तत्परोऽर्थं प्रकाशते ।**

**प्रकाशज्ञानतद्रूपः स तादृक्प्रतिपादकः ॥ ३४५९ ॥**

**प्रत्यक्षदृष्टनीरादिर्यथाऽन्यः प्रतिपादकः ।**

**अश्रुतानुमितं सत्यं तत्परस्वार्थमुक्तवान् ॥ ३४६० ॥**

**अतीन्द्रियं पराज्ञातसामर्थ्यं परिनिश्चयात् ।**

**मुद्रामण्डलकल्पादि लक्षणं मुनिसत्तमः ॥ ३४६१ ॥**

प्रयोगः—यस्तत्परोऽश्रुतानुमितसत्यार्थोपदेशी (स) साक्षाद्विविदिततदर्थतत्त्वः, यथा प्रत्यक्षज्ञातसलिलादिस्मन्दुपदेष्टा, तथा च भगवानिति स्वभावहेतुः । सत्यत्वादेः प्रसाधितत्वान्नासिद्धता हेतोः । नाप्यनैकान्तिकतेति प्रतिपादितमेतत् । सर्वेषां च हेतूनां सपक्षे सत्त्वान्न विरुद्धतेति मन्तव्यम् । पराज्ञातसामर्थ्यमिति । परैरज्ञातं सामर्थ्यं यस्य मुद्रादेस्तत्तथोक्तम् ॥ ३४५९ ॥ ३४६० ॥ ३४६१ ॥

यदुक्तम्, 'तस्मादतिशयज्ञानैरित्यादि, तत्राह—तस्मादित्यादि ।

**तस्मादतिशयज्ञानैरुपायबलवर्तिभिः ।**

**सर्व एवाधिको ज्ञातुं शक्यते योऽप्यतीन्द्रियः ॥ ३४६२ ॥**

एकापरकस्थस्येत्यादावाह—एकेत्यादि ।

एकापरवरकस्थस्य प्रत्यक्षं यत्प्रवर्तते ।

शक्तिस्तत्रैव तस्य स्यान्नैवापरकान्तरे ॥ ३४६३ ॥

इत्येतत्सर्वसत्त्वस्थसामर्थ्यानुभवे सति ।

निश्चेतुं भवतो युक्तमन्यथा किंनिबन्धनम् ॥ ३४६४ ॥

एतत्प्रतिज्ञामात्रप्रमाणकमेवोक्तं भगव(भव ?)ता, नष्टवर्गदर्शिनानुपलम्भमात्रेण सर्वपुंसामतीन्द्रियार्थज्ञानाशक्तिर्निश्चेतुं पार्यते ॥ ३४६३ ॥ ३४६४ ॥

स्यादेतत्—नानुपलम्भमात्रेणास्माभिरशक्तिनिश्चयः क्रियते । किं तर्हि ? । पुरुषत्वादिभ्यो हेतुभ्यः । तथाहि—सर्व एव पुरुषा दूरव्यवस्थितादिपरार्थपरिज्ञानासमर्थाः पुरुषत्ववस्तुत्वज्ञेयत्वादिभ्यो यथाऽहमिति, अत्राह—आत्मोदाहरणेनेत्यादि ।

आत्मोदाहरणेनान्यसामर्थ्याभाषनिश्चये ।

पुरुषत्वादिहेतुभ्यः कार्ये चातिप्रसज्यते ॥ ३४६५ ॥

एवं हि भवतो जाड्ये निश्चिते सर्वसूरयः ।

त्वद्बुदाहरणेनैव भवेयुर्जडबुद्धयः ॥ ३४६६ ॥

निश्चय इत्येतस्य कार्यं इत्येतेन सामानाधिकरण्यम् । अत्रानैकान्तिकता हेतूनामतिप्रसङ्गात् । तथाहि—इदमपि शक्यं वक्तुम्—सर्व एव पुरुषा जडबुद्धयः पुरुषत्वादिभ्यो यथा भवानिति । न चैवं भवति । नह्येकत्र पुरुषेऽदृष्टस्य धर्मस्य सर्वत्राभावः शक्योऽवसातुम्, पुरुषाणां विशेषदर्शनात् ॥ ३४६५ ॥ ३४६६ ॥

यच्च ऋतुपर्णेनोक्तम्—सर्वः सर्वं न जानातीत्यादि, तदपि प्रतिज्ञामात्रमेवाप्रमाणकं तेनोक्तमित्यादर्शयन्नाह—नैकत्रेत्यादि ।

नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति ज्ञानस्य पुरुषे क्वचित् ।

इतीदमपि वाङ्मात्रमहेतुकमुदाहृतम् ॥ ३४६७ ॥

अथवाऽत्मसमानपुरुषानभिसन्धाय ऋतुपर्णेन भाषितम्, तेनाविरोधादज्ञापकमेतदित्यादर्शयन्नाह—स्वसमानित्यादि ।

स्वसमानथवा सत्त्वानविशुद्धधियो जडान् ।

अधिकृत्य तथा वाक्यमृतुपर्णेन कीर्तितम् ॥ ३४६८ ॥

प्रमाणं विस्तरेणोक्तं सर्वज्ञस्य च सम्भवे ।  
 बाधकं च प्रतिक्षिप्तं तस्य पूर्वं परोदितम् ॥ ३४६९ ॥  
 अनुक्तेऽप्यथवा तस्मिन्तस्य सम्भवसाधने ।  
 बाधकापोहमात्रेण गम्यते तस्य सम्भवः ॥ ३४७० ॥  
 तथाहि बाधके(ऽ)दृष्टे साधके चाप्रकाशिते ।  
 संशयो जायते तेन याति सम्भावनामसौ ॥ ३४७१ ॥  
 तस्मिन्मन्भाव्यमाने च नियमस्तेन सिद्धयति ।  
 वेदेनैव स्वतन्त्रेण धर्मो लक्ष्यत इत्ययम् ॥ ३४७२ ॥

स्वेनात्मना समास्तुल्याः स्वसमाः ; ३४६८ ॥ ३४६९ । ३४७० ॥ ३४७१ ॥

॥ ३४७२ ॥

अनागते न दृष्टमित्यादावाह—अनागते चेत्यादि ।

अनागते च विज्ञेये प्रत्यक्षस्य तथा भवेत् ।  
 सामर्थ्यं योगिनामुक्तं तत्रैकाल्यपरीक्षणे ॥ ३४७३ ॥

तत्रैकाल्यपरीक्षण इति । तत्र ह्येवमुक्तम्—सर्व एव हि भावाः साक्षात्पारम्पर्येण वा कार्यकारणतां गताः, तत्र वर्तमानमेव वस्त्वतीतस्य साक्षात्पारम्पर्येण वा कार्यभूतम्, अनागतस्य तु कारणभूतम् । प्रत्यक्षेण यथाऋत्सर्वाकारमनुभवन्तस्तःषु-  
 ष्टलब्धैः शुद्धलौकिकैः परमार्थतो निर्विषयैर्वस्तुप्रतिबन्धाद्विसंवादिभिर्विकल्पैर्हेतुफ-  
 लभूतामतीतानागतां च भावसन्ततिमालम्ब्यातीतानागतं वस्तु व्यवस्थापयन्ति  
 योगिन इति । यदाह—“पारम्पर्येण साक्षाद्वा कार्यकारणतां गतम् । यद्रूपं वर्तमा-  
 नस्य तद्विजानन्ति योगिनः ॥ अनुगच्छन्ति पश्चाच्च विकल्पानुगतात्मभिः । शुद्ध-  
 लौकिकविज्ञानैस्त्वतो विषयैस्सि ॥ तद्धेतुफलयोर्भूतां भाविनीं चैव सन्ततिम् ।  
 समाश्रित्य प्रवर्तन्तेऽतीतानागतदेशनाः ॥” इति ॥ ३४७३ ॥

एतच्च सौत्रान्तिकानां नेष्टं सर्वत्र भगवतः साक्षाद्दर्शित्वाभ्युपगमादित्यतः सौत्रा-  
 न्तिकदृष्टामीष्टमतमादर्शयन्नाह—यदि चेत्यादि ।

यदि वा योगसामर्थ्याद्भूताजातनिभं स्फुटम् ।  
 लिङ्गागमनिराशंसं मानसं योगिनां भवेत् ॥ ३४७४ ॥

यथाहि सत्यस्वप्नदर्शिनो ज्ञानमविषयमपि परमार्थतो लिङ्गागमानपेक्षं चाश्रय-

विशेषवशादुत्पद्यमानमविसंवादि भवति, तथा योगबलेन यथैव तदभूद्भ-  
विष्यति वातीतमनागतं वस्तु तथैव स्फुटप्रतिभासं लिङ्गागमानपेक्षं जायते । तच्च  
प्रत्यक्षं प्रमाणमिष्यते ॥ ३४७४ ॥

स्यादेतत्—स्वलक्षणविषयं प्रत्यक्षमिष्यते, न चातीतमनागतं स्वलक्षणतोऽस्ति,  
तत्कथं स्वलक्षणविषयं युज्यत इत्याह—स्वात्मेत्यादि ।

**स्वात्मावभाससंवित्तस्तस्वलक्षणगोचरम् ।**

**स्पष्टावभाससंवेदात्तच्च प्रत्यक्षमिष्यते ॥ ३४७५ ॥**

**तस्मादतीन्द्रियार्थानां साक्षाद्द्रष्टैव विद्यते ।**

**नित्यस्य वचसोऽसत्त्वात्तेन कश्चिन्न पश्यति ॥ ३४७६ ॥**

यद्यप्यतीतादि वस्तु स्वलक्षणतो नास्ति, तथाप्यात्मसंवेदनास्वलक्षणविषयत्वेन  
शास्त्रे निर्दिष्टमित्यविरोधः । तच्च स्फुटप्रतिभासतया प्रकरणापोढं तथाविधवस्त्ववि-  
संवादाच्चाभ्रान्तमित्यतः प्रत्यक्षलक्षणोपेतत्वात्प्रत्यक्षमिति सिद्धम् ॥ ३४७५ ॥ ३४७६ ॥

एतदक्षमभाणो य इत्यादावाह— अतीन्द्रियार्थविज्ञानमित्यादि ।

**अतीन्द्रियार्थविज्ञानं पूर्वोक्तादनुमानतः ।**

**मुनेः सुमतयः प्राहुर्नान्यतस्त्वागमान्कृतात् ॥ ३४७७ ॥**

पूर्वोक्तादनुमानात्सिद्धमागमनिरपेक्षं भावनाबलनिष्पन्नमर्थसाक्षात्कारि यदती-  
न्द्रियार्थविज्ञानं तन्मुनेर्भगवतः सुधियः सौगताः प्राहुर्नान्यस्मात्कृतकादागमादि-  
त्यतः तदनभ्युपगमाद्दूषणमेव ॥ ३४७७ ॥

यच्चोक्तम्—कर्तृकृत्रिमवाक्यानामित्यादि, तत्राह—कर्तृकृत्रिमेत्यादि ।

**कर्तृकृत्रिमवाक्यानामुच्यते न त्वनादिता ।**

**प्रामाण्यसिद्धये यस्मात्साऽप्रमाणेऽपि वर्तते ॥ ३४७८ ॥**

**तथाहि नास्तिकादीनां तथा तद्वचसामपि ।**

**वेदानां च प्रवक्तृणां नानादित्वेऽपि मानता ॥ ३४७९ ॥**

नष्टानादिताऽस्माभिः प्रामाण्यसिद्धये साधनत्वेनोच्यते । तथा(स्या?)त्रिपक्षेऽपि-  
वृत्तेरनैकान्तिकत्वात् । अतोऽध्यारोप्य दूषणं भवताऽभिहितम् ॥ ३४७८ ॥ ३४७९ ॥

किञ्च—भवतामेव वेदप्रामाण्यासिद्धये वेदप्रवक्तृणां वेदानां चानादित्वं साधनं  
ब्रुवतां सर्वमेतद्दूषणं स्फुटतरमवरतीति दर्शयन्नाह—वक्त्रकृत्रिमवाक्यानामि-  
त्यादि ।

वक्त्रकृत्रिमवाक्यानामुच्यते नन्वनादिता ।

प्रामाण्यसिद्धयै माऽस्माभिः स्पर्द्धयैव निषिध्यते ॥ ३४८० ॥

वक्त्राश्चाकृत्रिमवाक्यानि चेति द्वन्द्वः । तत्र वक्तारो वेदानां व्याख्यातारः ॥ ३४८० ॥

कथं निषिद्धयन्त इत्याह—वक्तार इत्यादि ।

वक्तारः कर्तृभिस्तुल्यास्तदपेक्षा च मानता ।

वेदानां तत्कृताख्यानादर्थप्रत्ययजन्मतः ॥ ३४८१ ॥

तदपेक्षेति । वक्त्रपेक्षा । कथमित्याह—तत्कृताख्यानादिति । तैर्वक्त्रभिः कृता-  
द्व्याख्यानादर्थप्रतीत्युत्पत्तेः कारणात्तदपेक्षा मानता वेदानाम् ॥ ३४८१ ॥

ततश्च को दोष इत्याह—अत इत्यादि ॥

अतो न वेदवाक्यानां पारतन्व्यात्प्रमाणता ।

अपश्यतां स्वयं धर्मं वक्त्राणामपि नैव सा ॥ ३४८२ ॥

तदीदृशां प्रवक्त्राणां कल्प्यमानाप्यनादिता ।

अप्रामाण्यपदस्थत्वान्नास्तिकादेर्न भिद्यते । ३४८३ ॥

तदज्ञानविशेषत्वात्सर्वं यात्यत्र तुल्यताम् ।

न भानत्वाप्रमाणत्वे स्यातामेवमनादिनी ॥ ३४८४ ॥

नैवेति । प्रमाणतेति सम्बन्धः । यदा चैवं वेदवाक्यानां पारतन्व्यात्प्रमाणता  
नास्ति तद्वक्त्राणां च सर्वेषामन्धपरम्परावद्धर्ममपश्यतामप्रामाण्यम्, अतो यत्परे-  
णोक्तम्—“प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्यातामेवमनादिनी” इति, तदयुक्तमित्यादर्शयन्नाह  
—न भानत्वाप्रमाणत्वे स्यातामेवमनादिनी इति । सिद्धे हि वक्त्रकृत्रिमवाक्यानां  
प्रामाण्ये प्रमाणत्वस्यानादित्वं स्यात्, यावता तदेव न सिद्धमित्ययुक्तं द्वयोरनादि-  
त्वमिति भावः ॥ ३३८२ ॥ ३४८३ ॥ ३४८४ ॥

किञ्च—यदेतदस्माभिर्वेदतदध्यायिनां बुद्धतद्वाक्यैः मह तुल्यत्वमापादितं तत्प-  
र्द्धयैव, न पुनर्भगवतां तद्वाक्यानां चैतैस्तुल्यत्वमस्ति, अपि तु विशेषो महानिति  
दर्शयन्नाह—यद्वेत्यादि ।

यद्वाऽस्त्येव विशेषोऽयं मुनौ तद्वचनेषु च ।

स दृष्टवान्स्वयं धर्ममुक्तवांश्च कृपाभयः ॥ ३४८५ ॥

तथाहि प्रसाधितमेतत् । यथा भगवान्साक्षाद्धर्मं दृष्टवान्निर्दिष्टवांश्चेति । अतोऽ-  
पश्यतां स्वयं धर्ममित्येतदसिद्धमिति भावः ॥ ३४८५ ॥



स्यादेतत्—धर्ममुक्तवान्स इत्येतदेव कथं सिद्धमित्याह—यतोऽभ्युदयेत्यादि ।

यतोऽभ्युदयनिष्पत्तिर्यतो निःश्रेयसस्य च ।

स धर्म उच्यते तादृक्सर्वैरेव विचक्षणैः ॥ ३४८६ ॥

निःश्रेयसस्य चेति । यतो निष्पत्तिरिति सम्बन्धः । तत्राभ्युदयः सुखं मोक्षो निःश्रेयसम् । स धर्म उच्यते तादृगिति । 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससंसिद्धिः स धर्म' इति वचनात् ॥ ३४८६ ॥

भवतु नामाभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिहेतुर्धर्मः, अस्य तु सुगतवचनस्य कथं तद्धेतुत्वं सिद्धम्, येनास्य धर्मज्ञत्वं भवेदित्याह—तदुक्तेत्यादि ।

तदुक्तमन्त्रयोगादिनियमाद्विधिवत्कृतात् ।

प्रज्ञारोग्यविभुत्वादिदृष्टधर्मोऽपि जायते ॥ ३४८७ ॥

तेन भगवतोक्तश्चासौ मन्त्रयोगादिनियमश्चेति विग्रहः । योगः समाधिः । आदि-शब्देन मुद्रामण्डलादिपरिग्रहः । दृष्टधर्मोऽपीति । अस्मिन्नेव जन्मनि, न केवलं परलोक इत्यपिशब्देन दर्शयति ॥ ३४८७ ॥

एवमभ्युदयहेतुत्वमुपदर्शयति निःश्रेयसहेतुत्वं दर्शयन्नाह—समस्तेत्यादि ।

समस्तधर्मनैरात्म्यदर्शनात्तत्प्रकाशितात् ।

सत्कार्यदर्शनोद्भूतक्लेशौघस्य निवर्तनम् ॥ ३४८८ ॥

आत्मात्मीयदृगाकारसत्त्वदृष्टिः प्रवर्तते ।

अहं ममेति माने च क्लेशोऽशेषः प्रवर्तते ॥ ३४८९ ॥

सत्त्वदृक्प्रत्यनीकं च तन्नैरात्म्यनिदर्शनम् ।

अभ्यासात्सात्म्यमायाते तस्मिन् सा विनिवर्तते ॥ ३४९० ॥

तन्मूलक्लेशराशिश्च हेत्वभावात्प्रती(ही?)यते ।

तस्मिन्नसति तद्धेतुर्न पुनर्जायते भवः ॥ ३४९१ ॥

तदत्यन्तविनिर्मुक्तेरपवर्गश्च कीर्त्तते ।

अद्वितीयशिवद्वारमतो नैरात्म्यदर्शनम् ॥ ३४९२ ॥

सर्वेषामपि तीर्थानामहङ्कारनिवर्तनात् ।

मुक्तिरिष्टाऽऽत्मसत्त्वे च नाहङ्कारो निवर्तते ॥ ३४९३ ॥

शक्तकारणसद्भावाद्विषयस्याप्यदूषणात् ।

तद्वषणे त्वभावेन विपर्यासः प्रसज्यते ॥ ३४९४ ॥

जन्मप्रबन्धात्यन्तोपशमो हि सर्वेषामेव मोक्ष इतीष्टम्, तस्य च प्राप्तिहेतुर्भगवद्ब्रचनमेव, जन्महेतुकेशप्रतिपक्षभूतस्य नैरात्म्यदर्शनस्यात्रैवोपदेशात्, नान्यत्र । सर्वेषामेव चान्यतीर्थ्यानां वितथात्मदर्शनाभिनिविष्टत्वात् । अतो भगवद्ब्रचनमेवाभ्युदयनिःश्रेयसप्राप्त्युपायभूतत्वाद्धर्मलक्षणं युक्तं नान्यत् । तेनैतदेव श्रेयोर्धिभिराश्रेयं नान्यदिति समुदायार्थः । अवयवार्थस्तूच्यते—सत्कार्यदर्शनोद्भूतत्वं क्लेशोभ्रस्य कथं सिद्धमिति चेदाह—आत्मात्मीयेत्यादि । एतच्चास्माभिः पूर्वमेव व्याख्यातम् । यदि नाम क्लेशोऽयः सत्कार्यदर्शनोद्भूतस्तथापि कथमसौ नैरात्म्यदर्शनान्निवर्त्तत इत्याह—सत्त्वदृगित्यादि । सत्त्वदृक्—सत्त्वदर्शनम् । सत्कार्यदृष्टिरिति यावत् । तस्याः प्रत्यनीकम्—प्रतिपक्षः । एतदपि पूर्वं दर्शितमेव । तस्मिन्निति । नैरात्म्यनिदर्शने । सेति । सत्त्वदृक् तन्मूल इति । सत्त्वदृग्मूलः । हेत्वभावादिति । सत्त्वदर्शनाख्यस्य हेतोरभावात् । तस्मिन्निति । क्लेशराशौ । तद्धेतुरिति । क्लेशराशिहेतुः । न जायत इति । नहि कारणभावे कार्यस्योत्पादो युक्तो निर्हेतुकत्वप्रसङ्गात् । तदत्यन्तविनिर्मुक्तिरिति । तेषां क्लेशानां तस्या वा पुनर्भवस्यात्यन्तं पुनरूपत्तितो विमुक्तिस्तदत्यन्तविनिर्मुक्तिः । यथाहुः—‘तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्ग’ इति । ननु चान्यमतेष्वपि तत्त्वदर्शनं निःश्रेयसहेतुरभ्युदयहेतवश्च दश कुशलाः कर्मपथाः प्रोक्ताः, तत्कथं नैरात्म्यदर्शनमेवाद्वितीयं मोक्षद्वारमित्युच्यत इत्याह—सर्वेषामित्यादि । तथाहहङ्कारोद्भवत्वात्कन्धानां तन्निवृत्तौ मुक्तिरिति सर्वेषामेव मुमुक्षुणामत्राविवादः । सा चाहङ्कारनिवृत्तिरन्यतीर्थ्यानां न संभवति, वितथात्मदर्शनाभिनिविष्टत्वात्तेषाम्, अहङ्कारस्य चात्मदर्शनमूलत्वात् । तत्कथमयसात्मसत्त्वे—आत्मसत्त्वाभिनिवेशे स्थिते सत्यविकल्पकारणे, स्वविषये चात्मन्यविदूषिते, निवर्त्तत । यथोक्तम्—‘साहङ्कारे मनसि न शमं याति जन्मप्रबन्धो नाहङ्कारश्चलति हृदयादात्मदृष्टौ तु सत्याम् । अन्यः शास्ता जगति भवतो नास्ति नैरात्म्यवादी नान्यस्तस्मादुपशमविधेस्त्वन्मतादस्ति मार्गः’ इति । तथाहि—मनोधर्मा न कण्टकादिवदुत्कील्यापनेतव्याः । किं तर्हि ? । यथाभूतविषयाभिनिवेशेन ते प्रवृत्तास्तद्धेतुदूषणात् । विदूषयत्येवात्मानं योगीति चेदाह—तद्दूषणेत्यादि । तथाहि स विदूष्यमाणो नास्तीत्येवमभावाकारेण दूष्यः, अन्यथा तद्दूषणवैयर्थ्यं स्यात् । तथाहि—यदि सत्त्वेनात्मानमभिनिवेश्य दुःखहेतुत्वेन तं दूषयेत् । तदाऽनर्थकमेव दूषणं स्यात् । त्यागार्थं हि तद्दूषणम् । न च स्वतो नित्यस्य स्वभावभूतस्य त्यागः सम्भवतीत्यतोऽनर्थकमेव तदापद्यते । न चाभा

वाकारेण दूष्यस्तैरात्मा, आत्मनि सत्यासत्यत्वाभिनिवेशेन तेषां विपर्यासप्रसङ्गात्  
॥ ३४८८ ॥ ३४८९ ॥ ३४९० ॥ ३४९१ ॥ ३४९२ ॥ ३४९३ ॥ ३४९४ ॥

किंच भवतु नाम दुःखहेतुत्वादिनाऽन्येनाकारेण तस्य दूषणम्, तथाऽप्यात्मदर्श-  
नमात्रप्रभवस्याहङ्कारस्य निवृत्तिर्न युक्तेति दर्शयन्नाह—न युक्तमित्यादि ।

न युक्तं नाहमित्येवं यद्यहं नाम विद्यते ।

नियमात्तत्त्वविद्यानि निर्वाणमिति वा मृषा ॥ ३४९५ ॥

नाहमित्येवमिति । नाहमित्येवं दर्शनं न युक्तमित्यर्थः । यद्यहं नाम विद्यत  
इति । यद्यात्माऽस्तीत्यर्थः । तस्मात्तत्त्वविद्भवदीयो निर्वाणं यातीत्येतन्मृषा । यतोऽ-  
हङ्कारविगमान्मुक्तिरिष्टा, न चात्मनि विषयभूते स्थितेऽहङ्कारनिवृत्तिर्युक्तेति कुतो  
युक्तिः ॥ ३४९५ ॥

तस्मादित्यादिनोपसंहरति ।

तस्मादन्येषु तीर्थेषु दशाकुशलहानितः ।

लेशतोऽभ्युदयप्राप्तिर्यद्यप्यस्ति लघीयसी ॥ ३४९६ ॥

अपवर्गस्य तु प्राप्तिर्न मनागपि विद्यते ।

सत्त्वदृष्टिविशिष्टत्वात्क्लेशमूलानपोद्धृतेः ॥ ३४९७ ॥

दशाकुशलहानित इति । प्राणातिपातादत्तादानकाममिथ्याचारमृषावादपैशु-  
न्यपारुष्यासंभिन्नप्रलापाभ्यापादमिथ्यादृष्टयो दशाकुशलाः । यद्वा—परेषामपरि-  
त्राणमदानपरिचरणमसत्यमप्रियवचनमहितमस्वाध्यायः अश्रद्धा अदया स्पृहा चेति  
दशाकुशलानि पठ्यन्ते । तद्विपर्ययात् कुशलानि दश । तेषामकुशलानां हानिस्ततो  
विरतिर्दशकुशलानुष्ठानमिति यावत् । लघीयसीति । विपर्यासपूर्वकत्वात्तस्याः क्षिप्र-  
तरं भ्रंशात् । क्लेशमूलं सत्त्वदृष्टिरेव ॥ ३४९६ ॥ ३४९७ ॥

अभ्युदयहेतुत्वेनापि भगवद्वचनविशेषं दर्शयति—दशेत्यादि ।

दश कर्मयथा(पथाः ?)प्रोक्ताः शुभा ये तानिना पुनः ।

सम्यग्दृष्ट्युपगूढास्ते बलवन्तो भवन्त्यलम् ॥ ३४९८ ॥

बलवन्त इति । स्थिरोदारफल्गत्वात् ॥ ३४९८ ॥

इतरेऽपि कस्माद्बलवन्तो न भवन्तीत्याह—सत्त्वेत्यादि ।

सत्त्वदृष्ट्युपगूढास्तु विपर्यासानुषङ्गतः ।

अविशुद्धास्ततः शुद्धं फलं तेभ्यो न जायते ॥ ३४९९ ॥

तदेवं धर्मतत्त्वस्य देशके मुनिसत्तमे ।

अपश्यतः स्वयं धर्ममिति कः स्वस्थधीर्वदेत् ॥ ३५०० ॥

परिशुद्धादेव हि कारणात्परिशुद्धं फलं जायते नाविशुद्धात् । मुनिसत्तम इति ।  
मुनीनां बाह्यशैक्ष्याशैक्ष्याणां(?) मध्ये सत्तमः शोभनः मुनिसत्तमः । ३४९९ । ३५०० ॥

यच्चोक्तम्—‘सर्वज्ञत्वं च बुद्धादेर्या च वेदस्य नित्यता । तुल्ये जल्पन्ति’ इत्यादि,  
तत्राह—तायिन इत्यादि ।

तायिनः सर्वविज्ञत्वं या च वेदस्य नित्यता ।

तुल्ये जल्पन्ति नो विज्ञा नित्यताया असम्भवात् ॥ ३५०१ ॥

तस्या हि बाधकं प्रोक्तं क्रमाक्रमविरोधतः ।

विज्ञानादि न तत्कार्यं कथञ्चिदपि युज्यते ॥ ३५०२ ॥

तायिन इति । भगवतो बुद्धस्य । यदि वेदस्या(स्य?) नित्यता सम्भवेत्तदैवं  
स्याद्भुक्तम्—‘या च वेदस्य नित्यते’ति, यावता सैव न सिद्धयेत । पूर्वं बाधकप्रमा-  
णोपदर्शनात् । प्रतिपादितं तदेव च बाधकप्रमाणं स्मारयति—क्रमाक्रमविरोधत  
इति । एतच्च पूर्वं व्याख्यातमेव ॥ ३५०१ ॥ ३५०२ ॥

यच्चोक्तम्—‘सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः’ इति, तत्राह—दृश्यत  
इत्यादि ।

दृश्यते न च सर्वज्ञ इदानीमिति किं (यत्?)त्वया ।

अथ सर्वैरिति प्रोक्तं विस्तरेणेह दूषणम् ॥ ३५०३ ॥

भावत्कोऽनुपलम्भो हि केवलो व्यभिचारवान् ।

सर्वान्यहग्निवृत्तिस्तु संदिग्धेति न साधनम् ॥ ३५०४ ॥

इदं चापरमुक्तं कुमारिलेन—“निराकरणवच्छक्या न चासीदिति कल्पना”  
इति तत्राह—निराकरणेत्यादि ।

निराकरणवच्छक्या न चासीदिति कल्पना ।

इत्ययुक्तमतीतेऽपि तन्निराकृत्ययोगतः ॥ ३५०५ ॥

यथा किल निराकरणमतीते काले सर्वज्ञस्य शक्यते कर्तुं तथासीत्सर्वज्ञ इति न  
कल्पना शक्यते कर्तुमिति, तदेतदयुक्तम्, अतीतेऽपि काले तस्य निराकरणायो  
गात् । अपिशब्दाद्भवद्भव्यितोरपि कालयोर्न शक्यमिति दर्शयति, नष्टदर्शनमा-  
त्रादभावगतिरिति पूर्वमुक्तम् ॥ ३५०५ ॥

स्यान्मतमित्यादिना परोपन्यस्तं साधनमाशङ्कते ।

स्यान्मतं यो व्यतीतोऽध्वा स शून्यस्तव(सर्व?)दर्शिना ।

कालत्वात्तथाकालो वर्त्तमानः प्रतीयते ॥ ३५०६ ॥

संदिग्धव्यतिरेकित्वाद्युक्तमेतन्न साधनम् ।

वर्त्तमानश्च कालोऽयं तेन शून्यो न निश्चितः ॥ ३५०७ ॥

प्रयोगः—योऽयमतीतः कालः स सर्वज्ञशून्यः, कालत्वात्, साम्प्रतकालवत्, तत्र साध्यविपर्यये बाधकप्रमाणानुपदर्शनात्सन्दिग्धव्यतिरेकित्वमित्यतोऽनैकान्तिकता हेतोः । दृष्टान्तोऽपि मन्दिग्धसाध्यधर्मत्वादसिद्धः । ३५०६ ॥ ३५०७ ॥

भवतु वा दृष्टान्तस्य सिद्धिस्तत्रापि न दृष्टमात्रेणैष्टसिद्धिर्युक्तेति दर्शयन्नाह—  
हेत्वित्यादि ।

हेतुमामग्र्यभावाच्च भूतो नाम न सम्प्रति ।

रामादिबदतीते तु काले केन न सम्भवेत् ॥ ३५०८ ॥

कः पुनरत्र प्रतिबन्धो य इदानीं नास्ति सोऽतीतेऽपि काले नाभूदिति । नहि रामभरतादय इदानीं न सन्तीत्यतीतेऽपि काले नाभूवन्निति शक्यमनुमातुम् । अतो रामादिभिरनैकान्त्यादनैकान्तिकता हेतोः ॥ ३५०८ ॥

यच्चोक्तम्—‘दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं चे’त्यत्राह—प्रज्ञादीनामित्यादि

प्रज्ञादीनां च धर्मित्वं कृत्वा लिङ्गमुदीरितम् ।

नना(तन्नाम?) दृश्यते लिङ्गं न च सत्ता प्रसि(सा?)ध्यते ।

ये चासमानजातीयेत्यादीनां प्रज्ञादीनां धर्मित्वं विधाय लिङ्गमुदीरितमतो लिङ्गं नास्तीत्येतदसिद्धम् । नापि सत्ता साध्यते, किं तर्हि ?, प्रज्ञादीनामत्यन्तोत्कर्षाख्यो धर्मः, तदेव च सर्वज्ञत्वम्, अतः सत्तासाधनेऽपि ये दोषास्तेऽप्यत्र नावतरन्त्येव ॥ ३५०९ ॥

न चागमविधिः कश्चिदित्यादावाह—आगमेन त्वित्यादि ।

आगमेन तु सर्वज्ञो नास्माभिः प्रतिपाद्यते ।

लैङ्गे सति हि पूर्वोक्ते को नामागमतो वदेत् ॥ ३५१० ॥

नहि वस्तुबलप्रवृत्तानुमानसम्भवे सति कश्चिदिच्छामात्रानुविधायिनो वचनाद्वस्तुसिद्धिमन्विच्छेत् । अतो न वयमागमात्सर्वज्ञं साधयामः । किं तर्हि ? । अनुमानात् । तच्च पूर्वोक्तमेव ॥ ३५१० ॥

न चाप्येतत्सिद्धम्—‘न चागमविधिः कश्चिन्नित्यः सर्वज्ञबोधन इति, (इति) दर्शयन्नाह—किन्त्वित्यादि ।

किन्तु वेदप्रमाणत्वं यदि युष्माभिरिष्यते ।  
तत्किं भगवतो मूढैः सर्वज्ञत्वं न गम्यते ॥ ३५११ ॥  
निमित्तनाम्नि सर्वज्ञो भगवान्मुनिसत्तमः ।  
शाखान्तरे हि विस्पष्टं पठ्यते ब्राह्मणैर्बुधैः ॥ ३५१२ ॥

तथाहि—निमित्तं नाम शाखान्तरमस्ति, तत्र स्फुटतरमयमेव भगवान् शाक्य-  
मुनिः सर्वज्ञः पठ्यते, तत्किमिति मूढैर्वेदं प्रमाणयद्भिरपि भवद्भिरसौ प्रतिक्षिप्यते  
॥ ३५११ ॥ ३५१२ ॥

कथमसौ तत्र पठ्यत इत्यादर्शयन्नाह—योऽसावित्यादि ।

योऽसौ षड्दन्तमात्मानमवदातद्विपात्मकम् ।  
स्वप्ने प्रदर्श्य संजातो बोधिसत्त्वो गुणोदधिः ॥ ३५१३ ॥  
विघुष्टशब्दः सर्वज्ञः कृपात्मा स भविष्यति ।  
प्राप्तमृतपदः शुद्धः सर्वलोकपिनाऽपि च ॥ ३५१४ ॥

विघुष्टशब्द इति सकलजगत्प्रख्यातकीर्तिः । प्राप्तमृतपद इति । प्राप्तस-  
वामनाशेषक्लेशोपशमलक्षणनिर्वाणपद इत्यर्थः । शुद्ध इति । अनाश्रवधातुमयः ।  
एतावता भगवतोऽज्ञानप्रहाणलक्षणा स्वार्थसम्पत्परिदीपिता । परार्थसम्पदं दीपय-  
न्नाह—सर्वलोकपितेति । पिता—शास्ता । सर्वस्य जगतो ज्ञानत्रयसुगतिप्रति-  
ष्ठापनात् ॥ ३५१३ ॥ ३५१४ ॥

अथेत्यादिना परम्योत्तरमाशङ्कते ।

अथ शाखान्तरं नेदं वेदान्तर्गतमिष्यते ।  
तदत्र न निमित्तं वो द्वेषं मुक्त्वाऽवधार्यते ॥ ३५१५ ॥  
स्वरादयश्च ते धर्माः प्रसिद्धाः श्रुतिभाविनः ।  
कर्तुमत्राऽपि शक्यास्ते नरेच्छामात्रसम्भवात् ॥ ३५१६ ॥

इदमिति । निमित्ताख्यं शाखान्तरम् । तदत्रेत्यादिना प्रतिविधत्ते ॥ ३५१५ ॥  
॥ ३५१६ ॥

नन्वित्यादिना परम्योत्तरमाशङ्कते ।

ननु नैवं प(तत्प?)रो नित्यः शक्यो लब्धुमिहागमः ।

• नित्यश्रेयार्थवादत्वं तत्परे स्यादनित्यता ॥ ३५१७ ॥

एवं प(एतत्पद?)र इति । सर्वज्ञप्रतिपादनपरः । कथं न शक्यो लब्धुमित्याह—  
नित्यश्रेय्यादि । यद्यसौ सर्वज्ञप्रतिपादनपर आगमो नित्यः स्यात्तदा नियमेनार्थ-  
वादत्वम् —अन्यार्थत्वमस्य द्रष्टव्यम् । अर्थार्थवादत्वं तस्य नेष्यते, तदा नियमाद-  
नित्यत्वमभ्यापद्येत ॥ ३५१७ ॥

कस्मात्पुनर्नित्यत्वे सत्यर्थवादत्वमापद्यत इत्याह—आगमस्य चेत्यादि ।

आगमस्य च नित्यत्वे सि(द्धे त)त्कल्पना वृथा ।

यतस्तं प्रतिपत्स्यन्ते धर्ममेव ततो नराः ॥ ३५१८ ॥

तत्कल्पनेति । सर्वज्ञकल्पना । किमिति वृथेत्याह—यत इत्यादि । तत इति ।  
नित्यादागमात् ॥ ३५१८ ॥

न खल्वित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

न खल्वस्मिन्प्रसिद्धेऽपि वेदे नित्यत्वमस्ति यत् ।

प्रयत्नानन्तरज्ञानक्रमिज्ञानादि तत्फलम् ॥ ३५१९ ॥

किन्त्वेतस्य प्रसिद्धस्य प्रामाण्योपगमे सति ।

शास्त्रान्तरेऽपि वेदत्वात्प्रामाण्यं ते प्रसज्यते ॥ ३५२० ॥

यद्यप्ययमृगादिवेदः स्वरूपतोऽतिप्रसिद्धः, तथाप्यस्य नित्यत्वमसिद्धम् । कथमि-  
त्याह—यदिति । यस्मादर्थे । यत्प्रयत्नानन्तरज्ञानं क्रमज्ञानफलं वा तदनित्यं यथा  
घटादि तथा च वेद इति स्वभावहेतुः । अस्य च श्रुतिपरीक्षायामसिद्धतादि विस्त-  
रेण निरस्तमिति नात्राभिधीयते । एतस्येति । वेदस्य ॥ ३५१९ ॥ ३५२० ॥

शास्त्रान्तरस्य वेदत्वसिद्धमिति चेदाह—ज्ञापनीयमित्यादि ।

ज्ञापनीयमवेदत्वं यद्वा युक्त्या ध्रुवं त्वया ।

अन्यथाश्रुत्यनुक्तत्वं संदिग्धं तस्य ते भवेत् ॥ ३५२१ ॥

अन्यथेति । यद्यवेदत्वमस्य न ज्ञाप्यते तदा यत्त्वया श्रुतौ—वेदे अनुक्तत्वं  
तस्य सर्वज्ञस्योक्तं तत्तन्दिग्धासिद्धं भवेत् ॥ ३५२१ ॥

यच्चोक्तं तत्परे स्यादनित्यतेत्यत्राह —नित्यत्वं चास्त्वित्यादि ।

नित्यत्वं चास्तु वेदस्य तत्परत्वं च तत्र तु ।

तत्परे स्यादनित्यत्वं कस्मान्नाह्यर्थसङ्गतेः ॥ ३५२२ ॥

कस्मादिति पृष्टः सन्पर आह—नाशयर्थसङ्गतेरिति । नाशिनार्थेन सङ्गतेः  
संबन्धात्कारणादनित्यत्वं प्राप्नोति ॥ ३५२२ ॥

यद्येवमित्यादिना नैकान्तिकत्वमुद्भावयति ।

यद्येवमाज्यनीवारचामीकरजटादयः ।

अनित्याः कथमुच्यन्ते तेन नित्यात्मना सना ॥ ३५२३ ॥

आज्यम्—घृतम् । निवारो—व्रीहिविशेषः । चामीकरजटः—अग्निः । तेनेति ।  
वेदेन ॥ ३५२३ ॥

जातिरित्यादिना परम्योत्तरमाशङ्कते ।

जानिस्तत्रापि नित्या चेन्ननु साऽपि निराकृता ।

तन्मात्रवचने वाचो न चाज्यादौ मतिर्भवेत् ॥ ३५२४ ॥

तस्यापि वचने वाचो नित्यता किं न हीयते ।

सर्वज्ञेऽप्याकृतिर्वास्तु तेन तत्परनित्यता ॥ ३५२५ ॥

तत्राज्यादौ जातिरस्ति सा शब्दवाच्या तेनातिप्रसङ्गो न भविष्यतीति । तदेत-  
दसम्भक् । सामान्यपरीक्षायां जातेर्विस्तरेण निराकृतत्वात् । भवतु वा जातिस्तथा-  
प्याज्यादिशब्दाज्जातिमात्राभिधायिनो व्यक्तौ प्रत्ययो न प्राप्नोति । तत्रश्च व्यक्तिमा-  
ध्यार्थक्रियार्थिनो जात्यभिधानमनर्थकमेव स्यात् । नान्तरीयकतया व्यक्तिः प्रतीयत  
इति चेत् । न । प्रतीतिविप्रकर्षाभावात् । नहि शब्दादनन्तरं जातौ प्रथमतरमुप-  
जायते मतिः, पश्चान्नान्तरीयकतया व्यक्तिप्रतीतिः । किं तर्हि ? । अव्यवधानेनै-  
वार्थक्रियाकारिपदार्थाध्यवसायो लोके शब्दादुदेति । तत्प्रतिपिपादयिष्येव च शब्दं  
प्रयुङ्क्ते । अतो न युक्तं वक्तुं न व्यक्तिप्रत्ययः शब्दादिति । यदि च जातिमेव शब्दो-  
ऽभिदधीत् न व्यक्तिम् । तथा बन्धीवर्ददोहचोदनावदसम्बन्धाभिधायित्वमवगम्य  
प्रेक्षावान्मैव व्यक्तौ शब्दात्प्रवर्त्तते । अथ माभूदेष दोषप्रसङ्ग इति तस्याभि(पि ?)व्य-  
क्तिरूपस्याभिधानमङ्गीक्रियते तदा नित्यताहानिर्वेदस्य कथं न प्रसज्यते । किञ्च—  
भवतु नाम मुरुयतो जात्यभिधानं शब्दानां नान्तरीयकं तद्व्यक्तयभिधानम्, तथापि  
सर्वस्य (ज्ञ ?)परस्याप्यागमस्य नित्यता न विरोधिनीति दर्शयति— सर्वज्ञेऽपीत्यादि ।  
एकस्मिन्नपि न सर्वज्ञेऽवस्थामेदपरिकल्पितानानात्वेन जातिशब्दवाच्यत्वमुपपद्यते,  
किं पुनरपरिमितानादिसर्वज्ञपरम्परासु ॥ ३५२४ ॥ ३५२५ ॥



किञ्च—यदि नाम निमित्ताख्यं शास्त्रान्तरं वेदत्वेन नाङ्गीक्रियते भवद्भिस्तथा-  
ऽपि श्रुत्यनुक्तत्वं सन्दिग्धं भवत्यनेनैवेति दर्शयन्नाह—तदा चेत्यादि ।

तदा च वेदवाक्यानां स्वातन्त्र्येणार्थनिश्चयः ।

वेदात्स्वतः परस्माच्च मोहादिविवशात्मनः ॥ ३५२६ ॥

तेनाग्निहोत्रं जुहुयान्स्वर्गकाम इति श्रुतेः ।

जिनः सर्वज्ञ इत्येवं नार्थ इत्यत्र का प्रमा ॥ ३५२७ ॥

वेदवाक्यानां हि नित्यतया स्वातन्त्र्ये सति न ततो वेदार्थनिश्चयो जायते, नष्टयं  
वेदः—अयं ममार्थो नान्य इत्येवं विरौति । नापि प्रतिपत्तुः स्वतः—स्वात्मनः,  
परस्माद्वा, व्याख्यातुर्थनिश्चयो भवति, सर्वेषामेव भवन्मत्या मोहादिभिर्विप्लुतत्वात् ।  
तेनाग्निहोत्रादिवाक्याद्भवान् सर्वज्ञ इत्ययमप्यर्थः सम्भाव्यत एव । का प्रमेति ।  
नैव काचित् ॥ ३५२६ ॥ ३५२७ ॥

यच्चेदमपरमुक्तम्—‘न च सर्वनरज्ञानज्ञेयसंवादमम्भवः’ इति, तत्राह—स्वर्गे-  
त्यादि ।

स्वर्गापवर्गमात्रस्य विस्पष्टमुपदेशतः ।

प्रधानार्थपरिशानात्सर्वज्ञ इति गम्यते ॥ ३५२८ ॥

समुद्रसिकतासङ्ख्याविज्ञानं क्रोपयुज्यते ।

तस्यास्माकमनोऽन्यार्थज्ञानसंवेदनेन किम् ॥ ३५२९ ॥

यच्चोक्तम्—( गौणत्वेनैव वक्तव्य इति, तत्राह— ) गौणत्वेनेत्यादि ।

गौणत्वेनैव वक्तव्यः सोऽपि मन्त्रार्थवादवत् ।

इत्ययं नियमः सिध्येत्सर्वज्ञे तु निराकृते ॥ ३५३० ॥

पूर्वोक्तबाधकायोगे साधिते तु सविस्तरम् ।

संदिग्धो गौणनियमो मुख्यार्थस्यापि सम्भवात् ॥ ३५३१ ॥

यदि हि प्रमाणेन सर्वज्ञो निरस्तः स्यात्तदाऽन्यथानुपपत्त्या गौणार्थत्वमस्य नियतं  
स्यात्, नान्यथा, मुख्यार्थत्वस्यापि सम्भाव्यमानत्वात् । न न नित्यस्य ववसोऽर्थ-  
वादत्वं युक्तम्, अन्याभिप्रायदेशना द्वायवादः, न चाभिप्रायरहिते वचसि विवक्षा-  
मन्तरेण सा युक्ता ॥ ३५३० ॥ ३५३१ ॥

यद्वा प्रकृतधर्मादिज्ञानादित्यादावाह—धर्मादीत्यादि ।

धर्मादिगोचरज्ञानमात्राप्रतिघता यदि ।

सफला वर्णयते व्यक्तं तदा बुद्धैर्जितं जगत् ॥ ३५३२ ॥

कथं जितमित्याह—यस्मादित्यादि ।

यस्मादभ्युदये मोक्षे सहैतैः साधितं पुरः ।

ज्ञानमप्रतिघं तेषामावैणिकमतिस्फुटम् ॥ ३५३३ ॥

पूर्वं हि भगवतो निःश्रेयसज्ञानमप्रतिघं प्रसाधितमित्यतो भगवत् एवाऽऽवैणि-  
कमसाधारणं धर्मादिज्ञानमिति स्ववाचैव सर्वज्ञो ना(अः?)भ्युपेतः स्यात् ॥ ३५३३ ॥

यच्चोक्तम्—यद्वाऽऽत्मन्येव विज्ञानमिति, तत्रापि भगवत्येव तथाविधज्ञानसम्भ-  
वान्न किञ्चिदनिष्टमापादितमित्यादर्शयन्नाह—यच्चात्मन्येवेत्यादि ।

यच्चात्मन्येव विज्ञानं ध्यानाभ्यासप्रवर्तितम् ।

तस्याप्यप्रतिघातित्वं तेषां पूर्वं प्रसाधितम् ॥ ३५३४ ॥

तस्यापीति । आत्मज्ञानस्य । तेषामिति । बुद्धानां भगवताम् । पूर्वमिति ।  
यावद्यावत् गुणौघोऽस्यामित्यादिना ॥ ३५३४ ॥

ननु च तत्रात्मज्ञानं स्ववेदा(स्ववेदना?)त्मकं वर्णितम् । न त्वन्तर्ग्यापारपुरुषज्ञा-  
नम्, तत्कथं सिद्धसाध्यता भवतीत्याह—एतदेव हीत्यादि ।

एतदेव हि तज्ज्ञानं यद्विशुद्धात्मदर्शनम् ।

आगन्तुकमलापेतचित्तमात्रन्ववेदनात् ॥ ३५३५ ॥

चित्तमात्रवेदनमेव कथं सिद्धमिति चेदाह—अवेद्येत्यादि ।

अवेद्यवेदकाकारा बुद्धिः पूर्वं प्रसाधिता ।

द्वयोपप्लवशून्या च सा संबुद्धैः प्रकाशिता ॥ ३५३६ ॥

संसारानुचितज्ञानास्तेन सिद्धा महाधियः ।

यदाधिपत्यभाविन्यो भासन्तेऽद्यापि देशनाः ॥ ३५३७ ॥

पूर्वमिति । बहिरर्थपरीक्षायाम् । संसारानुचितमननुकूलं ज्ञानं येषां ते तथोक्ताः  
॥ ३५३६ ॥ ३५३७ ॥

काः पुनस्तास्तदाधिपत्यभाविन्यो देशनाः श्रूयन्त इत्याह— प्रकृत्या भास्वर  
इत्यादि ।

प्रकृत्या भास्वरे चित्ते द्वयाकाराकलङ्किते ।

द्वयाकाराविमूढात्मा कः कुर्यादन्यथामतिः(तिम्?)॥३५३८॥

द्वयनैरात्म्यबोधे च इत्यादिसङ्करूपभाविनः ।

रागद्वेषादयो दोषाः संक्षीयन्तेऽप्रयत्नतः ॥ ३५३९ ॥

इदं तत्परमं तत्त्वं तत्त्ववादी जगाद यत् ।

सर्वसम्पत्प्रदं चैव केशवादेरगोचरः ॥ ३५४० ॥

द्वयाकाराविमूढात्मेति । प्रहीणग्राह्यग्राहकामिनिवेशः । द्वयनैरात्म्यबोधे इति । पुद्गलधर्मनैरात्म्यबोधे । यद्वा—द्वयं ग्राह्यं ग्राहकं च तस्य नैरात्म्यं नैःस्वाभाव्यमिति विग्रहः । केशवादेरगोचर इति । केशवो हरिः, आदिशब्देनेश्वरादिप रिग्रहः ॥ ३५३८ ॥ ३५३९ ॥ ३५४० ॥

अथ केशवादेरपि विशुद्धमात्मदर्शनं कस्मान्नेष्यत इत्याह—ज्ञायते हीत्यादि ।

ज्ञायते हि स्थिरात्माऽन्यैः शुद्धस्फटिकसन्निभः ।

स च तेषां विपर्यासो नित्यात्मप्रतिषेधनात् ॥ ३५४१ ॥

आत्मग्राहि च विज्ञानमात्मनो यदि जायते ।

ततः सर्वात्मविज्ञानं युगपत्सम्प्रसज्यते ॥ ३५४२ ॥

अथ तस्मान्न जायेत नित्यं वाऽभ्युपगम्यते ।

तदा तद्विषयं न स्यात्पुरुषान्तरचित्तवत् ॥ ३५४३ ॥

अन्यैरिति । केशवादिभिः । आत्मपरीक्षायामात्मनो निरस्तत्वात्तद्विषयं ज्ञानं विपर्यस्तत्वादविशुद्धम् । किञ्च—यदेतन्नित्यात्मविषयं तेषां ज्ञानमुपवर्ष्यते तर्कि नत आत्मनो जायते आहोस्वित्तेति पक्षद्वयम्, तत्र प्रथमे पक्षे युगपदशेषं तद्विषयं ज्ञानमविकलकारणतया जायेत, अथ द्वितीयः पक्षस्तत्रापि तन्नित्यं वा स्यादनित्यं वा । उभयथाऽपि तेनात्मना तस्यानुकार्यत्वादन्यचित्तवत् तद्विषयं न प्राप्नोति ॥ ३५४१ ॥ ३५४२ ॥ ३५४३ ॥

यच्चोक्तम्—एतदेव हि तज्ज्ञानं यद्विशुद्धात्मदर्शनमिति, तत्राह—ग्राह्येत्यादि ।

ग्राह्यलक्षणवैधुर्याद्विस्तरेण च साधितात् ।

नैतदेव हि तज्ज्ञानं यद्विशुद्धात्मदर्शनम् ॥ ३५४४ ॥

अथापि ज्ञानरूपत्वमात्मनोऽभ्युपगम्यते ।

दृश्यदर्शननानात्वभावान्नैवमपि ग्रहः ॥ ३५४५ ॥

स्वयम्प्रकाशरूपत्वं तज्ज्ञानस्येष्यते यदि ।

स्वसंघित्तिस्तदा प्राप्ता प्रत्यक्षा च मतिर्भवेत् ॥ ३५४६ ॥

यदि तावदात्मा जडरूपोऽभ्युपगम्यते तदा तद्विषयं ज्ञानमविशुद्धमेव, प्रकृत्या सर्वज्ञानानां ब्राह्मब्राह्मकवैचुर्यस्य बहिरर्थपरीक्षायां प्रसाधितत्वात् । अथ चिद्रूप आत्मेति पञ्चस्तदाऽपि दृश्यदर्शनयोरभेदाद्ब्राह्मब्राह्मकभावानुपपत्तेस्तद्विषयं ज्ञानमिति न स्यात्, भेदे हि विषयविषयिणोर्विषयविषयिभावः स्यात् । अथ प्रदीपवत्प्रकाशतयाऽऽत्मविषयत्वमस्याभ्युपगम्यते तदा स्वसंविचेरनभिमतायाः प्रसङ्गः स्यात्, ज्ञानस्य चाप्रत्यक्षत्वमिष्टं व्याहन्येत । तद्दर्शयति—प्रत्यक्षा च मतिर्भवेदिति ॥ ३५४४ ॥ ३५४५ ॥ ३५४६ ॥

यदुक्तम्—अथापि वेददेहत्वादित्यादि, तत्राह—ब्रह्मादीनां चेत्यादि ।

ब्रह्मादीनां च वेदेन सम्बन्धो नास्ति कश्चन ।

भेदान्नित्यतयाऽपेक्षावियोगाच्च तदन्यवत् ॥ ३५४७ ॥

ततश्च वेददेहत्वं ब्रह्मादीनामसङ्गतम् ।

सर्वज्ञानमयत्वं च वेदस्यार्थविनिश्चयात् ॥ ३५४८ ॥

स्वानन्वयेण च सम्बुद्धः सर्वज्ञ उपपादितः ।

न पुनर्वेददेहत्वाद्ब्रह्मादिरिव कल्प्यते ॥ ३५४९ ॥

सम्बन्धे सति ब्रह्मादीनां वेददेहत्वं भवेत्, न च वेदेन सार्द्धं ब्रह्मादेः सम्बन्धी-  
ऽस्ति । तथाहि—तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणो द्विविध- एव सम्बन्धो भावनामिति प्रतिपादितम्, तत्र भेदाभ्युपगमान्न तादात्म्यसम्बन्धः । नापि तदुत्पत्तिः, द्वयोरपि नित्यत्वेनानुपकार्यतया परस्परमपेक्षाया अभावात् । सर्वज्ञानमयत्वं च वेदस्येति । असङ्गतमिति प्रकृतेन सम्बन्धः । कस्मात् ? । अर्थानिश्चयात् । विनिश्चिते ह्यर्थे वेदस्य सर्वज्ञानमयत्वं कल्पयितुं युक्तम्, स च भवन्मत्या न सम्भवतीत्यावेदित-  
मेतत् । न च भवद्भिरिवास्माभिर्वेदद्वारेण सर्वज्ञोऽभ्युपगम्यते । किं तर्हि ? । स्वयं-  
मुज्ञानत्वात्स्वयमेव भगवान्सर्वज्ञ इति प्रतिपादितमेतत् ॥ ३५४७ ॥ ३५४८ ॥  
॥ ३५४९ ॥

यद्योक्तम्—कच बुद्धादयो मर्त्या इति । तत्र मर्त्यत्वं भगवतोऽसिद्धमिति दर्शय-  
न्नाह—पञ्चेत्यादि ।

पञ्चगत्यात्मसंसारबहिर्भावाच्च मर्त्यता ।

बुद्धानामिष्यतेऽस्माभिर्निर्माणं तत्तथामतम् ॥ ३५५० ॥

नरकप्रेततिर्यग्देवमनुष्यभेदेन पञ्चगत्यात्मकः संसारः, तद्बहिर्भूताश्च भयवन्त इत्यसिद्धं मर्त्यत्वमेषाम् । कथं नहि शुद्धोदनादिकुलोत्पत्तिरेषां श्रूयत इत्याह—  
निर्माणं तत्तथामतमिति ॥ ३५५० ॥

एतदेवागमेन सस्पन्दयन्नाह—अकनिष्ठे इत्यादि ।

**अकनिष्ठे पुरे रम्ये शुद्धावासविचर्जिते ।**

**बुद्ध्यन्ते तत्र संबुद्धा निर्मितस्त्वह बुद्ध्यते ॥ ३५५१ ॥**

अकनिष्ठा नाम देवा(शाः?)स्तेषामेकदेशे शुद्धावासकायिका नाम देवाः-  
(शाः?) । अत्र हि आर्या एव शुद्धा आवसन्ति तेषामुपरि माहेश्वरभवनं नाम स्थानम् । तत्र चरमभविक्का एव दशभूमिप्रतिष्ठिता बोधिसत्त्वा उत्पद्यन्ते । इह तु तदाधिपत्येन तथा निर्माणमुपलभ्य(त) इत्यागमः ॥ ३५५१ ॥

नास्माकमिदं सिद्धिमिति चेदाह—स्वातन्त्र्येणेत्यादि ।

**स्वातन्त्र्येण तु मर्त्यत्वं त्वया निश्चीयते कथम् ।**

**परकीयागमद्वारात् तस्यैवमवस्थितेः ॥ ३५५२ ॥**

**न च तत्स्पर्धयाऽस्माभिस्ते सर्वशा इतीष्यते ।**

**आकाशकुसुमैः को हि स्पर्द्धां सत्येषु कल्पयेत् ॥ ३५५३ ॥**

यदि हि स्वातन्त्र्येण मर्त्यत्वं भवतोपादीयते तदा सन्दिग्धासिद्धता । नहि भगवतो मर्त्यत्वप्रसाधकं किञ्चिद्भवतः प्रमाणमस्ति, येन स्वातन्त्र्येण मर्त्यत्वं सिद्धं भवेत्, तस्मात्परकीयागमद्वारेण त्वया मर्त्यत्वं वक्तव्यम् । स च परस्यागम एवम्—यथोक्तरूपं स्थित इत्यसिद्धमेषां मर्त्यत्वम् ॥ ३५५२ ॥ ३५५३ ॥

कथमाकाशकुसुमप्रख्यत्वमेषां सिद्धमित्याह—सर्वशक्तिवियोगेनेत्यादि ।

**सर्वशक्तिवियोगेन नीरूपत्वं हि साधितम् ।**

**नित्यानां तेन नो सन्ति परेष्टाऽऽयम्बकादयः ॥ ३५५४ ॥**

परेण हि शङ्करादयो नित्यत्वेनेष्टाः । नित्यानां च क्रमाक्रमाभ्यामर्थक्रियाविरोधात्सर्वसामर्थ्यरहितत्वं प्रसाधितम् । सर्वसामर्थ्यविरहलक्षणं चासत्त्वमिति परेष्टाऽऽयम्बकादयो नित्या न सन्त्येवेत्याकाशकुसुमप्रख्यत्वमेषां सिद्धमेव । अयम्बकः—  
शङ्करः ॥ ३५५४ ॥

किञ्च—सन्तु नाम अयम्बकादयः, तथाप्यतिनिष्कृष्टतया तेषां, न भगवतां तैः सह स्पर्द्धा क्रियतेऽस्माभिरित्यादर्शयन्नाह—किञ्चेत्यादि ।

किञ्च तेषां विपर्ययस्तं ज्ञानमात्मादिदर्शनात् ।

बुद्धानां त्वविपर्ययस्तं विस्तरेणोपपादितम् ॥ ३६५५ ॥

तत्स्पृष्टा क्रियते तैस्तु न दूरान्तरभावतः ।

को हि तैमिरिकैः स्पृष्टा कुर्यात्स्वस्थेक्षणे नरे ॥ ३५५६ ॥

सुबोधम् ॥ ३५५५ ॥ ३५५६ ॥

यच्चोक्तम्—नित्येऽपि चागमे वेद इति, तत्राह—गुणकर्मत्यादि :

गुणकर्मेश्वरादीनां वेदानां चापहस्तिता ।

नित्यतास्तश्च नास्माभिर्नित्य आगम इह्यते ॥ ३५५७ ॥

सर्ववस्तुव्यापिनः क्षणभङ्गस्य प्रसाधनान्न कस्यचिन्नित्यत्वमस्तीति सर्वमेतदस-  
ङ्गतमुक्तम् ॥ ३५५७ ॥

यच्चोक्तम्—सर्वज्ञसदृशमित्यादि, तत्राह—उपमानेनेत्यादि ।

उपमानेन सर्वज्ञसत्तासिद्धिर्न चेष्ट्यते ।

तस्याप्रमाणताप्रोक्तेः सत्तासिद्धिस्ततो न च ॥ ३५५८ ॥

प्रसिद्धायां हि सत्तायां सादृश्यं गम्यते नतः ।

साधनं प्रकृतं चेदं सत्तायाः सर्ववेदिनः ॥ ३५५९ ॥

तन्नोपमानतः सिद्धिः प्रतिषेधोऽफलः कृ(त ?)तः ।

नरा दृष्टास्त्वसर्वज्ञाः सर्वे चेद्भवता ततः ॥ ३५६० ॥

तवैव सर्ववित्ता स्याद्व्यवहितेक्षणात् ।

अन्यसन्तानसम्बद्धज्ञानशक्तेश्च दृष्टितः ॥ ३५६१ ॥

ननुपमानस्य प्रामाण्यमस्ति येन ततः सर्वज्ञसिद्धिमभिवाञ्छेद्द्वौद्धः । सत्यपि वा  
प्रामाण्ये तस्य सत्तासिद्धावनुपयोग एव । तथाहि प्रसिद्धे धर्मिणि गवादौ भवया-  
दिसाधर्म्यमात्रं तेन साध्यते । न च सर्वज्ञो धर्मी प्रसिद्धस्तस्यैव भवन्मतेन साध्य-  
त्वात् । तेन भवन्मत्या सर्वज्ञसत्तायां साध्यत्वेन प्रस्तुतायामुपमानस्य प्रसङ्गाभावा-  
त्तत्प्रतिषेधोऽनर्थकः, प्राप्त्यभावात् । प्राप्तिपूर्वकत्वात्प्रतिषेधस्येति भावः । नरान्  
दृष्ट्वा त्वसर्वज्ञानित्यादावाह—नरा दृष्टास्त्वसर्वज्ञा इत्यादि । यदि हि सर्व एव  
नरा दृष्टा भवता तदा सर्वज्ञनिषेधे स्ववचनव्याघातः । तथाहि—दूरव्यवहिताशे-  
षनरदर्शनाभ्युपगमादन्यमन्तानसम्बन्धिज्ञानशक्तिनिश्चयाभ्युपगमाच्चात्मनि सर्वज्ञत्वं

स्फुटतरमेवाभ्युपेतं स्यात्, देशकालम्बभावविकृष्टार्थदर्शनाभ्युपगमात् । नह्यसर्वज्ञस्यैवं परिज्ञानं संभवेत् । तत्प्रतिषेधाय च साधनोपादानात्तदेव प्रतिषिध्यत इति स्वरचनव्याघातः, यथा माता मे वन्द्येति ॥ ३५५८ ॥ ३५५९ ॥ ३५६० ॥ ॥ ३५६१ ॥

असिद्धता च हेतोरिति दर्शयन्नाह—पुरःस्थितेऽपीत्यादि ।

पुरःस्थितेऽपि पुंसि स्यात्कथं तव त्रिनिश्चयः ।

नायं सर्वज्ञ इत्येवंभावेऽतीन्द्रियविद्भवान् ॥ ३५६२ ॥

आत्मासर्वज्ञतादृष्टौ शेषासर्वज्ञनिश्चये ।

अतिप्रसङ्गोऽजाद्यादेः सर्वज्ञमज्ञस्या?)पि निश्चयात् ॥ ३५६३ ॥

बाधादृष्टेर्नचेत्सर्वधर्मनिश्चय इष्यते ।

बाधाशङ्का ननूक्तेऽपि बाधादृष्टेर्न भिद्यते ॥ ३५६४ ॥

तथाहि—पुरोऽत्रस्थिते पुंसि शरीरमात्रदर्शनात्तयं सर्वज्ञ इत्येवमसर्वविदा निश्चेतुमशक्यम्, किमुत देशकालव्यवस्थिते पुंसि । भाव इति । नायं सर्वज्ञ इत्येवं निश्चयस्य । अथ मा भूदसिद्धता हेतोरित्यात्मासर्वज्ञतया शेषासर्वज्ञनिश्चयोऽभ्युपगम्यते तदातिप्रसङ्गादनैकान्तिकतेत्यादर्शयन्नाह—आत्मासर्वज्ञतादृष्टावित्यादि । आत्मन्यसर्वज्ञताया दृष्टिरिति विग्रहः । स्यादेतत्सर्वधर्मसाधनं क्रियमाणं दृष्टेन प्रज्ञादिभेदेन बाध्यत इत्यस्तस्य साधनं (न) क्रियते । तत्त्वसर्वज्ञत्वं साध्यमानं (न) केनचिद्बाध्यत इत्यतोऽतिप्रसङ्गो न भविष्यतीति । तदेतदसम्भक् । यथैव दृष्टबाधं साध्यं हेतुर्न साधयति तथा शङ्क्यमानबाधमपीत्यतो बाधाशङ्का बाधादृष्टेर्न भिद्यते, तेनासर्वज्ञत्वसाधनमपि माभूदाशङ्क्यमानबाधत्वात् ॥ ३५६२ ॥ ३५६३ ॥ ॥ ३५६४ ॥

यच्चोक्तमुपदेशो हि बुद्धादेरन्यथाऽप्युपपद्यत इत्याह—स्वर्गेत्यादि ।

स्वर्गापवर्गमार्गोक्तिं निरवद्यां प्रसाधिताम् ।

बुद्धानां तां जडात्कोऽन्यो व्यामोहादभि(दिति ?)मन्यते ॥

अन्यथोपपन्नत्वमुपदेशस्यासिद्धम् । नहि स्वर्गापवर्गमार्गस्य निरवद्य उपदेशो व्यामोहात्सम्भवति, निरवद्यत्वं च भगवद्वचनस्य सर्वाभिः परीक्षाभिः प्रसाधितम् । जडादिति । कुमारिणात् । स एव यदि परं मन्यत इत्यर्थः ॥ ३५६५ ॥

क्षिप्यन्यामोहनार्थं वेत्यत्राह—दृष्टेऽपीत्यादि ।

दृष्टेऽप्यभ्युदयं चित्तदोषशान्तिं परां तथा ।

ततश्चाप्नुवतां तेन परं व्यामोहनं कृतम् ॥ ३५६६ ॥

दृष्ट इति । अस्मिन्नेव जन्मनि । अभ्युदयम्—नित्यारोग्यैश्वर्यादिलक्षणम् ।  
अवाप्नुवतामिति सम्बन्धः । दोषशान्तिं चेति । रागादिदोषोपशमम् । ततः—  
मन्त्रध्यानसमयाभ्युपदेशात्तत्कृताथथाविहितानुष्ठानादाप्नुवतां शिष्याणां परं व्यामो-  
हनं कृतमित्यतिशयोक्तिरियम् । यदीदृशं व्यामोहं भवान्मन्येन तदा भवानेव व्या-  
मूढः स्यादव्यामोहमेवं व्यामोहमिति गृह्यन् ॥ ३५६६ ॥

यद्यसौ वेदमूलः स्यादित्यत्राह—वेदमूलं च नैवेदमिति ।

वेदमूलं च नैवेदं बुद्धानामुपदेशनम् ।

निष्कलङ्कं हि तत्प्रोक्तं सकलङ्कं श्रुतौ पुनः ॥ ३५६७ ॥

नहि निष्कलङ्कमुपदेशनं सकलङ्कमूलं युक्तम् ॥ ३५६७ ॥

यतस्तु मूर्खशूद्रेभ्य इत्यत्राह—स्वार्थसंसिद्धये तेषामित्यादि ।

स्वार्थसंसिद्धये तेषामुपदेशो न नादृशः ।

आरम्भः सकलस्त्वेष परार्थं कर्तुमीदृशः ॥ ३५६८ ॥

तस्माज्जगद्धिताधानदीक्षिताः करुणात्मकाः

अनिबन्धनबन्धुत्वादाहुः सर्वेषु तत्पदम् ॥ ३५६९ ॥

पदमिति । सर्वगुणसम्पत्प्रतिष्ठार्थेनाभ्युदयनिःश्रेयसमार्गः पदमुच्यते ॥ ३५६८ ॥

॥ ३५६९ ॥

यैस्तु मन्वादिभिर्वेदवादिभ्य एवोपदेशनं कृतम्, तेषामेव व्यामोहार्थं तत्सम्भा-  
व्यत इति दर्शयति—ये हीत्यादि ।

ये हि लोभभयद्वेषमात्सर्यादिवशीकृताः ।

प्रादेशिकी भवेत्तेषां देशना निःकृपात्मनाम् ॥ ३५७० ॥

वा पुनर्भगवतामाकुमारं देशना सा तेषां माहात्म्यमेवोद्भावयतीति दर्शयति—  
करुणेत्यादि ।

करुणापरतन्त्रास्तु स्पष्टतत्त्वनिदर्शिनः ।

सर्वापवादनिःशङ्काश्चक्रुः सर्वत्र देशनाम् ॥ ३५७१ ॥

यथायथा च मौख्यादिदोषदुष्टो भवेज्जनः ।

तथातथैव नाथानां दया तेषु प्रवर्त्तते ॥ ३५७२ ॥



नैवावाहविवाहादिसम्बन्धो वाञ्छितो हि तैः ।

उपकारस्तु कर्तव्यः साधुगीतमिदं ततः ॥ ३५७३ ॥

ऊढाया योषितः भर्तृगृहागमनमावाहः ॥ ३५७१ ॥ ३५७२ ॥ ३५७३ ॥

किं तद्वीनमित्याह—विद्येत्यादि ।

विद्याचरणसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ ३५७४ ॥

अपि च—भवतं च मूर्खशूद्रेभ्य इत्यतिप्रकटमुच्चैरसद्गतजातिमदोद्धतेन चेतसा ब्रुवता स्फुटतरमात्मन एव प्रकटितमिह विद्वज्जनसदसि महामौर्यम् । तथाहि—  
कदाचिद्ब्राह्मणत्वारूपं सामान्यं नाम वस्त्वन्तरमस्तीत्येवमुक्त्वाप्यन्तस्तत्रभवन्तो  
विप्रा गर्वाबुदमुद्रहन्ति ? , यद्वा जातकर्मादिभिः संस्कृतत्वमात्मनः समीक्ष्य ? , ब्राह्म-  
णपितृकृतां चात्मनो ब्राह्मणीगर्भप्रसूतिमालम्ब्य ? । तत्र प्रथमे पक्षे केवलमाकाश-  
कुशेशयमण्डनमेतद्भवतामिति दर्शयति—शतश इत्यादि ।

शतशः प्रतिषिद्धायां जातौ जातिमदश्च किम् ।

तदन्यातिशयासिद्धौ विशिष्टा सा च किं मता ॥ ३५७५ ॥

वशिष्वादिगुणाधाराः प्रक्षीणाशेषकल्मषाः ।

सर्वेऽप्यत्राविशेषेण तद्योगे च विजानयः ॥ ३५७६ ॥

भवेयुर्यदि सिद्धयन्ति विशिष्टास्तत्समाश्रयाः ।

वैशिष्ट्यमन्यथा नैव लुब्धकद्विजजातिवत् ॥ ३५७७ ॥

अपि च भवतु नाम सा जातिस्तथाऽपि तत्कृतमाश्रयस्य यदि वैशिष्ट्यमुपलभ्येत  
तदा स्याद्भवतां गर्वः, यावता न किञ्चिदतिशयं पश्याम इत्यादर्शयति—तदन्ये-  
त्यादि । तेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽन्तस्तदन्यः शूद्रादिस्तस्मादतिशयस्तस्यासिद्धिरिति  
विग्रहः । तथाहि—शूद्रादिभ्यो न प्रज्ञामेषादिभिर्विष्णुमूत्रमांसशोणितादिभिश्च विप्रा-  
णामतिशयमुपलभामहे, तत्कथमतिशयासिद्धौ सत्यां सा तदाधारा जातिर्विशिष्यते ।  
येन भवता जातिवादावलेपोद्धतेनैवमभिधीयते—वेदेवादिभ्य एव तं प्रयच्छेयुर्यथा  
मन्वादय इति । यदि तु ब्राह्मणजातिसमाश्रयेण भवन्तः प्रकृत्यैव वशित्वेशित्वप्रा-  
काम्यकरुणादिगुणगणाधाराः प्रक्षीणाशेषदूरिता भवेयुस्तदा भवेद्भवतां वैशिष्ट्यमन्यथा  
लुब्धककैवर्त्तचर्मकारादिब्राह्मणस्यैव सत्यपि ब्राह्मणजातियोगे कथमिव वैशिष्ट्यं  
सिद्धयेत् ॥ ३५७५ ॥ ३५७६ ॥ ३५७७ ॥

द्वितीयेऽपि पक्षे दोषमाह — जातकर्मादय इत्यादि ।

जातकर्मादयो ये च प्रसिद्धास्ते तदन्यवत् ।

आचारा सांवृतास्ते हि कृत्रिमेष्वपि भाविनः ॥ ३५७८ ॥

तदन्यवदिति । कृत्रिमाभिमतब्राह्मणेष्विव । सांवृता इति । नामकरणादिवत्सं-  
व्यवहारिकाः । तृतीयेऽपि पक्षे न युक्तो मदः, नहि ब्राह्मणब्राह्मणीशरीराणां शूद्रा-  
दिशरीरतः शुक्रशोणिताद्यशुचिमयत्वेन कश्चिद्विशेषोऽस्तीत्युक्तमेतत् ॥ ३५७८ ॥

अपि च सन्दिग्धमेव भवतो ब्राह्मणपितृकत्वमित्यतोऽपि न युक्तो मद इत्यादर्श-  
यन्नाह—अतीतश्चेत्यादि ।

अतीतश्च महान्कालो योषितां चातिचापलम् ।

तद्भवत्यपि निश्चेतुं ब्राह्मणत्वं न शक्यते ॥ ३५७९ ॥

अतीन्द्रियपदार्थज्ञो नहि कश्चित्समस्ति चः ।

त्वदन्वयविशुद्धिं च नित्यो वेदोऽपि नोक्तवान् ॥ ३५८० ॥

कालान्तरेण कदाचिद्ब्राह्मणगोत्रकोऽपि सन्भवान्ब्राह्मणः सांवृत इत्यपि सम्भा-  
व्यते । सत्यपि ब्राह्मणपूर्वत्वे भवतो मातृचारित्रदोषेण जातत्वमपि सम्भाव्यत  
एव । तथाहि—प्रायेण योषितो मन्मथानुगश्चालचेतसः स्वकुलव्रतसीमानमतिप-  
त्यापि वर्त्तमानाः समुपलभ्यन्ते । न चातीन्द्रियार्थदर्शी भवद्भिः कश्चिन्नरोऽभ्युपे-  
यते, यतो निश्चयः स्यात् । नापि वेदो निवेदयति भवतोऽन्वयशुद्धिम् ॥ ३५७९ ॥  
॥ ३५८० ॥

किञ्च—न केवलं भवतामात्मन्यपरिनिश्चितब्राह्मण्यानां जातिमदावलेपो न  
युज्यते, अपि च—मन्वादीनामप्यविदितद्विजातीनां द्विजातिभ्य एवोपदेशा माहा-  
दिति दर्शयति—अत इत्यादि ।

अतो मन्वादयोऽप्येषामविज्ञातद्विजातयः ।

नोपदेशं प्रयच्छेयुर्द्विजेभ्यस्तदनिश्चयात् ॥ ३५८१ ॥

अविज्ञाता अनिश्चिता द्विजातयो येषां ते तथोक्ताः । तदनिश्चयादिति । तेषां  
द्विजातीनामनिश्चयात् ॥ ३५८१ ॥

अपि च—मन्वादिभिरस्मभ्यमेवोपदेशनं कृतमिति नैतद्भवतां महत्त्वकारणम्,  
अपि तु जडत्वमेव सूचयतीति दर्शयन्नाह— निर्युक्तिकत्वमित्यादि ।

निर्युक्तिकत्वं वेदार्थं ज्ञापनाशक्तताऽऽत्मनि ।

वेदाधीतिजडा विप्रा न परीक्षाक्षमा इति ॥ ३५८२ ॥

कृतश्चिन्निश्चितं शङ्के नूनं मन्वादिभिस्तमः ।

विप्रेभ्य एव वेदादेः कृतं तैरुपदेशनम् ॥ ३५८३ ॥

वेदाधीतिजडा इति । वेदाधीत्या कृता जडा वेदाधीतिजडाः । वेदाध्ययनेन दूरीकृतवस्तुबोधशक्तय इति यावत् । कृतश्चिदिति । हेतोः ॥ ३५८२ ॥ ३५८३ ॥

अत एव वेदादीनामयुक्तिकत्वमवेत्य मन्वादिभिराज्ञासिद्धत्वमात्मवचनेषूक्तमिति दर्शयति—पुराणमित्यादि ।

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् ।

आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥ ३५८४ ॥

मन्ये तेनैव दत्तेयं जडेभ्यस्तैर्विभीषिका ।

आज्ञासिद्धत्वमन्यत्र वाङ्मात्रार्त्किनु वा भवेत् ॥ ३५८५ ॥

पुराणं नाम शास्त्रम् । मानवो धर्म इति । मनुना विरचितः । साङ्गो वेद इति । सह व्याकरणादिभिः षड्भिरङ्गैर्वर्त्तत इति साङ्गः । चिकित्सितमिति । चिकित्साशास्त्रं । तेनैवेति । कारणेन । निर्युक्तिकत्वमेषां पुराणादीनां भवनां च जाड्यमवधार्येति यावत् ॥ ३५८४ ॥ ३५८५ ॥

यैरित्यादि ।

यैः पुनः स्वोक्तिषु स्पष्टं युक्तार्थत्वं विनिश्चितम् ।

तत्प्रत्यायनसामर्थ्यमात्मनश्च महात्मभिः ॥ ३५८६ ॥

कुतीर्थ्यमत्तमातङ्गमदगलानिविधायिनम् ।

एवमस्ताखिलत्रासाः सिंहनादं नदन्ति ते ॥ ३५८७ ॥

कुतीर्थ्या एव मत्तमातङ्गास्तेषां मदगलानि विधातुं शीलं यस्य सिंहनादस्य स तथोक्तः । एवमिति । वक्ष्यमाणम् ॥ ३५८६ ॥ ३५८७ ॥

ऋः पुनरसौ सिंहनाद इत्याह — तापादित्यादि ।

तापाच्छेदाच्च निकषात्सुवर्णमिव पण्डितैः ।

परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्रूपो न तु गौरवात् ॥ ३५८८ ॥

अपि च भगवद्भिरेव परमार्थब्राह्मणेभ्यः कृतमुपदेशनं न मन्वादिभिरित्येतदाह — ये चेत्यादि ।

ये च बाहिनपापत्वाद्ब्राह्मणाः पारमार्थिकाः ।

अभ्यस्तामलनैरात्म्यास्ते मुनेरेव शासने ॥ ३५८९ ॥

इहैव श्रमणस्तेन चतुर्द्धा परिकीर्ष्यते ।

शून्याः परप्रवादा हि श्रमणैर्ब्राह्मणैस्तथा ॥ ३५९० ॥

बाहिनपापधर्मत्वाद्ब्राह्मणा इति निरुक्तिः । ते चेहैव नैरात्म्याभ्यासोपदेशान्मुने-  
र्भगवतः शासने युक्ताः, नान्यत्र, पापक्षयोपायविकल्पात् । अत एव भगवतोक्तम्  
—इहैव श्रमणः इहैव ब्राह्मणः, शून्याः परप्रवादाः श्रमणैर्ब्राह्मणैरिति । तत्र चत्वारः  
श्रमणाः फलस्था श्रोत आपन्नादयः (?) । ब्राह्मणा अपि तत्प्रतिपन्नकश्चत्वार एव  
॥ ३५८९ । ३५९० ॥

नरः कोप्यस्तीत्यादावाह—नर इत्यादि ।

नरः कोप्यस्ति सर्वज्ञ इत्याद्यपि न साधनम् ।

प्रतिज्ञान्यूनतादोषदुष्टमित्युपपादिनम् ॥ ३५९१ ॥

केन ग्रन्थेनोपपादितमित्याह—निःशेषार्थेत्यादि ।

निःशेषार्थपरिज्ञानसाधने विफलेऽपि हि ।

सुधियः सौगता यत्र कुर्वन्तीत्यादीना पुरा ॥ ३५९२ ॥

किञ्च— नास्माभिः सर्वज्ञोक्तत्वमवगम्य तदनुष्ठानाय सर्वज्ञः प्रसाध्यते । किं  
तर्हि ? । ये सर्वज्ञपदप्राप्तीच्छवस्तदर्थं दोषभयो गुणोत्कर्षाय प्रसाध्यते । यतो  
वस्तुबलप्रवृत्तानुमानत एव सौगताः पुरुषार्थेषु घटन्ते न प्रवादमात्रेण । प्रमेयत्वा-  
दीनां च यथा साधनत्वं भवति तथा प्रतिपादितमेव । यच्चोक्तम्—दशभूमिगत  
इति, तदपि सिद्धान्तानभिज्ञेन भवतोक्तम् । नहि दशभूमिगतो भगवानिष्यते । किं  
तर्हि ? । बोधिसत्त्वावस्थां यावद्दशभूमिस्तत ऊर्ध्वं बुद्धभूमिरिष्यते ॥ ३५९२ ॥

यच्चोक्तम्—एकदेशज्ञगीतं तत्र स्यात्सर्वज्ञभाषितमिति, तदपि प्रतिविहितमेवेति  
दर्शयन्नाह—एकदेशेत्यादि ।

एकदेशज्ञगीतं तु न स्यात्सर्वज्ञभाषितम् ।

इत्यत्रापि पुरा प्रोक्तं सर्वज्ञानान्वयादिति ॥ ३५९३ ॥

एतदेव पुनरपि प्रतिपादयन्नाह—यथैवेत्यादि ।

यथैवेष्टादिकानर्थाननुभूयात्पदर्शनः ।

चेतस्यारोप्य तान्पञ्चात्प्रवस्यनुभवाश्रयान् ॥ ३५९४ ॥

न च तद्वचनं तस्य तद्वस्तुज्ञानजन्म न ।

एवं सर्वज्ञवाक्यं स्याद्धेतुभेदात्तु मिद्यते ॥ ३५९५ ॥

अल्पदर्शन इति । अर्वागदर्शनः, असर्वज्ञ इति यावत् । तद्वस्तुज्ञानजन्मेति । तस्योष्णादेर्वस्तुनो ज्ञानमनुभवस्तद्वस्तुज्ञानं ततो जन्मोत्पत्तिर्यस्य वचनस्य तत्तथोक्तम् । न नेति प्रतिषेधद्वयेन तद्वस्तुज्ञानजन्मैव भवतीति दर्शयति । एवमिति । तदपि तद्वस्तु ज्ञानजन्मतया प्रमाणम् । यद्येवं को विशेषोऽल्पदर्शनवचनाद्बुद्धवचनस्येत्याह—हेतुभेदात्तु मिद्यते इति ॥ ३५९४ ॥ ३५९५ ॥

एतदेव स्पष्टयति—समस्तेत्यादि ।

समस्तवस्तुविज्ञानमस्य कारणतां गतम् ।

किञ्चिन्मात्रार्थविज्ञानं निमित्तं तस्य तु स्थितम् ॥ ३५९६ ॥

अस्येति । बुद्धवचनस्य । तस्य स्थितिः । एकदेशज्ञवचनस्य ॥ ३५९६ ॥

विकल्पेत्यादिना — परश्चोदयति ।

विकल्पामम्भवे तस्य विवक्षा ननु कीदृशी ।

प्रहीणाचरणत्वाद्धि विकल्पो नास्य वर्तने ॥ ३५९७ ॥

नह्यसंभवद्विकल्पस्य विवक्षा सम्भवति, तस्या विकल्पविशेषत्वात् । अतोऽसौ विकल्पत्वेन व्याप्ता सती तद्भा(तद ?)वे कथमवस्थां लभेत । नहि वृक्षाभावे शिशपायाः सम्भवोऽस्ति । न च सर्वज्ञस्य विकल्पसम्भवः, तस्य प्रहीणाशेषक्लेशविशेषाद्यावरणत्वात् । विकल्पस्य च प्रकृत्या भ्रान्तत्वात् । तत्समुदाचारे भ्रान्तः प्राप्नोति सर्वविदिति ॥ ३५९७ ॥

नैवमित्यादिना प्रतिविधत्ते ।

नैवं क्लिष्टो हि संकल्पस्तस्य नास्त्यावृत्तिक्षयात् ।

जगद्विदानुकूलस्तु कुशलः केन वार्यते ॥ ३५९८ ॥

द्विविधो हि विकल्पः संक्लेशाद्यनुकूलतया क्लिष्टः । अलोमादिसम्प्रयोगसमुत्थानतया कुशलः । तत्र यः क्लिष्टः स प्रहीणक्लेशाद्यावरणानां नास्त्येव, कारणाभावात् । यस्तु कुशलः स प्रहीणावरणस्याप्यविरोधीति तेन भगवतां कृपाभ्यासप्रवर्त्तितो जगद्विदोदयानुकूलतया कुशलो विकल्पः संमुखीभवन् केन वार्यते ॥ ३५९८ ॥

स्यादेतत्—सर्वस्यैव विकल्पस्य प्रकृत्या स्वप्रतिभासेऽनर्थेऽर्थाध्यवसायेन प्रवृत्ते-

भ्रान्तत्वात्प्रहीणज्ञेयावरणस्य तत्समुदाचारो विरुद्ध एवेत्याशङ्क्याह—न च तस्येऽ  
त्यादि ।

न च तस्य विकल्पस्य सोऽर्थवत्तामवस्यति ।

तं हि वेत्ति निरालम्ब मायाकारसमो ह्यसौ ॥ ३५९९ ॥

मायाकारो यथा कश्चिन्निश्चिताश्वादिगोचरम् ।

चेतो निर्विषयं वेत्ति तेन भ्रान्तो न जायते ॥ ३६०० ॥

यदि हि तस्य विकल्पस्याविषयस्य विषयवत्तां गृहीयात्तदा भ्रान्तो भवेद्यावता  
मायाकारवदसौ तज्ज्ञानविषयतयैवावगच्छतीति कथं भ्रान्तो भवेत् ॥ ३५९९ ॥  
॥ ३६०० ॥

यदुक्तम्, इत्यादि कीर्त्यमानं तु श्रद्धानेषु शोभते इति, तत्राह—इत्यादीति ।

इत्यादि कीर्त्यमानं तु श्रद्धानेषु शोभते ।

प्रकृतार्थानुरूपेण प्रोक्तं नैतद्विजातिना ३६०१ ॥

कथम्, किं तत्प्रकृतम् ?, तदनुरूपमेतन्न भवतीत्याह—तथा(ऽ)व्याप्तश्चेत्यादि ।

तथा(ऽ)व्याप्तश्च सर्वाथैः शक्तो नैवोपदेशने ।

इत्येतत्प्रकृतं ह्यत्र तत्र चाहुर्महाधियः ॥ ३६०२ ॥

तस्योपदेशने शक्तिर्न स्याच्चेत्किं तदा भवेत् ।

ततो भवद्विर्वक्तव्यमागमो न भवेदिति ॥ ३६०३ ॥

तत्राप्याहुर्भवत्वेवं किं दृष्टोऽसौ त्वया वदन् ।

प्रसङ्गसाधनेनेदमनिष्टं चोच्यते यदि ॥ ३६०४ ॥

न चेद्वक्तृत्वमिष्येत नागमोपगमो भवेत् ।

तत्प्रणेतागमेष्टौ तु तस्य वक्तृत्वमिष्यताम् ॥ ३६०५ ॥

एतच्च प्रसङ्गसाधनं मयोक्तं न स्वातन्त्र्येणेत्येवं स्ववाचैव परोऽभिधास्यतीति मन्य-  
मानः प्रसङ्गसाधनात्वमेव तावदस्य प्रकृतस्य समर्थयितुमाह—तत्र चाहुरित्यादि ।  
यदेतद्भवतोक्तं सर्वार्थव्यावृत्तस्योपदेशने शक्तिर्न प्राप्नोतीति, अत्र तावद्भवान्प्रष्टव्यो  
माभूदुपदेशने तस्य शक्तिः, कोऽत्र दोष आपद्यते, इत्येवं पृष्टस्य परस्योत्तरं स्वय-  
मेवाविष्करोति । तत् इत्यादि । तत्राप्यभिधीयते—भवत्वेवमागमाभावः, कोऽत्र  
विरोधः, नहि भवताऽसौ ब्रुवाणः समुपलब्धो येन दृष्ट इति विरोधः स्यादित्येवं

पृष्टेन त्वया सामर्थ्यादिद्रमभिधानीयम्—न मया स्वयमागमस्य तत्प्रणीतत्वमुपलभ्य  
 तस्य वक्तृत्वं प्रसाध्यते, किं तर्हि ?, भवद्विरेवागमस्य, तत्प्रणीतत्वमीष्टम्, तच्च  
 भवतां नोपपद्यते यदि तस्य वक्तृत्वं नेष्येत । तस्मादवश्यमागमस्य तत्प्रणीतत्वमि-  
 च्छब्दिवक्तृत्वमपि तस्येष्टव्यवमित्येवमनिष्ठापादनं प्रपञ्जेन क्रियत इति ॥ ३६०२ ॥  
 ॥ ३६०३ ॥ ३६०४ ॥ ३६०५ ॥

एवं प्रसङ्गसाधनत्वं समर्थ्य साम्प्रतं प्रकृतार्थानुरूप्यानभिधानं योजयितुमाह  
 यद्येवमित्यादि ।

यद्येवमीदृशो न्यायः प्रसिद्धो न्यायवादिनाम् ।

प्रसङ्गसाधने धर्मः श्रद्धामात्रात्परैर्मतः ॥ ३६०६ ॥

युक्तिप्रसिद्धतायां च स्वतन्त्रं साधनं भवेत् ।

ईदृशश्च परेणेष्टस्तत्प्रणीतः स आगमः ॥ ३६०७ ॥

सम्भारावेधतस्तस्य पुंसश्चिन्तामणेरिव ।

निःसरन्ति यथाकामं कुट्यादिभ्योऽपि देशनाः ॥ ३६०८ ॥

आधिपत्यप्रपत्त्याऽतः प्रणेता सोऽभिधीयते ।

विकल्पानुगतं तस्य न वक्तृत्वं प्रसज्यते ॥ ३६०९ ॥

वयमश्रद्धानास्तु ये युक्तीः प्रार्थयामहे ।

इतीदं गदिनं तस्मात्प्रसङ्गार्थमजानता ॥ ३६१० ॥

य एव हि धर्मः परेणागममात्राद्भ्युपेतः स एव प्रसङ्गसाधनेऽभिधीयत इति  
 न्यायः । तत्र यदि परेण वक्तृत्वानुगमेन तत्प्रणीतत्वमागमस्येष्टं स्यात्तदा भवेद्वक्तृ-  
 त्वाभावादागमस्यातत्प्रणीतत्वप्रसङ्गः, यावताऽधिपत्यमात्रेणासौ तस्यागमस्य प्रणेता-  
 ऽभ्युपगतो न वक्तृत्वोपगमान् । अतो यतः प्रणीतागमोपगमेन वक्तृत्वापादनं तत्प्रस-  
 ङ्गार्थानभिज्ञेन भवताऽभ्यघायि ॥ ३६०६ ॥ ३६०७ ॥ ३६०८ ॥ ३६०९ ॥  
 ॥ ३६१० ॥

यच्चेदमुक्तं कुट्यादिनिःसृतानामित्यादि । तत्राह—कुट्यादीत्यादि ।

कुट्यादिनिःसृतानां च कस्मान्नाप्तोपदिष्टता ।

तदाधिपत्यभावेन यदा तासां प्रवर्तनम् ॥ ३६११ ॥

यदि हि तदाधिपत्येन तासां देशनानां न म्याप्रवृत्तिस्तदाऽप्तोपदिष्टता न भवेत् ।

यदा तु तदाधिपत्येन ताः प्रवर्त्तन्त इत्युपगतं तदा किमिति तदुपदिष्टत्वमासां न भवेत् ॥ ३६११ ॥

यच्चोक्तम्—विश्वामश्व न तासु म्यादिति, तत्राह—सम्भिन्नैत्यादि ।

सम्भिन्नालापहिंसादिकुत्सितार्थविवर्जिताः ।

क्रीडाशीलपिशाचादिप्रणीताः स्युः कथं च ताः ॥ ३६१२ ॥

सम्भिन्नालापहिंसादिकुत्सितार्थोपदेशनम् ।

क्रीडाशीलपिशाचादिकार्यं तासु न विद्यते ॥ ३६१३ ॥

प्रमाणद्वयसंवादि मतं नद्विषयेऽखिले ।

यस्य बाधा प्रमाणाभ्यामणीयस्यपि नेक्ष्यते ॥ ३६१४ ॥

यच्चात्यन्तपरोक्षेपि पूर्वापरविबाधितम् ।

करुणादिगुणोत्पत्तौ सर्वपुंसां प्रयोजकम् ॥ ३६१५ ॥

सर्वाकारधरोपेनं मद्भूतप्रतिपादकम् ।

इहामूत्र च भव्यानां विविधाभ्युदयावहम् ॥ ३६१६ ॥

सर्वानुशयसन्दोहप्रतिपक्षाभिधायकम् ।

निर्वाणनगरद्वारकपाटपुरभेदि च ॥ ३६१७ ॥

तच्चेत्क्रीडनशीलानां रक्षसां वा वचो भवेत् ।

त एव सन्तु सम्बुद्धाः सर्वतल्लक्षणस्थितेः ॥ ३६१८ ॥

नहि नामान्तरकलृप्तौ वस्तुरूपं निवर्त्तने ।

विशिष्टेऽशिष्टसंज्ञां तु कुर्वन्निन्द्यः सतां भवेत् ॥ ३६१९ ॥

यदि हि नृत्यगीतहिंसागम्यगमनादेः तत्कर्तव्यतया तत्रोपदेशः स्यात्तदा क्रीडा-  
द्यभिरनपिशाचादिकार्योपलम्भात्तासां तत्प्रणीतत्वं सम्भावनापथमवतरेत् । यावता  
प्रमाणाविरुद्धभयरस्परपराहतमार्यजनोचितं—करुणादिगुणेषु नियोजयितुं स्वर्गापव-  
र्गफलवाहकमेतद्भवतो वचनमित्युपपादितमेतत् । तदीदृशं कथं क्रीडनशीलस्य  
पिशाचादेः सम्भाव्यते । यदि नृणामपि भवता पिशाच इति नाम क्रियते । कामं  
क्रियतां नहि नामकरणे वस्तुस्वभावहानिः । किन्तु भवानेव विशिष्टे भगवत्यशिष्ट  
व्यवहारं कुर्वन्सतां निन्द्य आपद्येतेति समासार्थः । अवयवार्थस्तूच्येते—सम्भिन्ना-  
लापो—गीताद्युपदेशः । हिंसा—प्राणिवधः । कुत्सितार्थः—काममिथ्याचारादिः ।



प्रमाणद्वयसंवादीति । प्रमाणद्वयं—प्रत्यक्षानुमाने, ताभ्यां संवादस्तदविरुद्धार्थता  
सोऽस्यास्तीति तत्तथोक्तम् । मतमिति । निश्चितम् । तद्विषयेऽखिल इति । प्रमा-  
णद्वयविषये । प्रमाणद्वयसंवादीति सम्बन्धः । सद्वृत्तम्—आदिमध्यान्ते कल्याणं  
ब्रह्मवर्षम् मर्तानुग्रयमन्दोहः— दृग्भावनाद्देयकलेशौघः । तल्लक्षणस्थितेरिति । सम्बु-  
द्धलक्षणस्थितेः । यथोक्तम्—‘अभिज्ञातमभिज्ञेयं भावनीयं च भावितम् । प्रहातव्यं  
च प्रहीणं च तेन बुद्धो निरुच्यते’ ॥ इति ॥ ३६१२ ॥ ३६१३ ॥ ३६१४ ॥  
॥ ३६१५ ॥ ३६१६ ॥ ३६१७ ॥ ३६१८ ॥ ३६१९ ॥

वेदस्यैव क्रीडाशीलपिशाचादिप्रणीतत्वं युक्तं सम्भावयितुम् । येन गोसवादिष्वगम्य-  
गमनादयोऽसमाचाराः संप्रकाशिता इत्येतद्दर्शयन्नाह— कामेत्यादि ।

काममिध्यासमाचारप्राणिर्हिसादिलक्षणाः ।

असभ्यास्तु क्रिया येन वचसा सम्प्रकाशिताः ॥ ३६२० ॥

तद्भुजङ्गपिशाचादिप्रणीतमिति शङ्क्यते ।

तच्चेष्टाभिरनानां हि तादृक्सम्भाव्यते वचः ॥ ३६२१ ॥

भुजङ्गो—धूर्तः ॥ ३६२० ॥ ३६२१ ॥

यच्चोक्तम्— युगपच्छुच्यशुच्यादीत्यादि, तत्राह—युगपदित्यादि ।

युगपच्छुच्यशुच्यादिस्वभावानां विरोधिनाम् ।

ज्ञानमेकधिया दृष्टं न विरुद्धा विदा हि ते ॥ ३६२२ ॥

यद्यपि भावाः केचित्परस्परं विरोधिनः, तथापि ते विदा—ज्ञानेन सहाविरुद्धा  
एव । युगपदेकेनापि ज्ञानेन विरुद्धानेकार्थग्रहणोपलम्भात् ॥ ३६२२ ॥

एतदेव स्पष्टयन्नाह—अन्योन्यपरिहारेणेत्यादि ।

अन्योन्यपरिहारेण स्थितलक्षणतोऽथवा ।

एकस्मिन्न सह स्थानं विरोधस्तेषु सम्भवेत् ॥ ३६२३ ॥

एकज्ञानावभासित्वं न तु तेषां विरोधिता ।

शुच्यशुच्यहिशिरुयादेश्चक्षुषा सकृदीक्षणात् ॥ ३६२४ ॥

द्विविध एव हि भावानां विरोधः परस्परपरिहारस्थितलक्षणता सहानवस्थानता  
च । तत्र ये परस्परपरिहारेण स्थितलक्षणास्तेषामैक्यं विरुद्धम् । ये तु सहानवस्था-

यिनस्तेषामेकदेशावस्थानं विरुद्धम् । न चैकविज्ञानभासनादेशामैक्यमेकदेशत्वं वा प्रसज्येत । तेन नैकविज्ञानभासित्वेनैषां विरोधः । दृष्टं च विरुद्धानामपि सतामेकज्ञानभासनम् । यथा शुच्यशुचिनोश्चक्षुर्ज्ञानेन परस्परपरिहारस्थितलक्षणयोरहेर्मयूरस्य च सहानवस्थायिनोर्युगपद्ग्रहणम् । आदिशब्देन छायातपादीनां ग्रहणम् । यदि तर्हि विरुद्धानामप्येकज्ञानावभासनमविरुद्धम् ॥ ३६२३ ॥ ३६२४ ॥

एवं सति सुखदुःखयो रागद्वेषयोरेकज्ञानभासनं प्राप्नोतीत्याशङ्क्याह—सुखेत्यादि ।

**सुखदुःखादिभेदे तु यत्सकृन्नास्ति वेदनम् ।**

**हेत्वभावादसान्निध्यात्तज्ज्ञेयं न विरुध्यते ॥ ३६२५ ॥**

तज्ज्ञेयमिति । यत्सुखादीनां सकृदवेदनं तत्कारणाभावेनानुत्पत्तेरसन्निहितत्वात्, तत् (नतु!) विरुद्धत्वादित्येवं ज्ञेयसु—बोद्धव्यमित्यर्थः । एतदुक्तं भवतिकारणवैकल्यादसान्निध्यं तत्र कारणं न परस्परविरोध इति ॥ ३६२५ ॥

येषां च वास्तवो विरोधो न तु शुच्यशुच्यादिवत्कल्पनाकृतस्तेषामप्येकज्ञाने भासनमस्तीति दर्शयति—नीलपीतेत्यादि ।

**नीलपीतावदातादिरूपभेदाविरोधिनः !**

**देशप्रकृतिभेदेपि(न?) वीक्ष्यन्ते युगपद्यतः ॥ ३६२६ ॥**

देशप्रकृतिभेदेन विरोधिन इति सम्बन्धः । तत्र देशभेदस्तदतद्देशत्वम् । प्रकृतिभेदो नीलपीतादिस्वभावत्वम् । यद्वा नीलाद्युपादानकारणत्वम् ॥ ३६२६ ॥

यच्चोक्तम्— भूतं भवद्भविष्यतीत्यादि, तत्राह—एकज्ञानेत्यादि ।

**एकज्ञानक्षणव्याप्तनिःशेषज्ञेयमण्डलः ।**

**प्रसाधिनो हि सर्वज्ञः क्रमो नाश्रीयते ततः ॥ ३६२७ ॥**

अत्र केचित्स्वयूथ्या एव विज्ञानवादिमतमुपोलङ्घयन्तश्चोदयन्ति—यदि युगपदेकज्ञानक्षणेन (अ)विशेषं ज्ञेयमण्डलं व्याधा(प्य?)ते, तदा भावनानि यत्ना(भावानामियत्ता?)परिच्छेदादानन्त्यमभ्युपेतं बाध्येत । तथा हेकज्ञानारूढाद्वादान्यो भावो नास्तीत्येवं परिच्छिद्यमानाः कथमन्तवन्तो न भवेयुः । आह च—“एकज्ञानसमारूढान्नान्यो भावोऽस्ति कश्चन । इयन्त इति विज्ञानादन्तवन्त” इति । ततश्च क्रमपक्षे यो दोषः स युगपज्ज्ञानपक्षेऽपीति । तदेतदसारम् । यदि तावन्निराकारविज्ञानवादिमतमाश्रित्य चोद्यते तदा सर्वमसङ्गतम् । तथाहि—यावत्किञ्चिद्वस्तु

ज्ञानं(तं ?) सत्तामनुभवति । तस्य सर्वस्य सत्तामात्रेण सर्वज्ञचेतसा परिच्छेदात्तेन तद्द्रासामिति व्यपदिश्यते, न तु पटेनेव घटानां देशपर्यन्ततया व्याप्तेः । न चैकेन ज्ञानेन परिच्छिन्नानीत्येतावता वस्तूनामात्मस्वभावहानिः । येन तान्येकज्ञानपरिच्छेदवशादनन्तत्वमात्मस्वभावं जडुः । नहि नीलपीतादयो भावा बहवो युगपच्चित्रास्तरणादिष्वेकज्ञानक्षणावसीयमानतनवोऽनेकत्वं जहति । नापि परस्परमन्वाविशन्ति । अपि तु यथैव सन्ति तथैव ज्ञानेन परिच्छिद्यन्ते । नान्येन रूपेण । तद्वत्सत्त्वभाजनलोकोऽपि यथैव सत्तामनुभवति तथैव सर्वज्ञचेतसा गृह्यते । अपर्यन्तश्च दिक्षु विदिक्षु सत्त्वादिलोकोऽवस्थिन इत्यपर्यन्त(त)या तस्य ग्रहणं न तु पर्यन्तवर्तितयेति कुतोऽन्तवत्त्वप्रसङ्गः । स्यादेतत्सकलग्रहणाभ्युपगमे कथं पर्यन्तग्रहणं न स्यादिति । नैतदस्ति । को ह्यत्र प्रतिबन्धो यत्र साकल्यग्रहणं तत्रावश्यं पर्यन्तग्रहणमिति । तथाहि—यावन्तस्ते सन्ति भावास्तेषां मध्ये नैकोऽपि सर्वज्ञज्ञानाविदितस्वरूपः सत्तामनुभवति । अपि तु सर्व एव सर्वज्ञचेतसा विदितस्वरूपा एवोदयन्ते व्ययन्ते च, नैकोऽपि परित्यक्त इत्ययं सकलग्रहणस्यार्थः । इयमेव च तेषामेकज्ञानेन व्याप्तिः । अन्यथा सकलशब्दवाच्यत्वमपि तेषां नाङ्गीकर्तव्यं माभूदन्तवत्त्वप्रसङ्ग इति यत्किञ्चिदेतत् । यच्चोक्तमेकज्ञानारूढाद्वादन्यो नास्तीत्येवं परिच्छेदात्कथमन्वन्तो न भवेयुरिति, तदप्यसम्यक् । नहि निराकारज्ञानादिपक्षे ज्ञानात्मनि भावानामारोहणमस्ति । अपि तु सत्तामात्रेण तेन निवेद्यन्ते । नापि भावानां ज्ञानापरिच्छेद्यस्वभावतयाऽनन्तत्वमभ्युपेतम्, येन ज्ञायमानतया तेषामन्तवत्त्वं प्रमज्जयेत् । किन्तु देशवितानापर्यन्ततयाऽनन्तो भाजनलोकः । सत्त्वलोकस्तु सङ्ख्यानापर्यन्ततयाऽपि । न च देशावष्टम्भाय पर्यन्तत्वे(ऽ) मति प्राणविरोधः कश्चियेनाप्राणता भवेत् । यदि पर्यन्ततया न संगृह्णाति कथं सर्वज्ञः स्यादिति चेदत एव । यन एवासौ पर्यन्ततया न गृह्णाति तत एव सर्वज्ञो भवति । अन्यथाऽनन्तवत्त्वन्तवत्त्वेन गृह्णन् भ्रान्तो भवेत् । तथाहि—यदस्ति तदस्त्वित्तेन यन्नास्ति तन्नास्ति त्वेन गृह्णन्सर्वविदुच्यते । न च सत्त्वभाजनलोकस्य पर्यन्तोऽस्ति । तस्मात्पर्यन्तं गमनकृत(मविद्यमान)मविद्यमानतया गृह्णन्सर्वज्ञानपरिच्छेदकृतं तु पर्यन्तं विद्यमानं विद्यमानतया पश्यन्कथमसर्वज्ञो नाम । स्यादेतत्—निराकारज्ञानपक्षे विषयग्रहणमनुपपन्नं सर्वत्राविशिष्टत्वात्तस्य । तेन प्रतिकर्मविभागानुपपत्तेरतो निराकारपक्षोऽनुपपन्नसनीय एव । सर्वदा तस्य द्र(दु ?)ष्टत्वादिति । तदेतदसम्यक् ।

नहि सर्वज्ञज्ञानस्य प्रतिकर्मविभाग इष्यते, तस्य सर्ववस्तुविषयत्वात्, यतो न तन्नीलस्यैव संवेदनं पीनस्यैव वा, अपि तु सर्वस्यैवेतीष्टम् । यस्य अर्वाग्दर्शनस्य ज्ञानं प्रतिनियनार्थविषयं तं प्रति निराकारज्ञानपक्षे सर्वत्राविशेषात्प्रतिपन्नविभागानुपपत्तिर्दोष उच्यते । तथाहि नीलस्येदं संवेदनं न पीतस्येति नियमाभावात् सर्वस्य पृथग्जनस्य सर्वज्ञत्वप्रसङ्गापादनं क्रियते । सर्वज्ञस्य तु तदिष्टमेवेति कस्य क्विपनिष्टमापद्यनाम् । तेन सर्वज्ञावस्थायां निराकारं योगबलेनोत्पद्यमानमविरुद्धमेव । विभागेन हेयोपादेयवस्तुपरिज्ञानं न स्यादिति चेत् । न । यदि हि युगपदान्ते वस्तुनि प्रतिभासमाने हेयोपादेयवस्तुनः प्रतिभासविरोधः स्यात्, अविरोधे चान्यैः प्रतिभाममानस्य तस्य हेयोपदेयवस्तुनः तत्त्वप्रच्युतिः स्यात्, प्रच्युत(त)-त्त्वस्यापि विभागेनावभास(न)मेव वा न स्यात्, वि(नि?)रुक्तावभासनस्यापि यदि परिच्छेदकः शुद्धलौकिको विमर्शप्रत्ययः पृष्ठभावी नोत्पद्यते तदैतत्सर्वं स्याद्धकुम् । यावता विश्वस्मिन्जगत्त्ववभासमाने तदपि हेयोपादेयं वस्त्वविरुद्धप्रतिभासमपच्युतात्मतत्त्वं निरुक्तमेवावभासते । पश्चाच्च सर्वज्ञज्ञानबलोत्पन्नशुद्धलौकिकप्रत्यवमर्शप्रत्ययेन परिच्छिद्यत एवेति कथं विभागेन तदपरिज्ञानं नाम । तदेवं निराकारज्ञानपक्षे तावदचोद्यमेतदिति प्रतिपादितम् ।

अथ साकारज्ञानवादपक्षे चोद्यते । तत्राप्यविरोध एव । तथाहि—यथैव तदानन्तं वस्त्वन्ताकागनुगतमात्मसत्त्वं सत्तामनुभवति तथैव तत्सर्वज्ञं चेतोऽपरिमितवस्तुगताकारोपग्रहेणोत्पद्यमानमविरुद्धमेव । एकस्य ज्ञानस्यानेकवस्त्वाकारोपग्रहेणोत्पत्त्यविरोधात् । एकस्यानेकाकारविरोध एवेति चेत् । आकाशगणामसत्यत्वान् । यदि ह्येकस्य पारमार्थिका आकारा भवेयुस्तदा स्याद्विचित्रत्वविरोधः, यावता अस्य(स्व?)भूता एकाकारा इतीष्टम् । यथैवं भ्रान्तज्ञानसङ्गित्वा(त) भ्रान्तः प्राप्नोति सर्वज्ञ इति चेत् । यथाभूतपरिज्ञानाददोष एषः । यदि असत्यं सत्यत्वेन गृहीयात्तदा भ्रान्तः स्यात्, यदा त्वसत्यभूतानाकारानसत्यत्वेनैव जानाति तदा कथं भ्रान्तो भवेत् । अथाव्यतिरेकज्ञानारूढाकारग्रहणे सत्यर्थेषु दृष्टादिव्यवहारं कुर्वन्कथं (अ)भ्रान्त इति चेत् । मध्यगुणपरिज्ञानात् । यदि ह्युचितं ग्रहणोपायमप्राप्त्योपायान्तरेणामुख्येनार्थं गृहीयात्तदा भ्रान्तो भवेत् । यावता साकारज्ञानवादिपक्षे ज्ञानस्याकारानुभवव्यतिरे नान्योऽर्थग्रहणव्यापारोऽस्ति । तत्कथमुचितेन ग्रहणव्यापारेणार्थं गृह्णन्तो भवेत् । अतो ज्ञेयवदेकस्यापि ज्ञानस्यानन्तवस्तुग

ताकारोपग्रहेणोपचेरनन्तं वस्तु तेन व्याप्तमित्युच्यते । येनैव चात्मना ज्ञानात्मनि भावाः समारोहन्ति—तेनैव तत्पृष्ठभाविपरामर्शचेतसा परिच्छिद्यन्ते न च सार्वज्ञचेतसि परिमितभेदानुगताः समारोहन्ति भावाः । किं तर्हि ? । यावत्किञ्चिदस्ति-त्वमनुभवति तत्सर्वमेव समारोहति । सर्वस्यैव सर्वज्ञानोपादानं प्रत्यालम्बनभावेनाप्रतिबद्धशक्तित्वात् । मनोविज्ञानस्य च सर्वार्थविषयत्वात् । अतः सार्वज्ञचेतसः (अ)परिमितवस्त्वाकारोपग्रहेणोऽननुपपत्तेः, पृष्ठलब्धेन च शुद्धलौकिकेन परामर्श-प्रत्ययेन देशपर्यन्तवर्तित्वेनापरिच्छेदात्, कथमियन्त इति परिच्छेदो भवेत्, येनान्तवत्त्वं स्यात् । यदि नाम प्रतिभास(मा)नादन्यन्नास्तीत्येवं परामर्शो जातस्तथाऽपि नान्तवत्त्वप्रसङ्गः । तथाहि—यदि प्रतिभासमानमन्तवदेव निर्विकल्पसार्वज्ञचेतसि प्रतिभासेत तदा तत्पृष्ठलब्धेन परामर्शचेतसा अनन्तत्वं भावानां परिच्छिद्येत । तद्व्यवच्छेदाच्चानन्त(त्व)हानिर्भवेत् । यावता प्रतिभासमानं वस्तु सर्वज्ञचेतस्यनन्तमेव प्रतिभासते सर्व(ज्ञ)स्याप्रतिहतशक्तित्वात् । तस्मादन्यदप्रतिभासमानमन्तवदेव । तस्यैव च परामर्शचेतसा व्यवच्छेदः क्रियत इति सुतरामेव भवताऽनन्तत्वं भावानामुपपादितमिति यत्किञ्चिदेतत् । ये तु पुनः सर्वमेव योगविज्ञानमनालम्बनं सत्यस्वप्नदर्शनवद्भ्रसुसंवादितया प्रमाणमिति प्रतिपन्नास्तान्प्रत्यन्तवत्त्वचोद्यं दूरीकृतावकाशमेवेत्यलं बहुना ॥ ३६२७ ॥

यैः स्वेच्छासर्वज्ञो वर्ण्यते तन्मतेनाप्यसौ न विरुध्यत इत्यादर्शयन्नाह—यद्यदित्यादि ।

यद्यदिच्छति बोद्धुं वा तत्तद्वेत्ति नियोगतः ।

शक्तिरेवंविधा तस्य प्रहीणाचरणो ह्यसौ ॥ ३६२८ ॥

युगपत्परिपाठ्या वा स्वेच्छया प्रतिपद्यते ।

लब्धज्ञानं च सिन्धो(?)हि सक्षणेर्द्यादिभिः प्रभुः ॥ ३६२९ ॥

यद्वेत्यादिना क्रमज्ञानपक्षेऽविरोधमाह ।

यद्वा षोडशभिश्चितैश्चतुःसत्यस्वभावकम् ।

क्रमेण वेत्ति विज्ञेयं सर्वं सर्वविदित्यतः ॥ ३६३० ॥

तत्र तादृशि विज्ञाने क्रमेण भवति प्रभोः ।

लवमात्रोऽपि नापेक्ष्यः किमङ्गाब्दशतावधिः ॥ ३६३१ ॥

षोडशभिश्चैरिति । क्षान्तिज्ञानैः । अष्टौ क्षान्तयो दुःखधर्मज्ञानक्षान्त्यादयः, अष्टौ च ज्ञानानि दुःखधर्मज्ञानादीनीति 'षोडशभिन्नोऽयं सत्याभिसमय' इति वचनात् । लवमात्रोऽपीति । काल(कला ?)पर्यन्तः क्षणः, विशक्षणशतमेकभूतःक्षणः, षष्ठित-  
ज्ञेया एको लव इति समयः । अङ्गेत्यामङ्गणे । अब्द इति संवत्सरपर्यायः  
॥ ३६३० ॥ ३६३१ ॥

स्वभावेनाविभक्तेनेत्यादावाह—स्वभावेनेत्यादि ।

स्वभावेनाविभक्तेन यः सर्वमवबुध्यते ।

स्वरूपाण्येष भावानां सर्वेषां सोऽवबुध्यते ॥ ३६३२ ॥

ननु योगिनामनाश्रवं ज्ञानं शाले सामान्यविषयमेवोपवर्ण्यते, न तु स्वलक्षणवि-  
षयम्, तत्कथं सामान्यविषयेण योगिचेतसा भावानां स्वरूपाण्येव च बुध्यन्त  
इत्यत आह—सा(स्वा ?)त्मकेत्यादि ।

सा(स्वा)त्मकाक्षणिकादिभ्यो यद्बुधावृत्तं स्वलक्षणम् ।

शमोत्प्रेक्षानिमित्तत्वात्सामान्यं तदिहोच्यते ॥ ३६३३ ॥

तद्वाहकं च विज्ञानं भावनाबलभावि यत् ।

योगीशानामभिन्नयुक्तं तत्स्वलक्षणगोचरम् ॥ ३६३४ ॥

तदेव हि स्वलक्षणं विजातीयव्यावृत्तमभिन्नाकारप्रत्ययहेतुतया शाले सामान्य-  
लक्षणमित्युच्यते, अतस्तद्वाहकं योगिज्ञानं भावनाबलेन स्फुटप्रतिभामुत्पद्यमानं  
स्वलक्षणगोचरमेवेत्यदिरुद्धमेव । तद्यत्सामान्यगोचरं तत्कथं (न) स्वलक्षणग्राहि  
तद्भवतीति । यच्चोक्तम्—तदेकाकारविज्ञानमित्यादि, तत्सर्वमेतेनैव प्रत्युक्तम्,  
स्वलक्षणविषयत्वाद्योगिज्ञानस्येति ॥ ३६३३ ॥ ३६३४ ॥

अथ यत्तत्सावृत्तं तत्त्वान्यत्वादिभिराकारैरनिर्देश्यं सामान्यमस्माभिरुपवर्णितम्,  
यच्च परैस्तैश्चिकैः पारमार्थिकमेव प्रकल्पितम्, तद्वाहित्वेन योगिज्ञानस्य स्वलक्षण-  
विषयत्वं साध्यते, तदसिद्धमित्यादर्शयन्नाह—तच्चेत्यादि ।

तत्त्वान्यत्वाद्यनिर्देश्यं यत्परैश्च प्रकल्पितम् ।

सामान्यं तस्य नैनेन ग्रहणं योगिचेतसा ॥ ३६३५ ॥

आदिशब्देन नित्यत्वादिभिरनिर्देश्यमिति ग्रहीतव्यम् ॥ ३६३५ ॥

कस्मात्तेन तस्य ग्रहणं नास्तीत्याह—अविकल्पमित्यादि ।

अविकल्पमविभ्रान्तं तद्योगीश्वरमानसम् ।

विकल्पविभ्रमाक्रान्तं तद्ब्रहे च प्रसज्यते ॥ ३६३६ ॥

योगिज्ञानमविकल्पाभ्रान्ततया प्रत्यक्षं प्रमाणमिष्यते । यदि च तद्यथोक्तसामान्यविषयं स्यात्तदा सांवृतार्थविषयत्वाद्विकल्पाक्रान्तं प्राप्नोति । परपरिकल्पितालीकसामान्यविषयत्वाद्विभ्रमाक्रान्तं च प्रसज्यते । यद्वा—प्रत्येकमुभयविषयत्वे दोषद्वयमापतति ॥ ३६३६ ॥

एवमध्यारोपितालीकार्थविषयत्वाद्विकल्पविभ्रमाक्रान्तं तत्प्रसज्यत इति प्रतिपादितम् । इतश्च विकल्पविभ्रमाक्रान्तं तद्वाहि प्रसज्यत इति भङ्गयन्तरेण प्रतिपादयन्नाह—विकल्पात्मा चेत्यादि ।

विकल्पात्मा च सामान्यमवाच्यं यत्प्रकीर्तितम् ।

नित्यानुगतिरूपं तन्नीरूपं प्रतिपादितम् ॥ ३६३७ ॥

यदेतदनन्तरोक्तमवाच्यं—तत्त्वान्यत्वाद्यनिर्देश्यं सामान्यमुक्तम्, तद्विकल्पस्यात्मेति यद्यस्मात्प्रकीर्तितम्—प्रतिपादितमन्यापोहे । तस्मात्तद्ब्रहे विकल्पविभ्रमाक्रान्तं प्रसज्यत इति प्रकृतेन सम्बन्धः । तथाहि—विकल्पात्मतया सामान्यस्य तद्वाहियोगिज्ञानं विकल्पात्मकमेव स्यात् । तादात्म्येनैव तस्य ग्रहणात् । विकल्पस्य च प्रकृत्या स्वप्रतिभासेऽनर्थेऽर्थाध्यवसायेन प्रवृत्तेऽर्विपर्यस्तत्वमिति विभ्रमाक्रान्तं च प्रसज्येत । यच्च परपरिकल्पितं सामान्यं नित्यानुगतिरूपं तदपि सामान्यपरीक्षायां नीरूपस्वभावमेव प्रतिपादितमिति तद्ब्रहे स्फुटतरमेव विकल्पविभ्रमाक्रान्तत्वमासज्यते ॥ ३६३७ ॥

यच्चोक्तम्—सहेतु सफलं कर्मेत्यादि, तत्राह—सहेत्वित्यादि ।

सहेतु सफलं कर्म ज्ञानेनालौकिकेन यः ।

समाधिजेन जानाति स सर्वज्ञोऽपदिश्यते ॥ ३६३८ ॥

पुरस्तादनुमानेन तस्य सत्ता प्रसाधिता ।

प्रमाणमस्य सद्भावे तदस्तीत्यस्ति तादृशः ॥ ३६३९ ॥

युगपत्परिपाठ्या चेत्यादावाह—युगपदित्यादि ।

युगपत्परिपाठ्या वा ज्ञानं कार्यात्प्रकाशितात् ।

सामर्थ्यमपि तस्यास्ति देशानां कुरुते यदा ॥ ३६४० ॥

सुबोधम् ॥ ३६४० ॥

लब्धासाधारणो गय इत्यादावाह—स्वभ्यस्तधर्मनैरात्म्येत्यादि ।

स्वभ्यस्तधर्मनैरात्म्या यस्येयं देशनाऽमला ।

साधिता सर्वशास्त्रेषु(ण?) सर्वमानैरबाधिता । ३६४१ ॥

संसार्यनुचितज्ञाना केशवादेरगोचरः ।

शिरोभिरर्च्यते शक्त्या याचातीव मनीषिभिः ॥ ३६४२ ॥

समस्तदुरितारातिवर्गभङ्गविधायिनी ।

चित्राभ्युदयनिष्पत्तिनिर्वाणप्राप्तिकारणम् ॥ ३६४३ ॥

लब्धासाधारणोपायोऽशेषपुंसां विशेष(लक्ष?)णः ।

स एक सर्वविघ्नाथ इत्येनत्सप्रमाणकम् ॥ ३६४४ ॥

सर्वशास्त्रेणेति । सकलेनामुना तत्त्वमङ्गपहेण । संसार्यनुचितज्ञानेति । संसारि-  
णामनुचितममहजं संसार्यनुचितं तत्तादृशं ज्ञानं यस्यां देशनायां सा तथोक्ता ।  
केशवादेरगोचर इति । स्वलिङ्गेनैव देशनासमानाधिकरणमेतत् । समस्तदुरिता-  
रातिवर्गभङ्गविधायिनीति । दुरितान्येवारातयस्तेषां वर्गः समूहस्तस्य भङ्गं  
विधातुं शीलमस्या इति विग्रहः । चित्राभ्युदयनिष्पत्तिनिर्वाणप्राप्तिकारणमिति ।  
कारणशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । चित्राभ्युदयनिष्पत्तिकारणं निर्वाणप्राप्तिकारणं  
चेत्यर्थः ॥ ३६४१ ॥ ३६४२ ॥ ३६४३ ॥ ३६४४ ॥

इत्थं यदेत्यत्राह इत्थमित्यादि ।

इत्थं यदा च सर्वशः कश्चिदेवोपपद्यते ।

धर्माद्यधिगमे हेतुः पौरुषेयं तदा वचः ॥ ३६४५ ॥

कश्चिदेवेति । सुगत एव, न कपिलादिः । यथोक्तं प्रागित्यभिप्रायः । यश्च निरा-  
काराकारज्ञानविकल्पेन दोष उक्तस्तथा(त्राः)पि पूर्वमेवास्माभिः प्रतिविहितम् ॥ ३६४५ ॥

ननु चोक्तम्—“सनिर्भासमनिर्भासमन्यनिर्भासमेव च । विजानाति न विज्ञानं  
बाह्यमर्थं कथंचन ॥” इति,

तत्कथमुभयपक्षाश्रयणेऽपि दोषाप्रभङ्ग उच्यते इत्येतदाशङ्क्याह—(निराकारादीति) ।

निराकारादिचिन्ता तु सर्वज्ञे नोपयुज्यते ।

यथाहि भवतां ज्ञानं क्वचिदर्थे तथा परम् ॥ ३६४६ ॥

इत्यतीन्द्रियदर्शिपुरुषपरीक्षा ।

शान्तरक्षितविरचितस्तस्वसङ्ग्रहः समाप्तः ।



येयमस्माभिर्विज्ञानवादस्थितैर्निराकारचिन्ता प्रागकारि सा साम्प्रतं बाह्यार्थाभि-  
निविष्टान्भवतो मीमांसकान्प्रति बहिरर्थमभ्युपेत्य सर्वज्ञे प्रतिपाद्यमाने भवतां बहि-  
रर्थवादिनां कथमपि नोपयुज्यत एव कर्तुम् । कथमित्याह—यथाहीत्यादि । अवश्यं  
हि भवद्विर्बहिरर्थस्य साकारेण वा निराकारेण वा ज्ञाने ग्रहणमुपवर्णनीयम् । अ-  
न्यथा बहिरर्थोच्छेदः स्यात् । ततश्च यथा येन प्रकारेण भवतां कचिदर्थे ज्ञानं प्रव-  
र्त्तते तथा तेनैवाकारेण परम्—उत्कृष्टम्, सार्वज्ञं (इति) सम्बध्यते, प्रवर्त्तिष्यते  
इत्यचोद्यमेतदिति ॥ ३६४६ ॥

इति कुशलमदभ्रं यन्मयाप्रापि शुभ्रं  
निरुपमाजिनलक्ष्मीसद्भतामेत्य नित्यम् ।  
सकलजनमनांसि प्रीणयन् दीप्तकान्तिः  
सुगतकमलशीलस्तेन सर्वोऽस्तु लोकः ॥

**इत्यतीन्द्रियदर्शिपुरुषपरीक्षा ।**

कमलशीलविरचिता पञ्जिका समाप्ता ।

६४४ पत्रे तत्कृतः प्रत्यय इत्यादिश्लोकत्रये प्रलुप्तवाक्यानामापूरणमनवधानकृतम्,  
श्लोकवार्त्तिकस्य तु तत् । तत् तदनुसारेण त्वेवं पठितव्यम्—

तत्कृतः प्रत्ययः सम्यङ्निन्यवाक्योद्भवत्वतः ।  
वाक्यबुद्धिवदेवात्र पूर्वोक्ताश्चापि हेतवः ॥  
चोदनाजनिता बुद्धिः प्रमाणं दोषवर्जितैः ।  
कारणैर्जन्यमानत्वात् लिङ्गातोक्त्यक्षबुद्धिवत् ॥  
तथाऽनाप्तप्रणीतोक्तिजन्यत्वाद्वाधवर्जनात् ।  
देशकालादिभेदेन चातोक्तिप्रत्ययो यथा ॥

## आकरानुक्रमणिकायां विहितानां निबन्धसंज्ञानां सूची ।

|                |   |  |
|----------------|---|--|
| अ. प्रज्ञा.    | अष्टसाहस्रीप्रज्ञापारमिता                     | Asiatic Society of Bengal, Calcutta.   |
| भाष. श्रौ. सू. | आस्तम्बश्रौतसूत्र                             |  |
| ऋ. वे.         | ऋग्वेद  |  |
| का. लं.        | काव्यालङ्कार by भामह                          | Published along with Pratáparud-<br>rayaśobhūshana in the Bombay<br>Sanskrit Series. |
| न्या. द.       | न्यायदर्शन by गौतम                            |  |
| न्या. वि.      | न्यायविन्दु by धर्मकीर्ति                     | Asiatic Society of Bengal, Calcutta.   |
| न्या. वा.      | न्यायवार्त्तिक by उद्योतकर                    | „  |
| पा. सू.        | पाणिनिसूत्र                                   |  |
| प्र. स.        | प्रमाणसमुच्चय of दिङ्नाग                      |  |
| बृ. उ.         | बृहदारण्यकोपनिषत्                             |  |
| भा. व.         | महाभारत-वनपर्व                                |  |
| म. भा.         | महाभाष्य of पतञ्जलि                           |  |
| गी. द.         | मीमांसादर्शन of जैमिनि                        |  |
| मी. भा. पू.    | मीमांसासूत्रभाष्य of शबर-<br>स्वामी-पूर्वषट्क | Asiatic Society of Bengal, Calcutta.   |
| वा. प.         | वाक्यपदीय of भर्तृहरि                         | Chowkhamba Sanskrit Series,<br>Benarès.  |
| वै. द.         | वैशेषिकदर्शन by कणाद                          |  |
| वै. द. भा.     | वैशेषिकदर्शनभाष्य by<br>प्रशस्तपाद            | Vijayanagaram Sanskrit Series,<br>Benares.   |
| श्लो. वा.      | श्लोकवार्त्तिक by कुमारिल                     | Chowkhamba Sanskrit Series,<br>Benares.  |
| स. द. सं.      | सर्वदर्शनसङ्ग्रह by माधवाचार्य                | Anandasram Sanskrit Series,<br>Poona.  |
| सा. का.        | साङ्ख्यकारिका of ईश्वरकृष्ण                   |  |



## तन्त्रसंग्रहस्थकारिकाणामनुक्रमणिका ।



| अ                                 | अग्निधूमन्तरत्वे तु         | ४२२ |
|-----------------------------------|-----------------------------|-----|
|                                   | अग्निहोत्रादिवचनात्         | ४३६ |
| अंशो ह्येतस्य जात्याख्यो          | अग्निहोत्राद्भवेत्स्वर्गः   | ८०३ |
| अकनिष्ठे पुरे रम्ये               | अचेतनत्वकार्यत्व०           | ४३  |
| अकल्पनाक्षगम्येऽपि                | अचेतनात्मिका बुद्धिः        | ११५ |
| अकार्यातिशयं यत्तु                | अजल्पाकारमेवादौ             | २४१ |
| अकृतत्वाविनाशाभ्यां नित्यत्वं चे- | अज्ञातार्थाप्रकाशात्वात्    | ४३३ |
| द्विवक्षितम् । निषेधमात्ररू-      | अज्ञात्वा कमसौ शब्दं        | ६१९ |
| पाभ्यां                           | अज्ञेयत्वादिविल्लेषात्      | ८८० |
| अकृतत्वाविनाशाभ्यां नित्यत्वं हि  | अणुसंहतिमात्रं च            | ५१  |
| विवक्षितम् । तौ चाभावात्म-        | अप्वन्तरामिमुख्येन तदेव     | ५५५ |
| कत्वेन                            | अप्वन्तरामिमुख्येन रूपं     | ५५६ |
| अकृताभ्यागमोऽपि स्यात्            | अपवाकाशादिगादीनां           | २६३ |
| अक्षव्यापारसद्भावात्              | अतः कारक एवायं              | ६६  |
| अक्षीणावृत्तिराशिस्तु             | अतः परीक्षकज्ञान०           | ७९० |
| अक्ष्यर्थाद्यफलं तु स्यात्        | अतः पूर्वोक्तया युक्त्या    | ७९३ |
| अगकारपरावृत्त०                    | अतः प्रतिपदं भिन्नाः        | ७१९ |
| अगोतो विनिवृत्तिश्च               | अतः प्रमाणता तस्मिन्        | ८०२ |
| अगोनिवृत्तिरन्यत्वं               | अतः प्रागपि सद्भावात्       | २७३ |
| अगोनिवृत्तिस्सामान्यं             | अतः प्राज्ञो नरः सूक्ष्मान् | ८८९ |
| अगोभिन्नं च यद्वस्तु              | अतः सत्यत्वमिथ्यात्व०       | ६४६ |
| अगोशब्दाभिधेयत्वं                 | अतः सर्वजगत्सूक्ष्म०        | ८६३ |
| अगौणे चैवमेकत्वे द्रव्यपर्याययोः  | अतः सर्वत्र विषये           | ३७६ |
| स्थिते                            | अत उत्प्रेक्षितो मेदो       | ३९९ |
| अगौणे चैवमेकत्वे नीलादीनां        | अत एव तुरङ्गादौ             | ४४८ |
| व्यवस्थिते                        | अत एव द्वयं प्राह्यं        | ९६  |
| अगौरपोहो यश्चायं                  | अत एव न दृश्योऽयं           | ८५३ |
| अग्निधूमादिबुद्धीनां              |                             |     |

|  |     |   |     |
|--|-----|---|-----|
| अत एव स्ववेद्यत्वं                             | ५७६ | अतीन्द्रियपदार्थज्ञो                                    | ९२१ |
| अत एवायमिष्टस्य                                | ५०  | अतीन्द्रिया यतस्तेऽर्थाः                                | ६५१ |
| अत एवाविशेषत्वात्                              | ६८५ | अतीन्द्रियार्थदृक् तस्मात्                              | ८११ |
| अतत्कारणभेदेन                                  | ३२६ | अतीन्द्रियार्थविज्ञानयोगेना०                            | ८८८ |
| अतदात्मकमेवेदं                                 | ३८४ | अतीन्द्रियार्थविज्ञानं पूर्वोक्तात्                     | ९०२ |
| अतद्धेतोरहेतोश्च                               | ४६६ | अतीन्द्रियार्थसम्बन्धा                                  | ७३५ |
| अतद्भावनिषेधश्च                                | १२७ | अतो गगनराजीव  | ६६३ |
| अतद्रूपपरावृत्तगजादि०                          | २१२ | अतो गुणनिषिद्धैर्वा                                     | ७६३ |
| अतद्रूपपरावृत्तमृद्रूप०                        | ७२  | अतो गौरितिशब्देन  | ३१५ |
| अतद्रूपपरावृत्तं वस्तुमात्रमनित्य-<br>ताम्     | ४८  | अतोऽतीन्द्रिययैवेते                                     | ६०३ |
| अतद्रूपपरावृत्तं वस्तुमात्रं स्वच्छ-<br>क्षणम् | ३२९ | अतो दूरमपि ध्यात्वा                                     | ७५८ |
| अतद्वस्त्वात्मकत्वं तु                         | ४९५ | अतो न द्वयसिद्धोऽयं                                     | ६७३ |
| अतश्च कल्पितत्वेन                              | ५१० | अतो न वेदवाक्यानां                                      | ९०३ |
| अतश्च प्रथमं ज्ञानं                            | ७८१ | अतोऽनादित्वसामान्यं                                     | ८२९ |
| अतश्च शक्यते वक्तुं                            | ७७१ | अतो निर्मलनिष्कम्प०                                     | ८९५ |
| अतश्चाज्ञानसन्देह०                             | ८१० | अतोऽनैकान्तिको हेतुः                                    | ८७  |
| अतस्तद्वारकोऽप्यत्र                            | ६८९ | अतोऽमिव्यक्त्ययोगेन                                     | ६९० |
| अतस्तस्य खतः सम्यक्                            | ७७८ | अतो मन्वादयोऽप्येषां                                    | ९२१ |
| अतिरोहितधर्मादि०                               | ८३७ | अतो यत्र परैर्बाह्ये                                    | ४४३ |
| अतीतभवनामार्थ०                                 | ३६७ | अतो यत्रापि मिथ्यात्वं                                  | ७६९ |
| अतीतश्च पदार्थोऽयं                             | ५१२ | अतो यदनपेक्षत्वाद्भेदे प्रामाण्य-<br>मुच्यते । तदसिद्धं | ८०१ |
| अतीतश्च महान्कालो                              | ९२१ | अतो यदनपेक्षत्वाद्भेदे प्रामाण्य-<br>मुच्यते । तदात्मेन | ७६४ |
| अतीताजातयोर्ज्ञानं                             | ५०४ | अतोऽर्थप्रत्ययायोगात्                                   | ४३९ |
| अतीतानागतं कर्म                                | २४७ | अतो विनाशसद्भावात्                                      | १३८ |
| अतीतानागतानां च                                | ५१५ | अतो विरुद्धता हेतोः                                     | ४२८ |
| अतीतानागतावस्थं                                | ५११ | अतोऽविशेषनिर्दिष्टे                                     | ७२९ |
| अतीतानागतौ कालौ                                | ६४३ | अतो व्यवस्थितं रूपं                                     | १४० |
| अतीतानुपजातेषु                                 | २५५ | अत्यक्तपूर्वरूपं हि                                     | ६८८ |
| अतीन्द्रियं पराज्ञात०                          | ८९९ | अत्यन्तमिन्नता तस्मात्                                  | ४८८ |

|                             |     |                             |     |
|-----------------------------|-----|-----------------------------|-----|
| अत्यन्तभिन्नावात्मानौ       | २३४ | अथवाऽस्थान एवायमायासः क्रि- |     |
| अत्यन्तमेदिनोऽप्येते        | ७०१ | यते यतः । प्रत्यक्षश्च      | ४८५ |
| अत्र ब्रूमो यदा तावत्       | ६१३ | अथ शक्तिः स्वहेतुभ्यः       | ७४९ |
| अत्रापि यः पुनः शङ्कां      | ७९१ | अथ शब्दादिना तस्य           | ४६९ |
| अत्रापि ये प्रवक्तृत्वं     | ८८१ | अथ शाखान्तरं नेदं           | ९०९ |
| अत्रापि व्यभिचारित्वं       | ५७६ | अथ सत्यार्थविज्ञानं         | ६४७ |
| अत्रापि सुधियः प्राहुः      | ७८५ | अथ सन्मूर्च्छितं रूपं       | १२२ |
| अत्राभिधीयते येषां          | ७७० | अथ सा नैव सञ्जाता           | ४५२ |
| अत्राभिधीयते सर्वं          | १७२ | अथ स्वभावतो वृत्तिः         | ७८  |
| अत्रोच्यते द्वितीये हि      | १७४ | अथागन्त्रादिरूपं तत्        | २३४ |
| अथ क्रियानिषेधोऽयं          | १३६ | अथानाश्रित एवायं            | ३१५ |
| अथ क्षणिकमेवेदं             | ५२५ | अथानिर्वचनीयत्वं            | २२५ |
| अथ चाव्यतिरिक्तोऽयं         | ३१५ | अथानुरूपयत्नेन              | ७६० |
| अथ तद्वचनेनैव               | ८३२ | अथान्य एव संयोगं            | २७३ |
| अथ तस्मान्न जायेत           | ९१४ | अथान्यथा विशेष्येऽपि        | ३०२ |
| अथ देशवितानेन               | ५५२ | अथान्यापोहवद्वस्तु          | ३०९ |
| अथ नाङ्गीक्रियेतेदं         | १५० | अथान्योऽपि स्वभावेन         | ६१८ |
| अथ नापेक्षते नित्यः         | १४८ | अथापि कर्णशष्कुल्या         | ६८७ |
| अथ नार्थक्रियाशक्तिः        | ५१६ | अथापि कार्यरूपेण            | ७१  |
| अथ निर्विषया एताः           | २८८ | अथापि ज्ञानरूपत्वं          | ९१४ |
| अथ पश्चादपि ज्ञानं          | ६७५ | अथापि तेन सम्बन्धात्        | १४६ |
| अथ भावस्वरूपस्य             | १३७ | अथापि निश्चयोऽभूतः          | २८  |
| अथ यद्ग्राहकं रूपे          | ५७७ | अथापि पाचकत्वादि०           | २४८ |
| अथ वर्णास्तिरोभूतं          | ७२६ | अथापि प्रकृतं किञ्चित्      | ८१७ |
| अथवाऽऽध्यात्मिकाः सर्वे     | ९१  | अथापि बाधकाभावं             | ७८९ |
| अथवा भाव०                   | १७८ | अथापि वेददेहत्वात्          | ८३६ |
| अथवा भाविकत्वेऽपि           | २६४ | अथापि सन्ति नित्यस्य        | १४५ |
| अथवाऽभूतमाकारं              | ५७३ | अथापि सहकारीणि              | ६४८ |
| अथवा यत्समीपस्थैः           | ६९२ | अथापि सार्यकत्वेन           | ६५९ |
| अथवाऽस्थान एवायमायासः क्रि- |     | अथापीन्द्रियसंस्कारः        | ६०६ |
| यते यतः । क्षणभङ्गं         | १३१ | अथापोहन्युदासेन             | ३१६ |

|                             |     |                                   |     |
|-----------------------------|-----|-----------------------------------|-----|
| अथाप्यक्षणीकं ज्ञानं        | ७७१ | अनन्यत्ववियोगेऽपि                 | ४६७ |
| अथाप्यक्षणीकास्ते स्युः     | ५१४ | अनन्यत्वेऽपि कारित्रं             | ५०७ |
| अथाप्यतीन्द्रियो वायुः      | ६८६ | अनन्यत्वेऽपि सत्त्वस्य            | १६० |
| अथाप्यनन्तरः पक्षः          | ६८  | अनन्यापोहशब्दादौ न विधि०          | ३५५ |
| अथाप्यवाच्य एवायं           | ३१६ | अनन्यापोहशब्दादौ वाच्यं           | ३११ |
| अथाप्याकाशमाधारः            | ५९९ | अनपेक्षत्वमेवैकं प्रामाण्यस्य नि- |     |
| अथाप्रमाद्वयासत्ता          | ७९७ | बन्धनम् ।                         | ७४६ |
| अथाविभक्त एवायं             | ३८२ | अनपेक्षत्वमेवैकमप्रामाण्यनिब-     |     |
| अथाविभागमेवेदं              | ७२  | न्धनम्                            | ७५२ |
| अथासत्यपि सारूप्ये          | २९८ | अनपेक्षप्रमाणत्वं                 | ७८९ |
| अथास्यतिशयः कश्चित्         | २६  | अनपेक्षोऽपि यद्येष                | १३३ |
| अथास्मदिष्टः पक्षः स्यात्   | ६३६ | अनपेक्ष्यप्रमाणत्वं               | ७८९ |
| अथेदं लक्षणं हेतोः          | ४०९ | अनयैवोपपत्त्या स्यात्             | ७८८ |
| अथोच्यते परार्थत्वं         | ४२७ | अनर्थान्तरपक्षेऽपि                | ६९० |
| अथोच्यते प्रधानस्य          | ५९  | अनवस्थाभयादेव                     | ७६२ |
| अथोत्पलत्वसम्बन्धि०         | ३४३ | अनाक्षिप्तान्यभेदेन               | ५०९ |
| अथोपगमरूपेण                 | ४६४ | अनागते च विज्ञेये                 | ९०१ |
| अदृष्टतत्त्वो लोकास्तु      | १५६ | अनागतेन दृष्टं च                  | ८२८ |
| अदृष्टशक्तेर्हेतुत्वे       | १७८ | अनात्मक्षणीकत्वादि                | ८६८ |
| अदृष्टाश्रुतवृत्तान्ताः     | ५४८ | अनित्यं तच्च सर्वेषां             | ६३६ |
| अद्रव्यत्वान्न सङ्ख्याऽस्ति | २१२ | अनित्यता विकल्प्यैवं              | ६४१ |
| अद्रव्यादिधियो हेतुः        | २५३ | अनित्यत्वं च नाशित्वं             | ६३७ |
| अद्वयज्ञानपक्षे तु          | ५३७ | अनित्यत्वेन वाच्याश्च             | १२८ |
| अद्वितीयं शिवद्वारं         | ८६६ | अनित्यस्य तु बुद्धादेः            | ८३७ |
| अधिष्ठानानुजुस्थत्वात्      | ६१४ | अनित्यालम्बनत्वेऽपि               | १०९ |
| अधिष्ठाने त्वनित्येऽपि      | ६८९ | अनित्येष्वेव वर्णेषु              | ७२८ |
| अध्यारोपितमेवातो            | ३७८ | अनिर्दिष्टविशेषोऽपि               | ८६९ |
| अध्येतारश्च वेदानां         | ६५९ | अनिर्भासं सनिर्भासं               | ५५९ |
| अनन्तरं फलादृष्टिः          | ७७९ | अनिष्पन्नात्मतत्त्वस्तु           | ६१  |
| अनन्तरोदितं न्यायं          | ६६६ | अनुक्तेऽप्यथवा तस्मिन्            | ९०१ |
| अनन्तोपायजन्याश्च           | ४५५ | अनुगच्छन्ति पश्चाच्च              | ५१९ |

|  |     |                                |     |
|--|-----|--------------------------------|-----|
| अनुगाम्यन्यथाभावात्  | ४९३ | अन्यत्र दृष्टभावस्य            | २१९ |
| अनुभूय यथा कश्चित्   | ८८२ | अन्यत्वं वाऽप्यनन्यत्वं        | १२६ |
| अनुमानं प्रमाणं चेत्   | ४३२ | अन्यत्वे धर्मसिद्धेर्नो        | ६४० |
| अनुमानबलेनापि  | २३७ | अन्यत्वे वर्तमानानां           | ५०७ |
| अनुमानविरोधश्च   | ५४  | अन्यथा करणेच्छायां             | ७१४ |
| अनुमानविरोधस्य   | ४२६ | अन्यथा कृतकः कश्चित्           | ७१५ |
| अनुमानविरोधादिः  | ४२९ | अन्यथा क्रमरूपत्वं             | ६६१ |
| अनुमानविहीनोऽपि  | ५८५ | अन्यथा गुणजात्यादि०            | २७० |
| अनुमाप्रतिभासेन  | ५७५ | अन्यथा च तमेवार्थे             | ६७४ |
| अनुमावत्प्रमाणत्वात्   | ४५६ | अन्यथाज्ञानसन्देह०             | ८१६ |
| अनुरूपो हि संसर्गो   | २५२ | अन्यथा तु परिच्छेद०            | ५६१ |
| अनेकत्वेऽपि चानन्त्यं  | ३१५ | अन्यथात्वे रिथितौ नाशे         | ५१३ |
| अनेकदेशवृत्तौ वा सत्यपि प्रति-<br>बिम्बके । समानबुद्धि०      | ६१५ | अन्यथा नित्यतापत्तिः           | ५०७ |
| अनेकदेशवृत्तौ वा सत्यपि प्रति-<br>बिम्बके । स्थूलसूक्ष्मादि० | ६९७ | अन्यथा नित्यरूपा सा            | ७३२ |
| अनेकवस्तुसद्भावे   | २२३ | अन्यथा निर्विशिष्टत्वात्       | ४९८ |
| अनेकव्यक्तिनिष्ठत्वात्                                       | ६७० | अन्यथाऽनुपपत्तिस्तद्०          | ७१२ |
| अनेकसमवायश्च   | २५३ | अन्यथाऽनुपपत्त्या च वेत्ति     | ७०९ |
| अन्तरालप्रवृत्तस्य   | ४२५ | अन्यथाऽनुपपत्त्या च शक्ति०     | ६२३ |
| अन्तर्मात्रासमारूढं  | २४२ | अन्यथाऽनुपपत्त्या चेत्         | ७९९ |
| अन्त्यवर्णे हि विज्ञाते                                      | ७२५ | अन्यथाऽनुपपत्त्याऽपि           | ४१५ |
| अन्त्यस्य तु स्वतःसिद्धा०                                    | ५६५ | अन्यथाऽनुपपत्त्या दि(हि ?)     | ४०८ |
| अन्धानन्धसमीपस्थः  | ६२६ | अन्यथाऽनुपपत्त्यैव चाक्षेपा०   | ४१५ |
| अन्धेनान्धस्समाकृष्टः  | ६५१ | अन्यथाऽनुपपत्त्यैव शब्द०       | ४०७ |
| अन्यः प्रमान्तरास्तित्वं                                     | ४५६ | अन्यथाऽनुपपन्नत्वं यस्य तस्यैव | ४०६ |
| अन्य एव भवेद्वेदः  | ७१४ | अन्यथाऽनुपपन्नत्वं यस्यासां    | ४०५ |
| अन्यच्च जातयो भिन्नाः  | ७१७ | अन्यथाऽनुपपन्नत्वे             | ”   |
| अन्यच्चेत्कथमन्यस्य  | ३४  | अन्यथाऽप्युपपन्नत्वात्         | ८३९ |
| अन्यत्र गतचित्तस्य द्विचन्द्रादि०                            | २२२ | अन्यथा प्रत्यभिज्ञानं          | ७३३ |
| अन्यत्र गतचित्तस्य वस्तुमात्रोप०                             | २४१ | अन्यथा बाह्य एवार्थः           | ५७६ |
|  |     | अन्यथा योजनाभावात्             | ३७१ |
|  |     | अन्यथा यौगपद्येन               | ७९  |



|                                   |     |                               |     |
|-----------------------------------|-----|-------------------------------|-----|
| अन्यथा रूपगन्धादेः                | ३७३ | अन्यापोहापरिज्ञानात्          | ३१६ |
| अन्यथा संशयो युक्तो               | ८५८ | अन्यायत्वेन ये भावा           | ३३२ |
| अन्यथा सर्वबुद्धीनां              | ६७० | अन्यार्थं प्रेरितो वायुः      | ६०८ |
| अन्यथा हि न नित्या                | ७४९ | अन्यार्थविनिवृत्तिं च         | ३६१ |
| अन्यथा हि न सा बुद्धिः            | ४८७ | अन्यार्थासक्तचित्तोऽपि        | ३९४ |
| अन्यथा ह्यनुवृत्तं न              | ६७७ | अन्ये तु चोदयन्त्यत्र         | ६१४ |
| अन्यथा ह्यात्मना भेदो             | ४९९ | अन्ये त्वीशसधर्माणं           | ७५  |
| अन्यथैवोपपन्नत्वात्               | ७०९ | अन्येन च विना हेतुः           | १७८ |
| अन्यदेवासमर्थं तु                 | ४७७ | अन्येनासाधिता चेत्स्यात्      | ७६७ |
| अन्यदेशादिभाविन्यो                | १०० | अन्येनैवात्मना वृत्तौ         | २०२ |
| अन्यधर्मनिमित्तश्चेत्             | २४५ | अन्येऽपि सर्वभावाः स्युः      | १४७ |
| अन्यधर्मसमावेशे                   | १९३ | अन्ये पुनरिहाज्ञान०           | ५८३ |
| अन्यरागादिसंविताँ                 | ५७३ | अन्ये पुनरिहात्मानं           | ७९  |
| अन्यरूपनिषेधोऽयं                  | ३५२ | अन्यैः प्रत्यक्षसिद्धत्वं     | ९०  |
| अन्यलक्षणसंसिद्धौ                 | ४६२ | अन्यैस्तात्वादिसंयोगैः        | ६०८ |
| अन्यवस्तुनि विज्ञानं              | ४७५ | अन्योऽन्यपरिहारेण             | ९२८ |
| अन्यवस्तुनि विज्ञाने              | ”   | अन्योऽन्यरूपसम्भूतौ           | ७१  |
| अन्यवृत्त्युपलभ्येन               | ५४८ | अन्योऽन्यानुपकारेऽपि          | १५४ |
| अन्यस्त्वतिशयो नास्ति             | ५१३ | अन्योऽन्यामिसराश्चैवं         | १९५ |
| अन्यस्माज्जनकात्तेषां             | ४९८ | अन्योन्याश्रयदोषश्च           | ४०९ |
| अन्यस्मिन् ज्ञातसम्बन्धे          | ६१८ | अन्योपलम्भतस्तस्य             | ८५७ |
| अन्यस्मिन्न हि सर्वज्ञे           | ८४२ | अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्कार्यं | ४७  |
| अन्यस्यापि प्रमाणत्वे एवंभूतैव    |     | अन्वयव्यतिरेकाभ्यां सिद्धैवं  | ५७८ |
| सङ्गतिः                           | ८०१ | अन्वयव्यतिरेकाभ्यामिदमेव      | २५१ |
| अन्यस्यापि प्रमाणत्वे सङ्गतिर्नैव |     | अन्वयव्यतिरेकाभ्यामेकादि०     | ३५० |
| कारणम्                            | ७६५ | अन्वयानुविधानं च              | २५२ |
| अन्यहेतुप्रतिक्षेपात्             | ५३५ | अन्वयासत्त्वतो मेदात्         | ३८९ |
| अन्याकारमपि ज्ञानं                | ५७२ | अन्वयासम्भवे सैव              | १७३ |
| अन्यानन्तरभावेऽपि                 | १८० | अन्वयी प्रत्ययो यस्मात्       | २४३ |
| अन्यापोहश्च किं वाच्यः            | ३१५ | अन्वयो न च शब्दस्य            | ४३४ |
| अन्यापोहात्मकस्यापि               | ६७२ | अपवर्गस्य तु प्राप्तिः        | ९०६ |

|                              |     |                                      |     |
|------------------------------|-----|--------------------------------------|-----|
| अपवादावधिः काल०              | ७६१ | अप्रामाण्यनिवृत्त्यर्था वेदस्यापौरु- |     |
| अपास्ता च स्थितिः पूर्वं     | ७२६ | षेयता । येष्टा साऽपि च व-            |     |
| अपि च स्तनपानादा०            | ५४३ | स्तुत्वात् साधनीयैव साधनैः ॥         | ६६१ |
| अपि चानादिता सिष्येत्        | ७४१ | अप्रामाण्यनिवृत्त्यर्था वेदस्यापौ-   |     |
| अपि चानेकवृत्तित्वं          | २५९ | षेयता । येष्टा साऽपि त्वव-           |     |
| अपि चापौरुषेयस्य             | ६५५ | स्तुत्वात् साधनीया न साधनैः ॥        | ५८६ |
| अपि चास्य कथावत्तु           | ६४२ | अप्रामाण्यव्यवच्छेदः                 | ७७३ |
| अपि चैकत्वनित्यत्व०          | ३१६ | अप्रामाण्ये परायत्ते                 | ७८८ |
| अपूरितान्तरालत्वात्          | ६१२ | अप्सूर्यदर्शिनां नित्यं              | ६१४ |
| अपृथग्वेदनात्पूर्वं          | ५७८ | अबहिस्तत्त्वरूपाणि                   | ५३३ |
| अपेक्षामेदतश्चैवं            | ७८५ | अबाधैकाश्रयत्वे हि                   | १६३ |
| अपेतभागभेदश्च                | ५५८ | अबुद्धिपूर्वकस्तेषां                 | ६३९ |
| अपोद्धारव्यवहृतिः            | २१७ | अबोधरूपभेदं तु                       | १०५ |
| अपोहमात्रवाच्यत्वं           | ३०८ | अभावकारणत्वे तु                      | १५३ |
| अपोहश्चाप्यनिष्पन्नः         | २९८ | अभावगम्यरूपे च                       | ३०२ |
| अपोहकल्पनायां च वरं वस्त्वेव |     | अभावपक्षनिक्षिप्त०                   | ४४७ |
| कल्पितम् । इत्येतद्व्याहृतं  | ३५९ | अभावशब्दवाच्यत्वात्                  | ४७३ |
| अपोहकल्पनायां च वरं वस्त्वेव |     | अभावस्य च कार्यत्वे                  | १३५ |
| कल्पितम् । ज्ञानाकार०        | ३१२ | अभावस्य च योऽभावः                    | ३०४ |
| अपोहानपि चाम्नादीन्          | २९७ | अभावस्य च वस्तुत्वे                  | ४७८ |
| अप्रतीतान्यशब्दानां          | ६२० | अभावा अपि किं ज्ञेया                 | ३५७ |
| अप्रमाणं पुनः स्वार्थे       | ७६८ | अभावानु(दु ?)पलम्भेन                 | ७९८ |
| अप्रमाणद्वयाशङ्का            | ७७३ | अभावान्तर्गतं नो चेत्                | ४५० |
| अप्रमाणेन चैतेन              | ४३२ | अभावेऽप्यनुमानस्य                    | ८५९ |
| अप्रमाणेऽपि येनैतत्          | ७५० | अभावो निरुपाख्यत्वं तुच्छतेति        |     |
| अप्रमाणे प्रमाणत्वबुद्ध्या   | ७७६ | यदुच्यते                             | ३४७ |
| अप्रमाणे प्रमाणत्वविपर्ययो   | ७७७ | अभावो निरुपाख्यत्वं तुच्छते-         |     |
| अप्रमाद्वितयासत्त्वे         | ७९९ | त्यादि                               | ३४८ |
| अप्रसिद्धोपलम्भस्य           | ५७९ | अभावोऽपि न युक्तोऽयं                 | ३१३ |
| अप्राप्तकर्णदेशत्वात्        | ६०६ | अभावोऽभाव इत्येव                     | २५४ |
| अप्राप्तिमात्रसाम्येऽपि      | ६८१ |                                      |     |

|                                 |     |                           |                |
|---------------------------------|-----|---------------------------|----------------|
| अभात्रो वा प्रमाणेन स्वानुरूपेण |     | अर्थद्योतनहेतोश्च         | ७१०            |
| मीयते । इत्यत्र सिद्ध०          | ४८१ | अर्थप्रतीतितो नो चेत्     | ४३०            |
| अभात्रो वा प्रमाणेन स्वानुरूपेण |     | अर्थप्रतीतिसामर्थ्यैः     | ६३५            |
| मीयते । प्रमेयत्वाद्यथा         | ४७३ | अर्थवदूग्रहणाभावात्       | ६२५            |
| अभासमानो वेद्यश्च               | ५७६ | अर्थवान् क(तरः) शब्दः     | १              |
| अभिधा नान्यथा सिध्येत्          | ४५९ | अर्थवान् पूर्वदृष्टश्चेत् | ६१९            |
| अभिप्रेते निवेशार्थं            | ३५१ | अर्थशून्याभिजल्पोत्थ०     | ३६३            |
| अभियुक्ता हि ये यत्र            | ५९० | अर्थसंवादकत्वे च          | १६५            |
| अभिलाषानुरूपेण                  | ११२ | अर्थस्यानुभवो नाम         | ५६१            |
| अभिव्यक्तरयोगे च                | ७१८ | अर्थस्यानुभवो रूपं        | ५६३            |
| अभिव्यक्त्यन्यथात्वं चेत्       | ८११ | अर्थान्तरनिवृत्त्याद्दुः  | ३३५            |
| अभिसम्बुद्धतत्त्वास्तु          | १८३ | अर्थान्तरपरावृत्त०        | ३३३            |
| अमेदमनुमन्यन्ते                 | ५११ | अर्थान्तरपरावृत्त्या      | १              |
| अमेदाध्यवसायेन                  | १५८ | अर्थान्तरव्यवच्छिन्नं     | ३७९            |
| अमेदो ह्येकरूपत्वं              | ३२४ | अर्थान्तरव्यवच्छेदं       | ३२०            |
| अभ्यनुज्ञादिवाक्येन             | ४१९ | अर्थान्यथात्वहेतूत्थ०     | ७७७            |
| अभ्यस्तलक्षणानां च              | ४३० | अर्थापत्त्यन्तरेणैव       | ४५९            |
| अभ्यासात्प्रतिभाहेतुः           | २८६ | अर्थाभिधानसामर्थ्यं       | ६३५            |
| अयं च भवतां पक्षो               | ७७४ | अर्थिप्रत्यर्थिनौ तत्र    | ७९२            |
| अयं ममार्थसम्बन्धः              | ६५२ | अर्थे चासम्भवात्कार्यं    | ८१७            |
| अयःशलाकाकल्पा हि                | ३८  | अर्थोपभोगकाले च           | ११३            |
| अयस्कान्तप्रभाप्राप्त्या        | ६८१ | अलक्षितविशेषा च           | ५७९            |
| अर्थक्रियावभासं च               | ७७८ | अलालेऽपि सकृद्भ्रान्तिः   | ३७६            |
| अर्थक्रियावसाये चेत्            | ५७५ | अल्पीयस्यास्यमल्पीयो      | ६९६            |
| अर्थक्रियासमर्थं च              | ४७७ | अवधारणसामर्थ्यात्         | ३६३            |
| अर्थक्रियासमर्थं हि             | ४६१ | अवधीकृतवस्तुभ्यो          | ४८८            |
| अर्थक्रियासमर्थत्वं             | ४९२ | अवधीनामनिष्पत्तेः         | ३१             |
| अर्थक्रियासमर्थाः स्युः         | ५१५ | अवर्तमानतायां तु          | ५१५            |
| अर्थक्रियासु शक्तिश्च           | १२८ | अवस्तुविषयेऽप्यस्ति       | ३३७            |
| अर्थगत्यनपेक्षेण                | ४६४ | अवस्थादेशकालानां          | मेदाद्रिन्नासु |
| अर्थद्योतनशक्तेश्च              | ७१० | शक्तिषु । भावानामनुमानेन  |                |
|                                 |     | नातः सिद्धिः सुदुर्लभा ॥  | ४३०            |

|                               |     |                           |     |
|-------------------------------|-----|---------------------------|-----|
| अवस्थादेशकालानां मेदाङ्गिवासु |     | असत्यप्यर्थमेदे च         | १४२ |
| शक्तिषु । भावानामनुमानेन      |     | असत्योपाधि यत्सत्यं       | २८४ |
| प्रसिद्धिरतिदुर्लभा           | ४२६ | असत्त्वे सर्वभावानां      | १३७ |
| अवस्थामेदभावेऽपि              | ५०३ | असद्रूपं तथा चेदं         | ३२९ |
| अवस्थामेदमेदेन                | १०५ | असन्निश्चययोग्योऽतः       | ५५८ |
| अवस्थायां च मध्यायां          | ५११ | असमानं तु यद्रूपं         | ५५४ |
| अविकल्पमपि ज्ञानं             | ३९० | असम्बद्धस्तु विद्विष्टः   | ५८५ |
| अविकल्पमविभ्रान्तं            | ९३४ | असम्बद्धात्तदुद्भूता०     | ४८५ |
| अविकार्युपकारित्व०            | ११७ | असम्बद्धान्न साक्षाद्भि   | ४१९ |
| अविचारप्रसिद्धोऽर्थो          | ७२८ | असम्भवो विधेरुक्तः        | ३३९ |
| अविज्ञाततदर्थार्थ             | ७४३ | असर्वज्ञत्वमेवं तु        | ८६७ |
| अविज्ञातार्थतत्त्वस्तु        | २०१ | असर्वज्ञप्रणीतत्वं        | ८८२ |
| अविद्यमानसाक्षादिः            | ३७७ | असर्वज्ञप्रणीतानु         | ८३२ |
| अविनष्टाच्च तज्जाता०          | १६९ | असर्वदर्शीभिर्विप्रैः     | ८०४ |
| अविनाभावसम्बन्धः              | ४०५ | असाधारणमेवेदं             | ५७२ |
| अविवक्षितमेदं च               | ३३० | असारं तदिदं कार्यं        | २३९ |
| अविशेषेण साध्ये तु            | ५४९ | असिद्धे पक्षधर्मत्वे      | ६६७ |
| अवेदकाः परस्यापि              | ३९६ | अस्ति चात्रापि विस्पष्टं  | ४१४ |
| अवेद्यबाह्यतत्त्वाऽपि         | ३३२ | अस्ति हीक्षणिकाचारख्या    | ८८८ |
| अवेद्यवेदकाकारा               | ९१३ | अस्ति ह्यालोचनाज्ञानं     | ३८५ |
| अव्यक्तव्यक्तिकत्वेन          | ८०५ | अस्तु तर्हि ससारूप्यं     | ५७१ |
| अन्यक्तो व्यक्तिभावेभ्यः      | २८  | अस्तु नामैवमेकत्र         | २१३ |
| अशक्यं समय(स्यास्य)           | २७९ | अस्तु वाऽक्षणिकं ज्ञानं   | ७७१ |
| अशक्यसमयो ह्यात्मा            | ३७८ | अस्तु वाऽतिशयस्तस्मिन्    | ६८९ |
| अशक्योत्पादनस्तावत्           | ५१३ | अस्तु वाऽतीन्द्रियो वायुः | ६८६ |
| अशेषशक्तिप्रचितात्            | १६  | अस्तु वाऽपरिणामोऽस्य      | ४७४ |
| अशोकस्तबकादौ हि               | ७७९ | अस्तु वा वस्तु सादृश्यं   | ४४९ |
| असङ्क्रान्तिमनाद्यन्तं        | १   | अस्त्यर्थः सर्वशब्दानां   | २८३ |
| असतः प्रागसामर्थ्यात्         | १७५ | अस्त्वेवं किन्तु साकल्ये  | १४८ |
| असतो नरशृङ्गादेः              | ३२९ | अस्थिरस्तु न सम्बन्ध०     | ५९२ |
| असत्यपि च बाह्योऽर्थे         | २९४ | अस्थिरे वा स्थिरे वैवं    | २३५ |

|                         |     |                              |     |
|-------------------------|-----|------------------------------|-----|
| अस्माकं तु न शब्देन     | ३४५ | आत्मलामे घटादीनां            | ७७० |
| अस्माभिरुक्त आकारः      | ३५९ | आत्मलामे हि भावानां          | ७५६ |
| अस्माभिः संशयस्त्वत्र   | ८६० | आत्मात्मीयऽगाकार०            | ९०४ |
| अस्मिन्सति भवत्येव      | ४८२ | आत्मासर्वज्ञतादृष्टौ०        | ९१८ |
| अस्य चार्थस्य सन्देहात् | ८८४ | आत्मोदाहरणेनान्य०            | ९०० |
| अस्यापि गम्यते केन      | ७९८ | आदित्यादिक्रियाद्रव्य०       | २०६ |
| अस्यापीश्वरवत्सर्वं     | ७६  | आद्या एतेऽनुवृत्तत्वात्      | ४८८ |
| अस्यावित्तौ हि नीलादेः  | ६९  | आद्यार्थविषयं तावत्          | ४८५ |
| अस्याश्च न धियः काचित्  | ६५४ | आद्ये हि वस्तुविषये          | ७७९ |
| अस्वस्थलोचनैर्दृष्टं    | ५७९ | आधाराधेयनियमस्स चैकत्वेऽपि   | २६९ |
| अहं वेद्मीत्यहंबुद्धिः  | ९६  | आधाराधेयनियमो नन्वेकत्वेऽस्य | २७० |
| अहङ्काराश्रयत्वेन       | ८७  | आधिदारिद्र्यशोकादि०          | ७६  |
| अहीनसत्त्वदृष्टीनां     | १८३ | आधिपत्यप्रपत्त्याऽतः         | ९२६ |
| अहेतुकत्वसिद्ध्यर्थं    | ६६  | आधेयातिशयार्थत्वं            | ११७ |
| अहेतुकत्वात्किञ्चायं    | १३६ | आनर्थक्यमतः प्राप्तं         | ६४६ |
| अहेत्वव्यापकं चोक्तं    | ८६१ | आनुपूर्वीं च वर्णानां        | ६३३ |
|                         |     | आप्तानङ्गीकृतेरेव            | ४३९ |
| <b>आ</b>                |     | आभिप्रायिकमेतेषां            | ८६८ |
| आकारवति विज्ञाने        | ७२६ | आभोगशुभचित्तादि०             | ५३५ |
| आकाराव्यतिरिक्तत्वात्   | ५७१ | आभ्यासिकं यथा ज्ञानं         | ८०७ |
| आकाशमपि नित्यं सत्      | ६४० | आशुवृत्तेः सकृद्भ्रान्तिः    | ३९६ |
| आकाशश्रोत्रपक्षे च      | ६०० | आश्रयानुविधानेन              | ६९६ |
| आख्यातेषु च नान्यस्य    | ३१० | आश्रयोपाधिकाभ्यास०           | ८९३ |
| आगमस्य च नित्यत्वे      | ९१० | आश्रयो बदरादीनां             | ८४  |
| आगमस्योपमायाश्च         | ६६१ | आह केन निमित्तेन             | ६१३ |
| आगमाद्भिः स सम्बन्धं    | ४५२ | आहुः स्वभावसिद्धं हि         | ६३९ |
| आगमार्थविरोधे तु        | १२९ | आ(होपुरु)षिका याऽत्र         | ६५८ |
| आगमेन तु सर्वज्ञो       | ९०८ |                              |     |
| आचार्यैरपि निर्दिष्टं   | ४०९ | <b>इ</b>                     |     |
| आजीवितारसमुत्पन्नं      | ७९० | इच्छादयश्च सर्वेऽपि          | ८१  |
| आत्मकार्याख्यलिङ्गाच्च  | ८०५ | इच्छारचितरूपादा०             | २५५ |
| आत्मग्राहि च विज्ञानं   | ९१४ | इच्छारचितरूपेषु              | २४६ |

|  |     |                         |     |
|--|-----|-------------------------|-----|
| इच्छारचितसङ्केतमनस्काराद्युपा-<br>यतः                            | २१४ | इत्येतत्सर्वसत्त्वस्थ०  | ९०० |
| इच्छारचितसङ्केतमनस्कारान्वयं<br>त्विदं                           | २१२ | इत्येतदपि तेनात्र       | ७२२ |
| इति नैव प्रवर्त्तत   | १६७ | इत्येतदपि नो युक्तं     | ५०२ |
| इति मीमांसकाः प्राहुः  | ८४५ | इत्येतद्वि भवेत्सर्वं   | ७३७ |
| इति यस्य हि संख्याः  | ८०९ | इत्येतेन त्वदुक्तेन     | ७४० |
| इति ये सुधियः प्राहुः  | ८८३ | इत्येवमिष्यतेऽर्थश्चेत् | ७४७ |
| इति व्यञ्जकसद्भावात्   | ७१७ | इदं च किल नाध्यक्षं     | ४३३ |
| इति संचक्षते येऽपि   | ६८  | इदं च वर्धमानादेः       | ८६७ |
| इतिहासपुराणेषु   | ८३४ | इदं तत्परमं तत्त्वं     | ९१४ |
| इत्थमात्माप्रसिद्धौ च  | ९४  | इदं दृष्ट्वा च लोकेन    | ३३१ |
| इत्थं कारणसंशुद्धौ   | ७८६ | इदानीन्तनमस्तित्वं      | १५९ |
| इत्थं च वस्तुरूपत्वे   | ४८१ | इदानीमपि लोकस्य         | ८८८ |
| इत्थं च शब्दवाच्यत्वात्  | ३३५ | इन्द्रियार्थबलोद्भूतं   | ५४० |
| इत्थं चापौरुषेवत्वे  | ७४२ | इन्द्रियैर्नाप्यगोऽपोहः | २९९ |
| इत्थं मानेऽस्थिते वेदे   | ६५१ | इयं च त्रिविधा दृष्टिः  | ८५४ |
| इत्थं यदा न सर्वज्ञः कश्चिदप्यु-<br>पपद्यते । न धर्माधिगमे       | ८४५ | इष्टकार्यसमर्थं हि      | ७४७ |
| इत्थं यदा च सर्वज्ञः कश्चिदेवो<br>पपद्यते । धर्माधिगमे           | ९६५ | इष्टसिद्धिस्तदाधारः     | ८४  |
| इत्यत्यक्षेषु सर्वोऽपि   | ६६५ | इष्यते च जगत्सर्वं      | ८०९ |
| इत्यस्मिन्व्यभिचारोक्तिः   | २५७ | इष्यते हि जगत्सर्वं     | ६२७ |
| इत्याक्षपादकाणादाः   | १८५ | इहत्याभ्यासपूर्वत्वे    | ५४९ |
| इत्यादिकमतोऽनिष्टं   | ८८७ | इहत्याभ्यासरहिताः       | ५४६ |
| इत्यादिफीर्त्यमानं तु श्रद्धधानेषु<br>शोभते । प्रकृतार्थानुरूपेण | ९२५ | इह बाह्यानुरूपेण        | ६७४ |
| इत्यादिकीर्त्यमानं तु श्रद्धधानेषु<br>शोभते । वयमश्रद्धधानास्तु  | ८४३ | इहसुद्वयविशेषाच्च       | २६५ |
| इत्यादिगदितं सर्वं   | ३९५ | इहेति समवायोत्थ०        | २६९ |
| इत्यादिना प्रमेदेन   | ३२७ | इहैव श्रमणस्तेन         | ९२३ |
|  |     | इहोच्यते तयोरेक०        | ६०  |
|  |     | ई                       |     |
|  |     | ईदृक् च परमं तत्त्वं    | ८६६ |
|  |     | ईदृशं वा प्रकाशत्वं     | ५६२ |
|  |     | ईदृशां पुद्गलानां च     | ८२९ |
|  |     | ईदृशेन क्रमेणैते        | ७१९ |

|                             |     |                                   |     |
|-----------------------------|-----|-----------------------------------|-----|
| ईदृश्यकृतकत्वे च            | ७४१ | उदयव्ययधर्माणः                    | १२१ |
| ईश्वरादिषु भक्तानां         | ११० | उदयानन्तरध्वंसि                   | ५३७ |
| ईषत्सम्मीलितेऽङ्गुल्या यच्च | ६९७ | उदयानन्तरास्थायि                  | १४३ |
| ईषत्सम्मीलितेऽङ्गुल्या यथा  | ६१३ | उद्भूतवृत्तिसत्त्वं तु            | ५९  |
| उ                           |     | उद्भूतशक्तिरूपेण                  | "   |
| उक्तन्यायेन वास्यादेः       | ४०१ | उपजाते गृहीतानां                  | २७९ |
| उक्तस्य वक्ष्यमाणस्य        | १३१ | उपदेशान्न सर्वज्ञे                | ८५७ |
| उक्तेन च प्रकारेण           | ८८९ | उपदेशो हि बुद्धादेरन्यथा          | ८३९ |
| उच्छेददृष्टिनाशाय           | ५१८ | उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माधर्मादि० | ८३८ |
| उच्यते क्षणिकत्वेन          | २२० | उपमानप्रमाणस्य                    | ४६७ |
| उच्यते न द्वयादन्यत्        | ४३३ | उपमानेन सर्वज्ञ०                  | ९१७ |
| उच्यते प्रतिबिम्बस्य        | ११४ | उपमायाः प्रमाणत्वे                | ४६७ |
| उच्यते प्रथमावस्था          | १५४ | उपयुक्तोपमानश्चेत्                | ४५२ |
| उच्यते यदि वक्तृत्वं        | ८८४ | उपलब्ध्या यथा योऽर्थो             | ४८२ |
| उच्यते वस्तुसंवादः          | ७७८ | उपलभ्यस्वभावानां                  | ६६० |
| उच्यते विषयोऽमीषां          | २७५ | उपात्तादिमहाभूत०                  | २०७ |
| उच्यते संशयेनैव             | ७८३ | उपादानतदादेय०                     | ५३४ |
| उत्कटं शक्तिरूपं च          | ६०  | उपादानममीष्टं चेत्                | ५३३ |
| उत्तरं श्रोत्रसंस्कारात्    | ६०२ | उपादानासमाने च                    | ४६४ |
| उत्तरावयवै रुद्धे           | ७३२ | उपाधिगतसामान्य०                   | २५० |
| उत्पत्तिशक्तिवत्सोऽपि       | ६०४ | उपायरहितत्वेन                     | ७३७ |
| उत्पत्त्यवस्थमेवेदं         | ८०७ | उपेतार्थपरित्याग०                 | ५६३ |
| उत्पन्नस्यैव चेष्टोऽयं      | २३० | उभयानुभयात्मौ हि                  | ४८५ |
| उत्पादमात्र एवातो           | ७५६ | उमे वाऽप्येकविषये                 | ५९२ |
| उत्पादात्यन्तविघ्नोऽन्यो    | ७३० | उष्णतां नीयमानस्य                 | ८९४ |
| उत्पादानन्तरं ध्वंस०        | १६३ | उष्णादिप्रतिपत्तिर्या             | २८० |
| उत्पादानन्तरास्थायि         | १४२ |                                   |     |
| उत्पादो वस्तुभावस्तु        | ३३  | ऊ                                 |     |
| उत्पादः प्रसवधैषां          | ३४७ | ऊर्ध्ववृत्तिं तदेकत्वात्          | ६१४ |
| उत्पाद्यार्थकथाधर्म         | ७३६ |                                   |     |
| उत्प्रेक्षते हि यो मोहात्   | ७६० | ऋ                                 |     |
|                             |     | ऋणादिव्यवहारस्तु                  | ७९२ |
|                             |     | ऋणादिव्यवहारेऽपि                  | ७६२ |

|                                 |     |                             |          |
|---------------------------------|-----|-----------------------------|----------|
| ए                               |     | एकव्योमात्मकं श्रोत्रं      | ६८७      |
| एकं नित्यस्वभावं च              | ५२४ | एकसन्तानभावेन               | ५३८      |
| एककर्तुरसिद्धौ च                | ५७  | एकसन्तानसम्बन्ध०            | ९८       |
| एककार्योपयोगित्व०               | १९४ | एकसम्बन्धिनाशेऽपि           | २७२      |
| एककार्योपयोगित्वात्             | ८७  | एकसामग्र्यधीनत्वं           | ५७२      |
| एकगोशब्दजन्याः स्युः            | ५९२ | एकस्तु वास्तवो नैव          | ७०५      |
| एकज्ञानक्षणव्याप्तनिःशेषज्ञेयम- |     | एकस्मात्तर्हि गोपिण्डात्    | ३००      |
| ण्डलः । प्रसाधितो               | ९२९ | एकस्माद्वस्तुनोऽन्यत्ये     | ४९५      |
| एकज्ञानक्षणव्याप्तनिःशेषज्ञेयम- |     | एकस्मिन्निर्विशिष्टेऽस्मिन् | ५१०      |
| ण्डलः । सुरासुरो०               | ८९७ | एकस्य कस्य संबित्तौ         | ४८०      |
| एकज्ञानात्मकत्वे तु             | १२३ | एकस्यापि ततो युक्ता         | ४९५      |
| एकज्ञानावभासित्वं               | ९२८ | एकस्यार्थस्वभावस्य          | ७३५      |
| एकत्रैव च शब्दादौ               | ३५  | एकस्यैव शरीरस्य             | ८५९      |
| एकत्वनित्यतादिश्च               | ३६२ | एकाकारं भवेदेकं             | ५५५      |
| एकत्वेनावकल्लृप्तत्वात्         | ५२४ | एकाकारा यतस्तस्य            | ७०६      |
| एकदेशज्ञगीतं तु                 | ९२३ | एकात्मानुगतन्वात्तु         | ४९८      |
| एकधर्मान्वयासत्त्वे             | ३२८ | एकाद्यसर्वमिति चेत्         | ३१३      |
| एकप्रत्यवमर्शस्य य उक्ताः       | ३५७ | एकाधिकरणात्रेतौ             | १७१      |
| एकप्रत्यवमर्शस्य हेतवः          | ४९७ | एकाधिकरणौ सिद्धौ            | १८४      |
| एकप्रत्यवमर्शस्य हेतुत्वा०      | ३२५ | एकानन्तरविज्ञानात्          | ८६       |
| एकप्रत्यवमर्शे हि               | ३२९ | एकानुगामिकार्यत्वे          | ८५       |
| एकमित्युच्यते तद्दि             | ४९० | एकान्तेनान्यताभावात्        | ३८८      |
| एकमेव ततो जातं                  | ४९३ | एकापरवकस्थस्य               | ८२७, ९०० |
| एकरूपतयोक्तानां                 | ४१५ | एकार्थसमवायादं:             | २१३      |
| एकरूपतिरोभावे                   | ७१  | एकार्थसमवायेन               | २१५      |
| एकरूपे च चैतन्ये                | ११२ | एकावयव्यनुगता               | २०१      |
| एकवस्तुस्वरूपत्वात्             | ८८५ | एकावस्थापरित्यागे           | ५१०      |
| एकवस्त्वनुपातित्वे              | ३५  | एकेनापि तु वाक्येन          | ८०३      |
| एकविज्ञानकाले वा                | ६४७ | एकेनैव प्रमाणेन             | ८२४      |
| एकव्यापिध्रुवव्योम०             | २०७ | एकेनैव हि वाक्येन           | ७६६      |
| एकव्यापिनभःपक्षे                | ६८७ | एको ज्ञानाश्रयस्तस्मात्     | ५२२      |



|                                    |     |                          |     |
|------------------------------------|-----|--------------------------|-----|
| एकोऽर्थजनकस्तस्य                   | ४९२ | एवं च यस्य वस्तुत्व०     | ८९७ |
| एतच्च फलदज्ञानं                    | ८३५ | एवं च सत्त्वनित्यत्व०    | ८२  |
| एतच्च सुगतस्येष्टं                 | ८७६ | एवं च साधनैः सर्वैः      | ८९  |
| एतदक्षममाणो यः                     | ८२८ | एवं च हेतुमानेष          | १३६ |
| एतदागूर्यं सकलं                    | ३७२ | एवं चापौरुषेयोऽपि        | ६५७ |
| एतदं व प्रसक्तव्यं                 | ६०० | एवं चार्थक्रियाज्ञानात्  | ७८७ |
| एतदेव यथायोग्य०                    | ५२  | एवं ज्ञानत्रयस्यैव       | ७६२ |
| एयदेव हि तज्ज्ञानं यद्विशुद्धात्म- |     | एवं ज्ञेयप्रमेयत्व०      | ८१८ |
| दर्शनम् । अशुद्धे                  | ८३६ | एवं तद्विषयं ज्ञानं      | ६७८ |
| एतदेव हि तज्ज्ञानं यद्विशुद्धात्म- |     | एवं तु युज्यते तत्र      | ४४८ |
| दर्शनम् । आगन्तुक०                 | ९१३ | एवं ध्वनिगुणान्सर्वान्   | ६३३ |
| एतस्मिन्नुपमानत्वं                 | ४४४ | एवं नानेन्द्रियाधीनु०    | ८०३ |
| एतावता च मीमांसा०                  | ८६४ | एवं न्यायमुखग्रन्थो      | ३७२ |
| एतावता च लेशेन                     | ४४९ | एवं परीक्षकज्ञान०        | ७६० |
| एतावतैव मीमांसा०                   | ८२० | एवं प्रतीतरूपा च         | ३७३ |
| एतावत्क्रियते शब्दैः               | ३३२ | एवं प्राङ्गतया वृत्त्या  | ६१५ |
| एतावत्तु भवेदत्र कथमेषां           | १९७ | एवं यदि गुणाधीना         | ७५७ |
| एतावत्तु भवेदत्र ग्रहणेऽपि         | ८०६ | एवं यश्च गजत्वादि०       | २६९ |
| एतावत्तु भवेद्वाच्यं               | २०४ | एवं यस्य प्रमेयत्व०      | ८८५ |
| एतावत्तु वदन्त्यत्र                | ७५० | एवं वा व्यवहार्यं स्यात् | ३७१ |
| एतेनैव निषेद्धव्या                 | ६८० | एवं शास्त्रविचारेषु      | ८२६ |
| एतेनैव प्रकारेण चित्ररत्नादयो      | ४९२ | एवं सति तयोर्भेदात्      | ३४२ |
| एतेनैव प्रकारेण नान्येषां          | ३४४ | एवं सति त्रये कस्मात्    | ७९० |
| एतेनैव प्रकारेण व्यक्त्याकृत्यो०   | २८२ | एवं सन्तमसे काले         | ७६१ |
| एतेनैव प्रकारेण स्मृत्यादीनां      | १७२ | एवं समूहशब्दार्थे        | ३१३ |
| एतेनैव विवक्षाऽपि                  | २८९ | एवं सर्वज्ञकरूपेषु       | ८२३ |
| एतेषामस्त्वनित्यत्वं               | ६३५ | एवं सर्वज्ञता पुसां      | ८४४ |
| एते स्वदोषाः पूर्वोक्ताः           | २८६ | एवं सर्वप्रमाणानां       | ८१५ |
| एवं गतिविशेषेण                     | ८८९ | एवं स्थितेऽनुमानत्वं     | ४४३ |
| एवं च पौरुषेयत्वे                  | ७४४ | एवं स्वतःप्रमाणत्वं      | ७५७ |
| एवं च प्रत्तिपत्तव्यं              | ४५३ | एवं हि निश्चयो हि स्यात् | ८५७ |

|                                |     |   |     |
|--------------------------------|-----|---|-----|
| एवं हि भवतो जाड्ये             | ९०० | कर्णव्योमनि सम्प्राप्तः शक्तिं श्रोत्रे |     |
| एवमत्यन्तमेदेऽपि               | २३९ | नियच्छति                                | ६०४ |
| एवमर्थक्रियाज्ञानात्           | ७८५ | कर्तर्यसत्यपि ह्येषा                    | ६४५ |
| एवमित्यादिशब्दानां             | ३६० | कर्त्ता तावददृष्टः सः                   | ५८५ |
| एवमेकान्ततो भिन्न०             | २६२ | कर्तुं ताम प्रजानाति                    | ११४ |
| एवमेवेन्द्रियैस्तुल्यं         | ६२६ | कर्तृकृत्रिमवाक्यानामुच्यते न           |     |
| एष वा ह्यस्तनो ज्ञाता          | ९७  | त्वनादिता                               | ९०२ |
| एषा स्यात्पुरुषाख्यानात्       | ६४६ | कर्तृकृत्रिमवाक्यानामुच्यते या          |     |
| ए                              |     | त्वनादिता                               | ८२९ |
| ऐक्ये स्यान्न द्विरूपत्वात्    | ४९२ | कर्तृत्वप्रतिषेधाच्च                    | ५६  |
| ऐतिह्यप्रतिभादीनां             | ४८४ | कर्तृत्वादिव्यवस्था तु                  | १७३ |
| औ                              |     | कर्मतत्फलयोरेवं                         | १६७ |
| औदासीन्यमतश्चैवं               | ३५२ | कर्मातीतं च निःसत्त्वं                  | ५०४ |
| क                              |     | कर्मान्वयदरिद्रं च                      | २४७ |
| कञ्चुकान्तरिते पुंसि           | १८८ | कर्माहारादिहेतूनां                      | ४१६ |
| कञ्चुकान्तर्गते पुंसि          | १९० | कललादिषु विज्ञानमस्तीत्येतच्च           |     |
| कतमस्य च वाक्यस्य              | ७३३ | साहसम् ।                                | ५२१ |
| कतमेन च शब्देन                 | ३६२ | कललादिषु विज्ञानमस्तीत्येतन्न           |     |
| कथं तेषु विशेषेषु              | २६३ | साहसम् ।                                | ५३९ |
| कथञ्चन सदात्मत्व०              | ४१४ | कल्पनारचितस्यैव                         | ५०१ |
| कथञ्चन सदात्मानः               | ४०७ | कल्पपादपवत्सर्व०                        | ५७४ |
| कथञ्चिदसदात्मत्व०              | ४१३ | कल्पितं चेत्तदेकत्वं                    | ४२४ |
| कथञ्चिदसदात्मानो               | ४०७ | कषायकुड्कुमादिभ्यो                      | १९१ |
| कथञ्चिदुपलभ्यत्वं              | ४११ | कस्माच्च नियतान्येव                     | १८  |
| कदाचित्स्यादपीत्येवं           | ७६१ | कस्मादाप्तं न काष्ठादि                  | ६८१ |
| कदाचिदुपलब्धेऽर्थे             | ८६० | कस्य किं दुर्बलं को वा                  | ८०८ |
| कम्बुपीतादिविज्ञानैः           | ५८० | कस्यचित्तु यदीष्येत                     | ७५७ |
| करामलकवधस्य                    | ७४२ | कस्य चैकस्य सादृश्यात्                  | ६१९ |
| करुणापरतन्त्रास्तु             | ९१९ | काचिन्नियतमर्यादा                       | ५२३ |
| कर्णव्योमनि सम्प्राप्तः शक्तिं |     | कादाचित्कं कथं नाम                      | ६७९ |
| श्रोत्रे करोति चेत्            | ६८५ | कादाचित्के हि संस्कारे                  | ११  |

|                               |     |                              |     |
|-------------------------------|-----|------------------------------|-----|
| काममिथ्यासमाचार०              | ९२८ | कालोऽप्येको विमुर्नित्यः     | ७१८ |
| कायादेव ततो ज्ञानं            | ५२१ | किं नु बुद्धिप्रणीताः स्युः  | ८४४ |
| कारणव्यापकाभावे               | ८५१ | किं वा क्षुद्रपिशाचाथैः      | ”   |
| कारणानुपलब्धेश्च              | २६५ | किं वा निवर्तयेद्योगी        | १२५ |
| कारणान्तरसापेक्षे             | ४६३ | किं वैकृतकताऽर्थाणां         | ६५६ |
| कारित्रं सर्वदा नास्ति        | ५०८ | किं वै भावाद्धिभिद्यन्ते     | ५१० |
| कारित्राख्या फलाक्षेप०        | ५१० | किञ्च केनाभ्युपायेन          | ७०९ |
| कारित्रान्तरसापेक्षा          | ५०८ | किञ्च तेषां विपर्यस्तं       | ९१७ |
| कारित्राव्यतिरेकाद्वा         | ”   | किञ्च ये ये ति(वि?)भाव्यन्ते | ८९६ |
| कारित्रे वर्तते यो हि         | ५०६ | किञ्च वेदप्रमाणत्वे          | ६५५ |
| कार्यकारणता नास्ति            | ५२० | किञ्च शब्दवदाकाशे            | ७०१ |
| कार्यकारणताभाव०               | ४८३ | किञ्च शब्दस्य नित्यत्वं      | ५९० |
| कार्यकारणताव्याप्य०           | ८५५ | किञ्च सर्वप्रमाणानां         | ७७४ |
| कार्यकारणभावश्च               | ७०३ | किञ्चाकारणमेवेदं             | ८४७ |
| कार्यकारणभावोऽपि              | १६९ | किञ्चातीतादयो भावाः          | ५१४ |
| कार्यकारणभूताभ्यां            | ७०४ | किञ्चाप्रामाण्यमप्येवं       | ७५२ |
| कार्यकारणभूताश्च              | १८४ | किञ्चामुना प्रकारेण          | ७४० |
| कार्यताव्यवहारस्तु            | ४१२ | किञ्चाविवादमेवेदं            | ७५५ |
| कार्यताव्यवहारार्थं           | ७३७ | किञ्चाव्याहतशक्तीनां         | ७३२ |
| कार्यमात्रोपयोगित्व०          | २४० | किञ्चिज्ज्ञोऽपि हि शक्नोति   | ८३४ |
| कार्यस्यैवमयोगाच्च            | २०  | किञ्चिद्धृद्यशङ्कमानोऽसौ     | ३५६ |
| कार्या चैन्द्रियकत्वादौ       | ६३८ | किन्तु गौर्गवयो हस्ती        | २९० |
| कार्याणि हि त्रिलम्बन्ते      | १४५ | किन्तु नित्यैकसर्वज्ञ०       | ४९  |
| कार्यात्कारणसंसिद्धिः         | ४१७ | किन्तु प्रज्ञाकृपादीनां      | ८९० |
| कार्यादीनामभावो हि            | ४७६ | किन्तु बाह्यार्थसद्भाव०      | ४०२ |
| कार्यार्थापत्तिगम्यं चेत्     | ४६२ | किन्तु रूपादिभावेऽपि         | ४१३ |
| कार्यावभासिद्विज्ञानसंवादेऽपि | ५५२ | किन्तु वेदप्रमाणत्वं         | ९०९ |
| कार्यावभासिद्विज्ञाने जाते    | ७७९ | किन्तु विध्यवसाय्यस्मात्     | ३५५ |
| कालत्वपुरुषत्वादौ             | ७४१ | किन्त्वनेकोऽपि यथेक०         | ३२४ |
| कालश्चैको विमुर्नित्यः        | ६३३ | किन्त्वस्य विनिवर्तन्ते      | ९५  |
| कालान्तरेण तदुद्यौ            | ४५५ | किन्त्वारेकविपर्यास०         | ३५६ |

|                                  |     |                                    |     |
|----------------------------------|-----|------------------------------------|-----|
| किन्त्वेतस्य प्रसिद्धस्य         | ९१० | केवलैन्द्रियकत्वे च हेतावत्र प्रक- |     |
| किमस्य वचनं मानं                 | ७९७ | ल्पिते । जाल्या बाधितया            | ७२९ |
| किमुतावस्त्वसंसृष्टं             | २९६ | केवलैन्द्रियकत्वे च हेतावत्र प्रक- |     |
| कीदृग्गवय इत्येवं                | ४४४ | ल्पिते । जाल्या साधितया            | ६३७ |
| कुड्यादिनिःसृतानां च             | ८४४ | केशादिप्रतिभासे च                  | ३९४ |
| "                                | ९२६ | केशोण्डूकादिविज्ञानं               | ३९२ |
| कुड्यादिप्रतिबन्धोऽपि            | ६०४ | केषाञ्चिदेव चित्तानां              | १८४ |
| कुण्डदघ्नोश्च संयोगः             | २७१ | को वा ज्ञानस्य सम्बन्धः            | ६७७ |
| कुण्डलीति मतिश्चयं किन्निमित्तो० | २१९ | को वा व्यवस्थितः कर्ता             | १७० |
| कुण्डलीति मतिश्चयं जातावस्था०    | २२२ | को हि ज्येष्ठप्रमाणेन              | १६० |
| कुतश्चिन्निश्चितं शङ्के          | ९२२ | को हि तस्याः ममुत्पन्नः            | ६८९ |
| कुतीर्थ्यमतमातङ्गं               | "   | को हि निःशेषशास्त्रार्थं           | ८७९ |
| कूपादिषु कुतोऽधस्तात्            | ६१४ | को हि मूलहरं पक्षं                 | ७४६ |
| कृतकत्वविनाशित्वं                | ६६३ | क्रमभावविरोधो हि                   | १६५ |
| कृतकाकृतकत्वेन                   | १३२ | क्रमभावीश्वरज्ञानं                 | ५०  |
| कृतनाशो भवेदेवं                  | १८२ | क्रमाक्रमविरोधेन                   | "   |
| कृतौ वा तत्स्वरूपस्य             | १४६ | क्रमिणां त्वेकहेतुत्वं             | ८६  |
| कृत्रिमत्वे च सम्बन्धः           | ५९४ | क्रमेण जायमानाश्च                  | ७०६ |
| कृत्स्नैकदेशशब्दाभ्यां           | २०५ | क्रमेण तु प्रयोगेऽस्य              | ६९८ |
| कृशानुपादपाभावे                  | ८५१ | क्रमेण युगपच्चापि यतस्तेऽर्थक्रि-  |     |
| केचित्तु सौगतमन्याः              | १२५ | यांकृतः                            | १५३ |
| केचिद्वर्गगृहशो वाऽपि            | ८५९ | क्रमेण युगपच्चापि यस्मादर्थक्रिया  |     |
| (केचिदेक)क्रमा एव                | ६६७ | कृता                               | १४३ |
| केचिदेव निरारमानो                | ३६० | क्रमेणापि न शक्तः स्यात्           | ७७  |
| केचिदेव हि संस्काराः             | १०८ | क्रमेणैवोपजायन्ते                  | ३७५ |
| केन ह्यगोत्वमासक्तं              | ३६१ | क्रियते तत्र नैवेदं                | १५२ |
| केवलस्योपलम्भे या                | ३५८ | क्रियाकारकभावेन                    | ५५९ |
| केवलस्योपलम्भे वा                | २५६ | क्रियाकालादियोगोऽपि                | ३५१ |
| केवलात्रीलशब्दादेः               | ३४० | क्रियागुणव्यपदेशा०                 | २४२ |
| केवलाऽपि मनोबुद्धिः              | ५४३ | क्रियात्वजातिसम्बन्धं              | २४७ |
|                                  |     | क्रीडार्था तस्य वृत्तिश्चेत्       | ७७  |

|                            |     |                           |     |
|----------------------------|-----|---------------------------|-----|
| क्रीडासाध्या च या प्रीतिः  | ७७  | ग                         |     |
| क्व कस्य समवायश्च          | ३११ | गकारव्यतिरिक्तं च         | ६७२ |
| क्व च बुद्धादयो मर्त्याः   | ८६६ | गकारोऽत्यन्तनिष्कृष्ट०    | ५९६ |
| क्वचित्कदाचिन्कस्मिंश्चित् | ६४  | गजादिप्रत्ययेभ्यश्च       | २१३ |
| क्वचित्तु विविधभ्रान्ति०   | ८०५ | गजादिष्वपि गोत्वादि       | २६८ |
| क्वचित्समाश्रितत्वं च      | ८४  | गणिताद्येकदेशे तु         | ८२२ |
| क्वचिद्विप्रतिसम्बद्धः     | ४१४ | गतिमद्वेगवत्त्वाभ्यां     | ६१२ |
| क्षणं त्वेकमवस्थानं        | २३० | गतियोगादिवैकल्ये          | ८९० |
| क्षणक्षयिषु भावेषु         | २३१ | गमनप्रतिबन्धोऽपि          | २५९ |
| क्षणभङ्गिषु भावेषु         | १७० | गर्भादावादिविज्ञानं       | ५२४ |
| क्षणभेदविकल्पेन            | १८३ | गवयस्योपलम्भे च           | ४५० |
| क्षणस्थायी घटादिश्चेत्     | १६९ | गवयस्योपलम्भेऽपि          | ४५३ |
| क्षणव्यतिरिक्तरूपं हि      | १४२ | गवयेन तु सादृश्यं         | ४४९ |
| क्षणिकत्वात्तु तत्कार्ये   | १७४ | गवयोपमिता या गौः          | ४५९ |
| क्षणिकत्वात्पदार्थानां     | २२८ | गवादिष्वप्यत्वे हि        | २३८ |
| क्षणिकत्वादिरूपेण          | ३५७ | गवादिशब्दप्रज्ञान०        | "   |
| क्षणिका इति भावाश्च        | ५५२ | गवादिष्वनुवृत्तं च        | "   |
| क्षणिकाक्षणिकत्वादि        | १४१ | गवा सदृशरूपोऽयं           | ४४४ |
| क्षणिकानित्यतालीढं         | १६६ | गवि योऽन्नाद्यभावश्च      | ४७१ |
| क्षणिका हि यथा बुद्धिः     | १८० | गव्यसिद्धे त्वगौर्नास्ति  | ३०० |
| क्षणिकेष्वपि भावेषु        | १५३ | गां दृष्ट्वाऽयमरण्यान्यां | ४४४ |
| क्षपाभोजनसम्बन्धी          | ४६५ | गादेरप्येकतापत्तौ         | ६६९ |
| क्षित्यादिभेदतो भिन्नं     | १८५ | गावोऽगावश्च संसिद्धा      | ३३१ |
| क्षित्यादिरूपगन्धादेः      | १८८ | गुणकर्मेश्वरादीनां        | ९१७ |
| क्षित्यादीनामवैशिष्ट्ये    | १७४ | गुणज्ञानं गुणायत्त०       | ७५८ |
| क्षीणास्रवस्य विज्ञानं     | ५३८ | गुणतज्जातिसम्बद्धं        | ३४२ |
| क्षीरादिषु च दध्यादि       | ३३  | गुणतज्जातिसम्बन्धात्      | ३४३ |
| क्षीरे दध्यादि यन्नास्ति   | ४७१ | गुणद्रव्यक्रियाजाति०      | १   |
| क्षुदाद्यनुपघातादि०        | ७८७ | गुणवत्त्वादतो वक्तुः      | ७६३ |
| क्षेत्रबीजजलादीनि          | २१८ | गुणाः सन्ति न सन्तीति     | ६४५ |
| क्षोणीतेजोजलादिभ्यो        | ५२४ | गुणेभ्यश्च प्रमाणत्वं     | ६९४ |

|                                       |     |                               |     |
|---------------------------------------|-----|-------------------------------|-----|
| गुणैश्चाज्ञायमानत्वात्                | ८०० | घ                             |     |
| गृहीत इति कोऽप्येवं                   | ५८० | घट इत्यादिकाबुद्धिः           | २५० |
| गृहीतप्रतिसन्धानात्                   | ४५४ | घटत्वादि च सामान्यं           | २५३ |
| गृह्णन्ति यद्वदेतानि                  | ५९८ | घटवृक्षादिशब्दाश्च            | ३६२ |
| गोहाभावस्तु यः शुद्धो                 | ४६० | घटस्य प्रागभावोऽयं घटप्रच्यंस |     |
| गोहाभावात्तु चैत्रस्य                 | ४६९ | इत्ययम् ।                     | २५० |
| गोचरान्तरसञ्चारः                      | ५६५ | घटस्य प्रागभावोऽयमित्यादि-    |     |
| गोतश्चार्थान्तरं गोत्वं               | २३८ | वचनं पुनः ।                   | २५४ |
| ” ”                                   | २५७ | घटादावपि नैवास्ति             | ६७१ |
| गोत्वं नित्यमपास्तं च                 | ६७१ | घटादावपि सामान्यं             | ७०६ |
| गोत्वशब्दविशिष्टार्थं                 | २८७ | घटादिग्रहणार्थं हि            | ६७५ |
| गोत्वादय इवैतेऽपि                     | ३४७ | घटादिजातिभेदाश्च              | २६० |
| गोशब्दज्ञानगम्यत्वात्                 | ५९२ | घटादिभ्योऽपि शब्देभ्यः        | ३५८ |
| गोशब्दवाच्यतामात्रात्                 | ४९  | घटादिरचना यद्वत्              | ६३० |
| गोशब्दविषयत्वेन                       | ५९१ | घटादिषु समानं च               | ९२  |
| गोशब्देऽवस्थिते योग्ये                | ७१३ | घटादीनां च यत्कार्यं          | ३२५ |
| गौणं साङ्केतिकं चैवं                  | ४३१ | घटादेरेकतापत्तौ               | ५९३ |
| गौणत्वेनैव वक्तव्यः सोऽपि मन्त्रार्थ- |     | घटादेर्व्यतिरेकेऽपि           | ७०६ |
| वादवत् । यद्वा प्रकृतधर्मादि०         | ८३४ | घटान्तरव्यवच्छिन्नं           | ३७९ |
| गौणत्वेनैव वक्तव्यः सोऽपि मन्त्रार्थ- |     | च                             |     |
| वादवित् । इत्ययं नियमः सिध्येत        | ९१२ | चक्रभ्रमणयोगेन                | ८८३ |
| गौरवर्णादिनिर्भासो                    | ९०  | चक्षुरादिविभिन्नं च           | २०६ |
| गौरित्युत्पद्यमानत्वात्               | ५९१ | चक्षुराद्यतिरिक्तं तु         | २०९ |
| गौरित्येकमतित्वं तु                   | ७२७ | चक्षुर्ज्ञानादिविज्ञेयं       | ३५७ |
| गौश्वेत्नास्ति विवादोऽयं              | ३१३ | चक्षुषा दृश्यते चासा७         | ४५४ |
| गौः शुक्लश्चलतीत्यादौ                 | ३८९ | चक्षुषाऽपि च दूरस्थ०          | ८२६ |
| ग्राह्यं तद्ग्राहकाच्चैवं             | ५७७ | चक्षुषो धर्मिरूपस्य           | ४१२ |
| ग्राह्यलक्षणवैधुर्यात्                | ९१४ | चक्षुःस्पर्शनविज्ञानं         | ४५  |
| ग्राह्यलक्षणसंयुक्तं                  | १२३ | चक्षू रूपगृहे कार्ये          | ४०६ |
| ग्राह्यसाधारणाकारं                    | ४०१ | चतुष्टयं च प्रमाणानां         | ४५६ |
| ग्राह्यान्तरव्यवच्छिन्नं              | ३७९ | चन्द्रत्वसाधने हेता०          | ४११ |

|                                |     |                             |     |
|--------------------------------|-----|-----------------------------|-----|
| चन्द्रत्वेनापदिष्टत्वं         | ४११ | जलाद्यन्तर्गतं चेदं         | ६९४ |
| चन्द्रत्वेनापदिष्टत्वात्       | ४०६ | जलानलादि नैवेदं             | ४६  |
| चाक्षुषेणैव तत्कलृप्ता०        | ८८६ | जल्पो बुद्धिस्थ एवायं       | २८८ |
| चादीनामपि नञ्योगो              | ३११ | जातकर्मादयो ये च            | ९२१ |
| चिन्तोत्प्रेक्षादिकाले च       | ३६८ | जातिमात्रग्रहे तु स्यात्    | ३८७ |
| चैतन्यमन्ये मन्यन्ते           | १११ | जातिर्भावश्च सामान्यं       | ३४८ |
| चैतन्यव्यतिरिक्तं हि           | ११२ | जातिसम्बन्धयोः पूर्वं       | २८२ |
| चैतन्याद्यन्वितत्वेऽपि         | ३९  | जातिसम्बन्धरूपाणां          | ७१८ |
| चैतन्ये चात्मशब्दस्य           | ११६ | जातिस्तत्रापि नित्या चेत्   | ९११ |
| चैत्र गामानयेत्यादि०           | ३५५ | जातेरपि न सङ्ख्याऽस्ति      | ३५० |
| चैत्रज्ञानं तदुद्भूत०          | ५७७ | जातेऽप्याप्ते तदीयोऽसौ      | ७९३ |
| चैत्रोऽकुण्डल इत्येवं          | २१९ | जातौ वा न विजातीयं          | ७७९ |
| चोदनाजनिता बुद्धिः             | ६४४ | जातौ व्यक्तौ कृतायां चेत्   | ७२३ |
| चोदनाजनिता बुद्धिः...दित्यादपि | ७२९ | जातौ सर्वात्मना सिद्धैः     | १५३ |
| चोदनाजनिता बुद्धिः...नेह च ।   | ७७४ | जाल्यादियोजनां येऽपि        | ३७१ |
| चोदनाजनिते ज्ञाने              | ८०४ | जाल्यादियोजनायोग्यां        | ३६८ |
| चोदनाप्रभवं ज्ञानं             | ८०८ | जाल्यादियोजना शब्दः         | ३७२ |
|                                |     | जाल्यादीनामदृष्टत्वात्      | ३६८ |
| <b>छ</b>                       |     | जाल्यादेर्निःस्वभावत्वं     | १८५ |
| छेदने खदिरप्राप्ते             | ३९८ | जाल्यादेर्निःस्वभावत्वात्   | १६४ |
|                                |     | जाल्याद्यन्यदपि प्रोक्तं    | ६६४ |
| <b>ज</b>                       |     | जाल्या यथा घटादिनां         | ६३१ |
| जगत्सदेदृशं चेति               | ८१० | जायमानस्य गन्धादिः          | १६८ |
| जनकाद्धि परावृत्तः             | ४९७ | जिज्ञासितविशेषे हि          | ४२० |
| जनने हि स्वतन्त्राणां          | ७५६ | जीवतश्च गृहाभावः            | ४६० |
| जन्मातिरिक्तकालं हि            | २३२ | जीवतश्चेद्गृहाभावो          | ४६९ |
| जन्मातिरिक्तकालश्च             | ७७७ | जैमिनीया इव प्राहुर्जैनाः   | ११८ |
| जन्मातिरिक्तकालेन              | १७७ | ज्ञातरि प्रत्यभिज्ञानं      | १०९ |
| जन्मैव यौगपद्येन               | ३९६ | ज्ञाताऽज्ञाता च भिन्ना चेत् | ७०८ |
| जन्यतां व्यज्यतां वाऽपि        | ७२२ | ज्ञातादव्यतिरिक्तं चेत्     | २६१ |
| जलादिव्यतिरिक्तो हि            | ४६२ | ज्ञाता धर्मादयो वै ते       | ८९७ |
| जलादिषु न चैकोऽयं              | ६९४ |                             |     |
| जलादिषु यथैकोऽपि               | ६१२ |                             |     |

|                             |     |                            |     |
|-----------------------------|-----|----------------------------|-----|
| ज्ञाते चाविद्यमानत्वा०      | १५९ | ज्वालादेरपि नाशित्वं       | ७३१ |
| ज्ञातैकत्वो यथा चैको        | ६१६ | त                          |     |
| ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं      | ८२६ | तं हि शक्तमशक्तं वा        | ६९२ |
| ज्ञानं ज्ञेयक्रमात्सिद्धं   | ७३  | तच्च प्रत्यक्षतुल्यत्वात्  | ५८९ |
| ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं     | ८३५ | तच्चेत्कीदृशनशीलानां       | ९२७ |
| ज्ञानं स्वांशं न गृह्णाति   | ५७७ | तज्ज्ञानजन्मनियता          | ७०८ |
| ज्ञानं हि पुरुषाधारं        | ६२५ | तज्ज्ञानं ज्ञानजातौ चेत्   | ५६४ |
| ज्ञानं हि व्यक्तिरित्याहुः  | ७२२ | तज्ज्ञानज्ञेयरूपोऽयं       | ६७७ |
| ज्ञानकार्यावसेयश्च          | ६७९ | तज्ज्ञेयात्मा न शब्दश्चेत् | ”   |
| ज्ञानज्ञेयस्वभावौ तां       | ६७७ | तटस्तटी तटं चेति           | ३४६ |
| ज्ञानप्रमाणभावे च           | ७७८ | ततः कालेन महता             | ८०९ |
| ज्ञानमात्रेऽपि निर्दिष्टे   | ८४२ | ततः कोऽतिशयो दृष्टः        | ७५२ |
| ज्ञानमात्रेऽपि नैवास्य      | ७४  | ततः परं पुनर्वस्तु         | ३८५ |
| ज्ञानयत्नादिसम्बन्धः        | ८०  | ततः परमतो ज्ञान०           | ६४७ |
| ज्ञानरूपविविक्तश्च          | ४७९ | ततः प्रतिनरं वर्णाः        | ७१६ |
| ज्ञानस्यात्मगतः कश्चित्     | ३५९ | ततः प्रत्यक्षबाधेयं        | १५७ |
| ज्ञानाकारनिषेधस्तु          | ”   | ततः प्रभृति ये जाता        | ५५५ |
| ज्ञानादव्यतिरिक्तत्वात्     | ५७१ | ततश्च गम्यतां व्यक्तं      | ६४३ |
| ज्ञानाधारात्मनोऽसत्त्वे     | ५२२ | ततश्च चोदनाजन्यं           | ७७२ |
| ज्ञानानि च मदीयानि          | ८०  | ततश्च बाधकाभावे            | ८६३ |
| ज्ञानान्तरेणानुभवे          | ५६४ | ततश्च वासनाभेदात्          | ३३७ |
| ज्ञानालोकव्यपास्तान्तः      | ७४४ | ततश्च वेददेहत्वं           | ९५५ |
| ज्ञानोत्पत्तावयोग्यत्वे     | ६९१ | ततश्च व्यक्तिमाश्रित्य     | ६८० |
| ज्ञानोत्पत्तौ तु सामर्थ्ये  | ”   | ततश्च व्यञ्जकास्तासां      | ४६८ |
| ज्ञानोत्पादनयोग्यश्च        | ६९२ | ततश्च शिष्यसर्वज्ञ०        | ८४४ |
| ज्ञापकत्वाद्धि सम्बन्धः     | ६२५ | ततश्चाजातबाधेन             | ७९० |
| ज्ञापके लिङ्गरूपे च         | ४१५ | ततश्चात्यन्तभेदेऽपि        | ४९६ |
| ज्ञापनीयमवेदत्वं            | ९१० | ततश्चाध्वविभागोऽयं         | ५०७ |
| ज्ञायते हि स्थिरात्माऽन्यैः | ९१४ | ततश्चानियतार्थेन           | ८८६ |
| ज्योतिर्विच्च प्रकृष्टोऽपि  | ८२६ | ततश्चानुपलम्भस्य           | ८६१ |
| ज्वालादेः क्षणिकत्वेऽपि     | ५९१ | ततश्चापौरुषेयत्वं          | ६४८ |



|                             |     |                           |     |
|-----------------------------|-----|---------------------------|-----|
| ततश्चापौरुषेयत्वव्यक्ति०    | ६५७ | तत्पूर्वापरयोः कोटयोः     | ६६२ |
| ततश्चापौरुषेयेषु            | ७४० | तत्प्रतिक्षेपमात्रात्मा   | ४७४ |
| ततस्तान्मयसम्भूतं           | २२  | तत्र चागममात्रेण          | ८८४ |
| ततः सर्वप्रमाणेषु           | ११० | तत्र जातिर्विशेषं कं      | ५१२ |
| ततः सर्वैः प्रतीयेत         | ५९९ | तत्र तादृशि विज्ञाने      | ९३२ |
| ततः सुगतमेवाद्भुः           | ८७८ | तत्र तादृशि हेतोः स्यात्  | ८८४ |
| ततो गुणपरिच्छेदि०           | ७५७ | तत्र तात्वादिसंयोग०       | ६३१ |
| ततो न व्यञ्जकं किञ्चित्     | ६६७ | तत्र तेनैव नान्यत्र       | २०२ |
| ततो नावस्थितं किञ्चित्      | १२० | तत्र दूरसमीपस्थ०          | ६०३ |
| ततो निरन्वयो ध्वंसः         | ”   | तत्र देशान्तरे वस्तु०     | २६० |
| ततो निरपवादत्वात्           | ७६० | तत्र नित्याणुरूपाणां      | १८६ |
| ततोऽपि तदपक्रम्य            | ७३२ | तत्र नो चेदवस्थानां       | १०६ |
| तत्कस्माद्भात्यसावेवं       | ६९४ | तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञातात् | ४५७ |
| तत्कार्यं वा यदाऽऽदृश्यं    | ८६१ | तत्र बोधात्मकत्वेन        | १०० |
| तत्कार्यव्यवहारादि०         | ६६० | तत्र यद्यपि गां स्मृत्वा  | ४४४ |
| तत्कार्यहेतुविश्लेषात्      | ३२७ | तत्र यद्यप्यसिद्धा स्यात् | ६३८ |
| तत्किमत्रान्यया शक्या०      | ४६७ | तत्र यन्नाम केषाञ्चित्    | १५१ |
| तत्कृतः प्रत्य(यः सम्यक्)   | ६४४ | तत्र ये कृतका भावाः       | १३२ |
| तत्तन्मनयतीत्याद्भुः        | १७६ | तत्र शक्तातिरेकेण         | ४६१ |
| तत्तुल्ययोग्यरूपस्य         | ४७५ | तत्र शब्दान्तरापोहे       | ३०६ |
| तत्त्वज्ञानं न चोत्पाद्यं   | १२५ | तत्र सम्बन्धनास्तित्वे    | ६२५ |
| तत्त्वतस्तु तदेवोक्तं       | ४३२ | तत्र सर्वजगत्सूक्ष्म०     | ८२० |
| तत्त्वदृष्टिनिबन्धत्वात्    | ८९२ | तत्र सामान्यवचना          | ३२६ |
| तत्त्वादीनामुपादानं         | ४२  | तत्र स्वलक्षणं तावत्      | २७७ |
| तत्त्वान्यत्वप्रकारान्यां   | ५१० | तत्राकर्तृकवाक्यस्य       | ४३६ |
| तत्त्वान्यत्वाद्यनिर्देश्यं | ९३३ | तत्राद्ये विषये ज्ञाते    | ९६  |
| तत्त्वान्यत्वोभयात्मानः     | ३८९ | तत्रानवस्थितैस्तेषां      | ८२३ |
| तत्पञ्चभिरगम्योऽपि          | ६५९ | तत्रान्यापोह इत्येषां     | ३१७ |
| तत्परिच्छेदरूपत्वं          | ५६१ | तत्रापि त्वपवादस्य        | ७५९ |
| तत्पारतन्त्र्यदोषोऽयं       | ३४० | तत्रापि रूपशब्दादि०       | १११ |
| तत्पुत्रत्वादिहेतूनां       | ४१५ | तत्रापि वेद्यते रूपं      | ७२  |

|                                 |     |                         |     |
|---------------------------------|-----|-------------------------|-----|
| तत्रापि शक्तिनित्यत्वं          | ७३४ | तथा च वासुदेवेन         | ७६० |
| तत्रापि संज्ञासम्बन्ध०          | ४५१ | तथा च स्मृतिरूपत्वं     | ४४९ |
| तत्रातोक्तेर्द्वयं दृष्टं       | ७६३ | तथा चाभावविज्ञानं       | २५१ |
| तत्राप्यन्यव्यपेक्षायां         | १४६ | तथा (चा)वाच्यमेवेदं     | ३८६ |
| तत्राप्यविकृतं द्रव्यं          | ११८ | तथा दृष्टविरुद्धत्वं    | ५९३ |
| तत्राप्याहुर्भवत्वेवं           | ९२५ | तथाऽनाप्ताप्रणीतो       | ६४४ |
| तत्राप्रमाणसाधर्म्यं०           | ७६९ | तथाऽनेकार्थकारित्वात्   | ३२६ |
| तत्रायं प्रथमः शब्दैः           | ३१८ | तथा परिगृहीतार्थं०      | ४५२ |
| तत्रासतोऽपि भावत्वं             | ३०५ | तथाऽपि व्यभिचारित्वं    | ३३८ |
| तत्रासाधारणासिद्धं०             | ६३८ | तथाऽप्याकृतितः सिद्धा   | ६२३ |
| तत्रास्त्वर्थोऽभिधेयोऽयं        | २८६ | तथा बोधात्मकत्वेन       | ७८८ |
| तत्रास्य गवये दृष्टे            | ४४८ | तथा मायेन्द्रजालादि०    | ८३४ |
| तत्रेयं द्विविधा जातिः          | २३६ | तथाविधविवक्षायां        | १९८ |
| तत्रैकलक्षणो हेतुः              | ४०६ | तथाविधे क्रमे कार्ये    | ७३८ |
| तत्रैव भवतोऽप्येवं              | ६८९ | तथा विभाव्यमानत्वात्    | ८९७ |
| तत्रैव हि विवादोऽयं             | ७२८ | तथा वेदेतिहासादि०       | ८२६ |
| तत्रोत्पादे न नाशोऽस्ति         | ३४७ | तथाऽव्याप्तश्च सर्वाथैः | ९२५ |
| तत्संकेतमनस्कारात्              | २४० | तथा षड्भिः प्रमाणैर्यैः | ८१८ |
| तत्सन्देहविपर्यासौ              | ७९६ | तथाऽसौ नास्ति तत्त्वेन  | ३६१ |
| तत्समुत्थापकग्राहि०             | ७१९ | तथा हि कारणाऽऽश्लेषः    | २३२ |
| तत्सम्बद्धस्वभावस्य भावे        |     | तथा हि चन्द्रदिग्मोह०   | ७६२ |
| तेषामपि                         | १४८ | तथा हि ज्ञातवान्यूर्वं  | ९६  |
| तत्सम्बद्धस्वभावस्य वैगुण्यात्  | २४८ | तथा हि ज्ञापको हेतुः    | ६६  |
| तत्सम्बद्धस्वभावस्य ह्यतदेशेऽपि | २०२ | तथा हि तदभावोऽयं        | ७८८ |
| तत्सम्भव्यपि सर्वज्ञः           | ८६९ | तथा हि देशकालादौ        | ७९२ |
| तत्सामर्थ्यवियोगे तु            | ६०  | तथा हि द्विविधोऽपोहः    | ३१६ |
| तत्सामर्थ्यसमुद्भूतं०           | ४६  | तथा हि न विकल्पानां     | ५४१ |
| तत्सामान्यविशेषात्मं०           | ५५४ | तथा हि न ह्यभावस्य      | ६१  |
| तत्सिद्धये च हेतुश्चेत्         | ६६  | तथा हि नाशको हेतुः      | १३३ |
| तत्स्पर्धा क्रियते तैस्तु       | ९१७ | तथा हि नास्तिकादीनां    | ९०२ |
| तत्स्वाभाविकवादोऽयं             | ६४  | तथा हि नित्यसत्त्वोऽयं  | ७२२ |

|                                |     |                                  |     |
|--------------------------------|-----|----------------------------------|-----|
| तथा हि निश्चयात्माऽयं          | ९१  | तुल्यताम् ।                      | ८२९ |
| तथा हि पचतीत्युक्ते            | ३५२ | तदज्ञानविशेषत्वात्सर्वं यात्यत्र |     |
| तथा हि पारसीकादि०              | ७४१ | तुल्यताम् ।                      | ९०३ |
| तथा हि प्रतिसन्धानं            | ३७६ | तदत्यन्तविनिमुक्तेः              | ९०४ |
| तथा हि बाधकाभावात्             | ७८९ | तदत्र कतमं नाशं                  | १३७ |
| तथा हि बाधके(ऽ)दृष्टे          | ९०१ | तदत्र क्षणभङ्गस्य                | ४२४ |
| तथा हि भिन्नं नैवान्यैः        | १९२ | तदत्र चिन्त्यते नित्यं           | ९८  |
| तथा हि विस्तरेणैषा             | ६७० | तदत्र न विरोधोऽस्ति              | ३९१ |
| तथा हि वीक्ष्यते रूपं          | ८८९ | तदत्र न विवादो नः                | ७४९ |
| तथा हि वेदनादिभ्यः             | १२८ | तदत्र नित्यसत्त्वस्य             | ४७४ |
| तथा हि वेदभूम्यादेः            | ८५९ | तदत्र परलोकोऽयं                  | ५२३ |
| तथा हि व्यवहारोऽयं             | ७१२ | तदत्र प्रथमे तावत्               | ८३  |
| तथा हि संस्कृताः श्रोत्र०      | ६९३ | तदत्र वृत्तिर्नास्तीति           | २०४ |
| तथा हि सन्तो ये नाम            | १४३ | तदत्र सुधियः प्राहुः             | २२  |
| तथा हि सर्वशब्देन              | ८५८ | तदत्र हेतुधर्मस्य                | ४१७ |
| तथा हि सलिलज्ञानं              | ८०३ | तदत्रादिपदाक्षिते                | ८८१ |
| तथा हि सौगतादीनां              | ६५४ | तदत्रासिद्धता हेतोः              | ४४  |
| तथा हि सौधसोपान०               | ५०  | तदनन्तरमुद्दिष्टं                | २४६ |
| तथा हि स्वरसेनैव               | ७९० | तदनन्तरसम्भूत०                   | ५२२ |
| तथा हि हस्तकम्पादेः            | ७०२ | तदनालम्बना एव                    | ५४६ |
| तथा ह्यश्रुततत्त्वज्ञो         | ४५२ | तदन्यस्य तदाभावे                 | ५३३ |
| तथा ह्यसति सम्बन्धे            | ४६५ | तदपेक्षा तथावृत्तिः              | ६४  |
| तथा ह्येकेन शब्देन             | ३४१ | तदप्यकारणं यस्मात्               | १९७ |
| तथैव नित्यचैतन्यस्वभाव०        | ९५  | तदप्ययुक्तं हेतुत्वे             | २४२ |
| तथैव नित्यचैतन्याः             | ९९  | तदप्यर्थक्रियायोग्यं             | ४९६ |
| तथैव यत्समीपस्थैः              | ६११ | तदभिव्यक्तरूपत्वात्              | ७४० |
| तथैवाधारभेदेन                  | २९६ | तदयुक्तं यदि ज्ञानं              | ३८६ |
| तथैवोक्तावनेकान्तो             | २२६ | तदयुक्तमहङ्कारे                  | ९०  |
| तदकारणमत्यर्थं                 | ५४० | तदस्य बोधरूपत्वात्               | ५५९ |
| तदज्ञानविशेषत्वान्न तेषां याति |     | तदाकारोपरकेन                     | ८३  |
|                                |     | तदा क्रियाक्रियाभ्रंशौ           | ५११ |

|                        |     |                              |     |
|------------------------|-----|------------------------------|-----|
| तदा च वेदवाक्यानां     | ९१२ | तद्गम्यगमकत्वं चेत्          | ३३८ |
| तदा चार्थतया भावः      | ८०६ | तद्गवाश्चादयः शब्दाः         | ७१३ |
| तदा तन्नामसंसर्गा      | ३७४ | तद्ग्राहकं च विज्ञानं        | ९३३ |
| तदात्मनो निवृत्तौ हि   | ८९  | तद्ग्राह्यवस्त्वपेक्षं हि    | ७८४ |
| तदाऽध्यक्षादिशब्देन    | ३७३ | तद्दृषणान्यसंरम्भाः          | ८७९ |
| तदा न व्याप्रियन्ते तु | ७९६ | तद्देशस्थेन तेनैव            | ४२२ |
| तदानुपूर्वी वर्णानां   | ७१८ | तद्देशस्य विनाशेऽपि          | ५४२ |
| तदाऽपि गेहायुक्तं      | ४७० | तद्द्रव्यसमवेता चेत्         | २१३ |
| तदारब्धस्त्ववयवी       | १८७ | तद्धियामपि तद्द्वारा         | ८०२ |
| तदारूढास्ततो वर्णा     | ७२५ | तद्धेतुत्वात्प्रमाणं चेत्    | ४७८ |
| तदाश्रयनराभावे         | ४३७ | तद्धेतुफलयोर्भूतां           | ५१९ |
| तदाश्रयेण सम्भूतेः     | ५३८ | तद्ध्येकवृत्तिभाजैव          | २०१ |
| तदाश्रितत्वस्थानादि    | २७० | तद्द्रवनेर्भिन्नदेशत्वं      | ६९९ |
| तदाऽस्य गवयज्ञानं      | ४४४ | तद्भावभावितां मुक्त्वा       | ४८३ |
| तदा हि मोहमानादि०      | ६५४ | तद्भावभाविता चात्र           | ६११ |
| तदिदं लक्षणं हेतोः     | ४०८ | तद्भावभावितामात्रात्         | १७७ |
| तदिदं विषमं यत्स्यात्  | ५६१ | तद्भावभाविता साक्षादसिद्धा   | ३९२ |
| तदिदानीमभूत्वैव        | ५११ | तद्भावभाविता साक्षात् सिद्धा | ३९३ |
| तदिष्टविपरीतार्थं०     | ७११ | तद्भावव्यवहारे तु            | ४८३ |
| तदीदृशां प्रवृत्तुणां  | ९०३ | तद्भावव्याप्यतद्भावः         | ४९१ |
| तदीयमेव येनेदं         | ७९३ | तद्भावसाधनेऽप्यस्ते          | ६६२ |
| तदुक्तमन्त्रयोगादि०    | ९०४ | तद्भुजङ्गपिशाचादि०           | ९३८ |
| तदुच्चारणमात्रेण       | ४५८ | तद्भ्रान्त्या व्यवहर्त्तारो  | ७०१ |
| तदेकपरिहारेण           | ८५८ | तद्यथा कुण्डदम्नोश्च         | २६९ |
| तदेकाकारविज्ञानं       | ८४४ | तद्यथा चाक्षुषत्वस्य         | ४०८ |
| तदेतदिह विज्ञानं       | २६६ | तद्यथा पौरुषेयस्य            | ६५२ |
| तदेवं धर्मतत्त्वस्य    | ९०७ | तद्येन हेतुनैकस्य            | ८७९ |
| तदेवं शङ्कया नास्य     | ८५९ | तद्रूपकार्यविज्ञप्तिः        | ८८६ |
| तदेवं सर्वपक्षेषु      | ५५८ | तद्रूपप्रतिबिम्बस्य          | ३१९ |
| तदेवं चेत्कथं नाम      | ५१० | तद्रूपव्यतिरिक्तश्च          | १९० |
| तदेव चेन्न वस्तुत्वं   | ४९३ | तद्रूपव्यतिरेकेण             | ७२  |

|                                    |     |                              |     |
|------------------------------------|-----|------------------------------|-----|
| तद्रूपस्पर्शने चापि                | ३८३ | तस्माच्छब्दार्थसम्बन्धो      |     |
| तद्रूपस्यानुवृत्तौ तु              | १४९ | नित्यो नाभ्युपगम्यते ।       | ७१४ |
| तद्रूपस्यैव चार्थस्य               | १५१ | तस्माच्छ्रोत्रियदृष्टेयं     | ६८७ |
| तद्वर्णनरविज्ञान०                  | ६९४ | तस्माच्छ्रोत्रियदृष्टयाऽपि   | ६०३ |
| तद्विकारविकारित्वं                 | ३९३ | तस्माज्जगद्धिताधीन०          | ९१९ |
| तद्विच्छिन्न इति ज्ञान०            | ६८४ | तस्मात्कर्मफलादीनां          | १७४ |
| तद्विजातीयविद्वलेषि०               | २४९ | तस्मात्किमस्ति नास्तीति      | ४२५ |
| तद्विशेषणभावेऽपि                   | ३३४ | तस्मात्खण्डपुष्पात्तुल्यत्वं | ४८७ |
| तद्वचक्याकृतिजातीनां               | २८३ | तस्मात्तत्रादिविज्ञानं       | ५३४ |
| तन्तुष्वेव पटोऽमीषु                | २६५ | तस्मात्तद्द्वयमेष्टव्यं      | ३३८ |
| तन्तोर्थः समवायो हि                | २६८ | तस्मात्प्रत्यक्षतः पूर्वं    | ७२४ |
| तन्न तज्जातयो भिन्नाः              | ७१६ | तस्मात्प्राकार्यनिष्पत्तेः   | १६९ |
| तन्न तात्वादिसंयोग०                | ”   | तस्मात्प्राग्यत्र तेनेदं     | ४५३ |
| तन्न ध्वनिगुणान्सर्वान्            | ७१७ | तस्मात्सङ्केतदृष्टार्थो      | २७७ |
| तन्न सामर्थ्यनियमो                 | ६९० | तस्मात्समस्तसिद्धान्त०       | ३७२ |
| तन्नाध्यवसिताकार०                  | ३९४ | तस्मात्सर्वज्ञसद्भाव०        | ८६२ |
| तन्नामसंस्तवाभ्यास०                | ५४५ | तस्मात्सर्वेषु यद्रूपं       | २९२ |
| तन्नासतोऽपि संवित्तेः              | ५५५ | तस्मात्सहेतवोऽन्येऽपि        | ६७  |
| तन्नाहंप्रत्ययो भ्रान्तिः          | ११० | तस्मात्स्वतःप्रमाणत्वं       |     |
| तन्नित्यशब्दवाच्यत्वं              | १०८ | वेदस्यापि न युज्यते          | ८०८ |
| तन्नैवं शनकादीनां                  | ७१३ | तस्मात्स्वतःप्रमाणत्वं       |     |
| तन्नोपमानतः सिद्धिः                | ९१७ | सर्वत्रौत्सार्गिकं स्थितम्   | ७५८ |
| तन्मात्रघोतकाश्वेमे                | ३६४ | तस्मात्स्वतोऽप्रमाणत्वं      | ७८८ |
| तन्मूलकेशराशिश्च                   | ९०४ | तस्मात्स्वच्छक्षणे ज्ञानं    | ३८४ |
| तमस्युत्सुकदृष्टौ च                | ४१६ | तस्मात्सर्ववेदनात्मन्त्वं    | ८९५ |
| तयोरासत्तिमाश्रित्य                | २५४ | तस्मादकृत्रिमः शब्दो         | ५९४ |
| तयोर्भावेऽप्यतीतादि०               | ५४२ | तस्मादतिशयज्ञानैरतिदूर०      | ८२७ |
| तरुपङ्क्त्यादिसंदृष्टा०            | ४५० | तस्मादतिशयज्ञानैरुपाय०       | ८९९ |
| तत्रैव सर्ववित्ता स्यात्           | ९१७ | तस्मादतीन्द्रियार्थानां      |     |
| तस्माच्छब्दार्थसम्बन्धो नित्य एवा- |     | साक्षाद्दृष्टा               | ८२८ |
| भ्युपेयताम् ।                      | ६२२ | तस्मादतीन्द्रियार्थानां      |     |

|                            |          |                          |     |
|----------------------------|----------|--------------------------|-----|
| साक्षाद्द्रष्टैव विद्यते । |          | तस्माद्वा सर्वकालेषु     | ५९१ |
| न तु नित्येन वचसा          | ८४६      | तस्मान्न पदधर्मोऽस्ति    |     |
| तस्मादतीन्द्रियार्थानां    |          | नित्यस्ते                | ७१८ |
| साक्षाद्द्रष्टैव विद्यते । |          | तस्मान्न पदधर्मोऽस्ति    |     |
| नित्यस्य वचसो०             | ९०२      | विनाशी                   | ६३४ |
| तस्मादननुमानत्वं           | ४३५      | तस्मान्न त्रिविधोऽस्ति   | ३६२ |
| तस्मादनष्टात्तद्वेतोः      | १७५      | तस्मिन्ध्यानसमापन्न      | ८४३ |
| तस्मादन्येषु तीर्थेषु      | ९०६      | तस्मिन्सङ्केतसापेक्षा    | ७१० |
| तस्मादभिन्नतायां च         | ५७८      | तस्मिन्सति हि कार्याणां  | १४६ |
| तस्मादयमहङ्कारो            | ९७       | तस्मिन्सत्यपि नैवास्य    | ६५७ |
| तस्मादर्थक्रियाज्ञानं      | ७५०      | तस्मिन्सदपि मानत्वं      | ७८१ |
| तस्मादर्थक्रियाभासं        | ७७९      | तस्मिन्सम्भाव्यते वेदे   | ७१४ |
| तस्मादालोकवद्वेदे          | ६४५      | तस्मिन्सम्भाव्यमाने च    | ९०१ |
| तस्मादिच्छादयः सर्वे       | ९१       | तस्य च क्रमवृत्तित्वात्  | ६०५ |
| तस्मादुच्चारणं तस्य        | ५९८      | तस्य च प्रतिबिम्बस्य     | ३२० |
| तस्मादुत्पत्त्यभिव्यक्तयोः | ६०९, ६९० | तस्य चापचये जाते         | ८९२ |
| तस्मादेकस्य या दृष्टिः     | ४७९      | तस्य तेनैव तुल्यत्वात्   | ८२८ |
| तस्मादेते यदभ्यास०         | ५४९      | तस्य धर्मिणि सद्भावः     | ४०८ |
| तस्मादेव च ते न्यायात्     | ८००      | तस्य नार्थानपेक्षत्वं    | ३२३ |
| तस्माद्गुणेभ्यो दोषाणां    | ७९८      | तस्य पक्षाबहिर्भावे      | २४२ |
| तस्माद्दिग्द्रव्यभागो यः   | ६१०      | तस्य योग्यमयोग्यं वा     | २५६ |
| तस्माद्दुष्टं यदुत्पन्नं   | ७६६      | तस्य व्यक्तौ समर्थात्मा  | ३३० |
| तस्माद्दोषेभ्यो गुणानां    | ८००      | तस्यां च प्रतिपाद्यायां  | ४१४ |
| तस्माद्द्विजातिना प्रोक्तं | ७०१      | तस्यां चाश्वादिबुद्धीनां | २९३ |
| तस्माद्बुद्धिरियं भ्रान्ता | ५७६      | तस्याः कार्यतया ते हि    | ७०३ |
| तस्मान्निन्नत्वमर्थानां    | ४४८      | तस्या ज्ञानक्षणः को नु   | ९६  |
| तस्माद्भूतविशेषेभ्यो       | ५२०      | तस्यातोऽध्ववसायेन        | ३३५ |
| तस्माद्भ्रान्तिरियं तेषु   | १०४      | तस्यात्मावयवानां च       | ६०४ |
| तस्माद्यत्स्मर्यते तस्यात् | ४४५      | तस्यानवयवत्वाच्च         | ६०० |
| तस्माद्येष्वेव शब्देषु     | ३१६      | तस्यापि बाधकाभावात्      | ७८९ |
| तस्माद्वाक्यान्तरेणायं     | ४५८      | तस्यापि वचने वाचो        | ९११ |

|                              |     |                            |     |
|------------------------------|-----|----------------------------|-----|
| तस्याप्यनुभवे (ऽसिद्धे !)    | ५६५ | ताभिर्जिज्ञासितानर्थान्    | ८४३ |
| तस्याप्यस्तित्वमित्येवं      | १९३ | ताभ्यां यदेव सम्बद्धं      | ३४२ |
| तस्याभावे स चेत्किं हि       | २६५ | तामभावोत्थितामन्यां        | ४६० |
| तस्यामेव व्यवस्थायां         | ४४५ | तामेव वासनां चेतः          | ५१८ |
| तस्या वस्तुनिबद्धायाः        | ६६४ | तायिनः सर्वविज्ञत्वं       | ९०७ |
| तस्याश्चाध्यवसायेन           | ३६८ | ताल्वादिजातयस्तस्मात्      | ७१६ |
| तस्यास्तां समवायश्च          | २७० | ताल्वादिजातयस्तावत्        | ६३१ |
| तस्या हि बाधकं प्रोक्तं      | ९०७ | तावता चैव मिथ्यात्वं       | ७६८ |
| तस्यैत्रं प्रतिभासेऽपि       | ५५० | तावत्कालं स्थिरं चैनं      | ५९५ |
| तस्यैव चात्र लिङ्गत्वं       | ४१८ | तावदेव हि साऽऽशङ्का        | ७७२ |
| तस्यैव प्रतिपत्तिश्चेत्      | ६९४ | ताश्च व्यावृत्तयोऽर्थानां  | ३२८ |
| तस्यैव प्रतिपत्तिः स्यात्    | ”   | तासां हि ब्राह्मरूपत्वं    | ”   |
| तस्यैवान्यस्य वैकस्य         | ७२४ | तिक्तपीतादिरूपेण           | ६७३ |
| तस्योपदेशने शक्तिः           | ९२५ | तिमिरोपहताक्षो हि          | ३६६ |
| तादवस्थं च नित्यत्वं         | ७२९ | तुर्ये तु तद्विचित्तोऽसां  | ३५४ |
| तादवस्थप्रतिक्षेप०           | ७३१ | तुल्यं रूपं यदा ग्राह्यं   | ५५४ |
| तादवस्थे तु रूपस्य           | १९१ | तुल्यः पर्यनुयोगोऽयं       | १०९ |
| तादात्म्येन स्थितिर्वृत्तिः  | ५३७ | तुल्यजाताश्रयत्वे हि       | ७५९ |
| तादात्म्ये हि यथा कायो       | ”   | तुल्यपर्यनुयोगाश्च         | ५१५ |
| तादृक्प्रत्यवमर्शश्च यत्र    | ३३१ | तुल्यप्रत्यवमर्शस्य        | ४६८ |
| नवास्ति                      | ”   | तुल्ययोग्यात्मनस्तस्मात्   | ४८० |
| तादृक्प्रत्यवमर्शश्च विष्यते | ४७  | तुल्यापरक्षणोत्पादात्      | ५५२ |
| तादृगेव यदीक्ष्येत           | ३५८ | ते च प्रत्येकमेकात्म०      | ७०४ |
| तादृग्ज्ञेयत्वमस्तेषां       | ३२१ | तेजः प्रत्यक्षशेषत्वात्    | ६९९ |
| तादृशः प्रतिभासश्च           | ४७  | तेजस्त्वादि च सामान्यं     | ६६८ |
| तादृशः प्रोच्यमानस्तु        | २६७ | ते तु जाल्यादयो नेह        | ३७१ |
| तानाश्रित्येषु विज्ञानं      | ३१७ | तेन च प्रतिषिद्धत्वात्     | ७६९ |
| तानुपाश्रित्य यज्ज्ञाने      | ५३९ | तेन प्रमाणसंबादि०          | ८७७ |
| तान्प्रत्ययमसिद्धश्च         | ९२२ | तेन व्यवस्थितैस्तेषां      | ८८० |
| तापाच्छेदाच्च निकषात्        | ८७८ | तेन श्रोत्रमनोभ्यां स्यात् | ७२५ |
| तापाच्छेदान्निकषाद्वा        |     | तेन सर्वज्ञताकाले          | ८८२ |

|                          |     |                            |     |
|--------------------------|-----|----------------------------|-----|
| तेन सर्वत्र दृष्टत्वात्  | ४३५ | तेषां च ये त्रिजातीयाः     | ३५४ |
| तेन सामयिकः प्रोक्तः     | ७०४ | तेषां चैवंविधे ज्ञाने      | ८६९ |
| तेन स्वतःप्रमाणत्वे      | ७६२ | तेषां तद्गोचरत्वेऽपि       | ४५३ |
| तेनास्काशैकदेशो वा       | ६०५ | तेषां संबृत्तिसत्त्वेन     | २२५ |
| तेनागमानुमानाभ्यां       | ५८९ | तेषामपि तदुद्भूतां         | ५६  |
| तेनाग्निहोत्रं जुहुयात्  | ९१२ | तेषामपि त्रिवक्ष्यायाः     | ४४२ |
| तेनात्र ज्ञायमानत्वं     |     | तेषामव्यापाराद्यं तु       | १२३ |
| प्रामाण्य उपयुज्यते ।    | ८०६ | तेषामात्मवधायैव            | ७६९ |
| तेनात्र ज्ञायमानत्वं     |     | तेषामुत्तरकालं हि          | ७७७ |
| प्रामाण्ये नोपयुज्यते ।  | ७६८ | ते हि नित्यैर्गुणैर्नित्यं | ८३७ |
| तेनात्रैव परोपाधि०       | ६१६ | ते हि यावन्त आकाराः        | ४९५ |
| तेनादर्शनमप्याहुः        | ५७४ | तैः कारितमिदं धर्मात्      | ५०६ |
| तेनादृष्टिविशेषोत्थं     | ८५३ | तंस्तु करणविभक्त्या        | ३७० |
| तेनायमपि शब्दस्य         | ३१९ | तां पुनस्तास्विति ज्ञानं   | २६७ |
| तेनार्थापत्तिलब्धेन      | ८४७ | त्रयपर्यनुयोगस्य           | ४८० |
| तेनाविच्छिन्नरूपेण       | ६१२ | त्रिरूपलिङ्गपूर्वत्वं      | ४२८ |
| तेनासदृशसन्तानो          | ६३९ | त्रिरूपलिङ्गपूर्वत्वात्    | ४२५ |
| तेनासम्बन्धनदृष्टत्वात्  | ६२० | त्रिरूपलिङ्गवचनं           | ४०४ |
| तेनेयं व्यवहारात्स्यात्  | ६३० | त्रिरूपलिङ्गवचसः           | ४३१ |
| तेनैकत्वेन वर्णस्य       | ५९६ | त्रिरूपहेतुनिर्देश०        | ४२१ |
| तेनैकलक्षणो हेतुः        | ४०७ | त्रिसत्यताऽपि देवानां      | ७९२ |
| तेनैकस्मिन्नधिष्ठाने     | ६८७ | त्रैगुण्यस्याविभेदऽपि      | ३०  |
| तेनैवासौ स्वभावेन        | ४९७ | त्रैरूप्यानुपपत्तेश्च      | ४४६ |
| तेनैवैतत्प्रतिक्षेपे     | ६५८ | त्र्याकारं वस्तुनो रूपं    | ३६  |
| तेनोपनेतृसंरम्भ०         | ९९  | त्वदीयो वाऽपि तत्रास्ति    | ४०७ |
| तेनोपलम्भकार्यादि०       | ५३४ | त्वयाऽपि यदि विज्ञानं      | ५७३ |
| तेभ्यः समानकालस्तु       | १९४ |                            |     |
| तेभ्यः स्वरूपं भिन्नं हि | ४८८ | द                          |     |
| तेभ्योऽस्माकमियानेव      | ३७२ | दण्डाङ्गदादिजातीनां        | २४८ |
| ते वाच्याः पुद्गलो नैव   | १२६ | दर्पणाभिमुखं बिम्बं        | ६९६ |
| तेषां च जातयो भिन्नाः    | ६३१ | दश कर्मयथा (पथाः ?)        |     |
|                          |     | प्रोक्ताः                  | ९०६ |



|                            |     |                             |     |
|----------------------------|-----|-----------------------------|-----|
| दशभूमिगतश्चासौ             | ८४२ | दृष्टवैकदानुमानेन           | ४२४ |
| दशहस्तान्तरं व्योम्नो      | ८२६ | देशकालनरावस्थाभेदा-         |     |
| दशहस्तान्तरव्योम्नः        | ८९४ | पेक्षा०                     | ७९२ |
| दाहादीनां तु यो हेतुः      | ४६१ | देशकालनरावस्थाभेदाः         |     |
| दाह्यार्थसन्निधावेव        | १०२ | संव्यवहारतः                 | ७६१ |
| दिक्च सर्वगतैकैव           | ६१० | देशकालप्रयोक्तृणां          | ५९५ |
| दिदृक्षाद्यानुकूल्येन      | ११४ | देशकालस्वभावानां            | ११८ |
| दिवाभोजनवाक्यादेः          | ३२१ | देशकालादिभिन्नानां          | ६२१ |
| दिशः श्रोत्रमिति ह्येतत्   | ६०९ | देशकालादिभिन्नाश्च          | ५९१ |
| दीपस्तु ज्ञापको नैव        | ४१४ | (देशका)लादिभिन्ना हि        | ६६९ |
| दीर्घा प्रासादमालेति       | २१५ | देशनैवम्परैवेयं             | ८९८ |
| दुर्भणत्वानुदात्तत्व०      | ७३९ | देशभेदेन भिन्नत्वं          | ६१५ |
| दुष्टकारणजन्यत्व०          | ७८७ | देशान्तरोपलब्धेस्तु         | २३५ |
| दूरदेशव्यवस्थानात्         | ७६१ | देशोत्सादकुलोत्सादरूपो यः   | ७१४ |
| दूरमध्यसमीपस्थैः           | ६८२ | देशोत्सादकुलोत्सादरूपो वा   | ६२७ |
| दूरासन्नादिभेदेन           | ”   | देहबुद्धीन्द्रियादीनां      | ५२० |
| दूषणानि समंरम्भाः          | ८२३ | दोषाप्रमाद्वयासता           | ७९९ |
| दृग्विषैरिह दृष्टोऽपि      | ८८५ | दोषाभावः प्रमाभावात्        | ७९५ |
| दृश्यते च प्रमाणानां       | ७४७ | दोषाभावस्य चाज्ञानात्       | ७९६ |
| दृश्यते न च सर्वज्ञः       | ९०७ | दोषाभावाप्रमाभाव०           | ७९७ |
| दृश्यत्वाभिमतं कर्म        | २३४ | दोषाभावेऽपि सत्यत्वं        | ६४६ |
| दृश्यत्वाभिमतं नैव         | १७९ | दोषाभावेऽप्यथाज्ञाने        | ७९६ |
| दृश्यत्वेनाभ्युपेतस्य      | ४५  | दोषाभावे प्रमासत्त्वं       | ७९८ |
| दृश्यस्यादृष्टितश्चास्य    | ७२१ | दोषाभावो गुणोभ्यश्चेत्      | ७६३ |
| दृष्टमात्रसुखासक्तैः       | ५२३ | दोषाः सन्ति न सन्तीति       |     |
| दृष्टान्तनिरपेक्षत्वादोषा- |     | पुंवाच्येषु                 | ५८५ |
| भावाच्च                    | ५८९ | दोषाः सन्ति न सन्तीति पौरु- |     |
| दृष्टान्तनिरपेक्षत्वादोषा- |     | षेये तु                     | ७६४ |
| भावो०                      | ६६५ | दोषाः सन्ति न सन्तीति पौरु- |     |
| दृष्टेऽप्यभ्युदयं चित्त०   | ९१९ | षेयेषु                      | ८०० |
| दृष्टौ वा क्वचिदेतस्याः    | २०४ | दोषैश्चाज्ञायमानत्वात्      | ७६४ |

|                             |     |
|-----------------------------|-----|
| द्रव्यत्वादि तु सामान्यं    | २३६ |
| द्रव्यत्वादिनिमित्तानां     |     |
| व्यतिरेकस्य दर्शनात्        | २६९ |
| द्रव्यत्वादिनिमित्तानां     |     |
| व्यतिरेको न युज्यते         | २७० |
| द्रव्यपर्याययोरेवं          | ११८ |
| द्रव्याणां प्रतिषेधेन       | २१० |
| द्रव्यादियोगयोः प्राक्तु    | २८२ |
| द्रव्यादिषु निषिद्धेषु      | २३६ |
| द्रव्ये महति नीलादिः        | २११ |
| द्रव्येषु नियमाद्युक्ता     | १९२ |
| द्रुतमध्यादिभेदाद्धि        | ६७४ |
| द्वयं परस्परणैव             | ५७७ |
| द्वयं प्रतीत्यविज्ञानं      | ५१७ |
| द्वयनैरात्म्यबोधे च         | ९१४ |
| द्वयसंस्कारपक्षेऽपि         | ६९३ |
| द्वयसिद्धस्तु वर्णात्मा     | ५९६ |
| द्वितीयवाक्यनिर्भासा        | ४६७ |
| द्वितीयादस्य कः पश्चात्     | ४७५ |
| द्विविधाः क्षणिका भावाः     | १५६ |
| द्विषन्तोऽपि च वेदस्य       | ५९० |
| द्वीन्द्रियग्राह्यमग्राह्यं | ४१  |
| द्वेषमोहादयो दोषाः          |     |
| कृपाप्रज्ञादि०              | ७९५ |
| द्वेषमोहादयो दोषा यथा       |     |
| मिथ्यात्व०                  | ४३७ |
| द्वेषादसम्मतत्वाद्वा        | ५९० |
| द्वे हि रूपे कथं नाम        | ५५४ |
| द्वैविध्यमनुमानस्य          | ४२२ |
| द्वयादिशब्दा इहेष्टाश्च     | ३१३ |

ध

|                             |     |
|-----------------------------|-----|
| धर्मं प्रति न सिद्धान्तः    | ७४४ |
| धर्मज्ञत्वनिषेधश्चेत्       | ८१७ |
| धर्ममात्रमिदं तेषां         | ६२९ |
| धर्मादिगोचरज्ञान०           | ९१३ |
| धर्माधर्माणवः सर्वे         | ४२  |
| धर्माधर्मोपकार्यं हि        | ६८८ |
| धर्माधर्मोपदेशोऽयं          | ८३९ |
| धर्मार्थकाममोक्षेषु         | ८३४ |
| धर्मा( अर्था ? )बबोधरूपा हि | ८९० |
| धर्मिभेदविकल्पेन            | ७२८ |
| धर्मिसत्त्वाप्रसिद्धेस्तु   | ७३  |
| धर्मी धर्मविशिष्टो हि       | ४३४ |
| धारणाध्ययनव्याख्या०         | ५९० |
| धियोऽसितादिरूपत्वे          | ५७४ |
| धूमसामान्यभागोऽपि           | ६६८ |
| धूमात्मा धवलो दृष्टः        | ४८  |
| ध्यानापन्नश्च सर्वार्थ०     | ८४२ |
| ध्वंसनाम्नः पदार्थस्य       | १३९ |

न

|                            |     |
|----------------------------|-----|
| न खलु प्रत्यभिज्ञानं       | १५७ |
| न खल्वस्मिन्प्रसिद्धेऽपि   | ९१० |
| न गम्यगमकत्वं स्यात्       | ३०६ |
| न च कर्तृत्वभोक्तृत्वे     | ९५  |
| न च कार्त्स्न्यैकदेशाभ्यां | २०३ |
| न च क्रमस्य कार्यत्वं      | ६२९ |
| न च क्रमाद्धिना वर्णाः     | ६२८ |
| न चक्षुराश्रितेनैव         | ३५७ |
| न च जातं पुरस्तेन          | १७५ |
| न च तत्स्पर्शयाऽस्माभिः    | ९१६ |
| न च तद्वचनं तस्य           | ९२४ |

|                                   |     |   |     |
|-----------------------------------|-----|---|-----|
| न च तस्य तद्रूपत्ति-<br>योगपथ०    | १४६ | न चापरं परैरिष्टं                       | ६१  |
| न च तस्य तद्रूपत्तिशब्द-<br>स्या० | ६७७ | न चापि वासनाभेदात्                      | ३०५ |
| न च तस्य विकल्पस्य                | ९२५ | न चापि शक्तिरूपेण<br>तथा धीरवतिष्ठते ।  | ५२१ |
| न च देशविभागेन                    | २११ | निराश्रयत्वाच्छक्तीनां                  | ५२१ |
| न च नाशात्मकाविष्टौ               | ७३० | न चापि शक्तिरूपेण<br>तथा धीरवतिष्ठते ।  | ५४० |
| न च निर्धिषयं ज्ञानं              | ४२४ | स्वरूपेणैव बुद्धीनां                    | ५४० |
| न च पर्यनुयोगोऽत्र                | ६०२ | न चाप्यदृष्टिमात्रेण<br>तदभावः          | ८९३ |
| न च वेदोपवेदाङ्ग०                 | ८२१ | न चाप्यदृष्टिमात्रेण<br>तदसत्ता०        | ८५१ |
| न च व्यक्तिक्रमो वाक्यं           | ७३४ | न चाप्यपोह्यता तस्मात्                  | ३१२ |
| न च व्यञ्जकभेदेन                  | ६७१ | न चाप्यश्वादिशब्देभ्यः                  | ३०१ |
| न च व्यञ्जकसद्भावो                | ६७५ | न चाप्याधारभेदेन                        | ५९९ |
| न च शक्यनिषेधोऽसा०                | ५४३ | न चाप्रमाणं तज्ज्ञानं                   | ४४७ |
| न च सर्वनरज्ञात०                  | ८३३ | न चाप्रसिद्धताहेतोः                     | ३७७ |
| न च सर्वैः क्रमः पुंभिः           | ७१५ | न चाप्रसिद्धसारूप्यं                    | २९७ |
| न च ग्याद्वयत्रहारोऽयं            | ४७२ | न चायं प्रलयं कुर्यात्                  | ७७  |
| न चागमविधिः कश्चित्               | ८३१ | न चार्थावगतेरन्यत्                      | ५२१ |
| न चातीन्द्रियदृक्तेषां            | ६४९ | न चाल्लसत्सृतिः कश्चित्                 | ६२७ |
| न चादर्शनमात्रेण                  | २९८ | न चावस्तुन एते स्युः                    | ४७२ |
| न चादृष्टार्थसम्बन्धः             | ६१७ | न चावस्थान्तरोत्पादे                    | १०६ |
| न चानंशे समुद्भूते                | १३४ | न चासां पूर्वसम्बन्धो                   | ४५७ |
| न चानर्थकता तस्य                  | ६४३ | न चासाधारणं वस्तु<br>गम्यतेऽन्यच्च      | ३०९ |
| न चानवस्थितिप्राप्तिः             | ७७८ | न चासाधारणं वस्तु<br>गम्यतेऽपोहवत्तया   | ३०१ |
| न चानित्या ब्रवीत्येषा            | ६३४ | न चासाधारणं वस्तु<br>बुद्धौ विपरिवर्तते | ३०३ |
| न चानुमानतो ज्ञानं                | ८९८ | न चास्याकृतितः सिद्धा                   | ७०६ |
| न चानुयायि तेष्विष्टं             | २५५ |   |     |
| न चान्यतो विशिष्टास्ते            | १५३ |   |     |
| न चान्यरूपमन्यादृक्               | ३०२ |   |     |
| न चान्यरूपमंक्रान्ता०             | १०७ |   |     |
| न चान्वयविनिर्मुक्ता              | २९७ |   |     |

|                               |     |                               |     |
|-------------------------------|-----|-------------------------------|-----|
| न चेत्तदभ्युपेयत              | ७२५ | न त्वसंवादकस्तादृक्           | ३५५ |
| न चेद्भेदविनिर्मुक्ते         | ३४४ | न त्वेवं निश्चितः शब्दः       | ६९८ |
| न चेद्भक्तृत्वमिष्येत         | ९२५ | न दिदृश्यादयो भिन्नाः         | ११२ |
| न चैकदेशविज्ञानात्            | ८९० | न दृष्टेऽनुपपन्नं च           | ४९० |
| न चैवं तेन नैवेदं             | १५८ | न द्रव्यापोहविषया             | ५०४ |
| न चैवमिह मन्तव्यं             | ५०६ | न नराकृतमित्येत्र             | ६५५ |
| न चोत्पाद्यकथारूप०            | ७३४ | न नाम दूष्यते वाक्यं          | ७९४ |
| न चोदयव्ययाक्रान्ताः          | १२० | न नाम रूपं वस्तूनां यत्तस्या० | ४४९ |
| न चोपलभ्यरूपस्य               | १२१ | न नाम रूपं वस्तूनां विकल्पा   | ३१  |
| नञश्चापि नञा युक्ता०          | ३५३ | न नाम रूपमभ्यस्तं             | ५४४ |
| नञा योगे नञो ह्यर्थो          | ३५३ | न नाशेन विना शोको             | ५०२ |
| न ज्ञानात्मा परात्मेति        | ५६९ | न निमित्तानुरूपा चेत्         | २५१ |
| न तत्प्रत्यक्षतः सिद्धं       | ७३  | ननु कायस्य हेतुत्वं           | ५३५ |
| न तत्स्वभावनिष्पत्त्यै        | ७५१ | ननु कोऽतिशयस्तस्य             | ७७८ |
| न तदात्मा परात्मेति विस्तरणो० | ३६१ | ननु च प्रतिबिम्बेऽपि          | ५८१ |
| न तदात्मा परात्मेति मन्बन्धे  | ३१९ | ननु च प्रत्यभिज्ञानं          | १५७ |
| न तदाऽभिमुखीभूत०              | ३७५ | ननु चानशके द्रव्ये            | १९९ |
| न तद्विषयसंवित्तिः            | २९  | ननु चापोहपक्षेऽपि             | ३६४ |
| न तस्मिन्साधितेऽनार्थः        | १५२ | ननु चार्थक्रियाभासि           | ७८३ |
| न तावत्तत्र देशेऽसौ           | ४३५ | ननु चार्थक्रियाशक्ता          | १५२ |
| न तावत्परमाणूनां              | ५५१ | ननु चार्थस्य संवित्तिः        | ५६३ |
| न तावदर्थवन्तं सः             | ६२१ | ननु चाव्यभिचारित्वं           | ४१६ |
| न तावदानुपूर्वस्य             | ६२९ | ननु चाव्याप्यवृत्तित्वात्     | १९९ |
| न तावदिह तादात्म्यं           | ८९  | ननु चाशुचिभावोऽयं             | २६४ |
| न तु ज्ञानफलाः शब्दाः         | २९१ | ननु चाश्चादिभेदेन             | २९६ |
| न तु नष्टक्रिये तत्र          | २४७ | ननु चैकस्वभावत्वात्           | १९८ |
| न तु नेत्रादिविज्ञानं         | ८८६ | ननु चैतेन विधिना              | ३४९ |
| न तु स्वलक्षणात्मानं          | ३२० | ननु जात्युत्तरमिदं            | ४८  |
| न तेषामनवस्थाने               | २७३ | ननु तद्देशसम्बन्धो            | १०१ |
| न तेषु विद्यते किञ्चित्       | २३९ | ननु तस्य प्रमाणत्वे           | ७८२ |
| न त्वन्यापोहवद्वस्तु          | ३४० | ननु तेन विना किञ्चित्         | ५८५ |

|                                 |     |                                       |     |
|---------------------------------|-----|---------------------------------------|-----|
| ननु द्विरूपमित्येव              | १२२ | नन्विदानीन्तनास्तित्वं                | १६० |
| ननु नादैरभिव्यक्तिः             | ५९८ | नन्वेकस्मिन्नधिष्ठाने                 | ६०६ |
| ननु नामादिकं माऽभूत्            | ३७९ | नन्वेवं तद्गतोऽर्थस्य                 | २८७ |
| ननु नीलादिविज्ञान०              | ४९७ | न परामिमताद्योगात्                    | २२३ |
| ननु नैवं प ( तत्प ? ) रो नित्यः | ९१० | न परार्थानुमानत्वं                    | ४२७ |
| ननु नैव त्रिनाशोऽयं             | १३६ | न पाचकादिबुद्धीनां                    | २४६ |
| ननु पर्यनुयोगोऽयं               | ७३५ | न प्रमाणमिति प्राहुः                  | ४२५ |
| ननु प्रमाणमित्येवं              | ७६७ | नभसो निरुपाख्यत्वात्                  | ७०० |
| ननु बाह्यो न तत्रास्ति          | ७३५ | नभस्तलारविन्दादौ                      | ८८  |
| ननु बीजाङ्कुरादीनां             | १७३ | न भावो नापि चाभावो                    | ३६० |
| ननु मातृविवाहादेः               | ८६० | न भेदो येन तद्वाक्यं                  | ४५८ |
| ननु यस्य द्वयं श्रोत्रं         | ५९७ | न युक्तं नाहमित्येवं                  | ९०६ |
| ननु येनात्मना वस्तु             | ४९६ | न युक्ता कल्पनाऽऽद्यस्य               | ५९  |
| ननु ये लोकतः सिद्धाः            | १९८ | नरः कोऽप्यस्ति सर्वज्ञ इत्याद्यपि     | ९२३ |
| ननु रक्तादिरूपेण                | १८९ | नरः कोऽप्यस्ति सर्वज्ञस्तत्सर्वज्ञत्व | ८४१ |
| ननु व्यक्तौ च जातौ च            | ३४९ | नरसिंहादयो ये हि                      | ४९१ |
| ननु शब्दप्रमाणादि०              | ४३३ | नरसिंहोऽपि नैवैको                     | १२२ |
| ननु सत्येकरूपत्वे               | ४९० | न रात्र्यादिपदार्थश्च                 | ४५८ |
| ननु हस्त्यादिशून्यानां          | १०० | नरान्दृष्ट्वा त्वसर्वज्ञान्           | ८३८ |
| ननूपधानसम्पर्के                 | १८८ | नराविज्ञातरूपार्थे                    | ७४३ |
| ननेति ह्युच्यमानेऽपि            | ३११ | नरेच्छाधीनसङ्केत०                     | ६५४ |
| नन्वनेकात्मकं वस्तु             | ४८६ | नरेच्छामात्रसम्भूत०                   | ७१२ |
| नन्वनेनानुमानेन                 | १६१ | नरेच्छायास्त्वपेक्षायां               | ६५४ |
| नन्वन्यत्र न संज्ञायाः          | ४५२ | नरोपदेशापेक्षत्वात्                   | ७४२ |
| नन्वन्यापोहकृच्छब्दो            | २९० | नर्त्तकीदृष्टयवस्थादौ                 | ३७५ |
| नन्वन्यापोहवाच्यत्वात्          | ३७१ | नर्त्तकीभ्रूलताभङ्गे                  | ८१  |
| नन्वप्रमाणतो वृत्तो             | ७७६ | नर्त्तकीभ्रूलताभङ्गो                  | ८६  |
| नन्वयं पौरुषो धर्मः             | ६६८ | नलर्त्तुपर्णयोश्चासा.                 | ८२७ |
| नन्वसम्बद्धगम्यत्वे             | ४६६ | न वन्ध्यासुतशून्यत्वे                 | ८८  |
| नन्वानुपूर्व्यनित्यत्वात्       | ६२८ | न वर्णाभिन्नशब्दाभ०                   | ७२७ |
| नन्वारेकादिनिर्मुक्ता           | ६५३ | न वर्णव्यतिरिक्तं च                   | ३९५ |

|                               |     |  |     |
|-------------------------------|-----|--|-----|
| न वस्तुनि यदेतद्धि            | १२६ | न हि द्रुतादिमेदेऽपि                     | ५९५ |
| न वाच्यं वाचकं वाऽपि          | ३३७ | न हि नामान्तरक्लृप्तौ                    | ९२७ |
| न या तथेति प्रथमः             | ५४७ | न हि प्रत्यक्षतासिद्धं                   | ४४६ |
| न वा तथेति यद्याद्यः          | ६८  | न हि प्रविष्टमात्राणां                   | ३८६ |
| न विवक्षितविज्ञान०            | ५२० | न हि बालेय इत्येवं                       | ५३९ |
| न विवादास्पदीभूत०             | २६४ | न हि मातृविवाहादां                       | ६६६ |
| न विशेषो न सामान्यं           | ३८५ | न हि शीर्यत इत्युक्तः पुरुषश्च           | ७४२ |
| न व्यवस्थाश्रयत्वेन           | ३९९ | न हि शीर्यत इत्युक्तो वेदे यः            | ६६४ |
| न व्यावृत्तस्ततो धर्मः        | ५१  | न हि सङ्केतभावेऽपि                       | ४३८ |
| न शौद्धोदनिवाक्यानां          | ८२९ | न हि सत्तावशाद्बुद्धिः                   | २५० |
| न स तस्य च शब्दस्य            | २८० | न हि सन्नपि नेक्ष्येत                    | ८६१ |
| न सत्ताविनिवृत्तिश्चेत्       | ३९३ | न हि सप्रतिघत्वादिः                      | ५०९ |
| न सन्देहविपर्यासौ             | २७  | न हि सामस्यरूपेण                         | ५९९ |
| न समारोपविच्छेद०              | ३८८ | न हि सूक्ष्मफला दृष्टा                   | ८८७ |
| न सम्बन्धतिरिक्तश्च           | ४५४ | न हि स्वभावः कार्यं वा                   | ४३० |
| न साधनाभिधानेऽस्ति            | ४२० | न ह्यन्यग्रहणं वस्तु                     | ३३१ |
| न सि ( ध्येत्तस्य चा ) सिद्धौ | ५६५ | न ह्यप्युत्पादकं तस्य                    | ४९८ |
| न स्मरामि मया कोऽपि           | ५७८ | न ह्यप्रतिघतामात्रात्                    | ८३५ |
| न हि क्रमेण युज्येते          | ७२३ | न ह्यर्थस्यान्यथाभावः                    | ७६८ |
| न हि चित्राङ्गदे कश्चित्      | ४५३ | न ह्यलब्धात्मकं वस्तु                    | १६८ |
| न हि तत्कार्यमात्मीयं         | १७६ | न ह्यलम्बनसान्निध्यात्                   | ५४६ |
| न हि तत्क्षणमप्यास्ते         | ७७० | न ह्युपायाद्विना कश्चित्                 | ७८३ |
| न हि तत्पररूपेण               | ६०  | नागौरिति च योऽपोहो                       | ३१३ |
| न हि तत्र परस्यास्ति          | ५६४ | नागौरिति शब्दार्थः                       | ३१४ |
| न हि तद्रूपमन्यस्य            | ५६० | नातीन्द्रिये हि युज्येते                 | ६५३ |
| न हि तावत्स्थितोऽप्येषः       | ६४८ | नातो दीर्घादयः सर्वे                     | ७०१ |
| न हि तेन सहोत्पन्ना           | २६१ | नातो दृष्टार्थसम्बन्धः                   | ”   |
| न हि तेषामवस्थानं             | ७५० | नातोऽसतोऽपि भावत्वं                      | ३३६ |
| न हि तेष्वस्ति सामान्यं       | ३३८ | नातः साध्यं समस्तीति                     | २६  |
| न हि दण्डापरिज्ञाने           | ७९५ | नादेन संस्कृताच्छ्रोत्राद्यदा शब्दः प्र- |     |
| न हि दीपादिसद्भावात्          | २७१ | तीयते । तदुपश्लेषतस्तस्य बोधं            | ५९७ |

|   |     |                                    |     |
|---|-----|------------------------------------|-----|
| नादेन संस्कृताच्छ्रोत्राद्यदा शब्दः प्र-<br>तीयते । तदुपश्लेषतस्तस्य बोधो | ६७३ | नामाभ्यासबलादेव                    | ५४५ |
| नादेनाहितबीजायां  | ७२२ | नामूर्त्तत्वाद्यथा शब्दः           | ६६२ |
| नादृष्ट्वा वेदवाक्यानि  | ८४० | नायं स्वभावः कार्यं वा             | ४१६ |
| नाद्यस्तल्लक्षणस्यैव  | २७३ | नावयव्यात्मता तेषां                | ५३३ |
| नाऽनागतो न वाऽतीतो  | १६७ | नावलम्बेत तां कुर्वन्              | ६५३ |
| नानात्मत्वं च शक्तीनां  | ४९० | नावश्यं श्रोत्रमाकाशं              | ६०५ |
| नानात्वलक्षणे हि स्यात्   | २६६ | नाविकल्पं विकल्पे चेत्             | ३९१ |
| नानार्थद्योतनायैव   | ७०९ | नाविरुद्धविधाने च                  | ८८१ |
| नानार्थद्योतने शक्तिः   | ७११ | नाशानाम्ना पदार्थेन                | १३४ |
| नानुमानं न हीदं हि  | ४५८ | नाशोत्पादसमत्वेऽपि                 | १६८ |
| नानुमानं प्रमाणं चेत्   | ४३१ | नाशोत्पादासमालीढं                  | ६७  |
| नान्यत्कल्पितजातिभ्यो   | २६२ | नाश्रयान्तरवृत्ताद्धि              | २५३ |
| नान्यत्र प्रत्ययाभावात्   | ४३९ | नाश्रितः स कपाले चेत्              | २६८ |
| नान्यथा तद्ग्रहोऽयं स्यात्  | ६९९ | नासतस्तद्विशिष्टं चेत्             | ३८३ |
| नान्यथाऽनुपपन्नत्वं   | ४०६ | नासावेव विकल्पो हि                 | ३७४ |
| नान्यथेति न चाप्येवं  | ७८३ | नासिद्धेर्दृश्यते येन              | १८७ |
| नान्यथोदयवानेष  | २३० | नासौ न पचतीत्युक्ते                | ३५४ |
| नापि गाढं समालिङ्ग्य  | १७६ | नास्वभावात्खनारौ च                 | ७३१ |
| नापि ज्ञानान्तरेणैव   | ८०७ | निकायेन विशिष्टाभिः                | ८०  |
| नापि तत्रेतरस्तस्मात्   | ३०८ | निजस्तस्य स्वभावोऽयं               | १४८ |
| नापि नित्यमनःकाल०   | ५२४ | नित्यं कार्यानुमेया च              | ६०३ |
| नापोह्यत्वमभावानां  | ३०४ | नित्यज्ञानविवर्त्तोऽयं             | १२३ |
| नाभावोऽपोह्यते ह्येवं   | ३३५ | नित्यतायां तु सर्वेषां             | ७१९ |
| नाभिधानविकल्पानां   | २४२ | नित्यत्वं चास्तु वेदस्य            | ९१० |
| नाभिप्रायापरिज्ञानात्   | ७७७ | नित्यत्वं वस्तुरूपं यत्तदसाधयतां   |     |
| नाभिमुख्येन कुरुते  | ३२१ | न यत्                              | ६६३ |
| नाभिमुख्येन तद्दृष्टेः  | ५८१ | नित्यत्वं वस्तुरूपं यत्तदसाधयतामपि | ५८८ |
| नामजात्यादयः सर्वे  | ३६९ | नित्यत्वादनपेक्षत्वात्             | ६८८ |
| नामादियोजना चेयं  | ३६९ | नित्यत्वेनास्य सर्वेऽपि            | २७१ |
| नामापि वाचकं नैव  | ३७८ | नित्यत्वेऽपि सह स्थानं             | १३७ |
|   |     | नित्यत्वे सकलाः स्थूलाः            | १८६ |

|                                  |     |                          |     |
|----------------------------------|-----|--------------------------|-----|
| नित्यत्वेऽस्ते च वाक्यस्य        | ७४२ | निराकारे हि विज्ञाने     | ६७४ |
| नित्यनित्यार्थसम्बद्ध०           | ७२९ | निरालम्बन एवायं          | १०८ |
| नित्यमाप्तप्रणीतं वा             | ७६२ | निरालम्बनता चैवं         | ११० |
| नित्यशब्दमयत्वे च                | ७१  | निरालम्बनमेवेदं          | १५२ |
| नित्यस्य वचसः शक्तिः             | ८४६ | निरुपाख्याच्च सामान्यं   | ३८३ |
| नित्यस्य हेतुता पूर्व            | ५०७ | निर्दोषेण हि कर्त्राऽयं  | ६५५ |
| नित्यस्याजनकत्वं च               | २६२ | निर्द्धारितस्वरूपाणां    | २८७ |
| नित्यहेतुसमुद्भूतं               | ५२४ | निर्निबन्धा हि सामग्री   | १३२ |
| नित्यालम्बनपक्षे तु              | १०९ | निर्बीजा न च सा युक्ता   | २८८ |
| नित्या सती न वाग्युक्ता०         | ७२८ | निर्भासिज्ञानपक्षे तु    | ५६० |
| नित्ये तु मनसि प्राप्ताः         | २०९ | निर्भासिज्ञानपक्षे हि    | ४०२ |
| नित्येऽपि चागमे वेदे             | ८३७ | निर्युक्तिकत्वं वेदार्थे | ९२२ |
| नित्येश्वरादिबुद्धीनां           | ५१७ | निर्विशेषं गृहीतश्चेत्   | ३८२ |
| नित्यैकबुद्धिपूर्वत्व०           | ५२  | निर्हासातिशयां दृष्टौ    | ५३६ |
| निदर्शनेऽपि तत्सिद्धौ            | ४०९ | निवृत्तावपि मानानां      | ६६२ |
| निमित्तानाम्नि सर्वज्ञो          | ९०९ | निवृत्तिरूपताऽप्यस्मिन्  | १३९ |
| निमित्तनिरपेक्षा वा              | २०१ | निश्चयात्मक एवायं        | २४४ |
| नियतश्रुतियोग्यां चेत्           | ६९३ | निश्चयारोपमनसोः          | ७७२ |
| नियताचिन्त्यशाःीनि               | १५५ | निश्चितोक्तानुमानेन      | ८०४ |
| नियतादात्महेतुत्वात्             | १७६ | निःशेषशक्तिशून्यं तु     | १५२ |
| नियताऽनवधौ सर्वैः                | ७०८ | निःशेषसत्त्वशक्तीनां     | ८८८ |
| नियमार्थक्रियाशक्ति०             | ५१५ | निःशेषाणि च कार्याणि     | १४९ |
| नियते ( तो ) यथ ( त्र ) नैवास्ति | ७७७ | निःशेषार्थपरिज्ञान.....  |     |
| नियतौ देशकालौ च                  | ६४  | चेतसा ॥                  | ८६२ |
| नियमार्थक्रियाशक्तिः             | ५१५ | निशेषार्थपरिज्ञान.....   |     |
| निरंशैकस्वभावत्वात्              | २०८ | ल्यादिना पुरा ॥          | ९२३ |
| निरन्तरमिदं वस्तु                | २१८ | निषेधमात्ररूपश्च         | २९३ |
| निराकरणवच्छक्या                  | ९०७ | निषेधायपरस्तस्य          | ३५३ |
| निराकारादिचिन्ता तु              | ९३५ | निष्कृष्टगोत्ववाचित्वं   | ६७१ |
| निराकारा धियः सर्वाः             | ६९४ | निष्पन्नत्वमपोहस्य       | ३५२ |





|  |     |   |     |
|--|-----|---|-----|
| पदार्थशब्दः कं हेतु                        | २४५ | पर्यायादविरोधश्चेत्                                 | ६१६ |
| पदार्था यैश्च यावन्तः                      | ८१८ | पर्यायेण च यः कश्चित्                               | ७०० |
| परतो वेदतत्त्वज्ञाः                        | ६५१ | पर्यायेण यथा चैको                                   | ६१६ |
| परदुःखानुमाने च                            | ३९६ | पर्युदासात्मकं तच्चेत्                              | ७९९ |
| परधर्मेऽपि चाङ्गत्वं उक्तमश्वग-<br>जादिवत् | ६३४ | पर्युदासात्मकाभ्यां चेत्                            | ६६३ |
| परधर्मेऽपि चा ( ना ? ) ङ्गत्वं             | ७१८ | पश्चिमाग्रिमदेशाभ्यां                               | २३३ |
| भवेदश्वगजादिवत्                            | ५३५ | पाचकादिमतिर्न स्यात्                                | २४७ |
| परपक्षे च तज्ज्ञानं                        | ८९५ | पाचकादिषु च ज्ञानं                                  | २४६ |
| परबोधोत्तमनियतं                            | ५५९ | पादपार्थविषयज्ञानं                                  | ४४३ |
| परमाणोरयोगाच्च                             | ४८५ | पारम्पर्यापि तं सन्तं                               | ६९५ |
| परव्यपाश्रयेणापि                           | २१७ | पारम्पर्येण साक्षाद्वा कार्यकार-<br>णतां गतम् ।     | ५१९ |
| परस्परविभिन्ना हि                          | ५५५ | पारम्पर्येण साक्षाद्वा क्वचित्कि-<br>ञ्चिद्धि       | ५७२ |
| परस्परविरुद्धात्म०                         | ४२९ | पारार्थ्यं चक्षुरादीनां                             | ५१७ |
| परस्परविरुद्धौ च                           | ४८९ | पार्थिवद्रव्यसत्त्वादि०                             | ५९४ |
| परस्परस्वभावत्वे                           | ५५४ | पार्थिवाविषयत्वे हि                                 | ५६२ |
| परस्परतामतायां तु                          | ८०२ | पार्थ्वद्वितीयसंस्थाश्च                             | १०३ |
| परस्परविनिर्भागात्                         | ४८९ | पावकान्यभिचारित्वं                                  | ८८५ |
| परस्परस्वभावत्वे                           | २२३ | पिकाङ्गनाथपोहेन                                     | ३४० |
| परापराभिधानादि०                            | ७५८ | पितृशब्दश्रुतेर्याऽपि                               | ४१४ |
| परायत्तेऽपि चैतस्मिन्                      | ४२७ | पिपासाकुलचित्तस्य                                   | ८९८ |
| पारार्थमनुमानं तु                          | ४०० | पीडाहेतुमदृष्टं च                                   | ७७  |
| परिच्छेदफलत्वेन                            | ५६२ | पीतशङ्कादिबुद्धीनां                                 | ३९४ |
| परिच्छेदः स कस्येति                        | ६३१ | पीनो दिवा न भुङ्क्ते चेत्यस्मिन्नर्थे               | ४६४ |
| परेणोक्तान्त्रवीमीति.....ध्रुवम् ।         | ७१५ | पीनो दिवा न भुङ्क्ते चेत्येवमादि०                   | ४५७ |
| परेणोक्तान्त्रवीमीति.....भवेत्             | ७१६ | पुत्रान्यादापि विज्ञानं                             | ६६५ |
| परेणोक्तास्तु नोच्यन्ते                    | ७४० | पुंसां देहप्रदेशेषु विज्ञानोत्पत्ति-<br>रिष्यताम् । | ६८७ |
| परैरेव न चेष्टं चेत्                       | ४८५ | पुंसां देहप्रदेशेषु विज्ञानोत्पत्ति-<br>रिष्यते ।   | ६०७ |
| परोक्षविषयत्वेऽपि                          | ३६४ |   |     |
| परोक्षविषया यावत्                          |     |   |     |
| परोपगतमेदादि०                              |     |   |     |

|                            |     |                               |     |
|----------------------------|-----|-------------------------------|-----|
| पुंसामध्यवसायश्च           | ६९८ | प्रकृत्या जडरूपत्वात्         | ५६४ |
| पुद्गलादिपरीक्षासु         | १४८ | प्रकृत्या दीपको दीपः          | ४३७ |
| पुनः पुनर्विकल्पेऽपि       | ३८५ | प्रकृत्या भास्वरे चित्ते      | ९१३ |
| पुनर्जलादिसापेक्षात्       | १९१ | प्रकृत्येव पदार्थानां         | ६७० |
| पुमानेवंविधश्चायं          | ९६  | प्रकृत्यैवांशुहेतुत्वं        | ७९  |
| पुरस्तादनुमानेन            | ९३४ | प्रज्ञाकृपादियुक्तानां        | ६५५ |
| पुरःस्थितेऽपि पुंसि स्यात् | ९१८ | प्रज्ञादीनां च धर्मित्वं      | ९०८ |
| पुराणं मानवो धर्मः         | ९२२ | प्रतिज्ञादिश्चोऽप्यन्येः      | ४१८ |
| पुरुषाधीनता चास्य          | ६२८ | प्रतिज्ञानभिधाने च            | ४२१ |
| पूर्वं मंत्रिहिताकार०      | १५८ | प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वात्       | ४४७ |
| पूर्वकेभ्यः स्त्रहेतुभ्यो  | १८१ | प्रतिपादितरूपस्य              | ८६९ |
| पूर्वक्षणाविनाशे च         | १६८ | प्रतिबिम्बं तु शब्देन         | ३४५ |
| पूर्वदशावियुक्तस्य         | ७०० | प्रतिबिम्बं हि शब्दार्थः      | ३६२ |
| पूर्वप्रमितमात्रे हि       | १५९ | प्रतिबिम्बकविज्ञानं           | ६९६ |
| पूर्ववर्णविदुद्भूत०        | ७१९ | प्रतिबिम्बात्मकोऽपोहः         | ३२३ |
| पूर्वापरादिबुद्धिभ्यो      | २०६ | प्रतिबिम्बोदयद्वारा           | ११४ |
| पूर्वा वेदस्य या कोटिः     | ५८८ | प्रतिबिम्बोदयस्त्वत्र         | ६९७ |
| पूर्वे क्त्वाधकायोगे       | ९१२ | प्रतिभाऽपि च शब्दार्थो        | २८८ |
| पूर्वोक्तेन प्रबन्धेन      | २९९ | प्रतिभावं च यथेकः             | ७०  |
| पृथक्त्वमुभयात्मत्वं       | ७४८ | प्रतिभावमपोहोऽयं              | ३१५ |
| पृथिव्याद्यात्मकास्तावत्   | १८६ | प्रतिभासश्च शब्दार्थः         | ३३५ |
| पौरुषेयत्वसिद्धेश्च        | ८०८ | प्रतिभासान्तराङ्गेदात्        | ३१७ |
| पौरुषेया इमे शब्दाः        | ६६७ | प्रतिव्यक्ति तु भेदेऽस्य      | ७०  |
| पौर्वापर्यविवेकेन          | १९५ | प्रतिसङ्ख्याननिरोधादि०        | ५१२ |
| प्रकाशकत्वं बाह्योऽर्थे    | ५६३ | प्रतिसङ्ख्याननिवृत्तौ च       | ५४६ |
| प्रकाशकानपेक्षं च          | ८३  | प्रतिसङ्ख्याऽप्रतिसङ्ख्य०     | ६३८ |
| प्रकाशतमसो राशेः           | ४८० | प्रतिसन्धानकारी च             | १७० |
| प्रकृतार्थाश्रया साऽपि     | ४२० | प्रमाभावाच्च वस्तुनां         | ४७१ |
| प्रकृतीशादिजन्यत्वं        | ३३६ | प्रत्यक्षं कल्पनापोढं वेद्यते | ३७४ |
| प्रकृतीशोभयात्मादि०        | १   | प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्त० | ३६६ |
| प्रकृतीश्वरयोरेवं          | ५८  | प्रत्यक्षं न तदिष्टं चेत्     | २०४ |

|                              |     |                                  |     |
|------------------------------|-----|----------------------------------|-----|
| प्रत्यक्षं व्यक्तभासित्वात्  | ८९६ | प्रदीपादिप्रभावाच्च              | २६४ |
| प्रत्यक्षतः प्रसिद्धास्तु    | २३७ | प्रधानकारणत्वस्य                 | ५८७ |
| प्रत्यक्षत्वे स्थिते चास्यां | ४६३ | प्रधानपरिणामेन                   | ७५  |
| प्रत्यक्षदृष्टनीरादिः        | ८९९ | प्रधानपुरुषार्थज्ञः सर्वधर्मज्ञ० | ८४७ |
| प्रत्यक्षदृष्टमम्बन्धं       | ४२२ | प्रधानपुरुषार्थज्ञसर्वार्थज्ञ०   | ८६३ |
| प्रत्यक्षदृष्टः सम्बन्धो     | ४२४ | प्रधानहेत्वभावेऽपि               | ३९  |
| प्रत्यक्षद्रव्यवर्तिन्यो     | ४६८ | प्रधानेनोपनीतं च                 | १११ |
| प्रत्यक्षपक्षनिक्षिप्तं      | ५८९ | प्रध्वंसस्य तु नैरात्म्यात्      | १३८ |
| प्रत्यक्षप्रत्यभिज्ञा तु     | ६६६ | प्रध्वंसो भवतीत्येव              | १३९ |
| प्रत्यक्षमनुमानं च           | ३६६ | प्रबन्धवृत्त्या गन्धादेः         | १८० |
| प्रत्यक्षमनुमानं वा          | ८४५ | प्रभङ्गनविशेषश्च                 | ४१७ |
| प्रत्यक्षस्तु स एवेति        | ७०० | प्रभास्वरमिदं चित्तं             | ८९५ |
| प्रत्यक्षादंतरनुत्पत्तिः     | ४७१ | प्रभूतं बर्त्तिदंशे हि           | ७३२ |
| प्रत्यक्षादौ निषिद्धेऽपि     | ८३८ | प्रमाणं ग्रहणात्पूर्वं           | ७६७ |
| प्रत्यक्षाद्यवतारश्च         | ४७७ | प्रमाणं तस्य वक्तव्यं            | ४५८ |
| प्रत्यक्षानन्तरोद्भूत०       | ३८८ | प्रमाणं विस्तरेणोक्तं            | ९०१ |
| प्रत्यक्षानुपलम्भाभ्यां      | ६३  | प्रमाणं हि त्रमाणेन              | ७५९ |
| प्रत्यक्षीकृतनैरात्म्यं      | ८६९ | प्रमाणगोचरा येषां                | ८७७ |
| प्रत्यक्षेण च बाधयां         | १६१ | प्रमाणतः प्रवृत्तस्तु            | ७७६ |
| प्रत्यक्षेणानुमानेन          | ७३६ | प्रमाणद्वयसंवादि०                | ९२७ |
| प्रत्यक्षेणानुबुद्धे च       | ४४६ | प्रमाणपञ्चकं यत्र                | ४७० |
| प्रत्यक्षेऽपि यथा देशे       | ”   | प्रमाणषट्कविज्ञातो               | ४५६ |
| प्रत्ययान्तरसद्भावे          | ४७४ | प्रमाणानां निवृत्त्याऽपि         | ६५८ |
| ....प्रत्ययमषाञ्च            | ६७० | प्रमाणानां प्रमाणत्वं            | ७६७ |
| प्रत्युच्चारणनिवृत्तिः       | ६२७ | प्रमाणानां स्वरूपं चेत्          | ७४८ |
| प्रत्युच्चारणमेतं च          | ७०५ | प्रमाणान्तरमासक्तं               | ४५० |
| प्रत्येकं यश्च सम्बन्धो      | ७०५ | प्रमाणान्तरमेवेयं                | ४८२ |
| प्रत्येकं वाऽपि सम्बन्धो     | ६२२ | प्रमाणान्तरमेषाऽपि               | ”   |
| प्रत्येकाभिहिता दोषाः        | ६०२ | प्रमाणाभावनिर्णीत०               | ४६० |
| प्रथमेनैव शब्देन             | ३४४ | प्रमाणे च स्थिते वेदे            | ६४४ |
| प्रथमेभ्यश्च तन्तुभ्यः       | १९४ | प्रमेयज्ञेयशब्दादेः              | ३५८ |

|                                    |     |                                 |     |
|------------------------------------|-----|---------------------------------|-----|
| प्रमेयज्ञेयशब्दादौ                 | ३५६ | प्रायः सम्प्रत्ययो दृष्टो       | ४३९ |
| प्रमेयत्वादिहेतुभ्यः               | ५७६ | प्रासादश्चेप्यते योगो           | २१६ |
| प्रमेयवस्त्वभावेन                  | ४४७ |                                 |     |
| प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं कृतका०       | ६३८ | फ                               |     |
| प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं यदा          | ६४० | फलाक्षेपश्च कारित्रं            | ५०६ |
| प्रयत्नानन्तरज्ञानकार्या०          | ७३० | ष                               |     |
| प्रलये लुप्तविज्ञान०               | ५३  | बलासादिप्रभावेण                 | ५४८ |
| प्रसङ्गसाधनत्वेन                   | ५५८ | बलिभुग्धूमहेतूत्थ०              | ७७४ |
| प्रसज्यप्रतिषेधश्च                 | ३१८ | बहिर्देशविशिष्टेऽर्थे           | ४६० |
| प्रसादोद्वेगवरणा०                  | ३६  | बहुदेशस्थितिस्तेन               | २०० |
| प्रसिद्धायां हि सतायां             | ९१७ | बहुभिः श्रवणैरेष                | ५९४ |
| प्रसुप्तिकाद्यवस्थासु              | ५४२ | बहुव्यक्त्याश्रिता या च         | ३५० |
| प्राक् च जाता घटादीनां             | ७१६ | बह्वल्पविषयत्वेन                | ३२७ |
| प्राक् स चेत्पक्षधर्मत्वात्        | ४३४ | बाधकः प्रत्ययश्चायं             | ७८९ |
| प्रागगौरिति विज्ञानं               | २९१ | बाधकप्रत्ययस्तावत्              | ७५९ |
| प्रागवस्थमपि ज्ञानं                | ५३८ | बाधकप्रत्ययाभावात्              | ७९७ |
| प्रागसक्तः समर्थश्च                | ६४८ | बाधकानभिधानाच्च                 | ५३९ |
| प्रागात्ताभिर्वियोगस्तु            | ८०  | बाधकान्तरमुत्पन्नं              | ७६० |
| प्रागासीद्यद्यसावेवं               | २६  | बाधकारणदुष्टत्वज्ञानाभावा०      | ७८८ |
| प्रागुक्ते भावमात्रे च             | ४२१ | बाधकारणदुष्टत्वज्ञानेऽप्युक्ता० | ८०७ |
| (प्रागगोतं हि सादृश्यं)            | ४४६ | बाधादृष्टेर्न चेत्सर्वं०        | ९१८ |
| प्राज्ञोऽपि हि नरः सूक्ष्मान्      | ८२५ | बाधिर्यादिव्यवस्थानं            | ६०७ |
| प्राणादिभिर्वियुक्तश्च             | ८२  | बाधिर्याद्यव्यवस्थानं           | ६८७ |
| प्राणादीनां च सम्बन्धो             | ८८  | बाध्यतां काममेतत्तु             | ५२५ |
| प्राधान्यं किमिदं नाम              | २४९ | बाध्यते च श्रुतिः स्पष्टं       | ७४२ |
| प्राप्तावस्थाविशेषा हि ये जाता०    | १९४ | बाध्यबाधकभावस्तुं               | १५६ |
| प्राप्तावस्थाविशेषे हि नैरन्तर्येण | २२१ | बाह्यरूपाधिभोक्षेण              | २८८ |
| प्राप्तिग्रहणपक्षे तु              | ६८४ | बाह्यार्थप्रापणं यद्वा          | ५७५ |
| प्रामाण्यनिश्चयो यस्मात्           | ७७२ | बाह्यार्थाध्यवसायेन             | ३२० |
| प्रामाण्ये परतः प्राप्ता           | ७९८ | बीजोदकपृथिव्यादि                | २१८ |
| प्रामाण्ये परतः प्राप्ते           | ७९७ | बुद्धिचित्तादिशब्दानां          | ८७  |
|                                    |     | बुद्धितीव्रत्वमन्दत्वे          | ६१७ |

|                            |     |                                  |     |
|----------------------------|-----|----------------------------------|-----|
| बुद्धिमत्पूर्वकत्वं च      | ५१  | भावकोऽनुपलम्भो हि                | ९०७ |
| बुद्धिमत्त्वात्प्रधानस्य   | ११५ | भावध्वंसात्मनश्चैवं              | १३९ |
| बुद्धिमद्वेतुमात्रे हि     | ५०  | भावनाख्यस्तु संस्कारः            | २२९ |
| बुद्धिरध्यवसायो हि         | ११५ | भावनोत्कर्षनिष्ठैक०              | ८९७ |
| बुद्धिस्थोऽपि न चेतस्यां   | ४५४ | भावपक्षप्रसिद्धयर्थमुच्यते यच्च  | ६६२ |
| बुद्धीनामपि चैतन्य०        | ९८  | भावपक्षप्रसिद्धयर्थमुच्यते यत्तु | ५८७ |
| बुद्धीन्द्रियादिसङ्घात०    | ८१  | भावसामान्यबुद्धीनां              | ३९४ |
| बुद्धेरपरतः सिद्धिः        | ४७९ | भावस्य हि तदात्मत्वं             | ४१० |
| बुद्धेर्यथा च जन्मैव       | १७९ | भावाच्चाव्यतिरिक्तत्वात्         | ६८० |
| बुद्धौ ये वा विवर्तन्ते    | ३३३ | भावादननुमानेऽपि                  | ४२५ |
| बुद्धयन्तरा( द्वयवच्छेदो ) | २९४ | भावान्तरात्मकोऽभावो              | २९२ |
| बुद्धयपेक्षा च सङ्ख्याया   | २१४ | भावाभावस्वरूपं वा                | ८१८ |
| बुद्धयाकारश्च बुद्धिस्थो   | २८३ | भावाभावात्मको नाशः               | १३५ |
| बुद्धयाकारोऽपि शब्दार्थः   | २८८ | भावाभावाविमौ सिद्धौ              | १८१ |
| बोद्धा सामान्यरूपरय        | ८४४ | भावे सति हि दृश्वन्ते            | १७७ |
| बोधरूपतयोत्पत्तेः          | ५६० | भावो भावान्तरातुल्यः             | ४८७ |
| बोधानुगतिमात्रेण           | ५१८ | भासमानः किमात्माऽयं              | ५५१ |
| बोधिसत्त्वदशायां हि        | ८९३ | भासमानोऽपि चेदेष                 | २४४ |
| ब्रह्मादयो न विद्यानां     | ६४३ | भिन्नदेहप्रवृत्तं च              | ५२२ |
| ब्रह्मादीनां च वेदेन       | ९१५ | भिन्नदेहश्रितत्वेऽपि             | ५४३ |
| भ                          |     | भिन्नसामान्यवचनाः                | २९५ |
| भवद्विरपि वक्तव्ये         | १८१ | भिन्नाक्षग्रहणादिभ्यो            | ४४० |
| भवद्विः शब्दभेदोऽपि        | ३०६ | भिन्नाभानां मतीनां चेत           | ६८३ |
| भवन्मते हि नाकारो          | १०१ | भिन्नेष्वन्वयिनोऽसत्त्वे         | २४६ |
| भवानेव तदा सिद्धः          | ८५२ | भुक्तचिन्तितमुष्टिस्थ०           | ८३४ |
| भवेयुर्यदि सिद्धयन्ति      | ९२० | भूतं भवद्भविष्यच्च               | ८४४ |
| भाक्तं तदभिधानं चेत        | १९९ | भूतादिबोधने शक्ता                | ८६३ |
| भागानां परमाणुत्वं         | ५५८ | भूतार्थद्योतने शक्तिः            | ४३७ |
| भारतेऽपि भवेदेवं           | ६४३ | भूतार्थभावनोद्भूतं कल्पना०       | ३९८ |
| भावतः क्षणिकत्वात्तु       | ६७१ | भूतार्थभावनोद्भूतमानसेनैव        | ८६४ |
| भावतस्तु न पर्यायाः        | ३२४ | भूत्वा यद्विगतं रूपं             | ५१७ |

|                                   |     |                          |     |
|-----------------------------------|-----|--------------------------|-----|
| भूयोऽवयवसामान्य०                  | ४५१ | मन्ये तेनैव दत्तयं       | ९२२ |
| भेदः प्रत्युपधानं च               | १०४ | ममाप्रमाणमित्येवं वेदो०  | ५९० |
| भेदजात्यादिरूपेण                  | २८७ | ममाप्रमाणमित्येवं शब्दो० | ६६५ |
| भेदज्ञाने मतीच्छा हि              | २५१ | मयेति प्रतिमन्धानं       | ८५  |
| भेदबुद्धिस्तु यत्राशे द्रुतमन्दा० | ६६८ | मरणक्षणविज्ञानं          | ५३५ |
| भेदबुद्धिस्तु यत्राशे स्यात्केन०  | ५९१ | महद्दीर्घादिभेदेन        | २५४ |
| भेदाभेदविकल्पस्य प्रत्येकं        | १४७ | महाभूतादिकं व्यक्तं      | ४३  |
| भेदाभेदविकल्पस्य वस्त्वधिष्ठान०   | १२६ | मानं कथमभावश्चेत्        | ४०३ |
| भेदाभेदविनिर्मुक्तं               | ६८० | मानसं तदपीत्येके         | ३९२ |
| भेदाभेदादयः सर्वे                 | ३६१ | मानसानां गुणानां तु      | ८९४ |
| भेदेऽपि जनकः कश्चित्              | ४९९ | मानसेनैव यद्वेद्यं       | ३९६ |
| भेदे मन्वन्धदोषस्तु               | ७०६ | मानसेन्द्रियविज्ञान०     | ३५५ |
| भेदोऽप्यत्रास्ति चेदस्तु          | ४९९ | मानस्यो भ्रान्तयः सर्वाः | ३९३ |
| भेदो वैशिष्ट्यमुक्तं हि           | ३८१ | माने स्थितेऽपि वेदेऽतः   | ६५२ |
| भोजने सति पीनत्वं                 | ४६५ | माऽभूत्प्रमाणतः सिद्धिः  | ५५५ |
| भ्रान्तं च प्रत्यभिज्ञानं         | १५७ | माऽभूद्वा साधनं तत्र     | ८६३ |
| भ्रान्तस्यान्यविवक्षायां          | ४४१ | मायाकारो यथा कश्चित्     | ९२५ |
| भ्रान्ताभ्रान्तप्रयुक्तानां       | ”   | मार्गे सात्त्विकमतो याते | ९८५ |
| भ्रान्तिस्तदभिमानश्च              | ३७५ | मा वा प्रमाणसत्ताऽभूत्   | ६५  |
| भ्रान्तिहेतोरसद्भावात्            | ७८१ | मा वाऽभूद्दुपदेशोऽस्य    | ८५७ |
|                                   |     | मा वाऽभूद्दृष्टमित्यादि० | ८८८ |
| <b>म</b>                          |     | मिथ्याज्ञानं समानं च     | ४२८ |
| मण्डूकवसयाऽक्ताक्षा               | ५९८ | मिथ्यानुरागसञ्जात०       | ६६६ |
| मतिः सामयिकी वेदे                 | ६४२ | मिथ्याबुद्धिर्न सर्वैव   | २९२ |
| मदीयेनात्मना युक्तं               | ८२  | मिथ्याबुद्धिश्च सर्वैव   | २१९ |
| मधुरं तिक्तरूपेण                  | ५९८ | मिथ्याऽवभासिनो ह्येते    | ७०१ |
| (मनस्कारे तु) त्रिगुणे            | ५३६ | मिथ्याविकल्पतश्चास्मात्  | ८५  |
| मनोगुणतयाऽप्येषां                 | ८९० | मिश्रीभूतात्परात्मानो    | २६३ |
| मनोऽपि प्राप्यकारीति              | ६८४ | मुख्यतोऽर्थे न गृह्णाति  | ५७० |
| मनोयोगात्मना पूर्वं               | २३१ | मुद्गामण्डलमन्त्रादेः    | ८९८ |
| मन्त्रौषधादिशक्त्या च             | ६८८ | मूर्च्छाखेदप्रलापादि०    | ७५१ |
| मन्दप्रकाशिते मन्दा               | ६१७ |                          |     |

|                                      |     |                                   |     |
|--------------------------------------|-----|-----------------------------------|-----|
| मूर्त्तस्य प्रतिबिम्बस्य             | ४१८ | यत एव न वेदादि०                   | ८६५ |
| मूलप्रभेदरूपायाः                     | ८५४ | यतः प्रत्यय इत्येव                | ६१८ |
| मृत्पिण्डदण्डचक्रादि                 | ७५७ | यतः सर्वात्मना ताभ्यां            | ३४५ |
| मृद्धिकारादयो भेदा                   | ३८  | यतस्तु मूर्खशूद्रेभ्यः            | ८४० |
| मृषात्वे त्वेकबोधस्य                 | ८४४ | यतः स्थाणुनरौ दृष्टौ              | ८६० |
| मेयबोधार्थादिके शक्तिः               | ७४६ | यतः स्वलक्षणं जातिः               | २७६ |
| मोक्षमासादयन्दष्टौ                   | १७१ | यतो दुरवधाराऽस्य                  | ७२३ |
| मोक्षो नैव हि बद्धस्य                | ”   | यतो बाधात्मकत्वेन                 | ८०० |
| मोहमानादिभिर्दोषैः                   | ६४९ | यतोऽभ्युदयनिष्पत्तिः              | ९०४ |
| मौलिके चेतप्रमाणत्वे                 | ७५७ | यतोऽयं प्रत्ययस्तावत्             | ६४४ |
|                                      |     | यत्तत्र जडचेतोभिः                 | ३५६ |
| य                                    |     | यत्तादात्म्यतदुत्पत्त्या          | ४२९ |
| यं करोति नवं सोऽपि                   | ६२३ | यत्तु ज्ञानं त्वयाऽपीष्टं         | ७७० |
| यं चात्मानमभिप्रेत्य                 | ४९९ | यत्तु बाह्येन्द्रियत्वादि         | ६८४ |
| यः कश्चिदुपदेशो हि                   | ८३९ | यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमा- |     |
| यः क्षणः कुशलादीनां                  | १६६ | तृभिः । अभियुक्ततरै०              | ४२६ |
| यः क्षणो जायते तत्र                  | ५१४ | यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमा- |     |
| यः प्रतीस्यसमुत्पादं                 | १   | तृभिः । नान्यथा साध्यते           | ४३० |
| यः फलस्य प्रसूतौ च                   | १६७ | यत्पूर्वापरयोः कोटयोः             | ५८७ |
| य आनन्तर्यनियमः                      | १७७ | यत्र त्वेषामभीष्टेयं              | ४४३ |
| यच्चात्मन्येव विज्ञानं               | ९१३ | यत्र धूमोऽस्ति तत्राग्नेः         | ४३५ |
| यच्चात्यन्तपरोक्षेऽपि                | ९२७ | यत्रापि स्यात्परिच्छेदः           | ७६५ |
| यच्चेदमिष्यते रूपं                   | ५१० | यत्राप्यतिशयो दृष्टः              | ८८६ |
| यज्जातीयैः प्रमाणैश्च यज्जातीयार्थ-  |     | यत्संवेदनमेव स्यात्               | ५६७ |
| दर्शनम् । दृष्टं सम्प्रति लोकस्य     |     | यत्सन्देहविपर्यास०                | ७७४ |
| तथा कालान्तरेऽपि नः ॥                | ८८७ | यत्सर्वं नाम लोकेऽस्मिन्          | ८४२ |
| यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थ- |     | यत्सिद्धप्रतिबन्धेन               | ८७९ |
| दर्शनम् । दृष्टं सम्प्रति लोकस्य     |     | यत्स्वारम्भकावयव०                 | ४१  |
| तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ॥              | ८२५ | यथाकथञ्चिदिष्टा चेत्              | ६३७ |
| यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थ- |     | यथाकथञ्चिद्वृत्तिश्चेत्           | ७९  |
| दर्शनम् । भवेदिदानीं लोकस्य          |     | यथा कल्पावर्णस्य                  | ४९३ |
| तथा कालान्तरेऽप्यभूत्                | ८८८ |                                   |     |



|                         |     |                              |     |
|-------------------------|-----|------------------------------|-----|
| यथा घटादीर्दीपादिः      | ६०२ | यथा शास्त्रान्तरज्ञानं       | ८९० |
| यथा च चक्षुषा सर्वान्   | ८२० | यथा संयोगभावे तु             | २७१ |
| यथा च व्यञ्जकः शब्दे    | ७०१ | यथासङ्केतमेवातः शब्दाः       | २४९ |
| यथा चाज्ञातमूलस्य       | ८१० | यथासङ्केतमेवातोऽसङ्कीर्णा०   | ३२७ |
| यथा चाविदितैरेव         | ७६८ | यथा सप्रतिघं रूपं            | ३२६ |
| यथा तत्र भवन्नेव        | ६०७ | यथाऽसौ वेदमूलः स्यात्        | ८४० |
| यथा त्वयं विशेषेऽपि     | ४१९ | यथा स्वविषये शक्तिः          | ८८९ |
| यथा त्वाभासमात्रेण      | ३८६ | यथा हि नियता शक्तिः          | १७२ |
| यथा त्वेकेन्द्रियाधीन   | ७६६ | यथा हि भवतां ज्ञानं          | ५७२ |
| यथाऽऽद्ये च तथाऽन्यत्र  | ७५८ | यथा हि त्रिषमद्यादेः         | ७७१ |
| यथा धात्र्यभयादीनां     | २३९ | यथाऽहेः कुण्डलावस्था         | ९५  |
| यथा धूमादिलिङ्गेभ्यः    | ७७३ | यथेन्द्रियस्य साक्षाच्च      | ४२७ |
| यथा नकुलदन्ताप्र०       | ८२४ | यथैव कण्टकादीनां             | ६२  |
| यथा न भ्रमणादीनां       | ७१७ | यथैव प्रथमं ज्ञानं           | ७५७ |
| यथा नीलधियः स्वात्मा    | ५६७ | यथैव भ्रमणादीनां             | ६३२ |
| यथा नीलादिरूपाणि        | २२३ | यथैवावस्थितो ह्यर्कः         | ६९६ |
| यथा पात्रादिसंस्थस्य    | २०५ | यथैवाविद्यमानस्य             | ३२३ |
| यथा प्रकाशको दीपो       | २६४ | यथैवास्य परंरुक्त इत्येषा०   | ७१५ |
| यथा बाह्यजलादीनां       | ५७५ | यथैवास्य परंरुक्तस्त .....व० | ६२९ |
| यथाऽभिहितधर्माणः        | ८९२ | यथैवेष्टादिकानर्थान्         | ९२३ |
| यथा महत्यां खातायां     | ६१६ | यथैत्रोत्पद्यमानोऽयं         | ६११ |
| यथा महानसे चेह          | ३२९ | यथोक्तदोषदुष्टानि            | ५७  |
| यथा यथा च मौर्ह्यादि०   | ९१९ | यथोक्तधर्मणामेषां            | ८९१ |
| यथार्थज्ञानहेतुत्वं     | ६५८ | यथोदितान्तरादेव              | ८७९ |
| यथार्थबोधहेतुत्वात्     | ६५७ | यदर्थमपरः शब्दः              | ३४१ |
| यथा लोके त्रिपुत्रः सन् | ४०५ | यदा च योगिनोऽन्येषां         | ३९६ |
| यथाऽवस्थितविज्ञेय०      | ७५० | यदा च संस्कृतिर्नैवं         | ६८९ |
| यथा वा दर्पणः स्वच्छो   | ९९  | यदा चाशब्दवाच्यत्वं          | ३०३ |
| यथा वृद्धयादयः शब्दाः   | ७३४ | यदा चोपदिशेदेकं              | ८४३ |
| यथा वेगेन धावन्तो       | ५९८ | यदा तु शबलं वस्तु            | ४९४ |
| यथा शस्त्रादिभिश्छेदात् | ५९५ | यदाऽनाकारधीवेद्यं            | १८१ |

|                          |     |                            |     |
|--------------------------|-----|----------------------------|-----|
| यदाऽनुवृत्तिन्यावृत्ति०  | ४७३ | यदि वा भिद्यमानत्वात्      | २९५ |
| यदा विलक्षणो हेतुः       | ६३९ | यदि वाऽभिमतं द्रव्यं       | २०१ |
| यदा सूर्यादिशब्दाश्च     | १६४ | यदि वा योगसामर्थ्यात्      | ९०१ |
| यदा हि गादिवर्णं च       | ६९८ | यदि वा लङ्घनस्यापि         | ८९३ |
| यदि कर्तृत्वभोक्तृत्वे   | १०७ | यदि वा सर्वमेवेदं          | २८९ |
| यदि कारणशुद्धत्वा०       | ८०२ | यदि संवादिबिज्ञानं         | ८०१ |
| यदि गन्नादिरूपं तत       | २३३ | यदि स्वतःप्रमाणत्वं        | ७८८ |
| यदि गौरितिशब्दोऽयं       | २९१ | यदि ह्येकान्ततो भिन्नं     | ३८७ |
| यदि चाप्यस्य भावस्य      | ३७७ | यदीत्थं भवतस्तासु          | ५४० |
| यदि चोत्पद्यते शङ्का     | ७९० | यदीयागमसत्यत्व०            | ८४१ |
| यदि ज्ञानातिरेकेण        | ५५० | यदृच्छाशब्दवाच्यायाः       | ३७० |
| यदि तद्व्यतिरिक्तस्तु    | ५२३ | यद्वलात्परमाण्वादौ         | २३७ |
| यदि तस्यापि सामान्यं     | ६२३ | यद्भवं प्रति यन्नैव        | १३२ |
| यदि तु प्रतिबन्धोऽस्मिन् | ४९  | यद्यदिच्छति त्रोटुं वा     | ९३२ |
| यदि तु व्योमकालाद्याः    | १४३ | यद्यन्येन प्रत्युक्तत्वात् | ७६  |
| यदि तु स्यादगन्ताऽयं     | २३४ | यद्यपि ज्ञातसामर्थ्या      | ६२३ |
| यदि त्वदृष्टिमात्रेण     | ८५६ | यद्यपि व्यापि चैकं च       | ६०६ |
| यदि त्वसद्भवेकार्ये      | १८  | यद्यप्यन्येषु शब्देषु      | ३०४ |
| यदि त्वाल्लोच्य सम्मील्य | ३८६ | यद्यप्यपोहनिर्मुक्ते       | ३०३ |
| यदिदं वस्तुनो रूपं       | ३३  | यद्यप्यव्यतिरिक्तोऽयं      | ३२२ |
| यदि दध्यादयः सन्ति       | २५  | यद्यस्ति सर्गकालेऽपि       | ६०  |
| यदि नानुगतो भावः         | ५१९ | यथाकारमनादृष्य             | ३९५ |
| यदि नाम गृहीतं नो        | ४४९ | यथात्मा विषयस्तस्याः       | ९६  |
| यदि नामाध्रुवा व्यक्तिः  | २४८ | यथेकः समवायः स्यात्        | २६८ |
| यदि नोपाधयः केचित्       | २७४ | यथेवं कथमस्तित्वं          | ५४१ |
| यदि न्यायानुरागाद्द्वः   | ५३३ | यथेवं ये विनश्यन्ति        | २७३ |
| यदि प्रत्यक्षगम्यश्च     | ९१  | यथेवं वैदिकेऽप्येषा        | ६६५ |
| यदि प्रत्यक्षशब्देन      | ३७३ | यथेवं संशयो न स्यात्       | ७९६ |
| यदि बुद्धातिरिक्तोऽन्यः  | ८४२ | यथेवं समयान्यत्वे          | ३९८ |
| यदि वस्तु प्रमाभावो      | ४७५ | यथेवं सर्वदा ज्ञानं        | ६४७ |
| यदि वा तेऽपि पर्यायाः    | १२० | यथेवमखिला भावा             | ७८  |

|                            |     |                               |     |
|----------------------------|-----|-------------------------------|-----|
| यद्येवमभिधीयेत             | ३५० | यस्मादेकोऽपि तन्मध्ये         | ६५१ |
| यद्येवमाज्यनीवार०          | ९११ | यस्माद्गत्यादिभावेऽपि         | २३४ |
| यद्येवमियमेधेव             | २५१ | यस्माद्गत्याद्यसत्त्वेऽपि     | २३३ |
| यद्येवमिष्टवाञ्छायां       | ११३ | यस्मान्निर्मलनिष्कम्प०        | ८४७ |
| यद्येवमीदृशो न्यायः        | ९२६ | यस्मिन्नधूमतो भिन्नं          | ३२९ |
| यद्रूपनिश्चयो यस्मात्      | ७७३ | यस्मिन्प्रागुपलब्धश्च         | ४१४ |
| यद्वाऽऽत्मन्येव तज्ज्ञानं  | ८३५ | यस्य ज्ञेयप्रमेयत्व०          | ८२४ |
| यद्वाऽभ्यासवती वृत्तिः     | ८०२ | यस्य तर्हि न बाह्योऽर्थः      | ३६३ |
| यद्वा विशेषणं भेदो         | ३७३ | यस्य यस्य हि शब्दस्य          | २७५ |
| यद्वा वेदानुसारेण          | ६०९ | यस्याध्वत्रितयस्थं हि         | ८८८ |
| यद्वा षोडशभिश्चित्तैः      | ९३२ | यः सन्देहविपर्यास०            | ७७३ |
| यद्वा मर्त्यात्मना वृत्ता० | २०३ | या चेयं मान्तरे बुद्धिः       | २१९ |
| यद्वा मामान्यतो दृष्टं     | ८३९ | यादृशोऽर्थान्तरापोहो          | ३३७ |
| यद्वाऽऽत्येव विशेषोऽयं     | ९०३ | यावदौपयिकं ज्ञानं             | ८३५ |
| यद्वा स्वमतसिद्धेव         | ३६९ | यावद्बुद्धो न सर्वज्ञः        | ८४१ |
| यन्नादां क्रियते वेदः      | ५८८ | यावद्यावद्गुणौघोऽस्यां        | ८९५ |
| यन्नाम तार्किको ब्रूयात्   | ५८७ | यावन्न कार्यसंवादः            | ७९० |
| यन्नाममंस्तवाभ्यास०        | ५४५ | यावांश्च कणभुक् न्यायो नभोभा- |     |
| यन्नामोत्तरकालं हि         | ७४९ | गत्वकल्पने                    | ६१० |
| यन्मनोज्ञामनोज्ञादि०       | ६६९ | यावांश्च कणभुक् न्यायो नभोभा- |     |
| यश्च नैवंविधो भावः         | ६५  | गत्वदूषणे                     | ६९१ |
| यश्चात्र कल्पयते धर्मा     | ४३४ | यावानेवापवादोऽतो              | ७६० |
| यश्चापि तत्सजातीयः         | २७९ | युक्तिकोटिश्रवेऽप्यस्ति       | ३६३ |
| यश्चाभ्या विषयो नासौ       | ३७६ | युक्तिप्रसिद्धतायां च         | ९२६ |
| यस्तैरपेक्ष्यते भावः       | २१८ | युक्तिबाधाऽपि सन्तश्चेत्      | ५१४ |
| यस्मात्तद्विषयामेव         | ६५४ | युगपच्छुच्यशुच्यादिस्वभावानां |     |
| यस्मात्सम्बन्धसद्भावात्    | ७०७ | विरोधिनाम् । ज्ञानं नैकधियां  |     |
| यस्मादतीन्द्रियार्थानां    | ६४९ | दृष्टं                        | ८४४ |
| यस्मादभ्युदये मोक्षे       | ९१३ | युगत्परिपाठ्या वा कथं कार्या- |     |
| यस्मादर्थस्य सताया         | ६५  | द्विनाऽमुना                   | ८४५ |
| यस्मादुत्सर्गभावोऽयं       | ८०० |                               |     |

|   |     |                             |     |
|---|-----|-----------------------------|-----|
| युगपत्परिपाठ्या वा ज्ञानं कार्यो-<br>त्प्रकाशितम् । | ९३४ | ये वा समानजातीय०            | ८९१ |
| युगपत्परिपाठ्या वा सर्वं चैक-<br>स्वभावतः ।         | ८४४ | ये वा स्थिराश्रये वृत्ताः   | ८९२ |
| युगपत्परिपाठ्या वा स्वेच्छया<br>प्रतिपद्यते ।       | ९३२ | ये विद्यागुरवस्तत्र         | ७६२ |
| ये च बाह्यतपापत्वात्                                | ९२३ | येषां त्वप्राप्तजातोऽयं     | ६०३ |
| ये चापचयधर्माणः                                     | ८९१ | ये हि तावदवेदज्ञाः          | ८४० |
| ये चार्था दूरविच्छिन्नाः                            | ८२७ | ये हि लोभभयद्वेष०           | ९१९ |
| ये चेह सुधियः केचित्                                | ५३९ | यैः पुनः स्वोक्तिषु स्पष्टं | ९२२ |
| ये तु ब्रह्मद्विषः पापाः                            | ५९० | यो गवा सदृशोऽसौ हि          | ४५३ |
| ये तु मन्वादयः सिद्धाः                              | ८४० | योगाभ्यासविशेषाच्च          | ८९० |
| ये तु व्योमादयो भावाः                               | १४१ | योग्यकारणसद्भावात्          | ६७५ |
| ये तु श्रोत्रादयो भावाः                             | ४६३ | योग्यरूपस्य हेतुत्वे        | १४५ |
| ये तु सत्सु भवदृष्टं                                | ५६  | यो जनः क्षणमध्यास्ते        | २३३ |
| ये त्वविच्छिन्नमूलत्वात्                            | ८६४ | यो नाम न यदात्मा हि         | ३३६ |
| येन तद्विनिवृत्त्यर्थं                              | ७७२ | योऽप्यतीन्द्रियदृक् पश्येत् | ७९४ |
| येन (यन्न ?) त्रिभुवनान्तस्थाः                      | ६५९ | योऽप्ययं हेतुरत्रोक्तः      | ४१० |
| येन त्विष्टं न विज्ञानमर्थसारूप्य०                  | ४०२ | यो यत्र व्यापृतः कार्ये     | १८० |
| येन त्विष्टं न विज्ञानमर्थाकारोप०                   | ५६० | यो यद्विवक्षासम्भूत०        | ८९९ |
| येन रूपेण विज्ञानं                                  | ५३५ | यो वाऽर्धो बुद्धिविषयो      | २८५ |
| येन शब्दमयं सर्वं                                   | ६९  | योऽश्रुतानुमितं सत्यं       | ७१९ |
| ये निरंशं नभः प्राहुः                               | ६८७ | योऽसौ षड्दन्तमात्मानं       | ९०९ |
| येनैकैः स्वत एवेति                                  | ७७५ | यो हि भावः क्षणस्थायी       | १३७ |
| येनैव हेतुनैकस्य                                    | ८२३ | यौगपद्यप्रसङ्गोऽपि          | १७५ |
| येऽन्येऽन्यथैव शब्दार्थं                            | २८३ | यौ संयोगविभागौ च            | २१८ |
| येऽपि विच्छिन्नमूलत्वात्                            | ८२१ | र                           |     |
| येऽपि सात्तिशया दृष्टाः                             | ८२५ | रक्तं नीलसरोजं हि           | ६५६ |
| ये पुनः कल्पिता एते                                 | २६३ | रक्तं वासोऽखिलं सर्वं       | १९८ |
| ये प्रमाणतदाभास०                                    | ८३० | रक्ते च भाग एकस्मिन्        | "   |
| ये वा क्रमेण जायन्ते                                | ५५  | रजः सत्त्वादिरूपादि         | ५९  |
|   |     | रसनेन्द्रियसम्बन्धात्       | ८६४ |
|   |     | रसः शीतो गुरुश्चेति         | २५३ |
|   |     | रागद्वेषमदोन्माद०           | ७६२ |

|                            |     |                             |     |
|----------------------------|-----|-----------------------------|-----|
| रागद्वेषादयः क्लेशाः       | ५४७ | लाघवात्क्रमभावेऽपि          | ६८५ |
| रागद्वेषादयश्चामी          | ५४६ | लिङ्गं चन्द्रोदयो दृष्टः    | ४१६ |
| रागद्वेषादियुक्तांश्च      | ८०९ | लिङ्गसङ्ख्यादियोगस्तु       | ३४५ |
| रागद्वेषादियुक्ता हि       | ८०८ | लिङ्गसङ्ख्यादिसम्बन्धो      | ३१० |
| रागादिनिगडैर्बद्धः         | १७१ | लिङ्गाच्च प्रतिबिम्बाख्यात् | ४१८ |
| राजहंसशिशुः शक्तः          | ८९३ | लोचनादौ यथा रूप०            | ३२५ |
| राजीवकेसरादीनां            | ६२  | लौकिकं लिङ्गमिष्टं चेत्     | ४३२ |
| रात्रिर्वा प्रलयो नाम      | ६२७ |                             |     |
| रावं न मण्डलं यस्मात्      | ६९८ | व                           |     |
| रुदितस्तनपानादि०           | ५४४ | वक्तव्यं चैष कः शब्दो       | ६३५ |
| रूपकुम्भादिशब्दा हि        | २६७ | वक्तारः कर्तृभिस्तुल्याः    | ९०३ |
| रूपत्वाद्याश्रयाः सर्वे    | १६३ | वक्तुरन्यो न सम्बन्धो       | ७०६ |
| रूपमर्थगतैरेन्यत्          | ५४० | वक्तृश्रोतृधियोर्भेदात्     | ६२३ |
| रूपशब्दादिबुद्धीनां        | ३९१ | वक्तृश्रोत्रोर्न हि ज्ञानं  | ३६४ |
| रूपादयो घटश्चेति           | ११८ | वक्रकृत्रिमवाक्यानां        | ९०३ |
| रूपादित्वमतीतादेः          | ५१७ | वचसां प्रतिबन्धो वा         | ४४० |
| रूपादिप्रत्ययाः सर्वे      | ८१  | वचोभ्यो निखिलेभ्योऽपि       | ४४१ |
| रूपादिवित्तितो भिन्नं      | १२४ | वनशब्दः पुनर्व्यक्तीः       | ३४९ |
| रूपादीन्दीवरादिभ्यः        | १८८ | वयमश्रद्धधानास्तु           | ९२६ |
| रूपाभावादभावानां           | ३६३ | वर्णत्वाच्चापि साध्योऽयं    | ५९६ |
| रूपाभावेऽपि चैकत्वं        | ३२४ | वर्णादन्योऽथ नादात्मा       | ६३५ |
|                            |     | वर्णानां क्रमशून्यानां      | ७३३ |
| ल                          |     | वर्णानामपि नत्वेवं          | ६३० |
| लङ्घनोदकतापाभ्यां          | ८९२ | वर्णाः सर्वगतत्वाद्दो       | ६२८ |
| लतातालादिबुद्धीनां         | ३७५ | वर्णेषु व्यज्यमानस्य तस्य   | ६३३ |
| लब्धापचयपर्यन्तं           | ५५१ | वर्णेषु व्यज्यमानस्य नास्य  | ७१८ |
| लब्धासाधारणोपायोऽशेषपुंसां |     | वर्णेषु शक्यते (चेयं)       | ६६८ |
| विलक्षणः । तत्रैकः सर्ववि- |     | वर्णोत्था चार्थधीरेषा       | ७२७ |
| त्कश्चित्                  | ८४५ | वर्ण्यते हि स्मृतिस्तेन     | ८८६ |
| लब्धासाधारणोपायोऽशेषपुंसां |     | वर्त्तमाने तु विषये         | ९६  |
| विलक्षणः । स एकः सर्व-     |     | वर्द्धमानकभङ्गेन            | ५०१ |
| विनाथः                     | ९३५ | वर्द्धमानकभावस्य            | ५०२ |

|                            |     |                               |     |
|----------------------------|-----|-------------------------------|-----|
| वलीपलितकार्कश्य०           | २०६ | विक्रियायाश्च सद्भावे         | ११३ |
| वशित्वादिगुणाधाराः         | ९२० | विक्षिप्तचेतसामेतत्           | ८९९ |
| वस्तुतस्तु न सम्बन्धः      | ६७० | विद्युष्टशब्दः सर्वज्ञः       | ९०९ |
| वस्तुतस्तु निरालम्बो       | ३९१ | विच्छिन्नमन्यथा चैव           | २२१ |
| वस्तुत्वग्रहणादेषः         | ८१  | विजातिभ्यश्च सर्वेभ्यः        | २३६ |
| वस्तुनोऽनेकरूपस्य          | ५९४ | विजातीयपरावृत्तं              | ३१७ |
| वस्तुनो हि निवृत्तस्य      | ४८७ | विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः       | ५८२ |
| वस्तुभूतौ हि यौ पक्षौ      | ५८७ | विज्ञातशक्तेरप्यस्य           | ४२६ |
| वस्तुरूपा च सा बुद्धिः     | २९४ | विज्ञातार्थप्रकाशत्वात्       | ४४८ |
| वस्तुस्थित्या प्रमाणं तु   | ७९२ | विज्ञातार्थाधिगन्तृत्वात्     | ४२५ |
| वस्तुस्थित्या हि तज्ज्ञानं | ४२८ | विज्ञातोऽपीतरैरर्थः           | १६० |
| वस्तुस्वलक्षणे नैताः       | ३९३ | विज्ञानं जडरूपेभ्यो           | ५५९ |
| वस्त्वनन्तरभावाच्च         | १३६ | विज्ञानं जनयद्रूपे            | ५६६ |
| वस्त्वनन्तरभावित्वं        | १३८ | विज्ञानत्वं प्रकाशत्वं        | ५८२ |
| वस्त्वभावात्प्रमाणस्य      | ४७९ | विज्ञानस्यैव निर्भासं         | ५३३ |
| वस्त्वित्यध्यवसायत्वात्    | ३३७ | विज्ञायेत विजातीयैः           | ४९६ |
| वस्त्वित्यध्यवसायाच्च      | ३२२ | विद्यमानस्य चार्थस्य          | ६२५ |
| वस्त्वित्यध्यवसायाच्चेत्   | ३५२ | विद्याचरणसम्पन्ने             | ९२० |
| वस्त्वेकात्मकमेवेदं        | ४८८ | विधानप्रतिषेधौ हि             | ४९१ |
| वस्त्वेव कल्प्यते तत्र     | ३५९ | विधिनैवमभावश्च                | १३५ |
| वाक्यं नित्यं पुराऽस्माभिः | ७९३ | विधिरूपश्च शब्दार्थो येन      |     |
| वाक्यस्याकर्तृकत्वं च      | ७९४ | नाभ्युपगम्यते । तदाभं         | ३३९ |
| वाक्यार्थेऽन्यनिवृत्तिश्च  | ३५४ | विधिरूपश्च शब्दार्थो येन ना-  |     |
| वाचकानां यथा चैवं          | ३०६ | भ्युपगम्यते । न भवेत्         | ३०७ |
| वास्तवी चानुमा सर्वा       | ६७२ | विद्यात्मनाऽस्य वाच्यत्वे     | ३१५ |
| वाह्यदोहादिरूपेण           | २४० | विद्यादावर्थराशौ च नान्यापोह० | ३११ |
| वाहीकादिप्रसिद्धेऽस्मिन्   | ८६७ | विद्यादावर्थराशौ च नास्तितादि | ३५३ |
| विकल्पकमतो ज्ञान०          | ३७४ | विनष्टात्तु भवेत्कार्यं       | १७५ |
| विकल्पात्मा च सामान्य०     | ९३४ | विनाशे यद्यहेतुः स्यात्       | १५३ |
| विकल्पासम्भवे तस्य         | ९२४ | विनिश्चितत्रिरूपं च           | ६६३ |
| विकल्पे सति वक्तृत्वं      | ८८१ | विपक्षोऽपि भवत्यत्र           | ४७० |

|                                   |     |                                |     |
|-----------------------------------|-----|--------------------------------|-----|
| विपर्यस्ताविपर्यस्त०              | १२४ | विवेकालक्षणात्तेषां            | १९७ |
| विपाकहेतुः फलदो                   | ५१८ | विशिष्टविषयो बोधः              | ३८० |
| विप्रकृष्टे हि विषये              | ७८५ | विशिष्टसंस्कृतिः शब्दात्       | ६९२ |
| विप्लवे प्रत्यभिज्ञायाः           | ६७१ | विशिष्टसंस्कृतेर्जन्म          | "   |
| विभागेऽपि यथायोगं                 | २२३ | विशिष्टसमयोद्भूत०              | २०८ |
| विभिन्नकर्तृशक्त्यादेः            | १८९ | विशुद्धकारणोत्पादात्           | ७८६ |
| वि( भिन्नदेहवृत्तित्वात् )        | ५३६ | विशुद्धज्ञानसन्ताना            | ७४  |
| विभिन्नस्य हि सम्बन्धः            | ६९० | विशुद्धिकारणाभावात्            | ७९१ |
| विभिन्नोऽप्याश्रितो वा स्यात्     | ३१५ | विशुद्धं वा भयेज्ज्ञानं        | ८८७ |
| विमतेरास्पदं वस्तु                | ४४  | विशेषणविशेष्यत्वं यत्र         | २५४ |
| विमुखस्योपदेष्टृत्वं              | ५३  | विशेषणविशेष्यत्वसम्बन्धो       | "   |
| विरुद्धधर्मसङ्गश्च                | ४९३ | विशेषणविशेष्यत्वसामानाधिक-     |     |
| विरुद्धधर्मसङ्गे तु               | १०६ | रण्ययोः । तस्मादपोहे           | ३४० |
| विरुद्धधर्मसङ्गो हि बहूनां        | ६९  | विशेषणविशेष्यत्वसामानाधिक-     |     |
| विरुद्धधर्मसङ्गो हि वस्तूनां      |     | रण्ययोः । न सिद्धिर्न          | ३०८ |
| भिन्नतो०                          | ७४९ | विशेषणानवच्छिन्नं              | ३८१ |
| विरुद्धधर्मसङ्गो हि वस्तूनां भेद० | १२७ | विशेषा एव केचित्तु             | २३६ |
| विरुद्धौ सदसद्भावौ०               | ६२५ | विशेषात्मातिरेकेण              | ३८३ |
| विलक्षणकपालादेः                   | १५६ | विशेषाद्धि विशिष्टं तत्        | ३८२ |
| विलक्षणावभासेन                    | ६९७ | विशेषान्तरवैकल्यात्            | ४९८ |
| विवक्षानुगतत्वे वा                | ३४६ | विशेषेण तु सर्वार्थ०           | ८१९ |
| विवक्षानुमितिश्छिष्टं             | २९० | विशेषोऽस्पृष्टसामान्यो०        | ३८० |
| विवक्षायां च गम्यायां             | ४४३ | विक्षिप्यमाणसन्धौ च            | ३९९ |
| विवक्षावर्तिनाऽर्थेन              | ७०४ | विषयस्यापि संस्कारे तेनैकस्यैव |     |
| विवक्षितप्रमाज्ञान०               | ७९९ | संस्कृतिः । नरः सामर्थ्य०      | ६१० |
| विवक्षितार्कचन्द्रादि०            | १६२ | विषयस्यापि संस्कारे तेनैकस्यैव |     |
| विवादपदमारूढाः                    | १६५ | संस्कृतिः । नास्तत्वाच्छक्ति०  | ६९१ |
| विवादविषया ये च                   | १६३ | विषयाधिगतिश्चात्र              | ३९८ |
| विवादास्पदमारूढं                  | ५८१ | विषयेन्द्रियसंस्कार०           | ७२४ |
| विवादो भ्रान्तितो यस्मात्         | ७७६ | विषयोपनिपाते तु                | ५४७ |
| विविधार्थक्रियायोग्याः            | १२१ | विषापगमभ्रूयादि                | ७३९ |

|                                   |     |                                |     |
|-----------------------------------|-----|--------------------------------|-----|
| विसंवादनसामर्थ्यं                 | ७५२ | व्यक्तं प्रकाशरूपत्वात्        | ३९८ |
| वृक्षादीनाहतान्ध्वानः             | ३३२ | व्यक्तिरूपस्य नाशेऽपि          | ४२४ |
| वृक्षे शाखाः शिलाश्वागः           | २६७ | व्यक्तिरूपावसायेन              | ३५१ |
| वृत्तावभ्यासवल्यां तु             | ७८० | व्यक्ति-सम्बद्धरूपाणां         | ७१८ |
| वृद्धानां दृश्यमाना च             | ७३७ | व्यक्तिहेत्वन्तरापेक्षे        | ७४८ |
| वृद्धेभ्यो न च तद्बोधः            | ७३५ | व्यक्तीनामपि नो सौक्ष्म्यात्   | ७१७ |
| वृष्टिमेघासतोर्दृष्ट्वा           | ३०७ | व्यक्तीना( मेकतापत्ता० )       | ६६९ |
| वेगाख्यो भावनासंज्ञः              | २२७ | व्यक्तीनामेव वा सौक्ष्म्यात्   | ६३२ |
| वेदकारसदृक्श्चित्                 | ५८५ | व्यक्तेश्च प्रतिषिद्धत्वात्    | ७४२ |
| वेदकारादृते किञ्चित्              | ”   | व्यक्त्यात्मानोऽनुयन्त्येते    | २७७ |
| वेदमूलं च नैवेदं                  | ९१९ | व्यङ्ग्यव्यञ्जकसामर्थ्यभेदाद्- |     |
| वेदवाक्यार्थमिथ्यात्वं            | ५८९ | व्यादि०                        | २६९ |
| वेदवादिमुखस्था तु                 | ८८५ | व्यङ्ग्यव्यञ्जकसामर्थ्यभेदोऽपि |     |
| वेदवादिमुखस्थैवं युक्तिर्लौकिकवै- |     | समवायतः ।                      | २७५ |
| दिकी । न काचिदपि                  | ”   | व्यञ्जकध्वन्यधीनं च            | ६९९ |
| वेदवादिमुखस्थैवं युक्तिर्लौकिक-   |     | व्यञ्जकध्वन्यधीनत्वात्         | ६१२ |
| वैदिकी । या काचिदपि               | ८२४ | व्यञ्जकानां हि वायूनां         | ६०८ |
| वेदस्याध्ययनं सर्वं               | ६४३ | व्यञ्जकाभावतश्चासां            | ४६८ |
| वेदस्यापि प्रमाणत्वं              | ८१६ | व्यञ्जनक्रमरूपत्वात्           | ६६५ |
| वेदाध्ययनवाच्यत्वे                | ७३८ | व्यतिरिक्ते तु कार्येषु        | ४६५ |
| वेदानां पौरुषेयत्वे               | ८९८ | व्यतिरेके तु तस्येति           | ६८० |
| वेदार्थेऽन्यप्रमाणैर्वा           | ७६५ | व्यतिरेकेऽपि सम्बन्धः          | ७०७ |
| वेदेऽपि बाधकं मानं                | ८०८ | व्यतिरेके हि संस्कारे          | ६९० |
| वेदो नरं निराशंसो                 | ६५० | व्यतीताहङ्कृतिश्चाथो           | ९७  |
| वेदमन्यपश्यतश्चैत्रं              | ४६९ | व्यपेक्षयाऽप्यतश्चैवं          | १४८ |
| वैतथ्यात्स तथा नो चेत्            | ५५२ | व्यपेतभागभेदा हि               | ५५१ |
| वैलक्षण्यमसिद्धं च                | २४३ | व्यभिचारी ततो हेतुः            | २४५ |
| वैलक्षण्याप्रतीतो तु              | ७८१ | व्यवस्थायां तु जातायां         | ४०० |
| वैलक्षण्येन हेतूनां               | ४४२ | व्यवहारोपनीते च                | ३६० |
| वैषम्यसमभावेन                     | ३८२ | व्यस्ताः पूर्वं च संयोग०       | ६८५ |
| वैषम्यसमभावोऽयं                   | ”   | व्यापकत्वं च तस्येदं           | ३६६ |



|                                |     |                             |     |
|--------------------------------|-----|-----------------------------|-----|
| व्यापारः कारणानां हि           | ७७० | शतशः प्रतिषिद्धायां         | ९२० |
| व्यापृतं ह्यर्थवित्तौ च        | ५६२ | शबलापत्यतो भेदे             | ३३० |
| व्याप्तेर्नित्यतया चैषां       | ७३३ | शब्दं तावदनुच्चर्य          | ६२० |
| व्यावर्तमानरूपश्च              | ६६७ | शब्दज्ञानात्परोक्षार्थ०     | ४३३ |
| व्यावृत्तावन्य एवामी           | ६९४ | शब्दबोधस्वभावं वा           | ६७६ |
| व्यावृत्तिश्चक्षुरादीनां       | ४९८ | शब्दवृद्धाभिधेयानि          | ७०९ |
| व्यावृत्त्यनुगमात्मानं         | ९४  | शब्दस्तु ज्ञापयत्यर्थं      | ४१४ |
| व्याहारवृत्तिसामर्थ्ये         | ८८३ | शब्दस्याग्राह्यतैवं स्यात्  | ६७६ |
| ब्रीह्यादिवत्सम्भविनो          | ८९१ | शब्दानित्यत्वपक्षोऽतः       | ५९२ |
|                                |     | शब्दार्थः किमपोहो           | ३६२ |
| श                              |     | शब्दार्थघटनायोग्या          | ३६७ |
| शक्तं रूपं न चैकस्य            | ४९५ | शब्दार्थप्रतिभासित्वात्     | ५४२ |
| शक्तकारणसद्भावात्              | ९०४ | शब्दार्थानादितां मुक्त्वा   | ७३६ |
| शक्तयः सर्वभावानां कार्यार्था- |     | शब्दावधानमेतस्य             | ६८५ |
| पत्तिसाधनाः । अपूर्वास्ताश्च   | ४५७ | शब्देनागम्यमानं च           | ३०३ |
| शक्तयः सर्वभावानां कार्यार्था- |     | ( शब्दैकत्वप्रसिद्धयर्थं )  | ६६८ |
| पत्तिसाधनाः । इत्यर्थापत्तितः  | ७५१ | शब्दोच्चरणसम्बन्ध०          | ६२० |
| शक्तश्चेत्सर्वदैवायं           | ६४९ | शब्दोत्पत्तेर्निषिद्धत्वात् | ६११ |
| शक्तावनन्तरे ज्ञाने            | ५८२ | शब्दोपधाना या बुद्धिः       | १०२ |
| शक्ताशक्तस्वभावस्य             | ४३६ | शब्दोपलम्भवेलायां           | ६७३ |
| शक्तिनित्यत्वपक्षे तु          | ७०९ | शरीरचक्षुरादीनां            | ८०  |
| शक्तिराधीयते श्रोत्रे          | ६७९ | शशशृङ्गादिविज्ञानैः         | २३८ |
| शक्तिरेव च सम्बन्धो.....       |     | शातकुम्भात्मकौ भावौ         | ५०३ |
| न चेन्मतः । शब्दार्थानां भवे-  |     | शाताशातादिरूपा च            | ३९६ |
| देका शक्तिरव्यतिरेकतः ॥        | ७०७ | शाबलेयाच्च भिन्नत्वं        | २९९ |
| शक्तिरेव हि सम्बन्धो नित्या    | ”   | शाबलेयादिखण्डादि०           | ५९४ |
| शक्तिरेव हि सम्बन्धो.....      |     | शिरसोऽवयवा निम्ना           | ४७२ |
| न दृश्यते                      | ६२३ | शिष्यव्यामोहनार्थं वा       | ८४० |
| शक्तीनां नियमादंशं             | १९  | शुक्लादयस्तथा वेद्या        | १९० |
| शक्त्यशक्त्योर्नराणां तु       | ६२६ | शुद्धस्फटिकसङ्काशं          | ५७० |
| शक्त्यदर्शनवस्त्वाभ०           | ४७५ | शुद्धाश्वेदभ्युदासीनाः      | ८०९ |
| शङ्क्येतायं तथा वेदो           | ७१५ |                             |     |

|                                     |     |                                |     |
|-------------------------------------|-----|--------------------------------|-----|
| शुद्धे च मानसे कल्पे                | ३७६ | षड्जादिभेदनिर्भासः             | ६६९ |
| शुभात्मीयस्थिरादींश्च               | ५४६ | षष्ठीवचनभेदादि                 | १९१ |
| शुभाशुभं च कर्मास्ति                | ११२ |                                |     |
| शुभाशुभानां कर्त्तारं               | ८०  | स                              |     |
| शून्यानात्मादिरूपस्य                | ८९६ | संज्ञापकप्रमाणस्य              | १९२ |
| शृण्वन्ति चक्षुषा सर्पाः            | ८८७ | संयुक्तं दूरदेशस्थं            | ५५५ |
| शौऋयादल्पान्तरत्वाच्च               | ७२७ | संयुक्ते आहरेत्युक्ते          | २१८ |
| शौर्यात्मजादयो येऽपि                | ७९  | संयोगमात्रसापेक्षा             | २२० |
| श्रुतादिदेशवाक्यस्य                 | ४५१ | संयोगस्य विनाशश्च              | २३२ |
| श्रुतानुमानभिन्नेन                  | ८९८ | संयोगादिवदेवं हि               | २७४ |
| श्रुतानुमितदृष्टं च                 | ८८८ | संवादगुणविज्ञाने               | ७५८ |
| श्रुतेः स्वतन्त्रतैषादि (तेष्टा हि) | ६६१ | संवेदनमिदं सर्वं               | ५७० |
| श्रुत्वा न चान्यतः प्रोक्तं         | ८९८ | संशयेन यतो वृत्तः              | ७८३ |
| श्रोतुः कर्तुं च सम्बन्धं वक्ता कं  |     | संसर्गिणोऽपि ह्याधाराः         | २९६ |
| प्रतिपद्यताम् ।                     | ६२३ | संसारानुचितज्ञानाः             | ९१३ |
| श्रोतुः कर्तुं च सम्बन्धं वक्ता     |     | संसारानुचिता धर्माः            | ५४८ |
| पूर्वं प्रपद्यते ।                  | ७०६ | संसार्थनुचितं ज्ञातं           | ८६६ |
| श्रोतृव्यपेक्षयाऽप्येतत्            | ४२७ | संसार्थनुचितज्ञाना             | ९३५ |
| श्रोत्रगम्येषु शब्देषु              | ८२६ | संसृष्टैकत्वानानात्व०          | २९५ |
| श्रोत्रजप्रत्यभिज्ञानात्            | ६३५ | संस्कारद्वयपक्षे तु            | ६११ |
| श्रोत्रज्ञानान्तरेणाऽस्याः          | ७६६ | संस्कारोत्फर्षभेदेन            | ८९२ |
| श्रोत्रबुद्धेरपि व्यक्ता            | ८०२ | संस्कृतश्लोकदा शब्दः           | ६९३ |
| श्रोत्रशब्दाश्रयाणां च              | ६०८ | संस्कृतश्रवणोत्पाद्य०          | ६७७ |
| श्रोत्रस्य चैवमेकत्वं               | ६०० | संस्कृतासंस्कृतत्वे न          | ६०१ |
| श्रोत्रादिशक्तिपक्षे वा             | ४५७ | संस्त्याने न द्वयं चान्यत्     | ३४७ |
| श्रोत्रियाणां तु निष्कम्पा          | ६५४ | स एव च तदाकार०                 | ३२२ |
| श्रोत्रोपलब्धो योग्यश्चेत्          | ६७५ | स एव भाविकश्चार्यो             | ४९९ |
|                                     |     | स एव भाविको भावो               | ५१२ |
|                                     |     | स एव व्यवतिष्ठेत्              | २७३ |
| ष                                   |     | सकृच्च संस्कृतं श्रोत्रं       | ६०० |
| षड्देते धर्मिणः प्रोक्ता            | १९२ | सकृज्जातविनष्टे च भवेन्नार्थे  | ७६५ |
| षड्जऋषभगान्धार०                     | ६७१ | सकृज्जातविनष्टे च स्यादेवार्थे | ८०१ |

|                             |     |                                      |     |
|-----------------------------|-----|--------------------------------------|-----|
| सकृदेव बहूनां तु            | ७०६ | सदा सत्त्वमसत्त्वं वा                | ५१२ |
| सङ्केतग्रहणात्पूर्वं        | ७०८ | सद्ब्राह्मकप्रमाभावात्               | १८७ |
| सङ्केतमात्रभाविन्यो         | ८८  | सद्धर्मोपगतं नो चेत्                 | ”   |
| स(ङ्केता)नवबोधेऽपि          | ७२१ | सद्भना यो ह्यसन्तुष्टो               | ४७० |
| सङ्केतासम्भवो ह्यत्र        | ३६४ | सद्योजाताद्यविज्ञान०                 | ८२  |
| सङ्केते च व्यपेक्षया        | ७११ | सनिमित्तैव तेनेयं                    | ७९१ |
| सङ्क्रान्तावपि नैतेषां      | ७३२ | सन्तर्तेर्नन्ववस्तुत्वात्            | ५२३ |
| सङ्क्षेपोऽयं विनष्टाच्चेत्  | १६९ | सन्तश्चामी त्वयेष्यन्ते              | १४३ |
| सङ्ख्यादेर्द्रव्यतोऽन्यत्वं | २२६ | सन्तानान्तरविज्ञानं                  | ५३३ |
| सङ्ख्याऽपि सामायिक्येव      | ३४८ | सन्तानोच्छेदरूपस्तु                  | १५६ |
| सङ्ख्यायोगादयः सर्वे        | २२५ | सन्तानोऽपि न तद्वाह्यो               | ९६  |
| स चेदगोनिवृत्त्यात्मा       | ३०० | सन्तु तेऽपि समस्तानां                | ८६८ |
| स चैवं भासमानत्वात्         | ५०६ | सन्दिग्धव्यतिरेकित्वं                | १६६ |
| सजातीयविजातीयव्यावृत्तार्थ० | ३८० | सन्दिग्धव्यतिरेकित्वात्              | ९०८ |
| सजातीयविजातीयानेकव्यावृत्त० | ४९१ | सन्दिग्धमानवपुषो                     | ४४२ |
| सजातीयासमानोऽपि             | ४९६ | सन्दिग्धमानसद्भाव०                   | ४२२ |
| स तथा कृष्यमाणश्च           | ६५० | सन्देहेन प्रवृत्तौ मे                | ७८३ |
| सति प्रकाशकत्वे च           | ५६२ | सन्निकृष्टे हि विषये                 | ७८५ |
| सत्तामात्रेण तज्ज्ञानं      | ७२५ | सन्निधानं च तस्येदं                  | ५१० |
| सत्तामात्रेण ते सर्वे       | ७६४ | सन्निवेशविशिष्टत्वं                  | ४७  |
| सत्तासम्बन्ध इष्टश्चेत्     | १५० | सन्निवेशविशेषस्तु                    | ”   |
| सत्यं लोकानुवृत्त्येदं      | ३७१ | सन्निवेशविशेषे च                     | ५२० |
| सत्यप्येकस्य भावत्वे        | ४८९ | सपक्षादिव्यवस्था चेत्                | ४५९ |
| सत्यप्येषा निरर्थाऽतो       | ६४८ | सपक्षोऽपि विकल्पोऽत्र                | ६४० |
| सत्यार्थनित्यसम्बन्ध०       | ६५१ | स पञ्चभिरगम्यत्वात्                  | ५८५ |
| सत्त्वदृक्प्रत्यनीकं च      | ९०४ | स पाठस्यापि तुल्यत्वं                | ८१० |
| सत्त्वदृष्ट्युपगूढास्तु     | ९०६ | सबहिर्देशसम्बद्धः                    | ५७८ |
| सत्त्वाद्यनुगतं व्यक्तं     | ३४  | समयः प्रतिमर्त्यं च प्रत्युच्चारणमेव |     |
| सत्त्वे तु वर्तमानत्वं      | ५१७ | च । इत्याद्यतः                       | ७०५ |
| सदादिमतिवन्नो चेत्          | २४८ | समयः प्रमिमर्त्यं वा प्रत्युच्चारण-  |     |
| सदाभावोऽथवाऽभावो            | ७४७ | मेव वा । क्रियते                     | ६२२ |

|                                |     |                                  |          |
|--------------------------------|-----|----------------------------------|----------|
| समयात्पुरुषाणां हि             | ६४२ | स मुद्गरप्रहारादि०               | ६४०      |
| समयो हि न सम्बन्धो             | ७०५ | समुद्रसिकतासङ्ख्या०              | ९१२      |
| समर्थरूपभावाच्च                | ५१४ | सम्बद्धानुगुणोपायं               | ८७७      |
| समर्थान्तरभावे च               | ७०९ | सम्बद्धैरेव वचनैः                | ४२२      |
| समवायात्मिका वृत्तिः           | २०३ | सम्बन्धकथनेऽप्यस्य               | ६२१      |
| समस्तकल्पनाजाल०                | ५१९ | सम्बन्धदर्शनं चास्य              | ६१८      |
| समस्तकुमतध्वान्त०              | ८७८ | सम्बन्धस्य च नित्यत्वं           | ७३३      |
| समस्तदाह्यरूपाणां              | १०२ | सम्बन्धस्य प्रमाणत्वं            | ४६६      |
| समस्तदुरिताराति०               | ९३५ | सम्बन्धः समवायश्चेत्             | १४७      |
| समस्तधर्मनैरात्म्य०            | ९०४ | सम्बन्धाकरणन्यायात्              | ६४२      |
| समस्तनरधर्माणां                | ७३८ | सम्बन्धाख्यानाकाले               | ६२४, ७०७ |
| समस्तवस्तुप्रलये               | ७६  | सम्बन्धादेव मानत्वं              | ४६६      |
| समस्तवस्तुविज्ञानमस्य कारणता   |     | सम्बन्धानुपपत्तौ च               | १९३      |
| गतम् ।                         | ९२४ | सम्बन्धानुभवापेक्ष०              | ५९२      |
| समस्तवस्तुविज्ञानशक्यपाकरणेऽपि |     | सम्बन्धिनो निवृत्तौ हि           | २७२      |
| ते ।                           | ८८३ | सम्भवत्येकविज्ञाने               | ८९६      |
| समस्तवस्तुसम्बद्ध०             | ८८६ | सम्भारावेधतस्तस्य                | ९२६      |
| समस्तावयवव्यक्ति०              | ८१९ | सम्भाव्यते च वेदस्य              | ७३९      |
| समानं यत्र यद्रूपं             | ५५४ | सम्भाव्यते समस्तासत्             | ८६५      |
| समानकालताप्राप्तेः             | ५०२ | सम्भाव्यन्ते तथा चामी            | ८९१      |
| समानज्वालसम्भूतेः              | १९७ | सम्भिन्नालापहिंसादिकुत्सितार्थ-  |          |
| समानशब्दवाच्यत्वं              | १६४ | विवर्जिताः ।                     | ९२७      |
| समारोपव्यवच्छेद०               | ३८८ | सम्भिन्नालापहिंसादिकुत्सितार्थो- |          |
| समाश्रिताः क्वचिच्छब्दाः       | २०५ | पदेशनम् ।                        | ”        |
| समुच्चयादिभिन्नं तु            | २२६ | सम्मुखानेकसामान्य०               | ५९४      |
| समुच्चयादिर्यश्चार्थः          | ३५४ | सम्मुखानेकसामान्य०               | ३८८      |
| समुत्पन्नेऽपि विज्ञाने         | ७८५ | सम्यक्सर्वपदार्थानां             | ८६७      |
| समुदायव्यवस्थायाम्             | ४८४ | सरागमरणं चित्तं                  | ५२१      |
| समुदायादिचित्तेन               | १३० | सरोजकेसरादीनां                   | ६३       |
| समुदायाभिधानेऽपि               | २८७ | सर्गादौ व्यवहारश्च               | ४३       |
| समुदायोऽभिधेयो वा              | २८४ | सर्पादिभ्रान्तिवच्छेदं           | ३९२      |

|                                     |          |                                    |     |
|-------------------------------------|----------|------------------------------------|-----|
| सर्पोऽपि क्षणभङ्गित्वात्            | १०८      | सर्वमेव न चामीष्ट                  | ३५१ |
| सर्वं च प्रक्रियामात्रं             | ७००      | सर्वलोकप्रसिद्धया च                | ६३५ |
| सर्वं च सर्वतो भावात्               | १९       | सर्वशक्तिवियोगेन                   | ९१६ |
| सर्वं च साधनं वृत्तं                | २७       | सर्वशब्दविवेकोऽपि                  | ४८१ |
| सर्वकर्तृत्वसिद्धौ च                | ४३       | सर्वशब्दश्च सर्वत्र                | ८१७ |
| सर्वज्ञ इष्यते नापि                 | ८८२      | सर्वशब्दस्य कश्चार्थो              | ३१३ |
| सर्वज्ञज्ञापनात्तस्य                | ८३७      | सर्वशिष्यैरपि ज्ञातान्             | ८३३ |
| सर्वज्ञत्वं च बुद्धादेः             | ८३०      | सर्वश्चायं प्रयत्नस्ते             | ६७३ |
| सर्वज्ञत्वं न चाप्येतत्             | ८८०      | सर्वश्वार्थविचारादि०               | १५१ |
| सर्वज्ञसदृशः कश्चित्                | ८३८      | सर्वसत्त्वैरगम्यत्वं               | ६५९ |
| सर्वज्ञा बहवः कल्याः                | ८३२      | सर्वसम्बन्धशून्यं हि               | ४६५ |
| सर्वज्ञेषु च भूयःसु                 | ८२२      | सर्वसामर्थ्यशून्यत्वात्            | १४९ |
| सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं               | ८३२      | सर्वस्य च न साध्येयं               | ८०५ |
| सर्वज्ञो दृश्यते तावत्              | ८३०      | सर्वः सर्वं न जानाति               | ८२७ |
| सर्वज्ञो न च दृश्यस्ते              | ८५५      | सर्वहेतुनिराशंसं                   | ६२  |
| सर्वज्ञो नावबुद्धश्च                | ८३३      | सर्वाकारज्ञतायास्तु                | ८८० |
| सर्वज्ञोऽयमिति ह्येवं               | ८३२      | सर्वाकारधरोपेतं                    | ९२७ |
| सर्वत्रैवं प्रमाणत्वं               | ७९८      | सर्वाङ्गप्रतिषेधश्च                | ३६० |
| सर्वत्रैवानपेक्षाश्च                | १३३      | सर्वात्मना च सारूप्ये ज्ञानेऽज्ञा- |     |
| सर्वथाऽतिशयासत्त्वात्               | १८५      | नादिता भवेत्                       | ५७१ |
| सर्वथाऽपि ह्यतुल्यत्वे              | ४८७      | सर्वात्मना न निष्परोः              | २७  |
| सर्वथा पूर्वरूपस्य                  | ५०२      | सर्वात्मना हि सारूप्ये ज्ञानम-     |     |
| सर्वदा चैव पुरुषाः                  | ७४०, ८५७ | ज्ञानतां व्रजेत्                   | ४०२ |
| सर्वधर्माश्च भाव्यन्ते              | ८९६      | सर्वा दृष्टिश्च सन्दिग्धा          | ६५  |
| सर्वप्रमातृसम्बद्धप्रत्यक्षादिनिवा- |          | सर्वानुशयसन्दोह०                   | ९२७ |
| रणात् ।                             | ८२०      | सर्वार्थज्ञो यतोऽदृश्यः            | ८६१ |
| सर्वप्रमातृसम्बद्धप्रत्यक्षादिनिवा- |          | सर्वार्थबोधरूपा च                  | १०२ |
| रणात्                               | ८६४      | सर्वार्थविषयं ज्ञानं               | ८५३ |
| सर्वभावगतं येऽपि                    | ४१०      | सर्वावित्तिप्रसङ्गेन               | ४०१ |
| सर्वभावैक्यवादेऽपि                  | ”        | सर्वे च यस्य पुरुषाः               | ८१० |
| सर्वमेतद्दिद्वजातीनां               | ६४५      | सर्वे धर्मा निरात्मानः             | ३६० |

|                              |     |                                 |     |
|------------------------------|-----|---------------------------------|-----|
| सर्वे प्राणभृतो यस्मात्      | ६९८ | साक्षादाकार एतस्मिन्            | ३१९ |
| सर्वेषां च प्रसिद्धेयं       | ७३० | साक्षाद्भि ज्ञानजनकः            | ४८५ |
| सर्वेषामनभिज्ञत्वात्         | ७१२ | सा चानादिरनन्ता च               | ५२४ |
| सर्वेषामनभिज्ञानां           | ६२७ | सा चानित्येदृशी शक्तिः          | ७४७ |
| सर्वेषामपि तीर्थानां         | ९०४ | सात्मकत्वे हि नित्यत्वं         | ९२  |
| सर्वेषामेव वस्तुनां          | १९६ | सा (स्वा)त्मकाक्षणिकादिभ्यो     | ९३३ |
| सर्वेषु चैतदर्थेषु           | ७२५ | सात्मीभावाच्च मार्गस्य          | ८९५ |
| सर्वे सर्वावबोधे च           | ८४५ | सादृश्यस्य च वस्तुत्वं          | ४४५ |
| सर्वोत्पत्तिमतामीशं          | ४०  | सादृश्यस्य त्रिवेको हि          | ४५१ |
| सविकल्पकभावस्य               | ३७७ | सादृश्यात्प्रत्यभिज्ञानं        | १७० |
| स श्यामस्तस्य पुत्रत्वात्    | ४०६ | साधनान्तरजन्या तु बुद्धिरेषा    | ८०३ |
| स संयोगविभागौ च              | ६०४ | साधनान्तरजन्या तु बुद्धिर्नारित | ७६६ |
| ससंवादमभिव्यक्तं             | ८८८ | साधितक्षणभङ्गं हि               | ७७१ |
| स सर्वव्यवहारेषु             | ७९१ | साधितक्षणभङ्गाश्च               | ७४९ |
| सहकारिकृतश्चैवं              | १५३ | साध्यत्वप्रत्ययश्चात्र          | ३११ |
| स हि वाक्यनिराशांसः          | ७९४ | साध्यत्वप्रत्ययस्तस्मात्        | ३५३ |
| सहेतु सकलं कर्म              | ८४५ | साध्यसाधनधर्मस्य                | ४१९ |
| सहेतु सफलं कर्म              | ९३४ | साध्यस्याप्रतिपत्तौ हि          | ४०९ |
| सहैकत्र द्वयासत्त्वात्       | ४१८ | साध्या न चानुमानेन              | ७६७ |
| स ह्यनेकाणुसन्दोह०           | ४९१ | साध्वेतत्किन्तु ते तस्य         | १४५ |
| स ह्यर्थप्रतिपत्त्यर्थं      | ७२० | साध्येन विकलं तावत्             | १६३ |
| सांशत्वेऽपि यथा वर्णाः       | ७२३ | साऽपि ज्ञानात्मिकैवेति          | ४७५ |
| साकल्येनाभिधानेन             | १९४ | सापेक्षं हि प्रमाणत्वं          | ७४६ |
| साकारं तन्निराकारं           | ५७३ | साऽप्रमाणं प्रमाणं वा           | ७९७ |
| साकारज्ञानपक्षेऽपि           | ६७४ | सामर्थ्यनियमो ह्यत्र            | २५२ |
| साकारे ननु विज्ञाने          | १८१ | सामानाधिकरण्यं च                | ३०८ |
| साकारेऽपि हि विज्ञाने        | ६९५ | सामानाधिकरण्यं चेत्             | १६५ |
| साक्षाच्छब्दा न बाह्यार्थ०   | ७०२ | सामानाधिकरण्यादिप्रतिबि०        | ३४५ |
| साक्षात्कृतिविशेषाच्च        | ८७५ | सामानाधिकरण्यादिरेवमस्मिन्      | ३४० |
| साक्षात्तु विषया नैव         | ५४७ | सामान्यं न च तत्रैकं            | ७०२ |
| साक्षात्प्रत्यक्षदर्शित्वात् | ८२१ | सामान्यं वस्तुरूपं हि           | २९३ |

|                                 |     |                                    |     |
|---------------------------------|-----|------------------------------------|-----|
| सामान्यप्रतिबन्धे तु            | ४९  | सुखदुःखाद्यवस्थाश्च                | १०५ |
| सामान्यवद्भि सादृश्यं           | ४४५ | सुखादीत्येव मन्यन्ते               | ३९७ |
| सामान्यवस्तुरूपत्वं             | ३२२ | सुखाद्यन्वितमेतच्च                 | २०  |
| सामान्यस्य च वस्तुत्वं          | ४४७ | सुगतस्तेन सर्वज्ञः                 | ८७८ |
| सामान्यस्यापि नीलादि०           | २४४ | सुगतो यदि सर्वज्ञः                 | ८२२ |
| सामान्यानि निरस्तानि            | ४४७ | सुताख्यकार्यदृष्ट्या चेत्          | ८५६ |
| सामान्येऽतिशयः कश्चित्          | २३९ | सुप्तमूर्च्छाद्यवस्थासु            | ५४० |
| सामान्येन गते तस्मिन्           | ४०८ | सुवर्णं व्यवहाराङ्गं               | ८३० |
| सामान्येन तु पारार्थ्यं         | ११७ | सूक्ष्मप्रचयरूपं हि                | ५५२ |
| सामान्येनैव साध्यत्वं           | ५४९ | सूर्यमस्य यथा चक्षुः               | ६१० |
| सामीप्येऽपि हि संस्कारः         | ६९२ | सृष्टेः प्रागनुकम्पानां            | ७६  |
| ( सारूप्याच्च ) श्रुतेर्वृत्तिः | २८९ | सैवेति नोच्यते बुद्धिः             | १०० |
| सारूप्यानियमोऽयं चेत्           | ४८७ | सोऽपकृष्य ततो धर्मः                | ३३४ |
| सार्थकप्रविभक्तार्थं०           | ७३८ | सोपधानेतरावस्थः                    | १०३ |
| सार्थकाः प्रविभक्तार्थाः        | ”   | सोऽयं व्यञ्जकमेदाच्चेत्            | ६६७ |
| साहित्यं सहकारित्वात्           | ५९  | सोऽयमित्यभिसम्बन्धात्              | २८५ |
| साहित्येनापि जातास्ते           | ५५१ | सोऽवस्थातिशयस्तादृक्               | २२२ |
| सा हि प्रमाणं सर्वेषां          | ५८४ | सौगतापरनिर्दिष्टं०                 | २१० |
| सितसाध्यक्रियावाप्या            | ७८६ | स्कन्धादिव्यतिरिक्तस्य             | ५०७ |
| सितातपत्रापिहितं०               | ४५५ | स्कन्धेभ्यः पुद्गलो नान्य इत्येषा  | १२७ |
| सिद्धं च मानसं ज्ञानं           | ८८६ | स्कन्धेभ्यः पुद्गलो नान्यस्तीर्थं० | १२५ |
| सिद्धपर्यायभिन्नत्वे            | ८२  | स्थाणौ नर इति भ्रान्तः             | ८६७ |
| सिद्धसर्वोपसंहारं०              | ७३८ | स्थापकत्वविवक्षायां                | ४०१ |
| सिद्धाश्चागौरपोद्येत            | ३०० | स्थितस्थापकरूपस्तु                 | २२९ |
| सिद्धिर्मनोजवासंज्ञा            | ८९३ | स्थिता रेफादयश्चान्ये              | ७३३ |
| सिद्धेऽपि त्रिगुणे व्यक्ते      | ३७  | स्थितिप्रसवसंस्त्यानं०             | ३४६ |
| सिद्धेऽप्यन्यनिमित्तत्वे        | २४४ | स्थितिस्तत्समवायश्चेत्             | २५९ |
| सिद्धे स्वतःप्रमाणत्वे          | ७७२ | स्थिते हि तस्य मानत्वे             | ८०१ |
| सिद्धोपस्थायिनस्तस्य            | ७११ | स्थितौ स्थितिः स्वभावश्च           | ३४७ |
| सिसाधयिषतो योऽर्थः              | ८४१ | स्थित्वा प्रवृत्तिरप्यादेः         | ५२  |
| सुखदुःखादिभेदे तु               | ९२९ | स्थिरत्वान्निर्विभागत्वात्         | १०३ |

|                                  |     |                                  |     |
|----------------------------------|-----|----------------------------------|-----|
| स्थिररूपं परैरिष्टं              | ५२४ | खतः सत्यार्थबोधस्य               | ६५५ |
| स्थिरवायूपनीत्या च               | ६०१ | खतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति | ७४५ |
| स्थिरात्मनो विशेषत्वात्          | ४६४ | खतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यस्य  | ७७६ |
| स्थूलत्वं वस्तुधर्मो हि          | ५५२ | खतस्त्वस्य प्रमाणानां            | ७५६ |
| स्थूलवस्तुव्यपेक्षो हि           | १८९ | खतो नैवास्ति शक्तत्वं            | ६२२ |
| स्थूलस्यैकस्रभावत्वे             | १९८ | खतो भावे ह्यहेतुत्वं             | ६१  |
| स्थूलार्थासम्भवे तु स्यात्       | १८९ | खतो वाक्यं प्रमाणं तत्           | ७९५ |
| स्थैर्ये तु वस्तुनः सर्वे        | २३३ | खतो ह्रस्वादिभेदस्तु             | ५९८ |
| स्पष्टलक्षणसंयुक्तं              | १   | खदेशमेव गृह्णाति                 | ६१३ |
| स्यातां किंविषयावेतौ             | ३७४ | खधर्माधर्ममात्रज्ञं              | ८२० |
| स्यातां ह्यत्यन्तनाशे हि         | ९५  | खनिर्भासीन्द्रियज्ञानं           | ७३० |
| स्यादाधारो जलादीनां              | २६० | खपरार्थविभागेन                   | ४०४ |
| स्यादाश्रयो जलादीनां             | ५३७ | खप्नमूर्च्छाद्यवस्थासु           | ५४१ |
| स्याद्वादाक्षणिकस्या( त्वा ? )दि | ८६७ | खबीजानेकविक्षिप्तं               | ३२८ |
| स्यान्नामोत्पलतायोगि०            | ३४३ | खभावान्न च भावानां               | ४९८ |
| स्यान्मतं परतस्तस्य              | ७८४ | खभावापरनिःशेषं                   | ३८१ |
| स्यान्मतं यदि विज्ञानं           | ५४० | खभावाभेद एकत्वं                  | ११९ |
| स्यान्मतं यो व्यतीतोऽध्वा        | ९०८ | खभावेनाविभक्तेन यः सर्वमव-       |     |
| स्यान्मतं विषयाकारा              | ११४ | बुध्यते । खरूपाप्येव             | ९३३ |
| स्यान्मतिर्दन्तिदाह्यादेः        | ५६० | खभावेनाविभक्तेन यः सर्वमव-       |     |
| खकार्यारम्भिण इमे                | ५१४ | बुध्यते । खलक्षणानि              | ८४४ |
| खप्रन्थेष्वनिबद्धोऽपि            | ८२२ | खम्यस्तधर्मनैरात्म्या            | ९३५ |
| खज्ञानोत्पत्तियोग्यत्वे          | २६० | स्वयं तु जडरूपत्वात्             | ८०६ |
| खतःप्रामाण्यपक्षे तु निश्चयं     | ८१० | स्वयं त्वगम्यमानत्वं             | ६५९ |
| खतःप्रामाण्यपक्षेऽपि खरसेनैव     | ७९० | स्वयंप्रकाशरूपत्वं               | ९१४ |
| खतःप्रामाण्यवादे च               | ७९४ | स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं            | ८५८ |
| खत एवाशुचित्वं- हि               | २६४ | स्वयमेवाप्रमाणत्वात्             | ५८५ |
| खतन्त्रश्रुतिनिःसङ्गो            | १   | खरादयश्च ते धर्माः               | ९०९ |
| खतन्त्रस्य च विज्ञानं            | ६५० | खरूपपररूपाभ्यां                  | ४७६ |
| खतन्त्राः पुरुषाश्चेह            | ६४९ | खरूपमेव वस्तुनां                 | ४७७ |
| खतन्त्रा मानसी बुद्धिः           | ५४१ | खरूपवेदनायान्यत्                 | ५६२ |
|                                  |     | खरूपसत्त्वमात्रेण                | ३०१ |



|                              |     |                               |     |
|------------------------------|-----|-------------------------------|-----|
| स्वरूपाद्व्यतिरिक्तोऽपि      | ५०८ | स्वातिरिक्तक्रियाकारि         | ४०१ |
| स्वरूपाप्रच्युतिस्तावत्      | २५९ | स्वात्मनि ज्ञानजनने           | २५६ |
| स्वरूपेण तथा ब्रह्मिः        | ९९  | स्वात्मावभाससंवित्तेः         | ९०२ |
| स्वरूपेण ह्यत्रस्थानं        | १०६ | स्वाधारैः समवायो हि           | २७१ |
| स्वरूपेणैव लीयन्ते           | १०७ | स्वाभाविके क्रमे चैषां        | ७३३ |
| स्वरूपोत्पादमात्राद्धि       | ३२३ | स्वाभाविको विनाशस्तु          | ६३९ |
| स्वर्गयागादयस्तस्मात्        | ८४७ | स्वाभाविक्यां हि शक्तौ स्यात् | ७४७ |
| स्वर्गयागादिसम्बन्धो         | ८१६ | स्वारम्भकविभागाद्वा           | २७१ |
| स्वर्गादौ मतभेदश्च           | ८०४ | स्वार्थसंसिद्धये तेषां        | ९१९ |
| स्वर्गापवर्गमात्रस्य         | ९१२ | स्वार्थाभिधाने शब्दानां       | ३३९ |
| स्वर्गापवर्गमार्गोक्तिं      | ९१८ | स्वाश्रयेन्द्रिययोगादि०       | २५६ |
| स्वर्गापवर्गसम्प्राप्ति०     | ८६२ | स्वाश्रयेन्द्रिययोगादेः       | २६१ |
| स्वर्गापवर्गसंसर्ग०          | ५१६ | स्वेच्छया रचिते वाऽस्मिन्     | २६६ |
| स्वलक्षणस्य सद्भावे          | ३७८ | स्वेनैव वेद्यते चेतो          | ५३७ |
| स्वल्पीयस्यपि नेत्रादेः      | ५४२ | स्वोपलम्भस्य चार्थेषु         | ८५२ |
| स्वल्पीयानपि येषां तु        | ५४६ | स्वोपादानबल्लोद्भूते          | ५३४ |
| स्ववाक्यादिविरोधश्च          | ६३४ |                               |     |
| स्ववाक्यादिविरोधानां         | ७२८ | ह                             |     |
| स्वव्यापारबल्लेनैव           | ५५२ | हिमाचलादयो येऽपि              | २७८ |
| स्वसंवित्तिफलत्वं चेत        | ४०० | हेतवो भावधर्मास्तु            | ५१६ |
| स्वसंविदितरूपाश्च            | ७८४ | हेतावाद्येऽपि वैफल्यं         | २४१ |
| स्वसमानयवा सत्त्वान्         | ९०० | हेतुजन्यं न तत्कार्यं         | २५  |
| स्वसाध्यायां समर्थं चेत      | ४७७ | हेतुधर्मप्रतीतिश्च            | ४१७ |
| स्वसामान्यात्मनोर्युक्तं     | ३८७ | हेतुसामग्र्यभावाच्च           | ९०८ |
| स्वस्मिन्नपि हि दुःखस्य      | ३९६ | हेतोः पूर्वोदितादेव           | ५९२ |
| स्वस्य स्वस्यावभासस्य        | ३६५ | हेत्वर्थः करणार्थश्च          | ३३३ |
| स्वहेतुनियतोद्भूतिः          | ४१३ | हेमार्थिनस्तु माध्यस्थ्यं     | ५०१ |
| स्वहेतुबलसम्भूता             | ७८  | हेम्नोऽनुगमसाम्येन            | ५०३ |
| स्वहेतोर्यदि भावानां         | १५३ | हेम्नोऽवस्थितरूपत्वे          | ”   |
| स्वातन्त्र्येण च सम्बुद्धः   | ९१५ | हेयोपादेयविषय०                | ३६८ |
| स्वातन्त्र्येण तु मर्त्यत्वं | ९१६ | ह्यः समर्थः समर्थात्मा        | २६० |
| स्वातन्त्र्येण प्रसङ्गेन     | २०३ | ह्यस्तनाद्यतनाद्याश्च         | ६७३ |
|                              |     | ह्यस्तनाद्यतनाः सर्वे         | ६७० |

तत्त्वसंग्रहे निबन्धकारेण स्वकृतेरधिभागेन  
प्रथितानां परवचनानामनुक्रमणिका ।



† इदं विहं भाकरस्थपाठान्तरस्य ज्ञापकम् ।

| त० पत्र  | निबन्ध                               | कर्त्ता   | पत्र           |
|----------|--------------------------------------|-----------|----------------|
| <b>अ</b> |                                      |           |                |
| ६४०      | अंशो ह्येतस्य                        | श्लो० वा० | कुमारिलः ८१९   |
| २९२      | अगोनिवृत्तिः                         | "         | " ५६६          |
| २९९      | अगोशब्दा०                            | "         | " ५८७          |
| ४२२      | अग्निधूमा०                           | "         | " ३९३          |
| ६१९      | अज्ञात्वा क०                         | "         | " ७९२          |
| ६०३      | अतोऽतीन्द्रि०                        | "         | " ७४२          |
| ७६९      | अतो यत्रा०                           | "         | " ७२           |
| ६१३      | अत्र ब्रूमो                          | "         | " ७७५          |
| ८३२      | अथ तद्वचने० (अनुवादः)                | स० द० सं० | माधवाचार्यः २३ |
| ५७७      | अथ यद्ग्राहकं<br>† तस्माद्यद्ग्रासकं | श्लो० वा० | कुमारिलः ३१६   |
| ३०२      | अथान्यथा                             | "         | " ५८९          |
| ३०९      | अथान्यापो०                           | "         | " ५९८          |
| ६१८      | अथान्योऽपि                           | "         | " ७९२          |
| ६०६      | अथापीन्द्रि०                         | "         | " ७४८          |
| ५९९      | अथाप्याका०                           | "         | " ७४४          |
| २९८      | अथासत्यपि                            | "         | " ५८५          |
| ६३६      | अथास्मदि०                            | "         | " ८११          |
| ६१४      | अधिष्ठाना०                           | "         | " ७७६          |
| ३११      | अनन्यापो०                            | "         | " ६०५          |
| ६३६      | अनित्यं त०                           | "         | " ८११          |
| ६४१      | अनित्यता                             | "         | " ८२०          |
| ६३७      | अनित्यत्वं                           | "         | " ८१२          |
| ६१५      | अनेकदेश                              | "         | " ७७७          |

| त० पत्र | निबन्ध                     | कर्ता     | पत्र         |
|---------|----------------------------|-----------|--------------|
| ६२६     | अन्धानन्ध                  | श्लो० वा० | कुमारिलः ६४८ |
| ६४०     | अन्यत्वे ध०                | "         | " ८१९        |
| ६२३     | अन्वथाऽनु०                 | "         | " ६४७        |
| ६१८     | अन्यस्मिन्                 | "         | " ७९१        |
| ७६५     | अन्यस्यापि                 | "         | " ६८         |
| ६०८     | अन्यार्थं प्रे०            | "         | " ७५१        |
| ६१४     | अन्ये तु चो०               | "         | " ७७५        |
| ६०८     | अन्यैस्ताल्वा०             | "         | " ७५१        |
| ६४२     | अपि चास्य<br>† तत्र चोक्तं | "         | " ८७६        |
| ३१६     | अपि चैक०                   | "         | " ६११        |
| ६१२     | अपूरिता०                   | "         | " ७७४        |
| ३०८     | अपोहमात्र०                 | "         | " ५९६        |
| २९८     | अपोहश्चा०                  | "         | " ५८५        |
| ३१२     | अपोह्यक०                   | "         | " ६०५        |
| २९७     | अपोह्यान०                  | "         | " ५८४        |
| ६२०     | अप्रतीता०                  | "         | " ७९३        |
| ६०६     | अप्राप्तकर्णं              | "         | " ७४८        |
| ६१४     | अप्सूर्यदर्शि०             | "         | " ७७६        |
| ६३९     | अबुद्धिपूर्व०              | "         | " ७३५        |
| ३०२     | अभावगम्य०                  | "         | " ५८९        |
| ४७३     | अभावशब्द०                  | "         | " ४९१        |
| ३०४     | अभावस्य च                  | "         | " ५९१        |
| ४७३     | अभावो वा                   | "         | " "          |
| ४५९     | अभिधानान्य०                | "         | " ४५२        |
| ६३५     | अर्थप्रतीति०               | "         | " ८१०        |
| ६२१     | अर्थवद्ग्रह०               | "         | " ७९६        |
| "       | अर्थवान् क०                | "         | " "          |
| ६१९     | अर्थवान् पू०               | "         | " ७९३        |
| ४५९     | अर्थापत्त्य०               | "         | " ४५२        |

| स० पत्र  | विषय                   | कर्ता         | पत्र           |
|----------|------------------------|---------------|----------------|
| ६३५      | अर्थाभिधान०            | श्लो० वा०     | कुमारिलः ८१०   |
| ५२६      | अवस्थादेश०             | वा० प० का० १० | भर्तृहरिः १६   |
| २९४      | असत्यपि च              | श्लो० वा०     | कुमारिलः ५७७   |
| ८३२      | असर्वज्ञप्र० (अनुवादः) | स० द० सं०     | माधवाचार्यः २३ |
| ६३७      | असिद्धे पक्ष           | श्लो० वा०     | कुमारिलः ८१७   |
| २८२      | अस्ति ह्या             | "             | " १६८          |
| <b>आ</b> |                        |               |                |
| ६४०      | आकाशम०                 | "             | " ७३७          |
| ६००      | आकाशश्रो०              | "             | " ७४५          |
| ३१०      | आख्यातेषु              | "             | " ६०४          |
| ९१०      | आगमस्य च               | "             | " ८२           |
| ७५६      | } आत्मलामे             | "             | " ६०           |
| ७०७      |                        | "             | "              |
| ६३३      | आनुपूर्वी च            | "             | " ८०६          |
| ६१३      | आहकेन                  | "             | " ७७५          |
| ६३९      | आहुः स्वभा०            | "             | " ७३६          |
| <b>इ</b> |                        |               |                |
| २९९      | इन्द्रियैर्नाप्य०      | "             | " ५८६          |
| ५९१      | इयं वा तंवि०           | "             | " ८३८          |
| <b>ई</b> |                        |               |                |
| ५६२      | ईदृशं वा प्र०          | "             | " ३२०          |
| ६१३      | ईषत्समीलि०             | "             | " ७७५          |
| <b>उ</b> |                        |               |                |
| ६०२      | उत्तरं श्रो०           | "             | " ७४६          |
| ७३२      | उत्तरावय०              | "             | " ८४२          |
| ६०४      | उत्पत्तिशक्ति          | "             | " ७६२          |
| ८३८      | उपदेशो हि (अनुवादः)    | स० द० सं०     | माधवाचार्यः २३ |
| ७३७      | उपायरहि०               | श्लो० वा०     | कुमारिलः ६७९   |
| <b>ऊ</b> |                        |               |                |
| ६५४      | ऊर्ध्ववृत्ति           | "             | " ७७६          |

| स० पत्र | शिवग्रन्थ        | कर्ता     | पत्र         |
|---------|------------------|-----------|--------------|
|         | ए                |           |              |
| ९८      | एकसन्तान         | श्लो० वा० | कुमारिलः ७२४ |
| ३००     | एकस्मात्तर्हि    | "         | " ५८७        |
| ५५५     | एकाकारं          | "         | " ३३१        |
| ६००     | एतदेव प्र०       | "         | " ७४६        |
| ४४४     | एकस्मिन्नुप      | "         | " ४३४        |
| ६३५     | एतेषामस्त्व०     | "         | " ८११        |
| ६३३     | एवं ध्वनिगु०     | "         | " ८०६        |
| ६१५     | एवं प्राङ्गु०    | "         | " ७७७        |
|         | † प्राग् भू      | "         | " ६४९        |
| ६२६     | एवमेवेन्द्रि०    | "         | " ७२४        |
| ९७      | एव वा ह्यस्तनो   | "         | " ७२४        |
|         | † ह्यो भवे       | "         | " ७६२        |
|         | क                |           |              |
| ६०४     | कर्णव्योमनि      | "         | " ६९         |
| ७५७     | कस्यचित्तु       | "         | " ७९३        |
| ६१९     | कस्य चैकस्य      | "         | " ८१८        |
| ६३८     | कार्या चैन्द्रि० | "         | " ४७४        |
| ४७६     | कार्यादीनाम०     | "         | " ८०६        |
| ६३३     | कालश्चैको        | "         | " ५७९        |
| २९६     | किमुतावस्त्व०    | "         | " ४३३        |
| ४४४     | कीदृगवय          | "         | " ७६३        |
| ६०४     | कुट्यादिप्र०     | "         | " ७७६        |
| ६१४     | कूपादिषु         | "         | " ८२१        |
| ५९४     | कृत्रिमत्वे च    | "         | " ८१७        |
| ६३७     | केवलैन्द्रिय०    | "         | " ४७३        |
| ४७१     | क्षीरे दध्यादि   | "         | " ५१७        |
|         | ग                |           |              |
| ५९६     | गकारोत्पन्त      | "         | " ७७४        |
| ६१६     | गतिमद्ग०         | "         | " ७७४        |

| सं० पत्र | निकल्थ           | कर्ता      | पत्र |
|----------|------------------|------------|------|
| ४५९      | गवयोपमि०         | कुमारिष्ठः | ४५१  |
| ४७१      | गवियोऽश्वा०      | "          | ४७३  |
| ३००      | गव्यसिद्धे०      | "          | ५८८  |
| ५९८      | गृह्णन्ति य०     | "          | ५२०  |
| ४६०      | गेहाभावस्तु      | "          | ४५५  |
| ५९१      | गोशब्दबु०        | "          | ८३८  |
| ७१३      | गोशब्देऽवस्थि०   | "          | ७१९  |
| ५७७      | ग्राह्यं त       | "          | ३१६  |
| <b>घ</b> |                  |            |      |
| ६३०      | घटादिरच०         | "          | ८०३  |
| <b>च</b> |                  |            |      |
| ३११      | चादीनामपि        | "          | ६०४  |
| ५७७      | चैत्रज्ञानं      | "          | ३१६  |
| ६४४      | चोदना ज०         | "          | १०२  |
| <b>ज</b> |                  |            |      |
| ६१२      | जलादिषु यथै०     | "          | ७७४  |
|          | † जलपात्रेषु चै० | "          | ८०४  |
| ६३१      | जात्या यथा       | "          | ८४१  |
| १६८      | जायमानश्च        | "          | ४५५  |
| ४६०      | जीवतश्च          | "          | ७२०  |
| १०९      | ज्ञातरि प्र०     | "          | ७८०  |
| ६१६      | ज्ञातैकत्वो      | "          | ३१६  |
| ५७७      | ज्ञानं स्वाशं    | "          | ६४८  |
| ६२५      | ज्ञानं हि पु०    | "          | ६४७  |
| ६२५      | ज्ञापकत्वाद्धि   | "          | ८३६  |
| ५९१      | ज्वालादेः क्ष०   | "          | ८४२  |
| ७३१      | ज्वालादेरपि      | "          | १७२  |
| ३८५      | ततः परं          | "          | ८४५  |
| ७३२      | ततोऽपि यद्       | "          | ८०५  |
| ६३१      | तत्र तात्वादि    | "          |      |

| त० पत्र | विषय             | कर्ता    | पत्र |
|---------|------------------|----------|------|
| ६०३     | तत्र दूरस०       | कुमारिलः | ७६०  |
| ४५७     | तत्र प्रत्यक्ष०  | "        | ४५१  |
| १००     | तत्र बोधा०       | "        | ८३५  |
| ४४४     | तत्र यद्यपि      | "        | ४४४  |
| ६३८     | तत्र यद्यप्य०    | "        | ८१८  |
| ३०६     | तत्र शब्दान्त०   | "        | ५९३  |
| ६२५     | तत्र सम्बन्ध     | "        | ६४७  |
| ७३४     | तत्रापि श०       | "        | ६७४  |
| ३०५     | तत्रासतो         | "        | ५९१  |
| ६३८     | तत्रासाधा०       | "        | ८१८  |
| ६४४     | तथानाप्ता०       | "        | १०२  |
| ६२३     | तथाप्याकृ०       | "        | ६४६  |
| ९९      | तथैव नि०         | "        | ८३४  |
| ६११     | तथैव य०          | "        | ७५२  |
| २९६     | तथैवाधार०        | "        |      |
|         | † तेनैवा         | "        | ५७९  |
| ७९६     | तदा न व्या०      | "        | ६६   |
| ४५८     | तदुच्चारण        | "        | ४६५  |
| ४२२     | तद्देशस्थेन      | "        | ३९२  |
| ६११     | तद्भावभा०        | "        | ७६२  |
| ११०     | तन्नाहं प्रत्य०  | "        |      |
|         | † न चाहं         | "        | ७२०  |
| ६०३     | तस्माच्छ्रोत्रि० | "        | ७६१  |
| १६९     | तस्मात्प्राकार्य | "        | ८४१  |
| ५९४     | तस्मादकृ०        | "        | ८२२  |
| ५२८     | तस्मादुच्चा०     | "        | ५२२  |
| ६०९     | तस्मादुत्प०      | "        | ७५१  |
| ७९८     | तस्माद्गुणेभ्यो  | "        | ६६   |
| ६१०     | तस्माद्दिग्      | "        | ७६९  |
| ४४५     | तस्माद्यत्       | "        | ४४४  |

| सं० पत्र | विषय               | कर्ता     | पत्र     |     |
|----------|--------------------|-----------|----------|-----|
| ४५८      | तस्माद्वाक्या०     | श्लो० वा० | कुमारिलः | ४६५ |
| ३१६      | तस्माद्येष्वे      | "         | "        | ६११ |
| ६३४      | तस्मान्न पद—       | "         | "        | ८०७ |
| ६०५      | तस्य चक्रम—        | "         | "        | ७६३ |
| २९३      | तस्यां चाश्वा०     | "         | "        | ५७६ |
| ६०४      | तस्यात्माव०        | "         | "        | ७६१ |
| ६००      | तस्यानवय०          | "         | "        | ७४५ |
| ४६०      | तामभावो०           | "         | "        | ४५२ |
| ६३१      | ताल्वादि           | "         | "        | ८०४ |
| ७६८      | तावता चै०          | "         | "        | ७२  |
| ५९५      | तावत्कालं          | "         | "        | ८२३ |
| ६१९      | तेजः प्रत्यक्ष     | "         | "        | ७९३ |
| ६०५      | तेनाकाशौ०          | "         | "        | ७४७ |
| ७६८      | तेनात्र ज्ञा०      | "         | "        | ७१  |
|          | † स्य              | "         | "        | ७१  |
| ६१६      | तेनात्रैव          | "         | "        | ७८५ |
| ६१२      | तेनाविच्छिन्न      | "         | "        | ७७३ |
| ६३९      | तेनासदृश           | "         | "        | ६३६ |
| ६२०      | तेनासम्बन्ध        | "         | "        | ७९५ |
| ६३०      | तेनेयं व्यव०       | "         | "        | ८०२ |
| ५९६      | तेनैकत्वेन         | "         | "        | ८५५ |
| ९९       | तेनोपनेतृ          | "         | "        | ८३४ |
| ६३१      | तेषां च जात०       | "         | "        | ८०५ |
|          | द                  |           |          |     |
| ६१०      | दिक् च सर्वं       | "         | "        | ८०५ |
| ६०९      | दिशः श्रोत्र०      | "         | "        | ७६८ |
| ६२१      | देशकालादिभिन्नां   | "         | "        | ७९५ |
| ५९२      | देशकालादिभिन्ना वा | "         | "        | ८३८ |
| ६१५      | देशमेदेन           | "         | "        | ७८० |
| ५७७      | द्वयं परस्परे०     | "         | "        | ३१६ |



| सं. पत्र                   | शिवम्भ    | कर्ता       | पत्र |
|----------------------------|-----------|-------------|------|
| ५९६ द्वयसिद्धिस्तु         | श्लो० वा० | कुमारिलः    | ५१६  |
| ५९० द्वेषादसम्म०           | "         | "           | ७०४  |
| <b>थ</b>                   |           |             |      |
| ६२९ धर्ममात्र०             | "         | "           | ८०१  |
| <b>न</b>                   |           |             |      |
| ३०६ न गम्यगम०              | "         | "           | ५९४  |
| ९५ न च कर्तृत्व            | "         | "           | ६९५  |
| ६२९ न च क्रमस्य            | "         | "           | ८०१  |
| ६२८ न च क्रमादि०           | "         | "           | "    |
| ६०२ न च पर्यनु०            | "         | "           | ७४१  |
| ४७२ न च स्याद्वय०          | "         | "           | ४७४  |
| ८३१ न चागमविधिः (अनुवादः)  | सं द० सं० | माधवाचार्यः | २३   |
| २९८ न चादर्शन              | श्लो० वा० | कुमारिलः    | ५८५  |
| ६१७ न चादृष्टार्थ          | "         | "           | ७९१  |
| ६३४ न चानित्या             | "         | "           | ८०९  |
| ३०२ न चान्यरूप०            | "         | "           | ५८९  |
| २९७ न चान्वयवि०            | "         | "           | ५८५  |
| २०५ न चापि वास०            | "         | "           | ५९२  |
| ३१२ न चाप्यपोह्य०          | "         | "           | ६०५  |
| ३०१ न चाप्यश्वादि०         | "         | "           | ५८९  |
| ५९९ न चाप्याधार            | "         | "           | ७४४  |
| २९७ न चाप्रसिद्ध           | "         | "           | ५८४  |
| ४७२ न चावस्तुन             | "         | "           | ४७४  |
| १०६ न चावस्था०             | "         | "           | ६९६  |
| १०९ न चासाधा.....न्यञ्च    | "         | "           | ५९७  |
| ३०१ न चासाधा.....पोहवत्तया | "         | "           | ५८८  |
| ३०३ न चासाधार.....बुद्धौ   | "         | "           | ५९०  |
| ६२१ न तावदर्थवन्तं         | "         | "           | ७९६  |
| ६२९ न तावदानु०             | "         | "           | ८०१  |

| स० पत्र | विषय                         | कर्त्ता   | पत्र         |
|---------|------------------------------|-----------|--------------|
| २९६     | ननु चाश्नादि.<br>† पोद्य     | श्लो० वा० | कुमारिलः ५७८ |
| २९१     | ननु ज्ञानफलाः<br>† अर्थ      | का० ल०    | भामहः २३६    |
| २१०     | ननु नैव परो<br>† न चाप्ये    | श्लो० वा० | कुमारिलः ८२  |
| ७६७     | ननु प्रमाण०                  | "         | " ७०         |
| ५९७     | ननु यस्य                     | "         | " ५१९        |
| ३४९     | ननु व्यक्तौ<br>† तत्र        | "         | " ६३७        |
| ३११     | न नेतिद्यु०                  | "         | " ६०४        |
| ६२८     | नन्वानुपूर्व्य०              | "         | " ८००        |
| ६०६     | नन्वेकस्मिन्न०               | "         | " ७४८        |
| ४५८     | न भेदो येन<br>" न रात्र्यादि | "         | " ४६५        |
| ३८५     | न विशेषो                     | "         | " १६९        |
| ७७०     | नहि तत् क्षण                 | "         | " १५१        |
| ३८६     | नहि प्रविष्ट                 | "         | " १७४        |
| ५९९     | नहि सामस्त्य०                | "         | " ७४४        |
| ७६८     | नह्यर्थस्या०                 | "         | " ७१         |
| १६८     | नह्यलब्धा०                   | "         | " ८४१        |
| ५९७     | नादेन संस्कृता०              | "         | " ५१२        |
| ४५८     | नानुमानं                     | "         | " ४६५        |
| ४०६     | नान्यथानुप०                  | *         |              |
| ३०८     | नापि तत्रैतर०                | श्लो० वा० | कुमारिलः ५९७ |
| ३०४     | नापोह्यत्व०                  | "         | " ५९१        |
| ६०५     | नावस्यं श्रोत्र०             | "         | " ७४७        |
| १६८     | नाशोत्पाद०                   | "         | " ८४०        |

| त० पत्र  | नियन्त्र         | कर्त्ता     | पत्र         |
|----------|------------------|-------------|--------------|
| ६०३      | नित्यं कार्या०   | श्लो० त्वा० | कुमारिकः ७४१ |
| ६०७      | निष्प्रदेशोऽपि   | "           | " ७४२        |
| २९२      | नेष्टोऽसाधार०    | "           | " ५६६        |
| १६७      | नैरात्म्यवाद     | "           | " ६९६        |
| ५९७      | नैव वा ग्रहणे    | "           | " ५१९        |
| <b>प</b> |                  |             |              |
| ६२८      | पदं वर्णाति०     | "           | " ८०१        |
| ६४१      | पदार्थपद०        | "           | " ८४५        |
| ६३४      | परधर्मेऽपि       | "           | " ८०८        |
| ४००      | परिच्छेदफल       | "           | " १५८        |
| ६३१      | परेणोक्तान्      | "           | " ८०३        |
| ६१६      | पर्यायादवि०      | "           | " ७८०        |
| "        | पर्यायेण         | "           | " "          |
| ५९४      | पार्थिवद्रव्य    | "           | " ८२२        |
| ४५७      | पीनो दिवा        | "           | " ४६३        |
| ६०७      | पुंसां देह       | "           | " ७४८        |
| ३८५      | पुनः पुनर्विन०   | "           | " १७३        |
| ६२८      | पुरुषाधीन०       | "           | " ८००        |
| १६८      | पूर्वक्षणवि०     | "           | " ८४०        |
| २९९      | पूर्वोक्तेन प्र० | "           | " ५८६        |
| ५६३      | प्रकाशकत्व       | "           | " ३२१        |
| ४४७      | प्रतिज्ञार्थैक   | "           | " ४४७        |
| ६३८      | प्रतिसङ्ख्या     | "           | " ७३५        |
| ४२२      | प्रत्यक्षदृष्ट०  | "           | " ३९२        |
| ४६८      | प्रत्यक्षद्रव्य  | "           | " ८३१        |
| ४७१      | प्रत्यक्षादेर०   | "           | " ४७५        |
| ४७७      | प्रत्यक्षाद्य०   | "           | " ४७८        |
| ४४६      | प्रत्यक्षेणा०    | "           | " ४४५        |
| "        | प्रत्यक्षेप्यथ   | "           | " "          |
| ६२७      | प्रत्युच्चारण    | "           | " ६४९        |

| त० पत्र | विवरण                          | कर्ता     | पत्र         |
|---------|--------------------------------|-----------|--------------|
| ६२२     | प्रत्येकं बाऽपि                | श्लो० वा० | कुमारिलः ६४२ |
| ६०२     | प्रत्येकाभिहि०                 | "         | " ७४६        |
| ७३३     | प्रभूतं वर्ति०                 | "         | " ८४२        |
| ७६७     | प्रमाणं ग्रहणा                 | "         | " ७०         |
| ४५८     | प्रमाणं तस्य                   | "         | " ४६५        |
| ४७०     | प्रमाणपञ्चकं                   | "         | " ४७३        |
| ४५६     | प्रमाणषट्क                     | "         | " ४५०        |
| ४६०     | प्रमाणाभाव०                    | "         | " ४५२        |
| ६४०     | प्रयत्नान्त०                   | "         | " ७३७        |
| २७१     | प्रागगौरिति<br>† पुराऽ         | का० ङ०    | भामहः २३६    |
| ४४६     | प्राग्गोतं<br>† प्राक्प्रमेयम् | श्लो० वा० | कुमारिलः ४४६ |
|         | ष                              |           |              |
| ४६०     | बहिर्देशवि०                    | "         | " ४५२        |
| ४९४     | बहुभिः श्रवणै०                 | "         | " ८२३        |
| ६०७     | बाधिर्यादि०                    | "         | " ७५०        |
| ६१७     | बुद्धितीव्रत्व                 | "         | " ७८५        |
| ९८      | बुद्धीनामपि                    | "         | " ८३३        |
|         | भ                              |           |              |
| ३०६     | भषङ्गिः शब्द                   | "         | " ५९२        |
| ६४३     | भारतेऽपि भ०                    | "         | " ९४९        |
| २९२     | भावान्तरात्म०<br>† भावान्तरम०  | "         | " ५६६        |
| २९५     | भिन्नसामान्य                   | "         | " ५७७        |
| ५९१     | भेदबुद्धिस्तु                  | "         | " ८३७        |
|         | म                              |           |              |
| ५९८     | मण्डूकवसया                     | "         | " ५२०        |
| "       | मधुरं तिक्कल०                  | "         | " "          |
| ६१७     | मन्दप्रकाशिते                  | "         | " ७८५        |

| त० पत्र                         | निबन्ध    | कर्त्ता   | पत्र |
|---------------------------------|-----------|-----------|------|
| ५९० ममाप्रमाणमि०<br>† सिद्धमिदं | श्लो० वा० | कुमारिलः  | ७३   |
| ४७३ मानं कथमभा०                 | "         | "         | ४८९  |
| <b>य</b>                        |           |           |      |
| ६२३ यं करोति नवं                | "         | "         | ६४५  |
| ६१८ यतः प्रवृत्त इ०             | "         | "         | ७९२  |
| ४२६ यत्नेनानुमितो               | वा० प०    | भर्तृहरिः | १६   |
| ७६५ यत्रापि स्यात्              | श्लो० वा० | कुमारिलः  | ६७   |
| ६३७ यथाकथञ्चित्                 | "         | "         | ८१३  |
| ४९३ यथा कल्माष                  | "         | "         | ५६१  |
| ६०२ यथा घटादेः                  | "         | "         | ४७९  |
| ६०७ यथा तत्र भव०                | "         | "         | ७५०  |
| ३८६ यथात्वाभास०                 | "         | "         | १७४  |
| ७६६ यथात्वेकेन्द्रिया०          | "         | "         | ७९   |
| ६११ यथा महत्यां                 | "         | "         | ७८५  |
| ५९८ यथा वेगेन धा०               | "         | "         | ५१०  |
| ९९ यथा वा दर्पणः                | "         | "         | ८३४  |
| ५९५ यथा शस्त्रादि०              | "         | "         | ८४४  |
| ६३२ यथैव भ्रमणा०                | "         | "         | ८०५  |
| ६२९ यथैवास्य परै०               | "         | "         | ८०२  |
| ६११ यथैवोत्पद्यमा०              | "         | "         | ७५२  |
| ३०३ यदा चाशब्द०                 | "         | "         | ५९०  |
| ४९४ यदा तु शबलं                 | "         | "         | ५६२  |
| ६३९ यदा विलक्षणो                | "         | "         | ७३६  |
| २९१ यदि गौरिति                  | का० लं०   | भामहः     | २३६  |
| ६२३ यदि तस्यापि०                | श्लो० वा० | कुमारिलः  | ६४६  |
| ३८६ यदि त्वालोच्य               | "         | "         | १७४  |
| २९५ यदि वा मिद्यमा०             | "         | "         | ५७८  |
| ३८७ यदि ह्येकान्ततो             | "         | "         | १७८  |
| ६२३ यद्यपि ज्ञात                | "         | "         | ६४६  |

| त० पत्र                         | निबन्ध    | कर्ता     | पत्र |
|---------------------------------|-----------|-----------|------|
| ६०६ यद्यपि व्यापि चै०           | श्लो० वा० | कुमारिलः  | ७४७  |
| ३०२ यद्यप्यपोह                  | "         | "         | ५९०  |
| ४७३ यद्वानुवृत्तिव्या०          | "         | "         | ४७५  |
| ६०९ यद्वा वेदानुसा०<br>† ततो    | "         | "         | ७६८  |
| ६१० यावांश्च कणमु०              | "         | "         | ७६८  |
| ६०९ येषां त्वप्राप्त<br>ल       | "         | "         | ७६०  |
| ३१० लिङ्गसङ्ख्या<br>व           | "         | "         | ६०३  |
| ६३५ वक्तव्यं चैषकः              | "         | "         | ८१०  |
| ६२३ वक्तृश्रोतृधियोः            | "         | "         | ६४४  |
| ३४९ वनशब्दः पुनः                | "         | "         | ६३७  |
| ५९६ वर्णत्वाच्चापि              | "         | "         | ५१८  |
| ६३५ वर्णादन्योऽथ                | "         | "         | ८११  |
| ६३० वर्णानामपि                  | "         | "         | ८०२  |
| ६२८ वर्णाः सर्वगत०              | "         | "         | ८००  |
| ६३३ वर्णेषु व्यज्यमा०           | "         | "         | ८०७  |
| २९४ वस्तुरूपा च सा०             | "         | "         | ५७७  |
| ३०६ वाचकानां यथा                | "         | "         | ५९३  |
| ४२६ विज्ञातशक्तेर<br>† निर्ज्ञा | वा० प     | भर्तृहरिः | १६   |
| ६२५ विद्यमानस्य चा०             | श्लो० वा० | कुमारिलः  | ६४७  |
| ३०७ विधिरूपश्च श०               | "         | "         | ५९४  |
| ३११ विध्यादावर्थ०               | "         | "         | ६०४  |
| ६२५ विरुद्धौ सदस०               | "         | "         | ६४७  |
| ३०८ विशेषणविशे०                 | "         | "         | ५९६  |
| ६१० त्रिषयस्यापि                | "         | "         | ७५१  |
| ७३७ वृद्धानां दृश्य०            | "         | "         | ६७९  |
| ३०७ वृष्टिमेघासतो               | "         | "         | ५९४  |

| त० पत्र                         | मिदन्ध    | कर्ता   | पत्र |
|---------------------------------|-----------|---------|------|
| ६४३ वेदस्याव्यय०                | स्रो० वा० | कुमारिः | ९५९  |
| ५९३ व्यक्तीनामेकता              | "         | "       | ६३९  |
| ६३२ व्यक्तीनामेव वा             | "         | "       | ८०६  |
| ६१२ ध्युञ्जकधन्य०               | "         | "       | ७७३  |
| ६०८ व्यञ्जकानां हि०             | "         | "       | ७५०  |
| ४६८ व्यञ्जकाभावत०               | "         | "       | ८३१  |
| ९७ व्यसीताहङ्कृति<br>† ह्यस्तना | "         | "       | ७२४  |
| ७७० व्यापारः कारणा०<br>† का०    | "         | "       | १५१  |
| ५६२ व्यापृतं ह्यर्थं            | "         | "       | ३२०  |
| <b>श</b>                        |           |         |      |
| ६२३ शक्तिरेव हि                 | "         | "       | ६४६  |
| ६२६ शक्त्यशक्तयो०               | "         | "       | ६४८  |
| ६२० शब्दं तावदनु०               | "         | "       | ७९५  |
| ७३६ शब्दार्थानादितां            | "         | "       | ६७९  |
| ३०३ शब्दनागम्यमा०               | "         | "       | ५९०  |
| ६२० शब्दोच्चारणस०               | "         | "       | ७९५  |
| ६११ शब्दोत्पत्तेर्निषि०         | "         | "       | ७६२  |
| २९९ शाबलेयाञ्च                  | "         | "       | ५८६  |
| ५९४ शाबलेयादिख०                 | "         | "       | ८२३  |
| ४७२ शिरसोऽवयवा                  | "         | "       | ४७३  |
| ६३३ श्रोतुः कर्तुं च स०         | "         | "       | ६४५  |
| ६०८ श्रोत्रशब्दाश्च०            | "         | "       | ७५०  |
| ६०० श्रोत्रस्य चैव०             | "         | "       | ४७५  |
| <b>स</b>                        |           |         |      |
| ४६६ संबद्धस्य प्रमा०            | "         | "       | ४७०  |
| ५९४ संमुखानेक                   | "         | "       | ८२२  |
| ५५५ संवित्तेश्च विरु०           | "         | "       | ३३१  |
| २९६ संसर्गिणोऽपि                | "         | "       | ५७९  |

| श० पत्र | निबन्ध  | कर्ता     | पत्र           |
|---------|---|-----------|----------------|
| २९५     | संसृष्टैकत्व                                    | श्लो० वा० | कुमारिलः ५७८   |
| ६११     | संस्कारद्वय<br>† द्वयसंस्कार                    | " "       | ७५२            |
| ६०१     | संस्कृतासंस्कृत०                                | " "       | ७४६            |
| ६००     | सकृच्च संस्कृतं०                                | " "       | ७४५            |
| ७३२     | संक्रान्ताव०                                    | " "       | ८४३            |
| ३००     | स चेदगोनित्०                                    | " "       | ५८७            |
| ५६२     | सति प्रकाशक०                                    | " "       | ३२०            |
| ९६      | सन्तानेऽपि न                                    | " "       | ७१९            |
| ४२२     | सन्दिह्यमान                                     | " "       | ३९३            |
| ६४०     | सपक्षोऽपि विक०                                  | " "       | ८१९            |
| ५७८     | सबहिर्देश                                       | " "       | २९१            |
| ६४२     | समयः प्रति                                      | " "       | ६४२            |
| "       | समयात् पुरुषा०                                  | " "       | ८७६            |
| ६४०     | समुद्गरप्रहा०                                   | " "       | ७३७            |
| ६२१     | सम्बन्धकथने                                     | " "       | ७९६            |
| ६२८     | सम्बन्धदर्शनं                                   | " "       | ७९१            |
| ६४२     | सम्बन्धाकरण                                     | " "       | ९४८            |
| ६२४     | } सम्बन्धाख्यान                                 | "         | ६४७            |
| ७०७     |   |           |                |
| ५९५     | सम्भाव्यतेऽस्य                                  | " "       | ८४४            |
| ८३२     | सर्वज्ञा बहवः कल्याः<br>† कल्पनीयाश्च सर्वज्ञाः | " "       | ८६             |
| ३२      | सर्वज्ञोक्ततया (अनुवादः)                        | स० द०     | माधवाचार्यः २३ |
| ८३०     | सर्वज्ञो दृश्यते                                | श्लो० वा० | कुमारिलः ८१    |
| ८३३     | सर्वज्ञो नाबबु०                                 | " "       | ८६             |
| ८३३     | सर्वज्ञोऽयमिति<br>† ज्ञोऽसाविति                 | " "       | "              |
| ७४०     | सर्वदा चैव पु०                                  | "         | ८८             |
| ८५७     | † चापि  |           |                |
| ६३५     | सर्वलोकप्रसि०                                   | " "       | ८१०            |



| सं० पत्र | निबन्ध                        | कर्ता     | पत्र        |
|----------|-------------------------------|-----------|-------------|
| ६२७      | सर्वेषामन०                    | श्लो० वा० | कुमारिल ६४९ |
| ६०४      | स संयोगावि०                   | "         | " ७६१       |
| ४४५      | मादृश्यस्य च<br>† स्यापि      | "         | " ४३८       |
| ७६६      | साधनान्तरज०                   | "         | " ६९        |
| ३११      | साध्यत्वप्रत्यय०              | "         | " ६०४       |
| ३०८      | सामानाधिक०                    | "         | " ५९७       |
| ४४५      | सामान्यवृद्धिसा०              | "         | " ४४४       |
| २९३      | सामान्यं वस्तुरू०             | "         | " ५७६       |
| ५९८      | सा हि स्यात् श०               | "         | " ७४४       |
| ३००      | सिद्धश्चागौर०                 | "         | " ५८७       |
| १०५      | सुखदुःखाद्यव०                 | "         | " ६९५       |
| ६१०      | सूर्यमस्य यथा                 | "         | " ७६८       |
| १००      | सैवेति नोच्यते                | "         | " ८३५       |
| ६०१      | स्थिरवायूप०                   | "         | " ७४६       |
| ८५       | स्यातां ह्यत्यन्त             | "         | " ६९४       |
| ७४५      | खतः सर्वप्रमा०                | "         | " ५९        |
| ६२२      | खतो नैवास्ति श०               | "         | " ६४२       |
| ५९८      | खतो ह्रस्वादि                 | "         | " ५२२       |
| ६१३      | स्वदेशमेव गृ०                 | "         | " ७७५       |
| ४७६      | स्वरूपपर०                     | "         | " ४७६       |
| ३०१      | स्वरूपसत्त्व०                 | "         | " ५८८       |
| ९९       | स्वरूपेण तथा                  | "         | " ८३४       |
| १०६      | स्वरूपेण ह्यव०                | "         | " ६९६       |
| ६३४      | स्ववाक्यादिवि०                | "         | " ८०९       |
| ४००      | स्वसंवित्तिपु०                | "         | " १५८       |
| ६३९      | स्वाभाविको वि०                | "         | " ७३६       |
|          | ह                             |           |             |
| ५९२      | ह्यस्तनोच्चारणो<br>† च्चारितः | "         | " ८३७       |

**तत्त्वसङ्ग्रहपञ्चिकायामनूदितानां वचनानाम-  
करादिक्रमेणाकरानुक्रमणिका**

† एतद्दृष्टिसं आकरनिबन्धस्थं पाठान्तरं तत्र तत्र बोध्यम् ।

| पत्र | पंक्ति   | निबन्ध  | कर्त्ता                      |                |
|------|----------|---|------------------------------|----------------|
|      | <b>अ</b> |   |                              |                |
| ५९३  | २२       | अंशो ह्येतस्य जास्याख्यः                      | श्लो० वा० प० ८१९             | कुमारिलः       |
| ७४३  | १६       | अकर्तृकत्वसिद्धया च                           | ” प० १०२                     | ”              |
| ६४३  | १४       | अग्निरावश्चकुः...नाङ्गिरसः                    |                              |                |
| १०४  | १८       | } अग्निर्दहति नाकाशं                          |                              |                |
| ५६३  | ६        |   |                              |                |
| ४७६  | १०       | अज्ञातेऽर्थे बुद्धे...रनुमीयते                |                              |                |
| ३५९  | ९        | अज्ञेयं कल्पितं                               |                              |                |
| ४१   | १२       | अज्ञो जन्तुरनीशो                              | भा० व० अ० ३० श्लो० २८        | व्यासः         |
| ३३०  | १२       | * अतद्रूपपरावृ                                |                              | धर्मकीर्तिः    |
| ५०५  | २४       | अतीतं चेद्भिक्षवो...गच्छति                    |                              | भगवान्         |
| ९२   | १२       | अथ निरात्मकमिति...विरोधः                      | न्या० वा० प० ३४६             | उद्योतकरः      |
| ६३६  | ३        | अथ वा प्रतित<br>...शब्दः                      | म० भा० अ० १ पा० १<br>आ१ प० ८ | पतञ्जलिः       |
| ५८२  | १३       | अथवा शक्त्यर्पणा...त्ययविरोधः                 |                              | दिङ्नागाचार्यः |
| ६९७  | २६       | अथापि स्यादेकस्य...देशस्य<br>† यत्तु एकदेशस्य | मी० भा० पू० ष० प० ३१         | शबरस्वामी      |
| ३०७  | १६       | अदृष्टेरन्यशब्दार्थे                          |                              |                |
| ५७२  | १०       | अधातुकनकाकाश                                  |                              |                |
| १४   | ६        | अनवराप्रो...जातिसंस्कारः                      |                              | भगवान्         |
| १२८  | २२       | अनित्यत्वेन यो वाच्यः                         |                              |                |
| ३२   | २६       | अनुत्पन्ना...रनुत्पन्नत्वात्                  |                              |                |

\* इदं च वचनं विद्यानन्दापरनामकपात्रकेसरिस्वामिविरचितायामासमीमांसाव्याख्यायां धर्मकीर्तेर्बचनमित्यनूदितम् । Satischandra Vijaybhushan's Indian Logic, p. 187-ftn.

| त०पत्र | वंक्ति                              | निबन्ध            | कर्ता            |
|--------|-------------------------------------|-------------------|------------------|
| ४२३    | ४ अनुमानं ज्ञात...गति-<br>स्मरणात्  | मी०भा०पू०ष०प०११   | शबरस्वामी        |
| २८९    | १६ अनुमानं विवक्षायाः               |                   |                  |
| १२     | २७ अनुमानाश्रयो                     |                   |                  |
| १६६    | २२ अनेनैव कृतं कर्म                 |                   |                  |
| २७४    | ८ अन्यतरकर्मजः....<br>संयोगः        | वै० द० ७-१-९      | कणादः            |
| ४७९    | १३ अन्यथार्थस्य नास्तित्वं          |                   |                  |
| ८५२    | २ अन्यथैकनिवृत्त्या                 |                   |                  |
| ३४५    | १ अन्यथैकेन शब्देन                  |                   |                  |
| २८०    | १६ अन्यथैवाग्निस०                   |                   |                  |
| १८४    | ९ अन्यस्मरणभोगादि                   |                   |                  |
| ३७१    | ११ अन्ये त्वर्थशून्यै ..रुच्यते     |                   |                  |
| २०६    | २० अपरं परं लिङ्गानि                |                   |                  |
| २९४    | १६ अपोद्गारे पदस्यायं               |                   |                  |
| ३०७    | २४ } अपोह्यभेदाद्भिन्ना             |                   |                  |
| २९६    | २ }                                 |                   |                  |
| ४७२    | १६ अक्षु गन्धो रसश्चाग्नौ           | श्लो० बा० प ४७४   | कुमारिलः         |
| ४७१    | ९ अभावोऽपि...असन्निकृष्टस्य         | मी०भा०पू०प०१२     | शबरस्वामी        |
| ९२८    | ७ अभिज्ञानमभिज्ञेयं                 |                   |                  |
| ६०४    | १९ अभिपातेन प्रेरिता<br>...नोपरतेषु | मी०भा०पू०प० ३०    | शबरस्वामी        |
| ५४४    | ४ अभ्यासयोगेन                       |                   |                  |
| ७१३    | २० अम्बान्बेति यदा बालः             | वा०प०का०१प०६०     | भर्तृहरिः        |
| ४८६    | २४ अर्थक्रियासमर्थं                 |                   |                  |
| १५२    | १३ अर्थक्रियाऽसमर्थस्य              |                   |                  |
| ४००    | १० अर्थक्रियार्थं हि...प्रेक्षावान् |                   |                  |
| ३४८    | १० अर्थजाल्यभिधानेन                 | वा० प० का० ३ प०१६ | भर्तृहरिः        |
| ४०९    | १४ अर्थापत्तेश्च शाबर्था            |                   | आचार्यदिङ्नागः ? |

| पत्र | पंक्ति | निबन्ध                                      | कर्ता               |
|------|--------|---|---------------------|
| २७६  | २७     | अवाचकत्वे शब्दानां                          | न्या० वा० प० ३३०    |
| ६६४  | १३     | } अविनाशी वारेऽयमात्मा                      | वृ० उ० ४. ५. १४     |
| ७४३  | ५      |   |                     |
| ४०   | ३      | अविभागाद्वैश्व                              | सा० का० श्लो० १५    |
| ६६४  | १२     | } अशीर्यो नहि शीर्यते                       | वृ० उ० ४. ५. १५     |
| ७४३  | ५      |   |                     |
| ९३३  | १      | अष्टौ क्षान्तयः...सत्यामिसमयः               |                     |
| ५५७  | १२     | } असतः प्रागसामर्थ्यात्                     |                     |
| १६४  | १      |   |                     |
| १८   | १६     | असदकरणात्                                   | सा० का० श्लो० ९     |
| १७३  | ६      | अस्ति कर्मास्ति फलं<br>...उत्पद्यते         |                     |
| ५१८  | १३     | अस्ति तत्कर्म विपरिणतम्<br>आ                | भगवान्              |
| ५७८  | १४     | अकारवान्... }<br>मुपलभ्यते                  | मी० भा० पू० पत्र १० |
| २८१  | २४     | आकृतिर्जाति                                 | न्या० द० २. २. ६९   |
| १४२  | २०     | आत्मलाभानन्तर...क्षणिकः                     |                     |
| १३०  | २१     | आत्मानमनभ्यु<br>...सर्वथाऽस्त्यात्मा }<br>} | *न्या० वा० प० ३४१   |
| ७३९  | २५     | आमन्द्रैरिन्द्र...रोमभिः                    | ऋग्वेद ३.४५.१       |
| ५८२  | २२     | आलम्बनाधिपतिसम०                             |                     |
| २०२  | २६     | आश्रयाश्रितधर्म<br>...वर्तते                | न्या० वा० प० २१७    |
| ८१०  | २४     | आसीदिदं तमोभूतं<br>इ                        | मनु० स्मृ० १. ५.    |
| ८१   | १      | इच्छादयः...रूपादिबत्                        |                     |
| ३६७  | २४     | इतिकर्तव्यता लोके                           |                     |

| पत्र | पंक्ति                                       | निबन्ध                  | कर्त्ता           |                             |
|------|--|-------------------------|-------------------|-----------------------------|
| ११   | १३ इति हि मिश्रवो...भवति                     |                         | भगवान्            |                             |
| १४   | २६ इत्येते आनन्दपौराणाः<br>....प्रवर्तयितारः | }                       | "                 |                             |
| २७४  | ९ इन्द्रियार्थ...ज्ञानं                      |                         | न्या० द० १. १. ४  | गौतमः                       |
| ९२३  | ७ इहैव श्रमणः...ब्राह्मणैः                   |                         | भगवान्            |                             |
| उ    |  |                         |                   |                             |
| ६३४  | १६ उच्चरितमात्रे हि...युक्तम्                | मी० भा० पू० प० ३२       | शबरस्वामी         |                             |
| २३१  | १४ उत्क्षेपणमाकुञ्चनं...कर्माणि              | वै० द० १. १. ७          | कणादः             |                             |
| ८३९  | २३ उपदेशो हि...भवति<br>‡शा †न्ति             | }                       | मी० भा० पू० प० ५  | शबरस्वामी                   |
| ४४४  | ९ उपमानमपि...स्मरणस्य                        |                         | मी० भा० पू० प० १२ | शबरस्वामी                   |
| ८६०  | २३ उपलब्ध्य...संशयः                          |                         |                   |                             |
| ७३९  | १८ उपहा उदकं चूषति<br>....स्वगोत्राम्        | ‡आप० श्रां० सू० २२.१३.२ | आपस्तम्बः         |                             |
| ७४३  | १२ उभयमिह चोदनया                             | मी० भा० पू० प० ६        | शबरस्वामी         |                             |
| ऊ    |  |                         |                   |                             |
| ७६   | ४ ऊर्णनाभ इवाशूनाम्                          |                         |                   |                             |
| ऋ    |  |                         |                   |                             |
| २३१  | १९ ऋजुनो बाह्वा<br>....कुञ्चनम्              | }                       | वै० द० भा० प० २९१ | प्रशस्तापादः                |
| ए    |  |                         |                   |                             |
| २१०  | २० एकद्रव्यमगुणं<br>....कारणम्               | }                       | वै० द० १०. १०. १७ | कणादः                       |
| ५३९  | १५ एकमेवेदं यानम्<br>....यानम्               |                         | }                 | ‡सद्दर्शपुण्डरीके १३२ पत्रे |
| १०२  | ११ एकयाऽनेकवि०                               |                         |                   |                             |
| ४१७  | २४ एकसामग्र्यधीन                             |                         |                   |                             |

‡ उपबहाव उदकं पिबेदित्यादिः पाठमेव आदर्शपुस्तके

‡ आदर्शपुस्तके तु पःठमेवो वर्तते

| पत्र     | पंक्ति  | निबन्ध                 | कर्त्ता     |
|----------|---|------------------------|-------------|
| २०५      | १३ एकस्मिन्नवयवि०<br>नि...नुपपन्नौ }                            | *न्या०वा०पत्र०२१६ प०१६ | उद्योतकरः   |
| ५७       | १० एकाधिष्ठाना...पारतन्त्र्यम्                                  |                        | प्रशस्तमतिः |
| १२६      | ३ एकः पुद्गलः...तथागतः  |                        |             |
| ५२३      | २२ एतावानेव पुरुषो  |                        |             |
| १९२      | २६ एवं धर्मेर्विना...कृतः                                       |                        |             |
| ३८६      | १७ एवं समानेऽपि...प्रसिद्धम्                                    | श्लो० वा० प० २०७       | कुमारिलः    |
| ७१३      | २१ एवं साधौ प्रयोक्तव्ये  | वा० प० का० १ पत्र ६    | भर्तृहरिः   |
| ८८       | १९ एवमपि यथोक्त...अनेकान्तिकः                                   |                        | भाषिणिकः    |
| १८४      | १९ एवमस्य केवलस्य...भवति  |                        |             |
| ५८३      | १८ एषामैन्द्रियक  | श्लो० वा० प० ४९        | कुमारिलः    |
| <b>क</b> |   |                        |             |
| ५०५      | १७ कतमद्द्वयं चक्षु...धर्माः                                    |                        | भगवान्      |
| ५६१      | ११ कथं तद्ग्राहकं   |                        | शुभगुप्तः   |
| १३       | २१ कथं नु शाश्वतो...सङ्क्रमते                                   |                        | भगवान्      |
| ८९       | २१ कर्तुः प्रसिद्धिः }  | पा०सू०२. २. १४         | पाणिनिः     |
| ६९३      | १९ कर्मणि च }   |                        |             |
| ५२१      | १९ कायादेव  |                        |             |
| ४३०      | २० कार्यकारणभावा  | ‡प्रमाणवार्तिककारिका   | धर्मकीर्तिः |
| ४८       | १३ कार्यत्वान्यत्वलेशे  | xप्र० स०               | दिङ्नागः    |
| ४७६      | २१ कार्यादीनामभा०   | श्लो० वा० प० ४७४       | कुमारिलः    |
| ४०४      | २४ कृतकत्वाद्गुनि   |                        |             |
| ८१९      | २७ कृत्यव्युटो  | पा० सू० ३. ३. ११३      | पाणिनिः     |
| १४२      | १० क्षणिक इतिमत्व...युक्तम्<br>†यश्चायं क्षणिक इति मत्वर्थायः } | *न्या० वा० प० ४१८      | उद्योतकरः   |
| ११       | ५ क्षणिकाः सर्वसंस्काराः  |                        |             |

\* भावार्थे मुद्रिते पुस्तके पाठक्रमे भेदो दृश्यते

‡ विज्ञायते चैतद् सतीशचन्द्रविद्याभूषणभद्राचार्यस्य लेखे

History of Indian Logic p. 376.

x विज्ञायते चैतद् तत्रैव Ibid p. 135.

| पत्र       | पंक्ति                                       | निबन्ध           | कर्ता     |
|------------|--|------------------|-----------|
| ९८<br>७७१  | २० }<br>७ } क्षणिका हि सा...मवलिष्टते        |                  |           |
| ४७२        | १४ क्षीरे दधि भवेदेवम्                       | श्लो० वा० प० ४७४ | कुमारिलः  |
| २९२        | १३ क्षीरे दध्यादि यन्नास्ति                  | ,, प० ४७३        | ,,        |
|            | ग  |                  |           |
| २३९        | ४ गवादिध्वनुवृत्ति...व्यपदिश्यमानः           | न्या० वा० प० ३३६ | उद्योतकरः |
| २९२        | १४ गवि ह्यश्नाद्यभावश्च                      | ,, प० ४७३        | ,,        |
| ४३८        | २३ गिरामेकार्थनियमे                          |                  |           |
| २८१        | २१ गुणविशेषाणां                              |                  |           |
| २१६        | १६ गेहो यद्यपि संयो                          |                  |           |
| ७१३        | १४ गोशब्देऽवस्थिते                           | श्लो० वा० प० ७९९ | कुमारिलः  |
| ५६८        | १६ ग्राह्यं न तस्य                           |                  |           |
| ५३०        | १६ ग्राह्यताया न स्वत्व०                     |                  |           |
|            | घ  |                  |           |
| १४<br>५१८  | १ }<br>२५ } चक्षुरुत्पद्यमानं...गच्छति       |                  |           |
| १२         | १२ चक्षुर्विज्ञानसङ्गी...नीलम्               |                  |           |
| ४६         | १५ चक्षुःस्पर्शनाभ्या...मुत्पद्यते           |                  |           |
| ४११        | २७ चन्द्रतां शशिनो                           |                  |           |
| १८४        | २१ चित्तमेव हि संस्कारो                      |                  |           |
| ८२१        | ५ चोदनालक्षणोर्थो                            | मी० द. १. १. २   | जैमिनिः   |
| ६६६<br>८६३ | ५ }<br>१७ } चोदना हि भूतं...किञ्चनेन्द्रियम् | मी० भा० पू० प० ४ | शबरस्वामी |
|            | छ  |                  |           |
| ३९९        | ५ छेदने खदिरप्राप्ते                         | श्लो० वा० प० १५७ | कुमारिलः  |
| ५४१        | २१ छेदसन्धानवैराग्य                          |                  |           |
|            | ज  |                  |           |
| ४४०        | २० जाल्यमेदादमेदश्चेत्                       | श्लो० वा० प० १८३ | कुमारिलः  |
| ३७२        | ८ जाल्याविशिष्टो...दुष्यते                   |                  |           |

| पत्र | पंक्ति  | निबन्ध            | कर्त्ता     |
|------|---|-------------------|-------------|
| ६८२  | १९ (ज्ञानानामाशूत्पत्तेः) काष्ठ<br>....वेधवत् | } न्या० वा० प० ३७ | उद्योतकरः   |
|      | त   |                   |             |
| ४४१  | १४ तत्कृतकत्वादि....द्योतयति                  |                   |             |
| ४१९  | १० तत्पक्षवचनम्                               |                   |             |
| १७४  | १ तत्रापि ये....मापद्यते                      | न्या० वा० प० ३५४  | उद्योतकरः   |
| ४००  | ५ तत्रापि....त्कारणेषु                        |                   | आचार्यः ?   |
| ३९८  | २३ तत्राप्यनुभयात्म                           |                   |             |
| ६१४  | २३ तत्रैव बोधये०                              | श्लो० वा० प० ७७६  | कुमारिलः    |
| ५२०  | १९ तत्समुदाये                                 | लो० सू०           |             |
| ७२   | २० तथेदममृतं ब्रह्म                           |                   |             |
| ९०५  | १४ तदत्यन्तविमोक्षो                           |                   |             |
| ५८०  | २३ तदपेक्षा च संघि                            |                   |             |
| ७९६  | २ } तदा न व्याप्रियन्ते                       | श्लो० वा० प० ६६   | कुमारिलः    |
| ७९९  | २७ }  |                   |             |
| २८५  | २० तद्रूपारोपगत्यान्य                         |                   |             |
| ४२   | २७ तनुभुवन....तन्त्वादिवत्                    |                   | अविद्वकर्णः |
| ३०७  | २५ तन्मात्राकाक्षणा                           |                   |             |
| ७६४  | २५ तस्मात्तत्प्रमा....द्यसौ                   | मी० भा० पृ० प० ८  | शबरस्वामी   |
| ८५२  | १ तस्मात्तन्मात्रसम्बन्धः                     |                   |             |
| १४   | २१ } तस्मादतीन्द्रियार्थानाम्                 |                   | जैमिर्नायाः |
| ६४९  | २७ }  |                   |             |
| ९५   | २२ तस्माद्बुभयहाने                            | श्लो० वा० प० ६९५  | कुमारिलः    |
| २५३  | ३० तस्मादेकस्य                                | " प० ५५१          | "           |
| ७९६  | २४ तस्माद्गुणेभ्यो                            | " प० ६६           | "           |
| ७८८  | २२ तस्माद्बोधोदात्म०                          | " प० ६१           | "           |
| ५०१  | १६ तस्माद्यतो यतो                             |                   |             |
| ८४९  | २३ } तस्माद्यत् स्मर्यते                      | श्लो० वा० प० ४४४  | कुमारिलः    |
| ८१९  | ५ }   |                   |             |



| पत्र | पंक्त                                | निबन्ध              | कर्ता       |
|------|--------------------------------------|---------------------|-------------|
| १४५  | ९ तस्माद्बैधर्म्यं                   |                     |             |
| २५७  | ५ तस्य शक्तिरशक्तिर्वा               |                     |             |
| ३३०  | ११ तस्य स्वपररूपाभ्यां॥              |                     | धर्मकीर्तिः |
| ११६  | ४ तस्यैव व्यभिचारादौ                 |                     |             |
| ५८३  | १९ ताद्रूप्येण च धर्मत्वम्           | श्लो० वा० प० ४९     | कुमारिलः    |
| १२   | १९ तापाच्छेदाच्च निकषात्             |                     | भगवान्      |
| ६१८  | ९ तावत्कालं स्थिरं                   | श्लो० वा० प० ८२३    | कुमारिलः    |
| ९६   | ९ तेनास्मत्प्रत्यभिज्ञानात्          | ” प० ७२४            | ”           |
| १७   | १६ त्रिगुणमविवेकि                    | सा० का० श्लो० ११    | ईश्वरकृष्णः |
| ४७३  | १४ त्रिलक्षणेन या०                   | श्लो० वा० प० ४८८    | कुमारिलः    |
|      | द                                    |                     |             |
| १२९  | १९ दंष्ट्रिर्दंष्ट्रावमेदं           | ‡अभिधर्मकोशव्याख्या | वसुबन्धुः   |
| १४   | ९ दीर्घो बालस्य                      |                     |             |
| ४५६  | २३ दृष्टः श्रुतो...बहिर्भावकल्पना    | मी० मा० पू० प० १२   | शबरस्वामी   |
| ८६१  | ८ दृष्टिभ्यां वर्ण्यते...दृष्टिभ्यां |                     |             |
| ८१   | ९ (देवदत्तस्य) रूपरस...प्रत्ययवत्    | §न्या०वा०प०४२१      | उद्योतकरः   |
| ५२३  | २२ देशान्तरकालान्तरं                 |                     |             |
| ५३०  | २४ देहात्सकृदुत्पन्ना                |                     | आचार्यः ?   |
| २१०  | १९ द्रव्याश्रय्यगुण...नपेक्षः        | वै० द० १. १. १६     | कणादः       |
| ४१   | १९ द्वीन्द्रियप्राप्त्या...स ईश्वरः* | ६                   | अविद्वकर्णः |
|      | ध                                    |                     |             |
| ८१३  | १२ धीप्रमाणता                        |                     |             |

॥ एतद्ब्रह्मचनग्रहणतः समन्तरं—तथाऽपरमुक्तमिति धर्मकीर्तेर्वचनं गृहीतं ततो विशायते धर्मकीर्तेरेतद्ब्रह्मचनमिति

‡ See Systems of Buddhistic Thought by Yamakami Sögen p. 19 for an English rendering of this Śloka.

§ अयं कुण्डलान्तर्गतः पाठ आदर्शपुस्तके नास्ति

\* इदं चाविद्वकर्णवचनं सम्मतिलकंटीकायां (जमदावाद् गुजरात पुरातत्त्वमन्दिरे) मुद्रितायां प्रथमे काण्डे १०० पत्रे एकांशुपूर्विकमनूदितं, ततो विशायते स ईश्वर इत्यन्तमेतद्ब्रह्मचनमिति

| पत्र | पंक्ति | निबन्ध                                 | कर्ता                  |
|------|--------|--|------------------------|
| ५८२  | १      | धीमात्रत्वेन                           | भदन्तशुभगुप्तः         |
| ५९३  | ३      | धूमेन ज्ञायते<br>न                     | भगवान्                 |
| १५५  | १३     | न किञ्चिदेक                            |                        |
| ४३६  | ४      | } न च स्वर्गकामो...ज्ञातुम्            | मी० भा० पू० प० ४       |
| ६४४  | २३     |  |                        |
| ६५३  | ६      |  |                        |
| ४३०  | १९     | न चादर्शनमात्रेण                       | ‡प्रमाणवार्तिककारिका ? |
| ४४०  | १९     | न चानेकेन्द्रिय                        | श्लो० वा० प० १८६       |
| ५८९  | ३      | न चास्य चोदना...बाध्येत                | मी० भा० पू० प० १३      |
| २७७  | २७     | न जातिशब्दो                            | दिङ्नागः               |
| ७३९  | २१     | न नर्मयुक्तं                           |                        |
| २५५  | १६     | ननु च प्रागभावादौ                      | श्लो० वा० प० ५६९       |
| ४३२  | २२     | ननु वा प्रमाणेन...प्रयोजनम्            | तत्त्वटीका             |
| ८६५  | १६     | मन्वज्ञानेन                            |                        |
| ४४१  | ६      | न प्रमाणान्तरं                         |                        |
| २५७  | २७     | न साबलेयात्                            | श्लो० वा० प० ६२४       |
| ६८   | ८      | } न सोऽस्तिप्रत्ययो                    | वा० प० का० १. प० ४६    |
| ७०   |        |  |                        |
| ३०८  | १३     | नहि तत्केवलम्                          |                        |
| ९८   | ८      | } नहि तत्क्षणमप्यास्ते                 |                        |
| ७७१  |        |  |                        |
| २५१  | ५      | नहि सर्वत्र निमित्ता...प्रत्ययः स्यात् | भाविक्तः               |
| ७४५  | ८      | } नहि स्वतोऽसती शक्तिः                 |                        |
| ८१३  |        |  |                        |
| ६६   | २१     |  |                        |
| ६६   | १४     | न हेतुस्तीति वदन्                      | आचार्यसूरिपादः         |
| ८२३  | २      | नह्येकं नास्ति                         |                        |
| ६३६  | ६      | नादैराहित                              | वा० प० का० १ प० ३२     |

‡ धर्मकीर्तिवचनसंवाचगतेन कार्यकारणभावाद्देति श्लोकेनास्य समानकर्तृकस्वावगमाद्धर्मकी-  
र्तेरिति सम्भाव्यते

| पत्र     | पंक्ति                            | निबन्ध             | कर्ता                |
|----------|-----------------------------------|--------------------|----------------------|
| १०८      | २ नानित्यशब्द                     | श्लो० वा० प० ६९४   | कुमारिलः             |
| ५३६      | १४ नानिष्टेर्दूषण                 |                    |                      |
| ५६९      | १४ नान्योऽस्ति ग्राहको            |                    | शुभगुप्तः ?          |
| ३६८      | २३ नामजात्यादि                    |                    | लक्षणकारः दिङ्नागः ? |
| ३०६      | १५ नार्थशब्दाविशेषस्य             |                    |                      |
| ४१२      | २७ नासिद्धेर्भाव                  |                    |                      |
| ८६६      | ११ नास्म्यहं न भविष्यामि          |                    |                      |
| १२९      | ४ } नित्यं तमाहुः                 |                    |                      |
| ५०७      | ११ }                              |                    |                      |
| २३७      | १ नित्यद्रव्यवृत्तयो              | वै० द० भा० प० १३   | प्रशस्तपादः          |
| ५९४      | २५ नित्ये तु खलु....नित्यः        | मी० भा० पू० प० ३३  | शबरस्वामी            |
| ९०७      | २१ निराकरण व०                     | श्लो० वा० प० ८१    | कुमारिलः             |
| ५८०      | २२ नीलपीतादि                      |                    |                      |
| ३८८      | २२ निश्चयारोप                     |                    |                      |
| ७०       | ११ } निश्चयैः । यच्च              |                    |                      |
| ७८२      | १७ }                              |                    |                      |
| ३४४      | १० निरंशो वस्तुनि....वृत्तित्वात् |                    | उद्योतकरः            |
| ३०१      | २ नीलोत्पलादि....आहुः             |                    | दिङ्नागः             |
| २५८      | ३ नैकरूपा मति                     | श्लो० वा० प० ६२५   | कुमारिलः             |
| ६५१      | १२ }                              |                    |                      |
| ७१२      | २० } नैवजातीयकेषु....विशेषेषु     | मी० भा० पू० प० ५   | शबरस्वामी            |
| ८९८      | २६ }                              |                    |                      |
| <b>प</b> |                                   |                    |                      |
| १७       | ३ पञ्चविंशतितत्त्व                |                    |                      |
| १८७      | ४ परमाणूना...विषाणवत्             |                    | अविभ्रकर्णः          |
| ५२०      | ९ परलोकिनो....भावः                | सूत्रम् ( लोकायत ) |                      |
| ७८       | २ परानुग्रह....हेतुक्त्वम्        |                    | प्रशस्तमतिः          |
| ८६९      | २१ परोक्षोपेय                     |                    |                      |
| २४७      | १७ पाचकाद्यनुवृत्ति....वसेयम्     |                    | शङ्करस्वामी          |

| पत्र | पंक्ति | निबन्ध  | कर्ता                            |
|------|--------|---|----------------------------------|
| २५७  | २६     | पिण्डभेदेषु<br>तस्मात्पिण्डेषु                    | श्लो० वा० प० ६२४<br>कुमारिलः     |
| ७६   | ५      | पुरुष एव....भव्यं                                 | ऋ० वे० १०. ९०. २                 |
| ११३  | ६      | पुरुषस्य दर्शनार्थं                               | सा० का० श्लो० २१<br>ईश्वरकृष्णः  |
| ५६८  | १७     | पूर्वप्रणिधाना....कार्यम्                         |                                  |
| ५६९  | १५     | पूर्विकैव तु                                      | शुभगुप्तः ?                      |
| १६   | २३     | प्रकृतेर्महान्                                    | सा० का० श्लो० २२<br>ईश्वरकृष्णः  |
| ४५५  | २४     | प्रत्यक्षमनुमान....स्वल्पक्षणवत् ( तत्त्वटीका ? ) | अविद्वकर्णः                      |
| ५८६  | १७     | } प्रत्यक्षस्तु....भवति                           | मी० भा० पू० पत्र० ६<br>शबरस्वामी |
| ६६६  | ४      |   |                                  |
| ५५१  | २१     | प्रत्येकपरमाणूनां                                 | शुभगुप्तः                        |
| २५८  | २      | प्रत्येकसमवेतापि                                  | श्लो० वा० प० ६२४<br>कुमारिलः     |
| २५८  | १      | प्रत्येकसमवेतार्थ०                                | " "                              |
| ४२८  | १०     | प्रमाणमविसंवादि                                   |                                  |
| १७९  | २५     | प्रमाणेऽपि तथा माऽभूत्                            | श्लो० वा० प० १५१<br>कुमारिलः     |
| ४५१  | १६     | प्रसिद्धसाध....मुपमानम्                           | न्या० द० १. १. ६<br>गौतमः        |
| १७९  | ३      | प्राक्कार्यनिष्पत्तेः                             | श्लो० वा० प० ८४१<br>कुमारिलः     |
| ७    | ५      | प्रायः प्राकृतशक्ति                               | ‡न्यायविन्दु ?<br>धर्मकीर्तिः ?  |
|      |        | ष   |                                  |
| १४   | १३     | बाह्यो न विद्यते                                  | भगवान्                           |
| १०८  | १      | बुद्धिजन्मनि पुंसश्च                              | दिङ्नागः                         |
| १७९  | २४     | बुद्धिजन्मेति च                                   | श्लो० वा० प० १५०<br>कुमारिलः     |
| ३८७  | १५     | } बुद्धिभेदान्न चैकत्वं                           | " प० १८३<br>"                    |
| ४४०  | २६     |   |                                  |
| ४९३  | २२     |   |                                  |
| ४३   | ९      | बुद्धिम....श्यादिवत्                              | न्या० वा० प० ४६३<br>उद्योतकरः    |
| २२७  | २०     | बुद्धिरूप....थान्तरम्                             | न्या० द० १. १. १५<br>गौतमः       |
| ७७१  | ५      | बुद्धीनामपि चैतन्य०                               | श्लो० वा० प० ८३३<br>कुमारिलः     |

| पत्र | पंक्ति | निबन्ध                       | कर्त्ता           |             |
|------|--------|------------------------------|-------------------|-------------|
|      |        | <b>भ</b>                     |                   |             |
| १४   | ४      | भस्मीभूतस्य                  | चार्वाकाः         |             |
| १३०  | १      | भारं वो भिक्षवो....पुद्गलाः  | भगवान्            |             |
| ”    | १४     | भारहारः कतमः                 | ”                 |             |
| ८६१  | ९      | भावे किं....संशयोऽस्तु       | आचार्यः ?         |             |
| ४२   | २२     | भुवनहेतवः....दिवत्           | *न्या० वा० प० ४६१ |             |
| २०   | २५     | भेदानां परिणामात्            | सा० का० श्लो० १५  |             |
| ३१   | ३      | भेदे हि कारणं                | ईश्वरकृष्णः       |             |
|      |        | <b>म</b>                     |                   |             |
| ४५   | ७      | } महत्यनेक....पलब्धिः        | वै० द० ४. १. ६    | कणादः       |
| ४१   | २४     |                              |                   |             |
| १३   | ६      | मा भिक्षवः....मादृशः         |                   | भगवान्      |
| ५८२  | २१     | माऽभूत् सर्वथा....प्रत्ययाः  |                   | दिङ्नागः    |
| २१६  | २४     | मालादौ च महत्त्वा०           |                   |             |
| ”    | २०     | मालाबहुत्वे तच्छ०            |                   |             |
| १८३  | २५     | मिथ्याऽध्यारोप०              |                   |             |
| २२   | २२     | मूलप्रकृतिरविकृ०             | सा० का० श्लो० ३   | ईश्वरकृष्णः |
|      |        | <b>य</b>                     |                   |             |
| ५८३  | १०     | य एव श्रेयस्कर....च्यते      | मी० भा० पू० प० ६  | शबरस्वामी   |
| ३७२  | २५     | यज्ज्ञानमर्थे....प्रत्यक्षम् | †न्यायमुखे        | दिङ्नागः    |
| १३   | २      | यत्किञ्चिद्विभिक्षवः         |                   | भगवान्      |
| ६५५  | १९     | यत्तु लौकिकं....मेव तत्      | मी० भा० पू० प० ५  | शबरस्वामी   |
| ६६८  | ८      | यत्र स्वातन्त्र्यमिच्छाया    |                   |             |
| ४११  | १८     | } यत्राप्य....पक्षः          |                   | आचार्यः ?   |
| ४१२  | ५      |                              |                   |             |
| ५३   | २०     | यथा बुद्धि....मस्ति          | न्या० वा० प० ४६८  | उद्योतकरः   |
| ७२   | १९     | यथा विशुद्धमाकाशं            |                   |             |
| ५८२  | ११     | यदन्तर्ज्ञेयरूपं तु          | (आलम्बनपरीक्षा ?) | दिङ्नागः    |
| ७८७  | ९      | यदा क्षुदादि....मन्येमहि     | मी० भा० पू० प० ९  | शबरस्वामी   |

\* आदर्शन्यायवार्तिकपुस्तके प्रधानपरमाणुकर्माणीत्यारभ्य पाठान्तरं दृश्यते ।

† आदर्शपुस्तकं पाठभेदो दृश्यते । Nyāyapraveśa is being printed in the Gaekwad's Oriental Series, Baroda.

| पत्र     | पंक्ति | निबन्ध                     | कर्ता                 |             |
|----------|--------|----------------------------|-----------------------|-------------|
| ३२०      | १      | यदि शब्दस्यापोहो...भिधत्ते | न्या० वा० प० ३३३      | उद्योतकरः   |
| २७८      | २      | यदि शब्दान्...नन्त्यं      | " प० ३२७              | "           |
| ३६९      | २३     | यदृच्छाश...विषाणी          | वृत्तिग्रन्थ आचार्य   | (दिङ्नागः)  |
| २२       | २६     | यदेव दधि तत्क्षीरं         |                       |             |
| ५५       | ४      | यद्यपि नित्य...हेतोः‡      |                       | उद्योतकरः   |
| ५८२      | १६     | यद्यपीन्द्रियविज्ञतेः      |                       | शुभगुप्तः   |
| २८१      | २४     | यया जाति...व्यूहात्        | न्या० भा० पत्र० १४६   | वात्स्यायनः |
| ८३१      | २१     | यः सत्यवाक् सत्य...तव्यः   | उपनिषत् (छान्दोग्य ?) |             |
| २७८      | ४      | यस्य निर्विशे...नन्त्यम्   | *न्या० वा० प० ३२६     | उद्योतकरः   |
| ८४३      | १३     | यस्यां रात्रौ...शुष्वन्ति  |                       |             |
| ६०२      | ९      | यस्याप्यभिव्य...गलभ्यन्ते  | मी० भा० पू० प० ३०     | शबरस्वामी   |
| १८३      | २४     | यावच्चात्मनि य प्रेम्णो    |                       |             |
| २१०      | ४      | युगपज्ज्ञाना...लिङ्गम्     | न्या० द० १६. १. १     | गौतमः       |
| १५       | १८     | युष्माभिरेव कर्त्तव्यम्    |                       | भगवान्      |
| २७५      | २७     | येन येन हि नाम्ना वै       |                       | तायी भगवान् |
| १२       | ११     |                            |                       |             |
| १६२      | १३     | ये रूपत्वादि...दिवत्       |                       | भाविविक्त   |
| १३०      | १५     | योऽसावायुष्मन्...दीर्घायुः |                       | भगवान्      |
| <b>र</b> |        |                            |                       |             |
| ५९       | २६     | रजोजुषे जन्मनि             | कादम्बरी              | बाणः        |
| २११      | ६      | रूपरसगन्ध...गुणाः          | वै० द० १. १. ६        | कणादः       |
| ४१       | २५     | रूपसंस्काराभावात्          | वै० द० ४. १. ७        | कणादः       |
| ४२८      | ८      | लिङ्गलिङ्गिधियोरेवं        |                       |             |
| <b>व</b> |        |                            |                       |             |
| ११६      | ७      | वत्सविवृद्धिनिमित्तं       | सा० का० श्लो० ५७      | ईश्वरकृष्णः |
| ६३०      | २३     | वर्णानामपि...भागाः         |                       |             |
| ६८६      | ८      | वायवीया...नोपलभ्यन्ते      | मी० भा० पू० प० ३१     | शबरस्वामी   |
| ६३६      | ४      | वायुरापद्यते...वानिति      |                       | शिक्षाकाराः |
| ५१९      | २१     | विकल्पः स्वयमेव            |                       |             |

| पत्र     | पंक्ति | निबन्ध                               | कर्ता                       |
|----------|--------|--------------------------------------|-----------------------------|
| ४४       | ५      | त्रिचित्रो...दयः                     | प्रशस्तमति ( प्रभृति )      |
| ५८०      | २५     | विज्ञानं...मुपादाय                   | प्रज्ञापारमिता              |
| ७४५      | १५     | विज्ञानव्यक्तिभेदेन                  | श्लो० वा० प० ५६ कुमारिलः    |
| ४०९      | १२     | विना साध्याददृष्टस्य                 | आचार्य (?)                  |
| ४२२      | ५      | विप्रकीर्णैश्च वचनैः                 | अविद्धकर्णः                 |
| १६३      | ९      | विप्रतिपन्ना...प्रत्ययवत्            | न्या० वा० प० ४२१ उद्योतकरः  |
| १६२      | ६      | विमत्यधि...ज्ञानवत्                  | भाविविक्रतः                 |
| ४५       | २६     | विवादवि...प्रत्ययवत्*                | उद्योतकरः                   |
| १२४      | २६     | विशुद्धा चेद्भवेन्नासौ               |                             |
| ५६८      | १९     | विषयस्य...नस्येति चेत्               | धर्मकीर्तिः                 |
| ३९९      | ४      | विषयैकत्वमिच्छंस्तु                  | श्लो० वा० प० १५७ कुमारिलः   |
| ३८९      | २१     | व्यक्तयो नानुयन्त्यन्यत्             |                             |
| २८१      | ६      | व्यक्तिर्गुण...मूर्तिः               | न्या० द० २. २. ६८ गौतमः     |
| २८१      | ३      | व्यक्त्याकृतिजातयः                   | " २. २. ६७ "                |
| ६३३      | ४४     | व्यापारव्यतिरेकेण                    |                             |
| <b>श</b> |        |                                      |                             |
| ५८३      | २३     | } शक्तयः सर्वभावानां<br>} त्रयोऽपि च |                             |
| ६२४      | १४     |                                      |                             |
| ८१३      | २०     |                                      | श्लो० वा० प० ३४१ कुमारिलः   |
| १८०      | १३     | शक्तिप्रवृत्त्या                     |                             |
| ४३४      | ३      | शब्दज्ञाना...शाब्दम्                 | मी० भा० पू० प० १२ शबरस्वामी |
| २९२      | १५     | शशशङ्कादिरूपा०                       | श्लो० वा० प० ४७४ कुमारिलः   |
| ७        | १७     | शालं प्रणेतु...मारभते                |                             |
| ८        | ३      | शालेषु...व्यसनितया                   |                             |
| ५८३      | १७     | श्रेयो हि पुरुषप्रीतिः               | श्लो० वा० प० १०४ कुमारिलः   |
| <b>ष</b> |        |                                      |                             |
| ७३९      | २०     | षट्शतानि नियु०                       |                             |
| <b>स</b> |        |                                      |                             |
| १२४      | २५     | संक्लिष्टा च विशु०                   |                             |

| पत्र | पंक्ति | निबन्ध                            | कर्ता                           |
|------|--------|-----------------------------------|---------------------------------|
| ३२८  | १०     | संसृज्यन्ते न भि०                 |                                 |
| ७८१  | ४      | स खलु प्रत्यक्षं...नाति-<br>पतति  | आचार्य (?)                      |
| ४४२  | १७     | सङ्केतापेक्षया तस्य               |                                 |
| २१२  | १५     |                                   |                                 |
| २३२  | १      | सङ्ख्यापरिमाणा...चाक्षुषाणि       | वै० द० ४. १. ११                 |
| ४५   | ५      |                                   | कणादः                           |
| ११   | १      | स चायमङ्कु...समुत्पन्नः           | भगवान्                          |
| ३८३  | ३      | सत्तादिसामान्य...विषयत्वम्        | सुमतिः                          |
| ३३   | ७      | सत्तास्त्रकरणाश्लेष               |                                 |
| ९८   | २१     | } सत्संप्रयोगे पुरुष              |                                 |
| १७९  | २२     |                                   | मी० द० १. १. ४                  |
| ७७०  | २५     |                                   | जैमिनिः                         |
| ८०   | १३     | सदाद्यविशेषविषय...घटादयः          | प्रशस्तमतिः                     |
| ४४   | ११     | सदाद्यविशेषास्कन्दिता...रूपादिवत् | "                               |
| १४०  | ८      | सधर्मेषु धर्मा...त्रिनिर्मुक्तः   | भगवान्                          |
| ५०९  | २५     | मन्त्रतिकार्यं चेष्टं             |                                 |
| ८२५  | २१     | स पश्यति दिव्येन...गच्छतः         |                                 |
| ५७   | १९     | सप्तभुवनान्येक...सूत्रधारः        | प्रशस्तमतिः                     |
| २८२  | ४      | समानप्रसवात्मिका जातिः            | न्या० द० २. २. ७०               |
| २    | १३     | सम्बन्धानुगुणोपायं                | गौतमः                           |
| ४३   | १      | सर्गादौ पुरुषाणां...पूर्वकः       | प्रशस्तमतिः                     |
| ३१६  | ११     | सर्वत्रामेदात्...साधुः            | दिडूनागः                        |
| ५५९  | १६     | सर्वत्रालम्बनं बाह्यं             | श्लो० वा० प० २४२                |
| २८५  | २४     | सर्वो मिथ्यावभासो                 | कुमारिलः                        |
| ११   | २३     | सर्वं सर्वमिति...धातवः            | भगवान्                          |
| ५६७  | १७     | सहशब्दश्च लोके                    | शुभगुप्तः                       |
| "    | १६     | सहोपलम्भनियमात्                   | *प्रमाणविनिश्चयः<br>धर्मकीर्तिः |



| पत्र | पंक्ति | विषय                         | कर्ता                           |
|------|--------|------------------------------|---------------------------------|
| ५७०  | २३     | साकारज्ञानपक्षे              | शुभगुप्तः                       |
| ५७३  | ७      | साकारं तन्निराकारं           | "                               |
| ४७३  | १२     | सात्मनोऽपरिणामो              | श्लो० वा० प० ४७५<br>कुमारिलः    |
| ४१९  | ११     | साध्यस्यैवाभिधानेन           |                                 |
| १२   | २५     | साध्यार्थाविना...धर्मकम्     | भगवान्                          |
| ४४२  | ३२     | ‡मान्निव्यमात्रतस्तस्य       |                                 |
| ३    | १७     | सामग्रीफलशक्तीनाम्           |                                 |
| २४३  | २७     | सामान्यमपि...बाधा०           | शङ्करस्वामी                     |
| ९०५  | २०     | साहंकारे मनसि                |                                 |
| ६०९  | २१     | सूर्यमस्य चक्षुर्गमयतात्     |                                 |
| ३८७  | १७     | } स्थितं नैव हि              | श्लो० वा० प० १७८<br>कुमारिलः    |
| ३८८  | ६      |                              |                                 |
| ६२४  | ५      |                              |                                 |
| ६४१  | ३      |                              |                                 |
| २७२  | ३      | स्पर्शवद्द्रव्य...कर्म       |                                 |
| ५८०  | ९      | स्मरन्ति ग्राहको             | श्लो० वा० प० २९२<br>कुमारिलः    |
| ७४५  | १४     | स्वतस्तावद्द्वयं             | " प० ५५<br>"                    |
| १००  | २४     | स्वप्नादिप्रत्यये            | " प० २४२<br>"                   |
| ७    | ३      | स्वयमप्येवं...प्रयोगः        | न्या० बि० प० १०६<br>धर्मकीर्तिः |
| २९३  | १      | स्वसंवेद्यमनिर्देश्यम्       |                                 |
|      |        | ह                            |                                 |
| १७   | १९     | हेतुमदनित्यमव्यापि           | सा० का० श्लो० १०<br>ईश्वरकृष्णः |
| २४९  | ६      | हेत्वर्थापरिज्ञाना...न्नदोषः | ‡न्या० वा० प० ३२०<br>उद्योतकरः  |

‡ भट्टकुमारिलेनाप्यनूदितमेतत् श्लो० वा० प० ८७

¶ आदर्शपुस्तक पाठक्रमे भेदः ।

## तत्त्वसङ्ग्रहपत्रिकयोः कृतानां ग्रन्थग्रन्थकारादि- निर्देशानां सूची ।

अविद्धकर्णः ४१-१९; १३६-६;  
१८७-४; २१३-२३; २२५-  
२४; ४२२-५; ४३२-२२;  
४५२-१६; ४५५-२३.

अहीकः (?) ४८६-२५; ४८७-३.

आचार्याः (?) ३-१९; ४६-१५;  
३३२-१७; ३५९-९; ३७१-  
१३; ३७२-७; ३७३-८;  
४००-५; ४०९-१, २; ४११-  
१७; ४१२-५; ५३०-२४;  
५८२-२१; ७०४-५, ७८१-  
४.

आचार्य (दिङ्नागः) ३२०-१०;  
३२०-११.

आचार्याः (धर्मकीर्तिः) ७-३.

आचार्यदिङ्नागः १०८-२; २७७-  
२७; ३०१-१; ३१६-११;  
३२०-१; ५८२-११.

आचार्यधर्मकीर्तिः ५६८-१९;  
८५७-१.

आचार्यवसुबन्धुः १२९-२१.

आचार्यसूरिपादः ६६-१३.

ईश्वरकृष्णः १६-२३; १७-१९.

उद्योतकरः ४२-२२; ४३-९; ४५-  
२६; ५३-२०; ५५-४; ७८-१४;

उद्योतकरः contd. ८१-९; ९०-३;  
९२-१२; १३०-२१; १३६-  
२६; १४२-१०; १६३-९;  
१७४-१; १८८-१०; १९८-  
१४; २०२-२६; २०५-१३;  
२१८-९; २३९-४; २४९-३;  
२५३-२७; २७७-२७; २७८-  
२; ३१३-१२; ३१६-११;  
३२०-१; ३४४-१०; ३६०-  
५; ६८२-१९; ६८४-१८.

उत्रेयकः (उब्बेकः!) ८१२-११.

कणाशि ४९३-५; ६९१-८.

कम्बलाश्वतरः ५२१-१८.

कुमारिलः ९५-२२; ९८-२२; ९८-  
२६; १००-२४; १०८-२;  
१०९-२६; १३६-१४; १५९-  
१२; १६७-१०; १६७-२३;  
१७२-३; १८३-२; २५३-  
१०; २५५-१६; २५७-१६;  
२९२-१; ३१३-१२; ३४९-  
६; ३६०-५; ३७९-११;  
३८४-२६; ३८६-१६; ३९८-  
२५; ३९९-४; ४००-३;  
४००-१७; ४००-२३; ४२२-  
१५; ४२३-८; ४४०-१४;

कुमारिलः ४७२-१४; ४९३-२५;  
५०१-२१; ५५५-३; ५५९-  
१५; ५६२-१४; ५७६-१३;  
५७७-१०; ६८४-१८; ७१३-  
१४; ७३६-२०; ७४३-१६;  
७७१-४; ७८८-२२; ७९६-  
२; ७९६-२४; ८०८-२३;  
९०७-२१.

चरकः ४८२-१५.

जैमिनिः ९८-२०.

पात्रस्वामी ४०५-१.

पुरन्दरः ४३१-२६.

प्रशास्तमतिः ४३-१; ४३-२२; ५७-  
९; ७८-२; २६४-१७;  
२६९-४.

बुद्धदेवः ५०४-२३.

भदन्तघोषकः ५०४-१३.

भदन्तधर्मत्रातः ५०३-२४; ५०४-७.

भदन्तयोगसेनः १५३-९.

भदन्तवसुमित्रः ५०४-१७.

भर्तृहरिः ४२६-१५; ७१३-२०.

भामहः २९१-७.

भाविक्त्तः ८८-१९; ९०-३; १६१-  
२६; ५८८-१०; २३८-४;  
२५१-५; ३९१-१.

यज्ञतः ८४४-८.

रुद्रिलः २२-२७.

लक्षणकारः ३३२-२०; ३६८-२३;  
३७२-१४.

विन्ध्यवासी ४२२-२३; ४२३-२२;  
६३६-७.

शङ्करस्वामी ८१-१; १९९-२०; २०३-  
२४; २४३-२७; २४७-१७;  
२५०-१३; २५४-२४; ३६७-  
४; ३९८-१; ४०१-८; ४२३-  
४; ६८१-१६.

शबरस्वामी or भाष्यकारः ९८-१९;  
४३४-३; ४३६-४; ४४४-  
७; ४५६-२३; ४७१-८;  
६५५-१९; ६६६-४; ६८६-  
७; ७८७-८.

शुभगुप्तः ५५१-२१; ५५२-५;  
५५६-१७; ५६१-९; ५६७-  
१७; ५७०-२४; ५७२-७;  
५७४-१९; ५८२-१.

सहन्तभद्रः (सङ्घभद्रः ?) ५०६-२२;  
५०८-२६.

सामटः ८४४-८.

सुमतिः ३७९-१; ३८२-८; ३८३-  
३; ४८९-२५; ४९६-१३;  
५५४-१.

(अभिधर्म) कोश १२९-२१.

तत्त्वटीका ४२६-१३; ४३२-२२.

न्यायबिन्दुः ७-३.

न्यायमुखग्रन्थः ३७२-२२.

पदार्थप्रवेशकः १९२-२६.

परमार्थशून्यतासूत्रम् ५१८-२१, २४.

परमार्थसप्ततिका १२९-२१.

पातञ्जलभाष्यम् ६३६-३.

प्रज्ञाधारमिता ५८०-२४.

वृत्तिग्रन्थः (आचार्यीयः) ३६९-२३.  
शाबरभाष्यम् } ४४४-७; ५८३-१०;  
भाष्यम् } ५९४-२५; ६०४-  
१९; ६३४-१६; ६५१-१२;  
६५३-५; ६९७-२६; ७१२-  
२०; ७४३-१२; ७६४-२५;  
७७१-७; ८३९-२२.

सीताहरणं काव्यम् १६-७.

हेतुमुखं ३१२-२१; ३३९-१५.

काणादाः ६८६-५.

चार्वाकाः १४-४.

जैमिनीयाः १४-२१.

माध्यमिकाः ५३९-१३.

योगाचारः ७८४-१३.

वात्सीकुत्रीयाः १२५-१६.

वैभाषिकाः १४०-१०; १७५-२१;

२९०-२; ७३०-२०.

शिक्षाकाराः ६३६-४.

साङ्ख्यः ५८-१६.

सौत्रान्तिकः ७३०-१६.

कनकः ८२८-१८.

काश्यपः ”

भगवान् (बुद्धः) } ११-१, ५, १३,

तायी } २३; १२-११,

१९, २१; १३-२१; १४-१,

६, १३, २५; १३०-१४;

१४०-८; ५०४-२; ५०५-

१६, २४; ५१८-१३, २३;

९२३-६.

शाक्यमुनिः ८२८-१८.

ऋतुपर्णः ९००-२०.

ऋषभवर्धमानादयः ८७९-६.

कपिलः ८२२-२२; ८६७-१५.

नलर्तुपर्णौ ८२७-१२.

ब्रह्मदत्तः ५०५-२१.

महाश्वेता ३३८-११.

मैत्रेयः ५०५-२१.

वर्धमानः ८६७-३, १५.

शङ्खः ५०५-२१.

शारीपुत्रः ८३२-१०.

श्रीहर्षः ५०५-२३.

**THE ASIATIC SOCIETY**  
**Calcutta—700 010**



ASIATIC SURV  
- 20010

